गुरु-परताप साध की संगति

भगवान श्री रजनीश

गुरु-परताप साध की संगति

गुरु-परताप साध की संगति! गुरु महिमा है एक—एक रोशनी, एक प्रताप, एक प्रकाश, एक चमत्कार! उसका होना इस जगत में एक अपूर्व घटना है—अद्वितीय। वैसे फूल रोज-रोज नहीं खिलते। सदियां बीत जाती हैं तब कभी कोई सद्गुरु होता है। इसलिए सद्गुरुओं को पहचानना ही हम भूल जाते हैं, क्योंकि सदियों तक पहचान नहीं होती। सदियों तक तो पंडित-पुरोहितों से हमारा संबंध होता है और फिर जब सद्गुरु आता है तो हम पहचान ही नहीं पाते। पहचानना तो दूर हम नाराज होते हैं, नाखुश होते हैं। हम दुश्मन हो जाते हैं। क्योंकि हमारी तो सारी जानकारी पंडित-पुरोहित की होती है। और सद्गुरु पंडित-पुरोहित से बिलकुल उलटा होता है, बिलकुल भिन्न होता है।

धन्यभागी हैं वे जो गुरु-परताप की छाया में आ जाएं। भीखा का यह वचन बड़ा प्यारा है: गुरु-परताप साध की संगति! गुरु की आभा से मंडित हो जाओ और गुरु की आभा से जो मंडित हुए साधु हों, उनमें डूब जाओ, एकलीन हो जाओ। किसी बुद्ध को पकड़ लो और किसी बुद्ध के क्षेत्र में डुबकी मार जाओ; फिर शेष सब अपने से हो जाता है।

परमात्मा को खोजने कोई सात समंदर पार नहीं जाना है। परमात्मा को खोजने कोई कैलाश, काशी और काबा नहीं जाना है। परमात्मा वहां है जहां कोई सद्गुरु है; जहां साधुओं की संगति है। परमात्मा वहां है जहां दीवाने बैठकर उसके रस को पी रहे हैं। जहां भंवरे इकट्ठे हुए हैं और परमात्मा को पीकर गीत गा रहे हैं, गुंजार कर रहे हैं। जहां किसी एक जले हुए दीये के पास और-और दीये सरक-सरक कर चलने शुरू हो गये हैं। जहां एक दीये के आसपास और बहुत दीये जल उठे हैं। जहां दीपावली हो गयी है। गुरु-परताप साध की संगति! ...वहां प्रवेश कर जाना। ऐसा द्वार मिल जाए तो छोड़ना ही मत। कीमत जो भी चुकानी हो चुका देना। क्योंकि हमारे पास चुकाने को भी क्या है? खाली हैं, नंगे हैं। हमारी गर्दन भी ले ली जाए तो हमारा खोता क्या है? गर्दन तो आज नहीं कल मौत ले ही लेगी और बदले में कुछ भी न देगी। गर्दन की कीमत ही क्या है!

शिष्य वह है जो यह देखकर कि मेरी अपने में तो कोई कीमत वैसे भी नहीं है, किन्हीं चरणों में रख दूं सब, शायद ऐसे पारस का परस हो जाए और लोहा सोना हो जाए! लोहा सोना होता है—गुरु-परताप साध की संगति! भीखा के ये सारे वचन बस इन्हीं पांच शब्दों के आसपास घूमेंगे, क्योंकि भीखा का पूरा जीवन ही इन पांच शब्दों से बना था।

भगवान श्री रजनीश

गुरु-परताप साध की संगति

भगवान श्री रजनीश
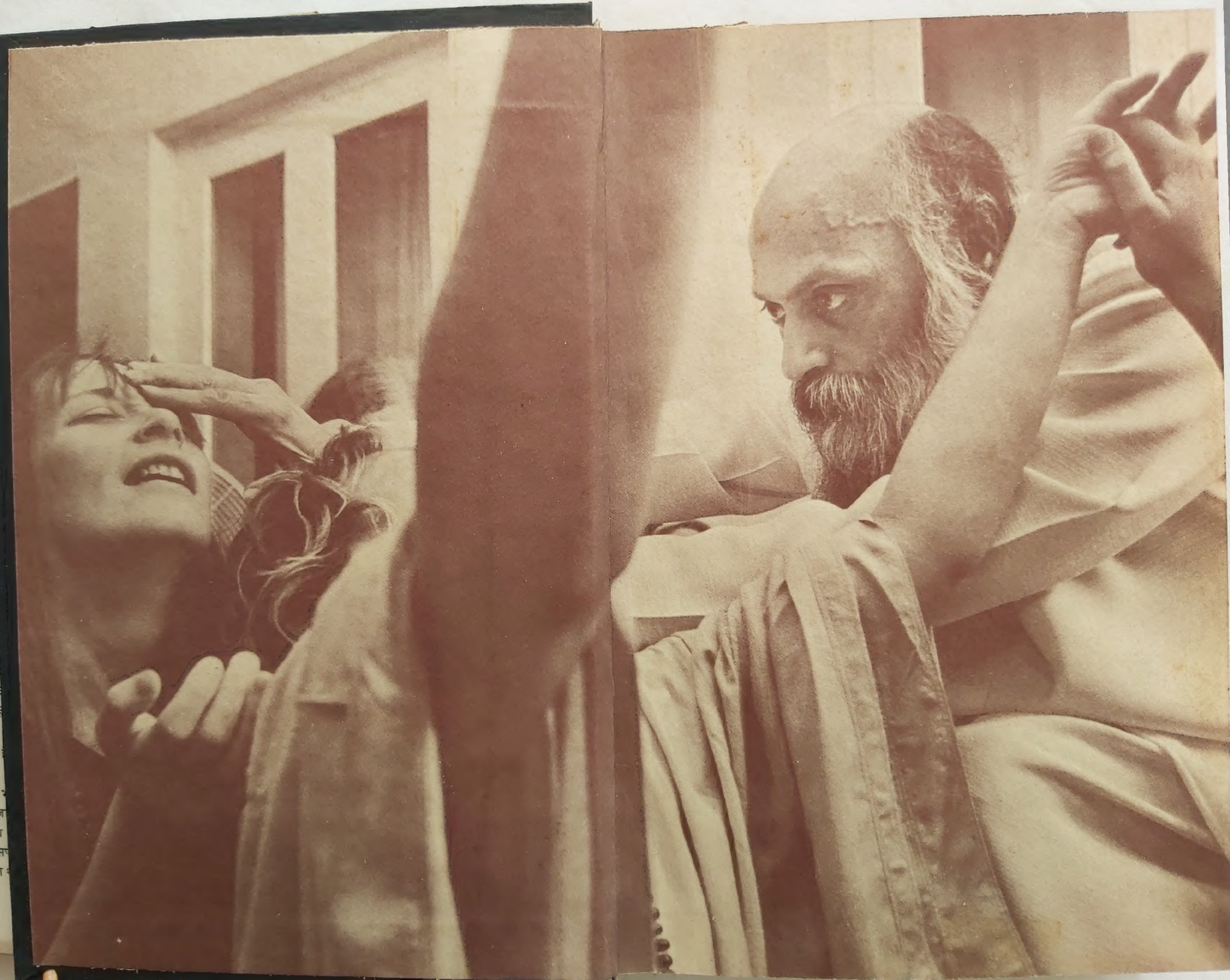
गुरु-परताप साध की संगति

भीखा-वाणी पर भगवान श्री रजनीश के ग्यारह अमृत प्रवचन
प्रश्नोत्तर प्रति दूसरे दिन और सूत्र पर समाप्ति
दिनांक २१ मई से ३१ मई, १९७९
श्री रजनीश आश्रम, पूना

रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड

गुरु परताप साध की संगति

भगवान श्री रजनीश
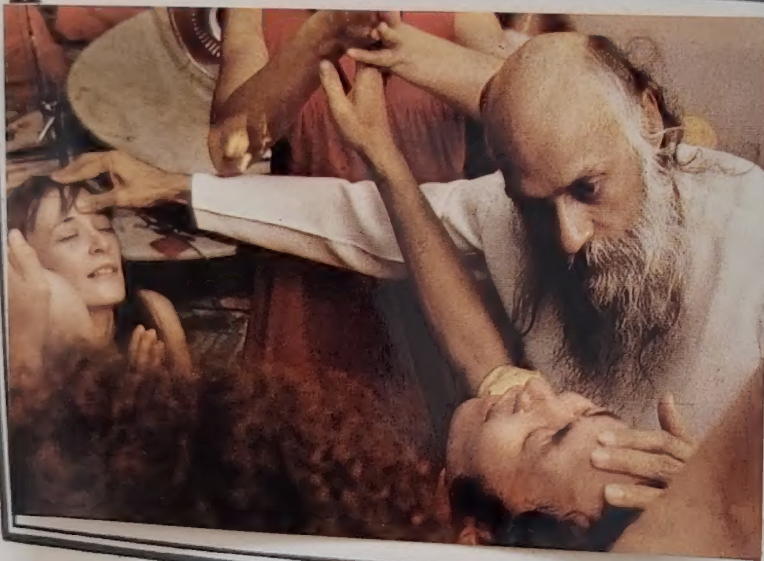
संपादन : स्वामी योग अमित

संकलन : मा आनंद दिव्या

सहयोग : स्वामी चैतन्य कीर्ति

साज-सज्जा : मा आनंद कात्यायनी

संयोजन : स्वामी नरेंद्र बोधिसत्व

प्रकाशक : मा योग लक्ष्मी,
रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड,
१७, कोरेगांव पार्क,
पूना—४११ ००१

प्रथम संस्करण : ११ दिसम्बर, १९७९

प्रतियां : ३०००

मूल्य : ५० रुपये

मुद्रक : गो. आ. जोशी
के. जोशी एंड कं.
ब्लॉक मेकर्स एंड आर्ट प्रिंटर्स
निकट भिकारदास मारुति मंदिर
पूना—४११ ०३०

अनुक्रमणिका

गुरु-परताप साध की संगति

अनंत-अनंत काल के बीत जाने पर कोई सद्‌गुरु होता है। सिद्ध तो बहुत होते हैं, सद्‌गुरु बहुत थोड़े। सिद्ध वह जिसने सत्य को जाना; सद्‌गुरु वह जिसने जाना ही नहीं, जनाया भी। सिद्ध वह जो स्वयं पा लिया लेकिन बांट न सका; सद्‌गुरु वह, जिसने पाया और बांटा। सिद्ध स्वयं तो लीन हो जाता है परमात्मा के विराट सागर में; मगर वह जो मनुष्यता की भटकती हुई भीड़ है--अज्ञान में, अंधकार में, अंध-विश्वास में--उसे नहीं तार पाता। सिद्ध तो ऐसे है जैसे छोटी-सी डोंगी मछुए की, बस एक आदमी उसमें बैठ सकता है। सिद्ध का यान हीनयान है; उसमें दो की सवारी नहीं हो सकती, वह अकेला ही जाता है। सद्‌गुरु का यान महायान है; वह बड़ी नाव है; उसमें बहुत समा जाते हैं; जिनमें भी साहस है, वे सब उसमें समा जाते हैं। एक सद्‌गुरु अनंतों के लिए द्वार बन जाता है।

सिद्ध तो बहुत होते हैं, सदगुरु बहुत थोड़े होते हैं। और सद्‌गुरु जब हो तो अवसर चूकना मत।

सद्‌गुरु का संदेश क्या है? फिर सद्‌गुरु कोई भी हो—गुलाल हो, कबीर हो कि नानक, मंसूर हो, राबिया कि जलालुद्दीन--कुछ भेद नहीं पड़ता। सद्‌गुरुओं के नाम ही अलग हैं, उनका स्वर एक, उनका संगीत एक; उनकी पुकार एक, उनका आवाहन एक; उनकी भाषा अनेक होगी मगर उनका भाव अनेक नहीं। जिसने एक सद्‌गुरु को पहचाना उसने सारे सद्‌गुरुओं को पहचान लिया--अतीत के, वर्तमान के भी, भविष्य के भी। सद्‌गुरु में समय के भेद मिट जाते हैं--जो पहले हुए हैं, वे भी उसमें मौजूद; जो अभी हैं, वे भी उसमें मौजूद; जो कभी होंगे, वे भी उसमें मौजूद। सद्‌गुरु शुद्ध प्रकाश है जिस पर कोई भी अंधकार की सीमा नहीं।

जो झुकेगा सद्‌गुरु के चरणों में उसके लिए द्वार खुलने लगते हैं। झुके बिना

ये द्वार नहीं खुलते। जो अकड़ा है उसके लिए तो द्वार बंद हैं। खुला द्वार भी उसके लिए बंद है क्योंकि अकड़ के कारण उसकी आंख बंद है। अहंकार आदमी को अंधा करता है; विनम्रता उसे आंख देती है। जो जितना सोचता है 'मैं हूं' उतना ही परमात्मा से दूर होता है। जो जितना जानता है 'मैं नहीं हूं', उतना परमात्मा के निकट सरकने लगा, उतनी उपासना होने लगी, उतना उपनिषद् जगने लगा, उतनी निकटता बढ़ने लगी, उतना सामीप्य। और जिसने जाना कि 'मैं हूं ही नहीं', वह परमात्मा हो जाता है। जिसने जाना कि मैं हूं ही नहीं, वह कह सकता है--अहं ब्रह्मास्मि--मैं ब्रह्म हूं।

इस किनारे पर उस किनारे की खबर तो वही दे सकता है जो उस किनारे पहुंच गया हो। सिद्ध भी उस किनारे पहुंचते हैं मगर वे लौटते नहीं, वे गये सो गये। जैन और बौद्ध शास्त्रों ने उन्हें अर्हत कहा है। गये सो गये। वे फिर लौटते नहीं, वे खबर देने भी नहीं लौटते। डूबे सो डूबे। वे इस किनारे फिर नहीं आते। और जो उस किनारे जाकर इस किनारे आ जाते हैं, उन्हें बौद्धों ने बोधिसत्व कहा है, जैनों ने तीर्थंकर कहा है। उनकी करुणा अपार है। सत्य का अपूर्व आनंद छोड़कर, ब्रह्म का महासुख छोड़कर, जहां कमल ही कमल खिले हैं शाश्वतता के, उन्हें छोड़कर लौट आते हैं--इस किनारे पर, कंटकाकीर्ण किनारे पर--जो पीछे भटकते आ रहे हैं उन्हें खबर देने--वे सद्गुरु हैं।

ऐसे सद्गुरुओं के साथ तुम एक कदम भी उठा लो तो पूर्णिमा आ जाए जीवन में। ऐसे तो अमावस में और पूर्णिमा में पंद्रह दिन का फर्क होता है, लेकिन मैं जिस अमावस और जिस पूर्णिमा की बात कर रहा हूं, उसमें एक कदम का ही फासला है: समर्पण--और पूर्णिमा; अहंकार--और अमावस।

सब तुम्हारे ऊपर निर्भर है। स्वयं को पकड़े बैठे रहे तो तड़फते ही रहोगे, भटकते ही रहोगे। फिर रात का कोई अंत नहीं, फिर सुबह नहीं होगी। लेकिन अगर कहीं कोई चरण पा लो जहां प्रेम उमगे, जहां श्रद्धा जन्मे, तो साहस करना, दुस्साहस करना, जोखम उठा लेना--झुक जाना, क्योंकि उसी झुक जाने में जीत है; मिट जाना, क्योंकि उसी मिट जाने में होना छिपा है।

गुरु-परताप साध की संगति!

भगवान श्री रजनीश

तमसो मा ज्योतिर्गमय

पहला प्रवचन; दिनांक २१ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना
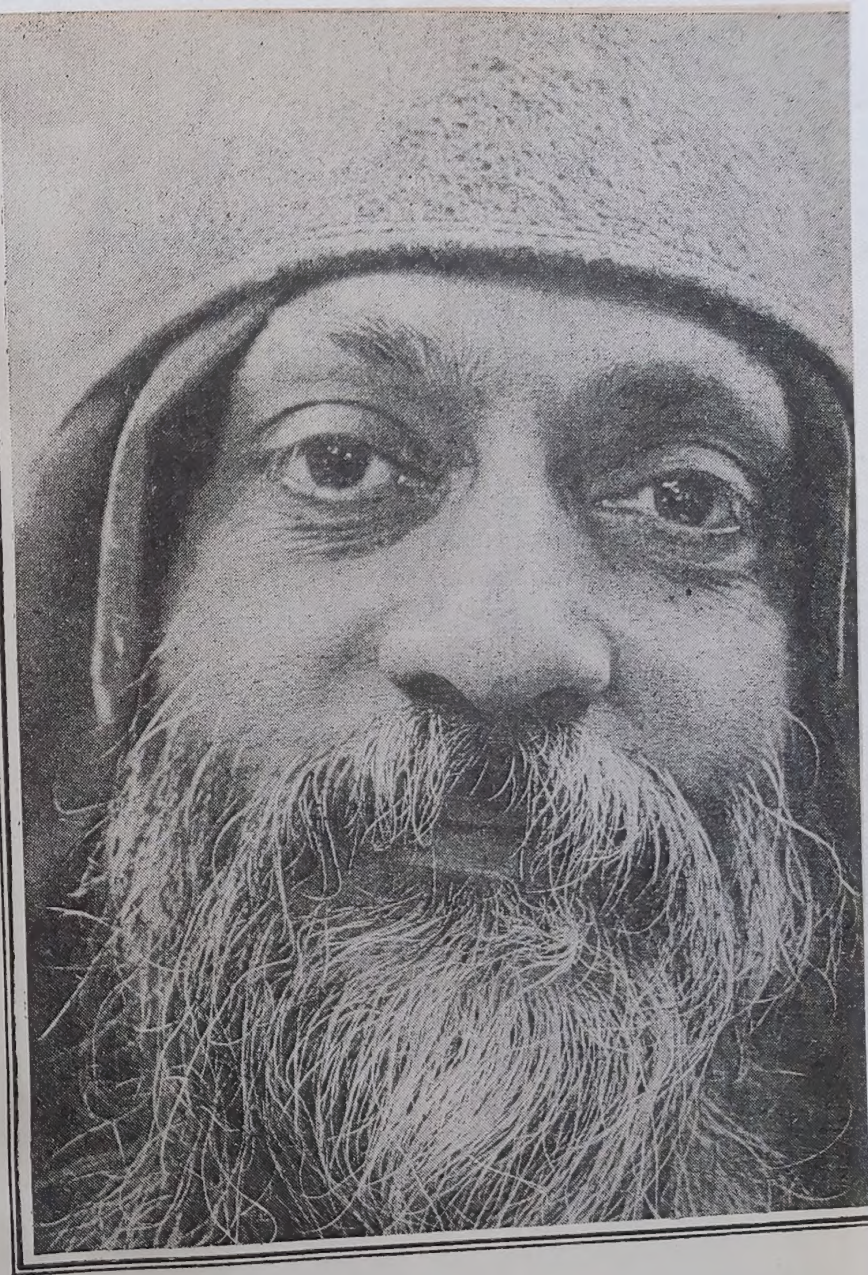
जग के करम बहुत कठिनाई, तातें भरमि भरमि जहंड़ाई ।।
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़े करत लरिकाई ।
परमारथ तजि स्वारथ सेवहि, यह धौं कौनि बड़ाई ।।
बेद-बेदान्त कौ अर्थ विचारहिं, बहुबिधि रुचि उपजाई ।
माया-मोह-ग्रसित निसिबासर, कौन बड़ो सुखदाई ।।
लेहिं बिसाहि कांच को सौदा, सोना नाम गंवाई ।
अमृत तजि बिष अंचवन लागे, यह धौं कौनि मिठाई ।।
गुरु-परताप साध की संगति, करहु न काहे भाई ।
अंतसमय जब काल गरसिहै, कौन करी चतुराई ।।
मानुष-जनम बहुरि नहिं पैहौ, बादि चला दिन जाई ।
भीखा कौ मन कपट कुचाली, धरन धरै मुरखाई ।।

समुझि गहो हरिनाम, मन तुम समुझि गहो हरिनाम ।
दिन दस सुख यहि तन के कारन, लपटि रहो धन धाम ।।
देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना गुनन बेकाम ।
जोग जुक्ति अरु ज्ञान ध्यान तें, निकट सुलभ नहिं लाम ।।
इत उत की अब आसा तजिकै, मिलि रहु आतमराम ।
भीखा दीन कहां लगि वरनै, धन्य घरी वह जाम ।।

राम सों करु प्रीति हे मन, राम सों करु प्रीति ।।
राम बिना कोउ काम न आवै, अंत ढहो जिमि भीति ।
बूझि बिचारि देखु जिय अपनो, हरि बिन नहीं कोउ हीति ।
गुरु गुलला के चरणकमल-रज, धरु भीखा उर चीति ।।

गुरु-परताप साध की संगति !

इन थोड़े-से शब्दों में सदियों-सदियों की खोज का निचोड़ है; अनंत-अनंत साधकों की साधना की सुवास है; अनेक-अनेक सिद्धों के खिले कमलों की आभा है। इन थोड़े-से शब्दों को जिसने समझा, उसने पूरब की अन्तरात्मा को समझ लिया ।

पश्चिम ने विज्ञान दिया है मनुष्य को, पूरब ने धर्म दिया है । और धर्म का सार-अर्थ इन थोड़े-से शब्दों में है—गुरु-परताप साध की संगति !

'गुरु' शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ शिक्षक नहीं होता, न अध्यापक, न व्याख्याता । दुनिया की किसी भी भाषा में इस शब्द को रूपान्तरित करने का उपाय नहीं है । दुनिया की किसी भाषा में इसके समतुल कोई शब्द नहीं है; क्योंकि इसके समतुल कोई अनुभूति ही जगत के किसी और हिस्से में खोजी नहीं जा सकी है।

'गुरु' बनता है दो शब्दों से— गु और रु । गु का अर्थ होता है अंधकार; रु का अर्थ होता है अंधकार को दूर करने वाला । गुरु का अर्थ है जिसके अंतस का दीया जल गया है; जिसके भीतर रोशनी हो गयी है; जो सूरज हो गया है; जिसके अंग-अंग से, द्वारों से, झरोखों से, संधों से रोशनी झर रही है । और जो भी उसके पास बैठेंगे, नहा जाएंगे उस रोशनी में; उस प्रभामण्डल से वे भी आंदोलित होंगे । जो स्वर गुरु के भीतर बजा है, उसकी चोट तुम्हारे हृदय की वीणा पर भी पड़ने लगेगी ।

जो गुरु ने जाना है, उसे गुरु जना नहीं सकता; जो जाना है उसे बता नहीं सकता । लेकिन उसके पास बैठे तो बिना कहे कुछ कह दिया जाता है और बिना बताये कुछ बता दिया जाता है । उसकी मौजूदगी, उसकी उपस्थिति तुम्हें तरंगायित कर देती है ।

स्वभावतः, रोशनी के पास बैठोगे, अगर आंख बंद कर के भी बैठे तो भी रोशनी में नहा जाओगे। संगीत चाहे सुनाई भी न पड़े तो भी तुम्हारे रोएं-रोएं को स्पर्श करेगा। और सुगंध, चाहे तुम्हारे नासापुट सक्रिय न भी हों, तो भी तुम्हारे नासापुटों तक आएगी, तुम्हारे फेफड़ों तक पहुंचेगी। और सुगंध तुम्हारे फेफड़ों तक पहुंच जाए तो नासापुट सक्रिय हो जाएंगे। और रोशनी तुम्हारे रोएं-रोएं को नहला दे तो आंखें खुल जाएंगी।

सुबह देखा नहीं, चादर ओढ़े बिस्तर पर पड़े हो और सूरज उगने लगा है! दरवाजे बंद हैं, परदे पड़े हैं और फिर भी परदों की संधों से उसकी रोशनी भीतर आने लगी और रोशनी तुम्हारी बंद आंखों पर पड़ने लगी, तत्क्षण कोई भीतर जाग जाता है। तत्क्षण कोई भीतर कहने लगता है: सुबह हो गयी, अब उठो।

ठीक ऐसी ही घटना गुरु के सत्संग में घटती है। तुम सोये पड़े हो, किसी का सूरज उग गया, उसकी रोशनी तुम्हारी बंद आंखों पर पड़ने लगी। आंखें बंद हों तो भी तो रोशनी बंद आंखों से थोड़ा-न-बहुत प्रवेश कर जाती है। और उसकी चोट तुम्हें आंखें खोलने को मजबूर कर देगी, विवश कर देगी। आंख खोलनी ही पड़ेगी। क्योंकि अंधेरा हमारा स्वभाव नहीं है। अंधेरे में हम पड़े हैं, यह हमारी मजबूरी है। अंधेरे में हम पड़े हैं क्योंकि प्रकाश से हमारी कोई अभी पहचान नहीं हुई। अंधेरे में हम पड़े हैं क्योंकि प्रकाश से हमारा कोई परिचय नहीं हुआ। लेकिन प्राणों के गहनतम में प्यास तो प्रकाश की है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय! कोई भीतर पुकार ही रहा है कि ले चलो, प्रकाश की तरफ ले चलो! अंधकार नहीं, आलोक। क्योंकि अंधकार अंधकार ही नहीं है, अंधकार मृत्यु भी है। और आलोक आलोक ही नहीं है, अमृत भी है।

असतो मा सद्गमय। असत् से सत् की ओर ले चलो, क्योंकि अंधकार से बड़ा असत् और जगत में कोई भी नहीं है। अंधकार की कोई सत्ता नहीं है। अंधकार बिलकुल असत् है। इसीलिए तो तुम अंधकार के साथ सीधा कुछ करना चाहो तो नहीं कर सकते। अंधकार को धक्के देकर निकाल नहीं सकते। है ही नहीं तो धक्का किसको दोगे? अंधकार को तलवारों से नहीं काट सकते; है ही नहीं, काटोगे किसको?

अंधकार के साथ प्रत्यक्ष कुछ भी करने का उपाय नहीं है। अंधकार के साथ कुछ करना हो तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ता है। क्योंकि प्रकाश है और अंधकार केवल प्रकाश का अभाव है, अनुपस्थिति है। अगर अंधकार लाना हो तो प्रकाश बुझाओ। अगर अंधकार हटाना हो तो प्रकाश जलाओ। करना तो प्रकाश के साथ पड़ेगा कुछ।

अंधकार बहुत है और फिर भी नाकुछ है। अंधकार की कोई सत्ता नहीं है, कोई अस्तित्व नहीं है। अंधकार में कोई ठोसपन नहीं है। अंधकार सिर्फ गैर-मौजूदगी है, अभाव है, रिक्तता है; असत् है। असतो मा सद्गमय। प्रकाश सत् है।

इसलिए सारे धर्मों ने परमात्मा को प्रकाश कहा है। सारे धर्मों ने जीवन की परम अनुभूति को प्रकाश की अनुभूति कहा है। और अंधकार अपने में नहीं है, हमारे अंधेपन में है; हमारे आंख बंद करने में है। नहीं तो प्रकाश से ही भरा है सारा अस्तित्व, क्योंकि सारा अस्तित्व परमात्ममय है।

लेकिन मनुष्य की यह स्वतंत्रता है कि चाहे तो आंख खोले और देखे रोशनी को। और चाहे तो आंख बंद रखे और न देखे रोशनी को। मनुष्य की यह स्वतंत्रता है कि फूल खिले हों तो उन्मुख होकर खड़ा हो जाए या विमुख होकर खड़ा हो जाए; फूलों को देखे या न देखे, पीठ कर ले। मनुष्य की यह स्वतंत्रता उसका सौभाग्य भी है और उसका दुर्भाग्य भी। सौभाग्य, क्योंकि ऐसी स्वतंत्रता किसी और प्राणी की नहीं। गरिमा है यह मनुष्य की। और दुर्भाग्य, क्योंकि सौ में से निन्यान्नबे इस स्वतंत्रता का उपयोग आत्मघात के लिए करते हैं।

ऋषि प्रार्थना करते हैं: ले चलो अंधकार से आलोक की तरफ। ले चलो असत् से सत् की तरफ। मृत्योर्मा अमृतं गमय। ले चलो मृत्यु से अमृत की तरफ। अंधकार मृत्यु भी है। क्योंकि जो अंधकार में जिएगा, अंधकार हो जाएगा। जिसके साथ रहोगे वैसे हो जाओगे। यह जीवन का आधारभूत नियम है: जिसके साथ संबंध जोड़ोगे वैसे हो जाओगे। अंधकार से नाता जोड़ोगे, अंधकार हो जाओगे; प्रकाश से नाता जोड़ोगे, प्रकाश हो जाओगे।

गुरु वह है जो अंधकार को अलग करे। इसलिए गुरु का अर्थ शिक्षक नहीं होता। इसलिए गुरु का अर्थ अध्यापक नहीं होता, व्याख्याता नहीं होता, आचार्य नहीं होता।

गुरु जैसा कोई और दूसरा शब्द ही नहीं; उसका कोई पर्यायवाची नहीं। गुरु शब्द अनूठा है।

गुरु को केवल वे ही खोज सकते हैं जिनके भीतर प्रकाश की खोज पैदा हो गयी और जिनको जीवन मृत्यु से घिरा हुआ दिखाई पड़ा है और जो अमृत की तलाश में निकल पड़े हैं। और जिन्हें यह दिखाई पड़ा है कि यहां सब सपना है, असत् है। और जिनके भीतर सत्य को जानने की अदम्य अभिलाषा जगी है। जिनके भीतर सत्य को पीने की अभीप्सा का जन्म हुआ है, वे ही लोग गुरु को खोज पाते हैं। ऐसे व्यक्ति का नाम ही शिष्य है।

फिर याद दिला दें, शिष्य का अर्थ विद्यार्थी नहीं होता। विद्यार्थी हो तो शिक्षक मिलेगा। इससे ज्यादा तुम्हारी पात्रता नहीं। अगर शिष्य हो तो गुरु मिल सकेगा। शिष्य का अर्थ है जो अपना शीश चढ़ा देने को राजी है—जो सब दांव पर लगा देने को राजी है। विद्यार्थी ज्ञान की तलाश करता है, शिष्य अनुभव की।

कुछ चीजें हैं जिनका केवल अनुभव ही हो सकता है और वे ही चीजें मूल्यवान

हैं । बहुत चीजें हैं जिनका ज्ञान हो सकता है; वे सब बाजारू हैं । उनका कोई मूल्य नहीं है । भूगोल है, इतिहास है और हजारों शास्त्र हैं, उनका ज्ञान हो सकता है । लेकिन प्रेम, प्रार्थना, परमात्मा, जीवन, मृत्यु—इनका तो अनुभव ही हो सकता है।

जार्ज गुरजिएफ—इस सदी का एक बड़ा सद्गुरु—अनेक बार एक छोटी-सी कहानी कहा करता था । जब भी कोई नया व्यक्ति उसके पास आता था तो वह कहता था : विद्यार्थी की तरह आये हो कि शिष्य की तरह ? क्योंकि फिर वैसा ही व्यवहार हो । क्योंकि फिर वैसा ही स्वागत हो । विद्यार्थी की तरह आये हो तो कूड़ा-करकट ज्ञान का तुम्हें सम्हाल दूं और भागो, अपने रास्ते लगो । शिष्य की तरह आये हो तो अपने प्राण तुम्हें सौंप दूं, अपनी आत्मा तुम्हें दे दूं । तो उंडेल दूं अपने को तुम्हारे पात्र में ।

और वह कहता था : एक बार ऐसा हुआ कि एक विद्यार्थी भूल से ईश्वर के पास पहुंच गया । ईश्वर ने कहा : मांग ले, मांग ले एक वरदान । अब तू आ ही गया तो खाली हाथ जाना उचित नहीं ।

विद्यार्थी के भीतर हजारों प्रश्न उठे । ईश्वर ने देखा होगा उसकी खोपड़ी प्रश्नों से भर गयी । झंझावात प्रश्नों के ! ईश्वर ने उसे सलाह दी कि देख, ऐसी बात पूछना जिसका उत्तर होता हो । ऐसी बात मत पूछना जिसका उत्तर न होता हो और केवल अनुभव होता हो ।

उसने बहुत खोजा और फिर उसने पूछा कि एक ही प्रश्न पूछ सकता हूं, तो मैं यह पूछना चाहता हूं : मृत्यु क्या है ? उसने इतना पूछा ही था कि ईश्वर ने उठायी तलवार और उसकी गर्दन काट दी, क्योंकि मृत्यु का तो सिर्फ अनुभव ही हो सकता है । उसका कोई उत्तर नहीं हो सकता ।

गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था : सोच लेना । अगर गर्दन कटाने की तैयारी हो तो ही शिष्य हो सकते हो । यह कहानी याद रखना । क्योंकि कुछ चीजें हैं जिनका अनुभव, बस अनुभव ही होता है ।

शिष्य वह है जो अनुभव की तलाश कर रहा है । जो ईश्वर के संबंध में नहीं जानना चाहता है—ईश्वर को जानना चाहता है ! जो प्रेम के संबंध में नहीं जानना चाहता है—प्रेम को जानना चाहता है ! जो प्रार्थना सीखने नहीं आया है—प्रार्थना-मय होने आया है !

शिष्य की अन्तरात्मा अस्तित्वगत खोज कर रही है । विद्यार्थी बौद्धिक कुतूहल से भरा है । विद्यार्थी कुछ जानकारियां इकट्ठी करेगा और अपने रास्ते पर चला जाएगा । विद्यार्थी ज्यादा-से-ज्यादा पंडित होगा । शिष्य प्रज्ञा को उपलब्ध होगा । शिष्य ही बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकते हैं, विद्यार्थी नहीं । और जो शिष्य है आज, कभी गुरु हो सकता है । विद्यार्थी कभी गुरु नहीं हो सकता ।

और ध्यान रहे, जानकारियां ज्ञान जैसी ही मालूम होती हैं—बस जैसी ही ! ज्ञान नहीं हो सकतीं, बस ज्ञान जैसी मालूम होती हैं । झूठे सिक्के हैं, जो असली सिक्कों जैसे मालूम होते हैं ।

गुरु को खोजो; लेकिन तभी खोज सकोगे जब तुम्हारे भीतर प्रकाश को खोजने की आकांक्षा उमगने लगी हो । सत्य को पाने की प्यास तुम्हारे कंठ में अनुभव होने लगी हो । अमृत को जानने के लिए ऐसा अदम्य वेग, ऐसी त्वरा पैदा हो रही हो कि अगर गर्दन भी चढ़ानी पड़े तो तुम तैयार हो जाओ ।

गुरु-परताप साध की संगति ! गुरु महिमा है एक—एक रोशनी, एक प्रताप एक प्रकाश, एक चमत्कार ! उसका होना इस जगत में एक अपूर्व घटना है—अद्वितीय । वैसे फूल रोज-रोज नहीं खिलते । सदियां बीत जाती हैं तब कभी कोई सद्गुरु होता है । इसलिए सद्गुरुओं को पहचानना ही हम भूल जाते हैं, क्योंकि सदियों तक पहचान नहीं होती । सदियों तक पंडित-पुरोहितों से हमारा संबंध होता है और फिर जब सद्गुरु आता है तो हम पहचान ही नहीं पाते । पहचानना तो दूर हम नाराज होते हैं, नाखुश होते हैं । हम दुश्मन हो जाते हैं । क्योंकि हमारी तो सारी जानकारी पंडित-पुरोहित की होती है । और सद्गुरु पंडित-पुरोहित से बिलकुल उल्टा होता है, बिलकुल भिन्न होता है ।

धन्यभागी हैं वे जो गुरु-परताप की छाया में आ जाएं ! भीखा का यह वचन बड़ा प्यारा है : गुरु-परताप साध की संगति ! गुरु की आभा से मंडित हो जाओ, और गुरु की आभा से जो मंडित हुए साधु हों उनमें डूब जाओ, एकलीन हो जाओ । किसी बुद्ध को पकड़ लो और किसी बुद्ध के क्षेत्र में डुबकी मार जाओ; फिर शेष सब अपने से हो जाता है ।

परमात्मा को खोजने कोई सात समंदर पार नहीं जाना है । परमात्मा को खोजने कोई कैलाश, काशी और काबा नहीं जाना है । परमात्मा वहां है जहां कोई सद्गुरु है; जहां साधुओं की संगति है । परमात्मा वहां है जहां दीवाने बैठकर उसके रस को पी रहे हैं । जहां भंवरे इकट्ठे हुए हैं और परमात्मा को पीकर गीत गा रहे हैं, गुंजार कर रहे हैं । जहां किसी एक जले हुए दीये के पास और-और दीये सरक-सरककर जलने शुरू हो गये हैं । जहां एक दीये के आसपास और बहुत दीये जल उठे हैं । जहां दीपावली हो गयी है । गुरु-परताप साध की संगति ! . . . वहां प्रवेश कर जाना । ऐसा द्वार मिल जाए तो छोड़ना ही मत । कीमत जो भी चुकानी हो चुका देना । क्योंकि हमारे पास चुकाने को भी क्या है ? खाली हैं, नंगे हैं । हमारी गर्दन भी ले ली जाए तो हमारा खोता क्या है ? गर्दन तो आज नहीं कल मौत ले ही लेगी और बदले में कुछ भी न देगी । गर्दन की कीमत ही क्या है !

एक सूफी फकीर को कुछ लोगों ने पकड़ लिया, कुछ लुटेरों ने पकड़ लिया ।

मस्त फकीर था ! पुष्ट उसकी देह थी । बलिष्ठ उसकी देह थी । उन लुटेरों ने पकड़-कर सोचा कि चलो बेच देंगे । उन दिनों गुलाम होते थे दुनिया में । ऐसे तो अब भी होते हैं, सिर्फ नाम बदल गये हैं ।

जब तक दुनिया में राजनीति है तब तक गुलाम होते रहेंगे, क्योंकि राजनीति गुलामों पर जीती है । नाम बदलते जाते हैं गुलामी के । पुराना लेबल अखरने लगता है, नया लेबल लगा देते हैं । लाल रंग की गुलामी पीले रंग की गुलामी हो जाती है । पीले रंग की गुलामी हरे रंग की गुलामी हो जाती है । मंदिर का गुलाम मस्जिद चला जाता है, मस्जिद का गुलाम चर्च चला जाता है । बस गुलामी चलती रहती है; एक कारागृह से दूसरे कारागृह में लोग उतरते जाते हैं और इसको सोचते हैं --स्वतंत्रता, क्रांति !

गुलामी तो सदा रही, पर उस दिन बहुत प्रगट थी, उन दिनों बहुत प्रगट थी। लोग बाजारों में बिकते थे जैसे सामान बिकता है। बिकते तो अब भी हैं लेकिन जरा परोक्ष। आदमी जरा होशियार हो गया है। सीधे-सीधे नहीं खरीदता । बाजार में टिकटी पर खड़े होकर दाम नहीं लगाये जाते। दाम तो अब भी हैं आदमियों के। और छोटों के ही नहीं, बड़ों-बड़ों के भी दाम हैं । कोई हजार में बिकता है, कोई दस हजार में बिकता है, कोई लाख में बिकता है, कोई दस लाख में बिकता है । बिक्री तो हो ही रही है लेकिन अब बिक्री बाजार में नहीं होती । नीलामी बहुत जाहिर नहीं होती । इसका विज्ञापन नहीं होता। यह सब चुपचाप होता है। गणित अब जरा घूम-फिरकर बैठता है, सीधा नहीं ।

उन दिनों सीधी-सीधी गुलामी थी । सोचा बेच लेंगे फकीर को । मस्त आदमी है, दाम भी ज्यादा मिल जाएंगे । चले लेकर उसे । उसके हाथों में जंजीरें बांध दीं, तो उसने कहा : नाहक मेहनत करते हो ! मैं अपनी मर्जी से चल रहा हूं । तुम क्यों जंजीरें बांधते हो ? जंजीरें बांधने की कोई जरूरत नहीं । जहां कहो वहां चलूं । क्योंकि मैंने तो अपने को उस पर छोड़ दिया है, वह जहां ले जाए । अब तुम्हारे हाथ में डाल दिया है तो उसकी मर्जी होगी ।

थोड़े लुटेरे झेंपे तो। संकोच भी खाये। आखिर आदमी थे। आखिर बुरा-से-बुरा आदमी भी तो आदमी ही होता है । आदमियत बिलकुल तो किसी में कभी मर नहीं जाती। कहीं-न-कहीं तो बीज दबा पड़ा ही होता है। और इस आदमी ने कहा : इत्ता तो भरोसा करो । भाग नहीं जाऊंगा । मैं तो उस पर छोड़ चुका हूं, अब जो उसकी मर्जी ।

चल पड़ा साथ । रास्ते में एक धनपति गुजरता था । उसने अपनी डोली रुकवायी और कहा कि मामला क्या है ? क्या इस आदमी को बेचना है ? लाख रुपये देने को मैं तैयार हूं।

लार टपक गयी उन लुटेरों के मुंह से तो ! लाख की तो सोची भी न थी । सोचते थे दस-पांच हजार मिल गये तो बहुत । एकदम बेचने को तैयार हो गये, लालायित हो गये । उस फकीर ने कहा : ठहरो, तुम्हें मेरी कीमत का पता नहीं है ! जरा रुको, जल्दी मत करो । अभी और भी ग्राहक आएंगे । जब ठीक-ठीक कीमत लगेगी तब मैं तुम्हें कह दूंगा कि यह रही ठीक कीमत, अब बेच दो ।

मान ली फकीर की बात क्योंकि बात में उसके बल था। लाख रुपये जब कोई दे रहा है, पता नहीं कोई दो लाख देने वाला मिल जाए । आगे बढ़े । आगे एक वजीर अपने घोड़े पर सवार शिकार को निकला था, उसने कहा : रुको, बेचना तो नहीं है ? आदमी मस्त और शानदार दिखाई पड़ता है। दो लाख रुपये दूंगा ।

फकीर ने कहा : सुना, मगर बेच मत देना ! जल्दी ही वह आदमी मिलने-वाला है जो तुम्हें ठीक-ठीक दाम चुका देगा ।

तो अब तो मान ही लेना पड़ा, क्योंकि एक लाख से दो लाख हो गयी बात। अब पता नहीं कितनी हो जाए, दस लाख हो जाए ! खूब हीरा हाथ लगा है ! और तभी एक घसियारा मिला रास्ते में । उसने कहा : क्या इस आदमी को बेचना है ? उन लुटेरों ने कहा : जा-जा, तू क्या खरीदेगा ! बड़े धनपति और बड़े वजीर भी नहीं खरीद सके । रास्ता लग !

फकीर ने कहा : पहले पूछ तो लो कितनी कीमत चुकाता है। उस घसियारे ने कहा कि कीमत ! यह घास का गट्ठा ले लो और आदमी दे दो ।

हंसने लगे लुटेरे । लेकिन फकीर ने कहा : हंसो मत, यही ठीक कीमत है । इससे ज्यादा मेरी खोपड़ी की और क्या कीमत हो सकती है ? आज नहीं कल मरूंगा, इतनी भी कीमत कोई देगा नहीं, ले ही लो ।

तब तो उन लुटेरों ने सिर पीट लिया कि हम भी किस पागल की बातों में पड़े हैं ! पछताने लगे बहुत । लेकिन फकीर ठीक कह रहा था । मर जाओगे तो कितनी कीमत होगी इस सिर की ? कोई दो कौड़ी की इसकी कीमत नहीं होगी ! और मौत तो आने ही वाली है ।

शिष्य वह है जो यह देखकर कि मेरी अपने में तो कोई कीमत वैसे भी नहीं है, किन्हीं चरणों में रख दूं सब, शायद ऐसे पारस का परस हो जाए और लोहा सोना हो जाए ! लोहा सोना होता है—गुरु-परताप साध की संगति ! भीखा के ये सारे वचन बस इन्हीं पांच शब्दों के आसपास घूमेंगे, क्योंकि भीखा का पूरा जीवन ही इन पांच शब्दों से बना था ।

इसके पहले कि हम सूत्रों में चलें, भीखा के संबंध में थोड़ी बातें समझ लेनी जरूरी हैं । भीखा बचपन से ही साधु-संग में दीवाना था। पूत के लक्षण पालने में । जब बहुत छोटी उम्र का था तब भी साधुओं के पास जाता था । तब भी गांव में कोई

साधु आये तो भीखा चूकता नहीं था। मां-बाप हंसते थे। पास-पड़ोस के लोग हंसते थे कि भीखा, तुझे कुछ समझ में आता है? क्योंकि लोगों का खयाल है कि समझने के लिए बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए। समझने के लिए बुद्धिमत्ता चाहिए ही नहीं। समझने के लिए हार्दिकता चाहिए। लोग सोचते हैं समझने के लिए पहले बहुत जानकारी चाहिए शास्त्रों की। शास्त्रों की जानकारी बाधा बन जाती है, सहयोगी नहीं। समझने के लिए निर्दोषता चाहिए।

जीसस एक गांव में गये। एक भीड़ ने उन्हें घेर लिया और जीसस ने अपनी बातें कहीं उस भीड़ से। और वे निरंतर कहते थे प्रभु का राज्य बहुत निकट है; प्रभु का राज्य अति निकट है, देर न करो! जागो! बहुत समय बीत चुका। घड़ी आ गयी। प्रभु का राज्य बहुत निकट है! ऐसा जीसस बार-बार कहते थे। यह उनकी टेक थी—प्रभु का राज्य बहुत निकट है! एक आदमी ने पूछा कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में प्रवेश का अधिकारी कौन होगा, पात्र कौन होगा? तो जीसस ने चारों तरफ नजर दौड़ाई और एक छोटा-सा बच्चा जो भीड़ में खड़ा था उसे कंधे पर उठा लिया और कहा कि जो इस बच्चे की भांति सरल होंगे। नहीं किसी पंडित की तरफ इशारा किया। नहीं किसी दानी की तरफ इशारा किया। नहीं किसी त्यागी की तरफ इशारा किया। वे सब अहम्मन्यताएं हैं—ज्ञान की, धन की, त्याग की। वे अहंकार के ही अलग-अलग नाम हैं। उठाया एक छोटे-से अबोध बच्चे को और कंधे पर रख लिया और कहा: जो इस बच्चे की भांति सरलचित्त होंगे वे मेरे प्रभु के राज्य के अधिकारी हैं।

भीखा छोटा बच्चा था। लोग हंसते थे कि तू समझता क्या। शायद साधुओं के विचित्र रंग-ढंग को देखकर चला जाता है। शायद उनके गैरिक वस्त्र, दाढ़ियां, उनके बड़े-बड़े बाल, उनकी धूनी, उनके चमीटे, उनकी मृदंग, उनकी खंजड़ी, यह सब देखकर तू जाता होगा भीखा। लेकिन किसको पता था कि भीखा यह सब देखकर नहीं जाता! उसका सरल हृदय, उसका अभी कोरा कागज जैसा हृदय पीने लगा है, आत्मसात करने लगा है। वह जो परम अनुभव प्रकाश का साधुओं के पास है, उससे वह आन्दोलित होने लगा है। वह जो साधुओं की मस्ती है उसे छूने लगी है, उसे दीवाना करने लगी है। वह भी पियक्कड़ होने लगा है।

बारह वर्ष की उम्र में भीखा ने घर छोड़ दिया। बारह वर्ष की उम्र! लोग तो सत्तर-अस्सी साल के भी हो जाते हैं तब भी ऐसे पकड़कर बैठे रहते हैं जैसे यह घर सदा रहने को है! जैसे यह धन सदा रहने को है, यह पद सदा रहने को है! तुम्हें भरोसा न हो तो दिल्ली में जाकर देख लो। कोई साठ का है, कोई पैंसठ का, कोई सत्तर का, कोई पचहत्तर का, कोई अस्सी का, कोई चौरासी का। लेकिन पकड़ जाती नहीं—पद की, प्रतिष्ठा की, अहंकार की। बारह वर्ष की उम्र में भीखा ने सब

छोड़-छाड़ दिया! बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए! बुद्धिमत्ता—निर्दोषता के अर्थों में। बुद्धिमत्ता—विचार के अर्थ में नहीं, निर्विचार के अर्थ में। बुद्धिमत्ता बोध के अर्थ में, ज्ञान के अर्थ में नहीं। बड़ी प्रखर क्षमता रही होगी, प्रतिभा रही होगी, मेधा रही होगी; नहीं तो बारह वर्ष में कौन देख पाता है!

मुल्ला नसरुद्दीन एक नुमाइश में गया था। लखनऊ की नुमाइश। रंग-बिरंगे लोग। बड़ी शान-शौकत में सजकर लोग आये थे। एक महिला, सुंदर महिला को देखकर मुल्ला से न रहा गया। उसके पीछे हो लिया। जब मौका मिले, धक्का मारे। भारतीय संस्कृति! जहां मौका मिले, च्यूंटी ले दे। आखिर उस महिला से न रहा गया। वह भी कब तक चुप रहे! उसने मुल्ला को कहा कि बुढ़ऊ, शरम नहीं आती? बाल सफेद हो गये, शर्म नहीं आती स्त्रियों को धक्का देते?

मुल्ला ने कहा: बाई, अब तूने पूछ ही ली बात तो तुझसे क्या छिपाना! बाल सफेद भला हो गये हों, दिल तो अभी भी मेरा काला है। बालों के सफेद होने से क्या होता है जब तक दिल सफेद न हो जाए?

बात तो उसने पते की कही। दिल काले रह जाते हैं। लोग नब्बे-नब्बे साल के हो जाते हैं और दिल काले रह जाते हैं। और दिल के काले होने का अर्थ होता है धन की पकड़, पद की पकड़, यश की पकड़।

बहुत प्रतिभा चाहिए! लोग तो अपने जीवन के अनुभव से भी नहीं जागते। जो दूसरों के जीवन को देखकर जाग जाए उसके लिए बड़ी प्रतिभा चाहिए। वैसी ही प्रतिभा भीखा में रही होगी। बारह वर्ष की उम्र में छोड़-छाड़ दिया घर।

कहावत है रूस में: चतुर आदमी वह है जो उलझन में पड़ जाए तो निकलने का रास्ता खोज ले और बुद्धिमान आदमी वह है जो उलझन में पड़े ही न। यह कहावत मुझे प्रीतिकर लगी। चतुर आदमी वह है जो उलझन में तो पड़ेगा, मगर रास्ता खोज लेगा निकलने का और बुद्धिमान वह है जो उलझन में पड़ेगा ही नहीं।

भीखा उलझन में पड़ा ही नहीं। चारों तरफ देखा होगा। इतने उलझे लोग, इतने दुखी लोग, इतने पीड़ित लोग—इतना काफी था देख लेना। दूसरों को देखकर ही समझ गया कि यहां कुछ सार नहीं है।

सद्गुरु की खोज शुरू हुई। स्वभावतः, और कहां जाता सद्गुरु को खोजने—काशी गया। थोड़ा इस चित्र को अपनी आंखों में उभरने दो: बारह वर्ष का भोला-भाला बच्चा, काशी में तलाश कर रहा है सद्गुरु की। अगर ज्यादा उम्र का होता तो शायद किसी जाल में पड़ जाता, किसी पंडित की बकवास में पड़ जाता। लेकिन एकदम भोला-भाला था। यह बड़े रहस्य की बात है, लोग कहते हैं कि भोले-भाले आदमी को धोखा देना आसान है। अनुभव कुछ और कहता है। अगर भोला-भाला आदमी सच में भोला-भाला हो तो धोखा देना असंभव है। बुद्धुओं को भोले-भाले

कहते हो, यह बात और है; उनको धोखा देना आसान है। मगर उनको बुद्धू कहो, भोले-भाले मत कहो।

लेकिन अक्सर लोकमानस में यह बात हो गयी है कि बुद्धू और भोले-भाले एक ही जैसे लोग होते हैं। भोले-भालों को बुद्धू कहते हैं लोग और बुद्धुओं को भोले-भाले कहते हैं। ये बातें ठीक नहीं हैं। ये दोनों बड़ी अलग-अलग बातें हैं। भोला-भाला आदमी तो दर्पण की भांति स्वच्छ होता है। उसे तुम धोखा दे ही नहीं सकते। असंभव है। चालाक आदमी को धोखा दिया जा सकता है, अगर तुम ज्यादा चालाक हो। बेईमान आदमी को भी धोखा दिया जा सकता है, अगर तुम ज्यादा बेईमान हो। लेकिन भोले-भाले आदमी को धोखा नहीं दिया जा सकता, क्योंकि भोला-भाला आदमी बिलकुल दर्पण की तरह है। तुम्हारी तसवीर जो तुम्हें भी नहीं दिखाई पड़ती, उसको दिखाई पड़ जाएगी। तुम्हारे भीतर छिपे हुए रोग जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते, उसके सामने ऐसे प्रगट हो जाएंगे जैसे एक्स-रे के सामने तुम्हारे भीतर तक के सब रोग प्रगट हो गये हों। भोले-भाले आदमी के पास एक्स-रे वाली आंख होती है और दर्पण का चित्त होता है।

भीखा घूमता रहा काशी में और खाली हाथ लौटना पड़ा उसे। काशी और काबा, गिरनार और शिखरजी, सब खाली पड़े हैं। हां, कभी सदियों पूर्व कोई दीये वहां जले थे। उन दीयों के कारण तीर्थ बन गये। लेकिन दीये तो कब के बुझ गये। बुझ ही नहीं गये, दीयों का तो नाम-निशान न रहा। लेकिन दीयों के आसपास पंडितों की भीड़ इकट्ठी हो गयी, चालबाजों की भीड़ इकट्ठी हो गयी, शोषकों की भीड़ इकट्ठी हो गयी और वे शोरगुल मचाये रखते हैं। और वे लोगों को डरवाते रहते हैं और प्रलोभित करते रहते हैं। और लोग चलते जाते हैं, लोग आते जाते हैं। लोग सोचते हैं कि काशी पहुंच गये तो सब ठीक हो जाएगा। काशी-करवट! काशी में जाकर मर गये, सब ठीक हो गया! हालांकि अब हालत बदल गयी है, अब लोग दिल्ली-करवट लेते हैं। दिल्ली में मर गये तो स्वर्ग पक्का है! राजघाट पर जगह मिल गयी तो स्वर्ग पक्का है! जिन्दगी-भर करो पाप, अंत में काशी-करवट ले लेना! मरते वक्त लोग इकट्ठे हो जाते हैं!

कहते हैं काशी में तीन तरह के लोगों की भीड़ है--भांड, रांड और सांड। सांड शंकर जी के प्रभाव से मस्त होकर घूम रहे हैं! रांडें इकट्ठी हो गयी हैं, क्योंकि आखिरी करवट लेने के लिए और कोई अच्छी जगह नहीं है। और भांड हैं। दिखाई पड़ गया होगा। ये तीनों पहचान में आ गये होंगे भीखा को, कि कुछ रांडें हैं, कुछ सांड हैं, कुछ भांड हैं। कुछ काशी में है नहीं। लौट पड़े खाली हाथ, बहुत उदास। आंखें गीली थीं। अब कहां जाएं? सोचा था काशी में मिलन हो जाएगा। अब काशी में नहीं मिला सद्गुरु तो कहां मिलेगा? लेकिन जिसकी खोज

है उसे मिलना ही है। खोज गुरु को खोज ही लेगी।

पुरानी मिस्त्री कहावत है कि जब शिष्य तैयार होता है तो गुरु स्वयं प्रगट हो जाता है। रास्ते में किसी ने एक पद कहा। किसी अजनबी ने, ऐसे ही राहगीर ने, चलते साथ हो लिया। एक पद कहा, जिसके अंत में 'गुलाल' की छाप पड़ती थी। गुलाल का पद था। नाम का ही जादू छा गया। उस पद में तो कुछ ज्यादा नहीं था। लेकिन गुलाल . . . कोई तार मिल गये, कोई तालमेल बैठ गया।

बड़ा अद्भुत है यह जगत! कहां तार मिल जाएंगे, कहां तालमेल बैठ जाएगा, कोई जानता नहीं। किस रहस्यपूर्ण ढंग से गुरु से मिलन हो जाएगा, कोई जानता नहीं। उसकी कोई विधि-व्यवस्था नहीं है। कोई प्रक्रिया नहीं है। अब यह अजनबी आदमी, कह दिया पद आकस्मिक। और उसमें गुलाल का नाम आता था अंत में। गुलाल का पद था। पद तो कुछ महत्त्वपूर्ण था ऐसा मालूम नहीं पड़ता, क्योंकि पद का कोई उल्लेख नहीं किया गया है कहीं भी। सिर्फ इतना ही उल्लेख किया गया है कि गुलाल की जो छाप आती थी पीछे। जैसे कबीर में आता है न 'कहै कबीरा', ऐसे कुछ छाप पड़ती होगी 'कहै गुलाल'। गुलाल शब्द ने जैसे कोई सोयी स्मृतियां जगा दीं।

अगर मुझसे पूछो तो मैं यही कहूंगा कि यह नाता जन्मों-जन्मों का रहा होगा, अन्यथा सोयी स्मृतियां जागतीं कैसे? और अक्सर ऐसा होता है कि गुरुओं और शिष्यों का नाता जन्मों-जन्मों का होता है। ये नाते एकाध जन्म में नहीं बनते हैं। एकाध जन्म बहुत छोटा-सा समय है—क्षणभंगुर। ये कोई मौसमी फूल नहीं हैं। ये तो चिनार के आकाश को छूते दरख्त हैं, इनको सदियां लगती हैं। पति-पत्नी का संबंध क्षण में हो जाता है। जगत की मित्रताएं क्षण में बन जाती हैं, मिट जाती हैं। जितनी जल्दी बनती हैं उतनी जल्दी मिट जाती हैं। लेकिन सद्गुरु का संबंध सदियों में निर्मित होता है। धीरे-धीरे निर्मित होता है। आहिस्ता-आहिस्ता निर्मित होता है।

जरूर भीखा किन्हीं पिछले जन्मों में गुलाल से जुड़ा रहा होगा। एक ही पथ के पथिक रहे होंगे। एक ही मधुशाला में दोनों ने पी होगी। एक ही प्याले से दोनों ने पी होगी। इसीलिए तो आज अचानक जरा-सी चोट . . .। 'गुलाल' शब्द से क्या होता है, तुमने भी सुना। मैं कितनी दफे दोहरा चुका--गुलाल गुलाल गुलाल! तुम्हें शायद ज्यादा-से-ज्यादा याद भी आये तो याद आये फाग की गुलाल की। लेकिन भीखा के भीतर कोई तार छिड़ गया, कोई संगीत बज गया। कोई द्वार खुल गया। पूछा : गुलाल कहां मिलेंगे? उस आदमी ने कहा : मुझे कुछ पता नहीं है। यह पद तो मैंने किसी से सुना है। उसके भीतर कुछ नहीं बजा था। बस पूछने लगे भीखा कि गुलाल कहां, गुलाल कहां मिलेंगे?

गुलाल कोई बहुत ख्यातिनाम व्यक्ति न थे। ख्यातिनाम व्यक्ति तो काशी में

थे। उनके पास तो जाकर देख आया था भीखा, कुछ पाया नहीं था। खोजते-खोजते एक छोटे-से गांव में, जिसका नाम भी तुमने न सुना होगा। नाम था गांव का भुरकुड़ा। एक छोटा-सा गांव, होंगे दस-पांच झोपड़े। नाम ही बता रहा है—भुरकुड़ा। वहां गुलाल मिले। और गुलाल को देखा, कि न भीखा ने ही केवल पहचाना, गुलाल ने भी पहचाना। इस बारह वर्ष के बच्चे को एकदम उठाकर अपने पास बिठाया, अपनी गद्दी पर बिठाया! पुराने शिष्यों में तो ईर्ष्या फैल गयी। लोग तो चौकन्ने हो गये कि बात क्या है, किसी को कभी अपने पास गद्दी पर नहीं बिठाया। बड़ी आवभगत की—बारह वर्ष के बच्चे की!

क्योंकि एक और दुनिया है जहां उम्र से कुछ भी नहीं नापा जाता—जहां हृदय तौले जाते हैं; जहां आत्माएं परखी जाती हैं। इसको ऐसा सम्मान दिया जैसे कोई सम्राट हो।

भीखा गुलाल के हो गये, गुलाल भीखा के हो गये। फिर भीखा ने छोड़ा ही नहीं। भुरकुड़ा गांव को फिर छोड़ा ही नहीं, वहीं मरे, वहीं गुरु-चरणों में ही मरे। वहीं रहे। एक दिन को नहीं छोड़ा। एक रात को नहीं छोड़ा। एक क्षण को नहीं छोड़ा। वही द्वार मंदिर हो गया, वही द्वार तीर्थ हो गया।

भीखा ने स्वयं इस अनुभूति को अपने शब्दों में बांधा है—

बीते बारह बरस उपजी रामनाम सों प्रीति।
निपट लागी चटपटी मानो चारिउ पन गये बीति।।

और फिर ऐसी आग जली . . . वह जो राम से प्रीति लगी तो ऐसी आग जली कि लगा बारह साल में ही चारों पन बीत गये! जैसे मैं बूढ़ा हो गया। जैसे बीत गयीं चारों अवस्थाएं—चारों आश्रम, एक साथ बारह साल में! निपट लागी चटपटी! और ऐसी लगी आग और ऐसी जली अभीप्सा, मानो चारिउ पन गये बीति! मैं अचानक बारह वर्ष में वृद्ध हो गया: देख लिया देखने योग्य। देख लिया सब असार है। मौत सामने खड़ी हो गयी, बारह वर्ष की उम्र में मौत सामने खड़ी हो गयी। जब कि लोग सपने संजोते हैं, जो टूटेंगे आज नहीं कल! जब कि लोग बड़ी योजनाएं और कल्पनाएं बनाते हैं, जो कि सब धूल-धूसरित हो जाएंगी!

लेकिन अगर रामनाम की धुन बज जाए, शाश्वत की धुन बज जाए तो सब समय व्यतीत हो गया। मौत सामने खड़ी हो जाती है।

नहीं खान-पान सुहात तेंहि छिन। . . . छिन भर को भी अब न कुछ खाना सुहाता, न पीना सुहाता। . . . बहुत तन दुर्बल हुआ।

घर ग्राम लाग्यो बिषम, धन मनु सकल हार्‌यो है जुआ।

ऐसी हालत हो गयी है, जैसे जुए में कोई सब कुछ हार गया हो, कुछ बचा ही नहीं। बारह साल के बच्चे से ये शब्द! . . . निकल सकते हैं। शंकराचार्य नौ वर्ष

की उम्र में संन्यस्त हो गये। . . . धन मनु सकल हार्‌यो है जुआ। सब हार हो गयी। यह संसार तो व्यर्थ हो गया!

ज्यों मृगा जूथ से फूटि परु, चितचकित ह्वै बहुतै डरो।
ढुंढ़त व्याकुल वस्तु जनु कै हाथ सों कछु गिरि परो।।

और मेरी हालत ऐसी हो गयी है जैसे कि कोई मृग अपनी मंडली से छूट जाए। ज्यों मृगा जूथ से फूटि परु, चितचकित ह्वै बहुतै डरो! और अकेले में बहुत डरने लगे, ऐसे ही मैं समाज से टूट गया हूं, बिलकुल अकेला हो गया हूं। मेरा कोई भी नहीं है इस जगत में, ऐसा अकेला हो गया हूं।

बहुत डर लगता है. . .बारह साल का बच्चा!

ढुंढ़त व्याकुल वस्तु जनु कै हाथ सों कछु गिरि परो।।

मेरी दशा वैसी है जैसे हाथ से किसी के कोई बहुमूल्य वस्तु गिर पड़ी हो और वह ढूंढ़ता हो पागल की तरह और मिलती न हो।

सत्संग खोजो चित्त सों जहं बसत अलख अलेख। खोजता हूं सत्संग को। उस सत्संग को जहां अलख और अलेख का वास हो। जिसे लिखा न जा सके। जिसे मापा न जा सके। जिसे कहा न जा सके। और फिर भी, जिसे लुटाया जा सके। ऐसे सत्संग की तलाश कर रहा हूं।

कृपा करि कब मिलहिंगे दहुं कहां कौने भेख।

पूछता हूं द्वार-द्वार कि गुरु कहां मिलेगा, कृपा करके कहां मिलेगा? और किस वेष में मिलेगा?

अगर जरा भी कोई पक्षपात होता तो सद्‌गुरु नहीं मिलता। अगर भीखा के मन में यह भाव होता कि कृष्ण जैसा गुरु होना चाहिए, कि बांसुरी लिए, मोर-मुकुट बांधे, तो फिर नहीं मिलता। या मिलता भी कोई तो कोई रासलीला करता हुआ कोई अभिनेता मिलता। या अगर यह भाव होता कि राम जैसा गुरु हो धनुष-बाण लिए, सीता मइया पास खड़ी, तो भी नहीं मिलता। या महावीर या बुद्ध...। नहीं, लेकिन बिलकुल निष्पक्ष चित्त था।

दहुं कहां कौने भेख! मुझे कुछ पता नहीं कि किस वेष में तुम मिलोगे, तो तुम्हें खोजूं कैसे? तुम किस वेष में मिल जाओगे पता नहीं। तुम्हीं खोजो तो शायद ... तुम्हीं अगर पुकार लो तो शायद यह घटना घट जाए।

कोई कहेउ साधु बहु बनारस भक्ति-बीज सदा रह्यौ।

किसी ने कहा कि बनारस जा पागल, यहां क्या करेगा? वहां साधु बहुत हैं। साधु निश्चित वहां बहुत हैं, मगर संत नहीं। साधु वहां बहुत हैं, भीड़-भाड़ है। मगर भीड़-भाड़ में तुम्हें कोई बुद्धपुरुष मिलेगा?

कोई कहेउ साधु बहु बनारस भक्ति-बीज सदा रह्यौ। . . . कि वहां भक्ति

का बीज तो सदा रहा है। तू जा, वहां मिल जाएगा कोई भक्त, कोई भगवान का प्यारा, कोई हरिजन।

तहं सास्त्र मत को ज्ञान है . . .। तो मैं गया, भीखा कहते हैं और मैंने वहां देखा कि शास्त्र का, मत का, दर्शन का खूब ज्ञान है।... गुरु भेद काहू नहीं कह्यौ। लेकिन ऐसी बात किसी ने भी नहीं कही, जिससे गुरु होने का भेद मिलता। जिससे पता चलता कि हां, आ गया गुरु का द्वार, बस अब यहां से कहीं और जाना नहीं है। आ गयी मंजिल !

दिन दोय-चारि विचारि देख्यौं भरम करम अपार है।

कुछ दिन रुका, भटका, सोचा, देखा ... भरम करम अपार है! बहुत क्रियाकाण्ड चल रहा है। बहुत भ्रम-अंधविश्वास चल रहे हैं। लेकिन कहीं कोई जलती हुई ज्योति नहीं।

बहु सेव पूजा कीरतन मन माया-रस व्योहार है।

और देखा लोग पूजन भी कर रहे हैं, सेवा कर रहे हैं भगवान की, कीर्तन कर रहे हैं। और मन में ? माया है, मोह है। वही धन, पद-प्रतिष्ठा की पकड़ है। लेकिन गुलाल को देखते ही आंखें भर गयीं, आत्मा भर गयी। गुलाल को देखकर ही तो भीखा ने कहा : गुरु-परताप साध की संगति !

भीखा के वचन—

जग के करम बहुत कठिनाई, तातें भरमि-भरमि जहंड़ाई।
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़े करत लरिकाई ।।

जग के करम बहुत कठिनाई ! परमात्मा को पाना कठिन नहीं है, लेकिन जगत ऐसे संस्कार डालता है लोगों के चित्त पर कि वे संस्कार बाधा बन जाते हैं। जगत ऐसे क्रियाकाण्ड सिखा देता है कि उन क्रियाकाण्डों के कारण ही दीवालें खड़ी हो जाती हैं। जगत ऐसी शिक्षाएं देता कि उन शिक्षाओं के कारण आदमी अंधा हो जाता है।

परमात्मा को न देख पाने में हिन्दुओं का हाथ है, मुसलमानों का हाथ है, ईसाइयों का, जैनों का, बौद्धों का, शास्त्रों का, पंडितों का, संप्रदायों का। ईश्वर को तो वही देख सकता है जो संप्रदाय-मुक्त हो; जो पक्षपात-मुक्त हो; जिसने शास्त्र को अलग हटाकर रख दिया हो। जिसकी आंख पर शास्त्रों के चश्मे चढ़े हैं वह परमात्मा को नहीं देख सकता। परमात्मा को देखने के लिए निर्विचार आंख चाहिए—और शास्त्र तो विचार और विचार और विचार . . . इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। शास्त्रों में विचार हैं और क्रियाकाण्ड हैं—ऐसा करो तो परमात्मा मिलेगा, ऐसा सोचो तो परमात्मा मिलेगा। और मजा यह है कि परमात्मा मिला ही हुआ है। कुछ न सोचो, कुछ न करो—अभी मिल जाए ! घड़ी-भर को भी शून्य होकर

बैठ जाओ, कुछ न सोचो, कुछ न करो—अभी मिल जाए।

झेन फकीर कहते हैं : गुपचुप बैठे, बिना कुछ करते, वसंत आता है और घास अपने-आप उगने लगती है। गुपचुप बैठे . . . 'सिटिंग सायलेन्टली'। न कुछ करते... 'डूइंग नथिंग'। वसंत आता है . . . 'द स्प्रिंग कम्स'। और घास अपने से बढ़ने लगती है . . . 'एण्ड द ग्रास ग्रोस बाय इटसेल्फ'। परमात्मा तो अभी मिले, अभी मिले, यहीं मिले ! क्षण-भर भी रुकने की कोई जरूरत नहीं है; लेकिन नहीं मिलता तो हम सोचते हैं बहुत कठिन है परमात्मा को पाना।

परमात्मा को पाना कठिन नहीं है। समाज ने जो जाल तुम्हारे चारों तरफ बुन दिया उसको पार पाना कठिन है। उस जाल को काटना कठिन है। हिन्दू होना नहीं छूटता, मुसलमान होना नहीं छूटता। छूटता ही नहीं है; खून, हड्डी-मांस-मज्जा में समा गया है।

परमात्मा कैसे मिले ? काश, तुम सिर्फ मनुष्य होओ तो परमात्मा अभी मिले। काश, तुम्हारे ऊपर कोई परंपराओं का बोझ न हो तो तुम्हारी आंख अभी खुल जाए। तुम्हारी आंखों पर चट्टानों का बोझ है।

जग के करम बहुत कठिनाई ! भीखा कहते हैं : जग के कारण कठिनाई हो रही है, परमात्मा के कारण नहीं। . . . तातें भरमि-भरमि जहंड़ाई। समाज की शिक्षाओं के कारण बार-बार हम भ्रम के जाल में पड़ जाते हैं।

ज्ञानवंत अज्ञान होत है !. . . और यहां हालत बड़ी अजीब है। जिनको तुम समझते हो बड़े ज्ञानी हैं, उनसे बड़े अज्ञानी नहीं हैं। पंडितों से ज्यादा बड़े मूढ़ खोजने असंभव हैं। क्योंकि पंडित के पास मात्र शब्द होते हैं, कोई अनुभव नहीं होता। शब्दों से न तो भूख मिटती है और न प्यास बुझती है। शब्दों को न तो ओढ़ सकते हो न बिछा सकते हो। वर्षा होगी तो 'छप्पर' शब्द काम में नहीं आएगा—छप्पर चाहिए; 'छाता' शब्द काम में नहीं आएगा—छाता चाहिए ! आग लगेगी तो 'जल' शब्द से तुम उसे न बुझा सकोगे—जल चाहिए !

जीवन तो 'जो है' उसको स्वीकार करता है। और पंडित उसके संबंध में जानकारियां भरता है। अक्सर पंडित के पास तुम्हें बड़े सुन्दर, लच्छेदार, तर्कयुक्त शास्त्र-सम्मत विचार मिलेंगे। बस विचार। उसके जीवन में तलाशोगे तो कुछ भी न पाओगे।

ज्ञानवंत अज्ञान होत है ! यहां हालत बड़ी अजीब है। यहां जिनको ज्ञानी कहो वे महाअज्ञानी हैं ! . . . बूढ़े करत लरिकाई। और यहां बूढ़े हैं जिनका व्यवहार देखो तो ऐसा लगता है कि लड़के भी ऐसा व्यवहार करें तो भी असम्मानजनक है। लेकिन बूढ़े भी वही व्यवहार कर रहे हैं। बूढ़े भी वृद्ध नहीं हो पाते। उम्र तो बढ़ जाती है, परिपक्वता नहीं आती।

और यह बारह साल के लड़के ने जाना, पहचाना। खूब प्रतिभा रही होगी! तलवार की धार रही होगी! जन्मों-जन्मों का निखार रहा होगा। सदियों-सदियों में किये गये सत्संग की गरिमा के कारण ही यह संभव हो पाया होगा।

परमारथ तजि स्वारथ सेवहि, यह धौं कौनि बड़ाई।

और परमेश्वर को तो छोड़ दिया है, परम अर्थ को तो छोड़ दिया है, स्वार्थ में लगे हैं। छोटे-छोटे क्षुद्र स्वार्थ, दो कौड़ी के स्वार्थ! उनके लिए आदमी क्या-क्या करने को तैयार है! कितना अपमानित होने को तैयार है। कितना निंदित होने को तैयार है। कौड़ियों के पीछे दौड़ रहा है और हीरे पड़े हैं जिन पर उसकी नजर नहीं जाती, क्योंकि दौड़ उसकी कौड़ियों के पीछे लगी है।

परमारथ तजि स्वारथ सेवहि . . .। जिनमें थोड़ा बोध है वे तो जीवन के परम अर्थ को खोजते हैं, क्योंकि यह जो जीवन है यह तो मौत आएगी और पोंछ देगी। इसके पहले ही उस परम अर्थ को खोज लेना है, जिसकी कोई मौत नहीं है, जिसका कोई अंत नहीं है।

फिर स्वार्थ की बात मौलिक रूप से भ्रांति पर खड़ी है, क्योंकि मैं हूं ही नहीं। और इस मैं के ही कारण मेरे का विस्तार कर रहा हूं। और यह प्रथम चरण ही भ्रांत है। मैं हूं ही नहीं, परमात्मा ही है। हम तो सिर्फ उसके सागर की लहरें हैं। लहरों का क्या कोई अस्तित्व है? अभी हैं—अभी गयीं। सागर सदा है। जो सदा है वही सत्य है।

बेद-बेदान्त कौ अर्थ विचारहिं, बहुविधि रुचि उपजाई।

और खूब उलझे हैं। खूब कुतूहल से भरे हैं। वेद-वेदान्त का अर्थ विचार रहे हैं। विवाद कर रहे हैं। सिद्ध कर रहे हैं कि ऐसा अर्थ है कि वैसा अर्थ है। और किसी को चिन्ता नहीं पड़ी कि अनुभव में उतरे। किसी को चिन्ता नहीं पड़ी।

बुद्ध की मृत्यु हुई और बुद्ध के शिष्य छत्तीस संप्रदायों में बंट गये, तत्क्षण! कोई कुछ अर्थ करने लगा, कोई कुछ अर्थ करने लगा, कोई कुछ अर्थ करने लगा। महा विवाद छिड़ गया। बुद्ध ने क्या कहा था, उसका क्या अर्थ है—इस पर छत्तीस संप्रदाय हो गये। थोड़े-से ही थे ऐसे लोग जो इस विवाद में नहीं पड़े; जो अपने वृक्षों के नीचे मौन होकर चुप बैठ गये।

किसी ने ऐसे मौन होकर चुप बैठे मंजुश्री से पूछा—बुद्ध का एक अद्‌भुत शिष्य—कि न तो तुम रो रहे हो, न तुम दुखी दिखाई पड़ रहे हो, न ही तुम विवाद में पड़े हो। क्योंकि सारे शिष्य विवाद में पड़े हैं कि अब बुद्ध के वचनों का ठीक-ठीक अर्थ क्या है? मंजुश्री ने कहा : बुद्ध चले गये, मैं भी चला जाऊंगा। बुद्ध तक चले गये तो मेरी क्या हस्ती, मेरी क्या बिसात? जहां जीवन इतना क्षणभंगुर है कि बुद्ध जैसे व्यक्ति की भी लहर मिट जाती है, रोऊं किसलिए? रोने में समय क्यों

गंवाऊं? बुद्ध ने जो जाना है वही जानकर मैं भी जाऊं, कि लहर मिटे तो मैं जानता हुआ जाऊं कि मैं सागर हूं, लहर नहीं हूं। जिस मौज से बुद्ध गये हैं, जो मुस्कुराहट बुद्ध पीछे छोड़ गये हैं वही मैं भी छोड़ जाऊं। और विवाद से क्या होगा? शब्दों के अर्थ करने से क्या होगा? बुद्ध ने जो कहा था, उसका अनुभव करने के लिए बैठा हूं। जिन्हें विवाद करना है वे विवाद करें।

और मजा यह है कि ये जो अनुभव करने वाले लोग थे, ये तो खो जाते हैं और विवाद करने वाले लोग अड्डे जमा लेते हैं। वे संप्रदाय अब भी जिंदा हैं। मंजुश्री के पीछे चलने वाला कोई नहीं। लेकिन उन विवादियों के पीछे अब भी संप्रदाय खड़े हैं। लोगों की शब्दों पर बड़ी श्रद्धा है। यह दुनिया में आश्चर्यजनक घटना है कि लोग शब्दों पर कितना भरोसा करते हैं! लोग सत्य की तलाश नहीं करते, शब्द से ही राजी हो जाते हैं।

बेद-बेदान्त कौ अर्थ विचारहिं, बहुबिधि रुचि उपजाई।
माया-मोह ग्रसित निसिबासर, कौन बड़ो सुखदाई॥

भीखा कहते हैं : करते रहो वेद और वेदान्त की चर्चा, माया भी नहीं मिटती, मोह भी नहीं मिटता। रात-दिन माया-मोह में लगे हो, और बातें बड़े ज्ञान की कर रहे हो। करते रहो ये बातें। इन प्रकाश की बातों से प्रकाश नहीं होगा, अंधेरा नहीं मिटेगा। इनसे जीवन में सुख की वर्षा होने वाली नहीं है।

लेहिं बिसाहि कांच को सौदा, सोना नाम गंवाई।

शब्दों में उलझे हो, कांच को पकड़कर बैठ गये। कांच का सौदा कर लिया है शब्द तो कांच जैसे हैं। सोना नाम गंवाई! और हरिनाम, प्रभु का स्मरण—जो सोना है—उसमें डुबकी नहीं मार रहे हो।

अमृत तजि विष अंचवन लागे . . .। अमृत मौजूद है और तुम विष पी रहे हो! मगर विष की बोतलों पर लोगों ने अमृत के लेबल लगा दिये हैं। और लोग लेबलों पर बड़ा भरोसा करते हैं। कोई भीतर तो झांककर देखता ही नहीं कि भीतर क्या है, बस लेबल पर बड़ा भरोसा है। लोग जहर पी सकते हैं, अमृत लिखा होना चाहिए। शब्द का ऐसा सम्मोहन है!

अगर तुम्हें कोई बता दे लिखा हुआ कि यह देखो, यह किताब में लिखा है—बस, फिर ठीक होना ही चाहिए! लिखा हुआ हो तो ठीक होना ही चाहिए। बोले हुए पर भरोसा नहीं होता, लिखे हुए पर एकदम भरोसा हो जाता है। क्या पागलपन है!

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने पार्टी दी हुई थी। नमक की कमी पड़ गयी। तो मुल्ला भागा; उसने कहा कि मैं ले आता हूं नमक। चौके में बड़ी देर हो गयी, बड़ी आवाजें, डब्बों का खोलना बन्द करना, उठाना रखना! . . . पत्नी ने कहा : क्या

जिन्दगी लगा दोगे ! नमक कब तक ला पाओगे ? उसने कहा कि मिल ही नहीं रहा है नमक।

पत्नी के कहा : आंख के अंधे हो ! तुम्हारे सामने ही जिस डिब्बे पर 'मिर्च' लिखा है, उसी में नमक है। लेकिन लेबल के भरोसे वाला आदमी तो मिर्च लिखा सोचकर छोड़ ही दिया था। मगर स्त्रियों की बुद्धि अपने ढंग की होती है : जिस पर मिर्च लिखा है, उसमें नमक रखा है। प्राइवेट कोड उनका अपना निजी है। खुद का चौका है तो ठीक है, चलता है; लेकिन दूसरा कैसे खोजेगा ? और शब्दों पर लोगों के ऐसे भरोसे हैं कि जब मिर्च लिखा है तो बात खत्म हो गयी। अब चाहे बोतल में भीतर नमक भी क्यों न दिखाई पड़ रहा हो, मगर अगर मिर्च ऊपर लिखा है तो बात खत्म हो गयी। लोग चीजें नहीं देखते, लोग सिर्फ शब्द देखते हैं।

अमृत तजि बिष अंचवन लागे, यह धौं कौनि मिठाई।

यह क्या कर रहे हो ? ऐसे कैसे जीवन में मिठास होगी ? ऐसे कैसे जीवन में आनंद होगा ?

गुरु-परताप साध की संगति, करहु न काहे भाई।

शास्त्रों में ही खोये रहोगे ? किसी जीवंत सद्‌गुरु के चरणों को न पकड़ोगे ? गुरु-परताप साध की संगति ! अगर कुछ करना हो तो कुछ ऐसा करो कि किसी गुरु की आभा में मंडित हो जाओ। किसी गुरु के संगीत में डूब जाओ, लयबद्ध हो जाओ। जहां गुरु के पास साधुओं की जमात इकट्ठी हुई हो, जहां परमात्मा के प्रेमी और दीवाने नाच रहे हों, मस्त हो रहे हों, आनंदमग्न हो रहे हों—वहां तुम भी पहुंच जाओ। शायद उनकी मग्नता तुम्हारे रोओं को भी कंपा दे। शायद उनका नाच तुम्हारे पैरों को भी नाच दे दे।

और अक्सर ऐसा हो जाता है। तुमने देखा, कोई तबला बजा रहा है और तुम भी थाप देने लगते हो ! क्या हुआ ? तबला बजाने वाले ने तुमसे कहा नहीं था कि थाप दो, लेकिन अपनी कुर्सी पर ही थाप देने लगे। कोई नाच रहा है और तुम्हारे पैरों में नाच समा जाता है। ठीक ऐसे ही सत्संग है। वहां भीतरी नृत्य हो रहा है; भीतरी मृदंग बज रही है; भीतर थाप पड़ रही है। जो भी खुला हृदय लेकर मौजूद हो जाते हैं उनके भीतर रस की धार बह उठती है।

और कोई उपाय नहीं, एक ही उपाय है—गुरु-परताप साध की संगति !

अंत समय जब काल गरसिहै, कौन करौ चतुराई।

यह सब चतुराई काम न आएगी। ये वेद और वेदांत सब पड़े रह जाएंगे। ये उपनिषद और गीता और कुरान और बाइबिल सब पड़े रह जाएंगे। जब मौत द्वार पर दस्तक देगी, सब होश भूल जाओगे।

मानुष-जनम बहुरि नहिं पैहो, बादि चला दिन जाई।

और याद रखो, बहुत मुश्किल से यह मनुष्य की गरिमा मिली है; खो मत देना; अवसर खो मत देना। अवसर ऐसे ही न चला जाए, नहीं तो बाद में बहुत पछताओगे।

भीखा को मन कपट कुचाली...! भीखा कहता है कि मैं तुमसे कहता हूं : समझ लो, मन बहुत कपटी है और बड़ा कुचाली है।...घरन घरैं मुरखाई। न मालूम किस-किस प्रकार की धारणाएं रखकर, न मालूम किस-किस तरह की तरकीबों से तुम्हें उलझाए रखेगा। जागना चाहोगे तो ही जाग सकोगे। अगर जरा भी सोने की वासना बनायी रखी तो मन तुम्हें लपटाये रखेगा, मन तुम्हें उलझाये रखेगा। मन बड़ा कुशल है।

समुझि गहो हरिनाम, मन तुम समुझि गहो हरिनाम।

इस बात को ठीक से समझ लो कि यह जीवन जा रहा है। यह जिन्दगी गयी ही गयी। यह मुट्ठी से समय सरका जा रहा है। इसे ठीक से समझ लो और हरि के नाम को गहो। क्योंकि वही है जो सदा रहेगा और सदा के साथ सुख है। क्षणभंगुर के साथ दुख है।

समुझि गहो हरिनाम, मन तुम समुझि गहो हरिनाम।

दिन दस सुख यहि तन के कारन, लपटि रहो धन धाम।।

धन से, पद से, प्रतिष्ठा से लिपट कर पड़े हो ! यह चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात। यह छोटा-सा धोखा है। इस धोखे में सिर्फ मूढ़ ही पड़ते हैं, लेकिन अधिक लोग इस धोखे में पड़े हैं। निश्चित ही अधिक लोग मूढ़ हैं। मगर चूंकि मूढ़ों की भीड़ है, इसलिए तुम्हें पता भी नहीं चलता। भीड़ में तुम भी हो तो तुम्हें भी पता नहीं चलता कि इतनी मूढ़ों की भीड़ हो सकती है। जब सभी लोग यही कर रहे हैं तो ठीक ही कर रहे होंगे।

हमारे भीतर एक तर्क है कि भीड़ जो करती है, ठीक ही करती होगी। इतने लोग कहीं गलत हो सकते हैं ? और यही दूसरे भी सोच रहे हैं कि इतने लोग कहीं गलत हो सकते हैं ? तुम भी यही सोच रहे, तुम्हारा पड़ोसी भी यही सोच रहा। पड़ोसी सोच रहा है कि तुम गलत नहीं हो सकते, तुम सोच रहे हो पड़ोसी गलत नहीं हो सकता। इस तरह एक बड़ी भ्रमना, एक बड़ा भ्रमजाल खड़ा है।

देखु बिचारि जिया अपने...। अपने हृदय में जरा सोचो ! अगर आनंद मिल रहा हो तो ठीक। अगर जीवन में उत्सव हो तो ठीक। अगर जीवन में अमृत की वर्षा हो रही हो तो ठीक। भीड़ को देखकर नहीं, अपने भीतर अनुभव से निर्णय करो।

देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना गुनन बेकाम।

इसके अतिरिक्त जितना भी तुम चिन्तन-मनन कर रहे हो, वह सब बेकार है। एक बात तो तुम ठीक से समझ लो कि तुम्हारी जिन्दगी ने तुम्हें क्या दिया है ? आनंद

दिया ? अमृत दिया ? सत्य दिया ? परम जीवन दिया ? अगर नहीं दिया तो कोई और भी जीवन है, उसकी तलाश में लग जाओ। और देर न करो। स्थगित न करो। कल पर न टालो। क्योंकि कल कभी आता नहीं। और जिसने कल पर टाला उसने सदा को टाला।

जोग जुक्ति अरु ज्ञान ध्यान तें, निकट सुलभ नहिं लाम।

और स्मरण रखो, परमात्मा को पाना किसी विधि की बात नहीं है। जोग जुक्ति . . . कि कोई सिर के बल खड़ा हो गया, कि किसी ने योगासन साध लिए और परमात्मा को पा लिया। काश, इतना आसान होता कि शरीर के व्यायाम से और परमात्मा मिल जाता ! हां, शरीर के व्यायाम के अपने लाभ हैं। तुम ज्यादा स्वस्थ रहोगे, थोड़े ज्यादा दिन जियोगे। मगर ज्यादा स्वस्थ रहकर ज्यादा दिन जी कर करोगे भी क्या ? करोगे तो वही उपद्रव !

कहते हैं तैमूरलंग ने एक ज्योतिषी को पूछा कि मैंने सुना है कि शुभ है ब्रह्म-मुहूर्त में उठ आना; जल्दी उठ आना। मैं तो कभी नहीं उठता। मैं तो दस बजे के पहले नहीं उठता। तुम्हारा क्या खयाल है ?

तैमूर को लोग जानते थे, वह आदमी खतरनाक है। मगर ज्योतिषी भी बड़ी हिम्मत का था। उसने कहा : वे लोग गलत कहते हैं, कम-से-कम तुम्हारे बाबत गलत कहते हैं। तुम चौबीस घंटे सोओ।

तैमूर ने कहा : चौबीस घंटे ! होश की बातें कर रहे हो ? इससे क्या लाभ ?

उस ज्योतिषी ने कहा : इससे लाभ ही लाभ है, क्योंकि तुम जितनी देर जगते हो उतनी देर उपद्रव है। उतने लोगों को मारोगे, काटोगे, सताओगे, परेशान करोगे। तुम जैसे लोग तो चौबीस घंटे सोये रहें, इसमें ही लाभ है। दूसरों का तो लाभ है ही, तुम्हारा भी लाभ है। दूसरों का लाभ है कि वे परेशानी से बच जाएंगे; और तुम्हारा लाभ यह है कि तुम किसी को परेशान न करोगे तो आगे परेशान न किये जाओगे। लाभ ही लाभ है।

तुम थोड़े दिन ज्यादा जी लोगे तो क्या करोगे ? वही करोगे न जो थोड़े कम दिन जी कर करते। शरीर स्वस्थ होगा, बीमारी कम होगी। जरूर योगासन के उपयोग हैं, लेकिन परमात्मा के मिलने से इसका कोई संबंध नहीं है। और अक्सर ऐसे लोग हैं जो इसी में उलझे हैं जिन्दगी में और सोच रहे हैं कि परमात्मा के करीब पहुंच रहे हैं, क्योंकि सिर के बल खड़े होना उन्होंने अब घंटे भर साध लिया, दो घंटे साध लिया। तुम चौबीस घंटे भी सिर के बल खड़े रहो . . . हां, कुछ फायदे हैं, किसी को नुकसान न पहुंचेगा तुमसे। और जब तुमसे किसी को नुकसान नहीं पहुंचेगा तो अगले जन्म में तुमको भी कुछ-न-कुछ लाभ मिलेगा। सिर के बल किसी को खड़ा कर देना बड़ा सुगम उपाय है दूसरों को बचाने का। मगर और कोई लाभ नहीं है।

जोग जुक्ति . . .। और लोग कुछ सोच रहे हैं कि कोई युक्ति है, कोई तरकीब है, कोई कुंजी है—जो कोई तुम्हें पकड़ा देगा और तुम दरवाजा खोल लोगे। कोई युक्ति भी नहीं है। परमात्मा किसी युक्ति से नहीं मिलता। परमात्मा तो मिलता है प्रेम से और प्रेम कोई युक्ति नहीं है। परमात्मा तो मिलता है सर्वस्व समर्पण से। और समर्पण कोई युक्ति नहीं है, कोई चालबाजी नहीं है, कोई होशियारी नहीं है।

कुछ लोग सोच रहे हैं ज्ञान से मिल जाएगा, कि खूब शास्त्रज्ञान संगृहीत कर लें। कुछ लोग सोच रहे हैं कि जप-तप... जिसको वे ध्यान कहते हैं; जो कि ध्यान नहीं है। कुछ लोग सोच रहे हैं माला फेरते रहेंगे। तो कितनी बार माला फेरी... कितनी बार, उसका हिसाब रखेंगे ! कहेंगे परमात्मा से, एक करोड़ बार माला फेरी, अब तो मिल जाओ !

परमात्मा कोई मूढ़ है ? जिसने एक करोड़ बार माला फेरी, इतना पक्का समझो इसको तो मिलेगा ही नहीं, क्योंकि इन सज्जन का सत्संग वह करना चाहेगा ? इन्होंने तो सिद्ध कर दिया कि ये बिलकुल बुद्धिहीन हैं, माला के गुरिये फेर रहे हैं। इनसे तो बचेगा।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा जो चौबीस घंटे प्रार्थना करता रहता था। जैसा मौका मिले, जब मौका मिले, प्रार्थना में लगा रहता था। तराजू भी तौलता रहता तो हरेराम हरेकृष्ण, हरेराम हरेकृष्ण करता रहता। पैसे गिनता तो हरेराम हरे-कृष्ण, हरेराम हरेकृष्ण। वह उसने यांत्रिक कर लिया था। बाकी सब काम चलता था, कोई बाधा नहीं आती थी। कुत्ते को भगाता— हरेराम हरेकृष्ण, हरेराम हरे-कृष्ण ! भिखमंगे को इशारा करता आगे बढ़ो—हरेराम हरेकृष्ण, हरेराम हरेकृष्ण...! ग्राहकों की जेब काटता रहता और हरेराम हरेकृष्ण। सब चलता जैसा था, मगर हरेराम हरेकृष्ण, हरेराम हरेकृष्ण कहता रहता। मरा, उसे देवदूत नरक ले जाने लगे। बहुत नाराज हुआ, उसने कहा, यह क्या कर रहे हो ? हरेराम हरेकृष्ण ! यह क्या कर रहे हो. . . हरेराम हरेकृष्ण। नरक मुझे ले जा रहे हो...हरेराम हरेकृष्ण ! जिन्दगी-भर हरेराम हरेकृष्ण किया और मुझे नरक ले जा रहे हो ! मुझे पहले परमात्मा के सामने ले चलो। दो-दो बातें हो जाएं।

परमात्मा के सामने जाकर उसने कहा कि यह क्या बदतमीजी है ! हरेराम हरेकृष्ण. . .। यह क्या अन्याय हो रहा है ? मुझे नरक ले जाया जा रहा है ! जीवन-भर मैंने हरेराम हरेकृष्ण किया. . .।

और तभी उसने देखा कि उसी के सामने रहने वाला एक आदमी जिसने कभी हरेराम हरेकृष्ण नहीं किया, न कभी मंदिर गया, न सत्यनारायण की कथा की, उसको बैण्ड-बाजे बजाकर स्वर्ग में लाया जा रहा है। उसने कहा : और हद हो गयी ! यह मैं क्या देख रहा हूं . . . हरेराम हरेकृष्ण !

ईश्वर ने कहा कि इसे ले जाओ, यह मेरा दिमाग खराब कर देगा . . .हरेराम हरेकृष्ण ! तूने जिन्दगी-भर भी मुझे सताया, न सोने दिया, न बैठने दिया । तूने ऐसा अभ्यास किया हरेराम कृष्ण का कि नींद में भी तू चिल्लाता था हरेराम हरेकृष्ण। और तू चिल्लाये तो मेरी नींद टूटे । तुझे तो मैं यहां नहीं रहने दूंगा । अगर तुझे स्वर्ग में रहना है तो मैं नरक चला । तू रह । हम दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

तुम्हारे जप-तप तुम्हें कहीं न ले जाएंगे । फिर क्या ले जाएगा तुम्हें ? गुरु-परताप साध की संगति ! वही ध्यान है । वही वस्तुतः ध्यान है । सत्संग ध्यान है और ध्यान की सारी विधियां तो सत्संग के लिए तैयार करने की विधियां हैं, तुम्हें निखारने की विधियां हैं । जैसे तुम नहाकर आते हो सत्संग करने, स्वच्छ कपड़े पहन कर आते हो सत्संग करने——ऐसे ही अगर ध्यान करके आये तो सत्संग के लिए तुम भीतर भी नहाकर आये बस । सत्संग के लिए ध्यान एक स्नान है । मगर परम उपलब्धि तो सत्संग से होगी ।

इत उत की अब आसा तजिकै, मिली रहु आतमराम ।

अब यहां-वहां की व्यर्थ की आशाएं छोड़ो। जिसे तुम खोज रहे हो वह तुम्हारे भीतर बैठा है। तुम कहां दौड़े जा रहे हो ? आंख बंद करो, अपने में डुबकी लगाओ !

भीखा दीन कहां लगि बरनै, धन्य घरी वह जाम ।

भीखा कहते हैं : कहां तक मैं वर्णन करूं उस धन्य घड़ी का, उस धन्य क्षण का, जब कोई अपने में डुबकी मारता है ! और जिसे जन्मों-जन्मों बाहर खोजकर नहीं पाया था, उसे अपने भीतर विराजमान पाता है । धन्य घड़ी वह जाम ! ... वह क्षण धन्य है, वह घड़ी धन्य है, क्योंकि उसी क्षण जीवन का सारा विषाद मिट जाता है, सारा संताप मिट जाता है। जीवन का सारा अंधकार कट जाता है। अमावस एकदम से अचानक पूर्णिमा हो जाती है ।

राम सों करु प्रीति हे मन !

इसलिए इतना ही कहते हैं भीखा कि अगर प्रेम करना है, राम से प्रेम करो। राम सों करु प्रीति !

राम बिना कोउ काम न आवै, अंत ढहो जिमि भीति । और राम के बिना कोई काम आने को नहीं है। आखिरी समय में ऐसे गिर जाओगे जैसे वर्षा में कोई कच्ची दीवाल गिर जाती है ।

बूझि बिचारि देखु जिय अपनो। ... खूब सोच लो, खूब विचार लो; मगर हृदय से, बुद्धि से नहीं ।

बूझि बिचारि देखु जिय अपनो, हरि बिन नहीं कोउ हीति ।

उसके बिना उस परमात्मा के अतिरिक्त और कोई हितैषी नहीं है, कोई मित्र नहीं है ।

गुरु गुलला के चरणकमल-रज, धरु भीखा उर चीति ।

भीखा कहते हैं : मुझे तो ऐसे हो गया, मुझे तो ऐसे मिल गया कि मैं तो गुरु गुलाल के चरणों में सिर रख दिया । उनकी चरण-रज मेरे लिए स्वर्ण हो गयी । बस वही घटना मुझे परमात्मा से जोड़ दी ।

गुरु के चरणों में सिर रखना और परमात्मा से प्रेम एक ही घटना के दो पहलू हैं ।

गुरु गुलला के चरणकमल-रज धरु भीखा उर चीति ।

मैं तो ऐसे पा गया—कहते हैं——ऐसे ही तुम भी पा जाओ। तुम भी पा सकते हो । शिष्य जब पहली बार गुरु के पास आता है और जब पहली बार झुकने की अपूर्व घड़ी घटती है, तो इस जगत में सबसे बड़ी क्रांति होती है। और सब क्रांतियां छोटी हैं, नाकुछ हैं ।

तुम तो मेरी आंखों की पुतली
तुम मेरे हिय का चिर कम्पन;
मम चेतनता का तुम स्पन्दन
तुम इन प्राणों का मदिर व्यजन;

तुम मम जीवन अमर साध,
मेरे सपनों का मूर्त रूप,
मम आराधना-केन्द्र तुम हो,
तुम मेरी ममता चिर अनूप;

तुम अपरिमेय, तुम अनुपमेय,
तुम मम निशि के शशि भासमान,
तुम मम ऊषा की अरुण छटा,
मेरे विहान की मधुर तान !

मेरे वियोग की वह निशीथ,
जिसका अम्बर था अनवलम्ब,
जिसमें लहराया तिमिर रूप——
घन विप्रलम्भ का उपालम्भ;

शशि किरणों से, तारागण से,
था शून्य गगन मेरा नितान्त,
कब सोचा था कि कभी होगा
मेरे विछोह का भी निशान्त ?

नभ में ऊषा मुसकायेगी,
छिटकेगा जीवन में विहान,
कब सोचा था, तुम गाओगे—
इस नवल मिलन के मदिर गान ?

खिल उठा आज मेरा शतदल,
उन्मुक्त हुए मेरे अलिगण,
लहराया मधुर-मधुर परिमल,
गुन-गुन-गुन-गुन गूंजा गुंजन;

पद नख का कोमल किरण-जाल
छाया मेरे गगनांगन में;
वे ललित-ललित-लघु-लाल-लाल
पद-चिह्न अंके मम प्रांगण में,

मम नयन, उनींदे, नमित, अरुण
विस्फारित ही रह गये, प्राण,
वे निर्निमेष, वे करुण-करुण,
जिनमें छाये तुम, हे सुजान।

क्या कहूं कि मैं क्या हुआ आज ?
कृतकृत्य कहूं ? चिर धन्य कहूं ?
जब तुम आये, मम हृदय राज,
तब निज को क्यों न अनन्य कहूं ?

मेरे सुहाग का सूर्य उदित,
छायी सिंदूर की यह लाली,
मेरे सनेह का शशि प्रमुदित
मेरी निशि-दिशि-दिशि उजियाली;

मेरे चन्दा, मेरे सूरज,
यों ही चमका करना निशि-दिन,
मेरे रहस्य, मेरे अचरज,
जीवन होगा दूभर तुम बिन !
क्या कहूं कि मैं क्या हुआ आज ?
कृतकृत्य कहूं ? चिर धन्य कहूं ?

जब तुम आये, मम हृदय राज,
तब निज को क्यों न अनन्य कहूं ?

जिस क्षण शिष्य गुरु को पा जाता है, उसी क्षण अनन्य हो जाता है, अद्वितीय हो जाता है। जिस क्षण शिष्य गुरु को पा जाता है, उसने परमात्मा का द्वार पा लिया। गुरु को पा लिया तो परमात्मा को पा लिया। अब दूरी न रही। अब फासला न रहा। पहुंच ही गये। एक कदम और, बस एक कदम और...।

इसीलिए गुरु को सदियों-सदियों से हमने भगवान कहा है। कारण है उसका। क्योंकि गुरु आखिरी पड़ाव है, उसके बाद बस परमात्मा है।

भीखा ने पाया, तुम भी पा सकते हो। भीखा ने अपनी झोली फैलायी, इसलिए 'भीखा' कहलाया। तुम भी अपनी झोली फैलाओ। भीखा की झोली भरी और सम्राट हो गया। तुम्हारी भी झोली भर सकती है। तुम भी सम्राट हो सकते हो। गुरु-परताप साध की संगति !

आज इतना ही।
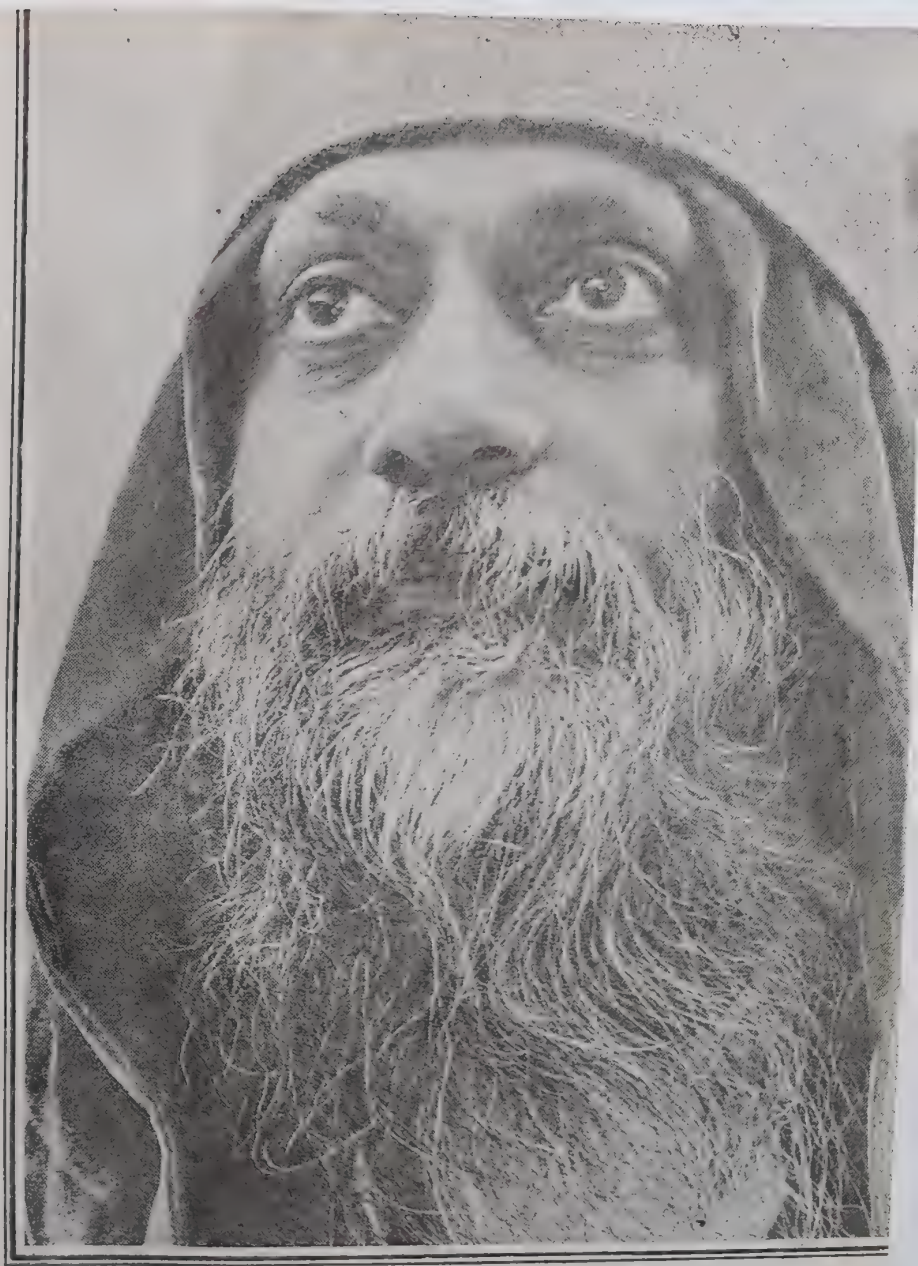
मेघों का आमंत्रण

दूसरा प्रवचन; दिनांक २२ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

भगवान ! क्या श्रद्धा में भी संदेह उठ सकता है ?

भगवान ! उस दिन आपको गोली मारने की बात सुनते ही मैं रोती रही। ऐसे तो मैं कभी जिंदगी में किसी की मौत पर भी नहीं रोयी ! अब तो सिर्फ आपकी मौत की बात सुनते ही कांप उठती हूं । क्यों ? कृपया समझाइए ।

भगवान ! आपको बार-बार देखकर भी ऐसा लगता है, नहीं देखा है ! कैसे देखूं कि छवि उतरे ही उतरे ?

पहला प्रश्न : भगवान ! क्या श्रद्धा में भी संदेह उठ सकता है ?

★ संतोष सरस्वती ! श्रद्धा में तो संदेह उठना असंभव है। श्रद्धा में संदेह उठे तो श्रद्धा थी ही नहीं । फिर तुमने विश्वास को श्रद्धा समझ लिया होगा, मान्यता को श्रद्धा समझ लिया होगा । अंधी रही होगी श्रद्धा, आंख वाली न रही होगी। अंधी श्रद्धा का नाम विश्वास है। और अंधी श्रद्धा का कोई भी मूल्य नहीं—दो कौड़ी भी मूल्य नहीं। अंधी श्रद्धा से तो आंख वाला संदेह लाख गुना मूल्य का है। क्योंकि असली कीमत आंख की है । श्रद्धा और संदेह तो पीछे आएंगे, पहले तो आंख . . .। अगर आंख वाला संदेह है तो आंख वाली श्रद्धा भी आएगी ।

लेकिन सदियों से मनुष्य को समझाया गया है—संदेह मत करना; संदेह पाप है । संदेह को दबा दो, संदेह की छाती पर बैठ जाओ, संदेह को अचेतन में फेंक दो —जितन गहरे में फेंक सको फेंक दो, कि तुम्हें याद भी न रहे कि तुम्हारे भीतर कभी संदेह था । फिर ऊपर से ओढ़ लो विश्वास को, श्रद्धा को, आस्था को । वह सब झूठ है क्योंकि प्राणों में तो संदेह है । और परिधि पर श्रद्धा है । मूल्यांकन तो प्राणों का होगा, परिधि का नहीं । तुम्हारे जीवन की नियति तो निर्धारित होगी तुम्हारे केन्द्र से—और केन्द्र पर संदेह है और सिर्फ ऊपर-ऊपर लीपापोती की है ।

ईश्वर को मानते हैं लोग, जानते नहीं। और बिना जाने जो माना गया वह अंधा है । इससे तो आंख वाला संदेह बहुत-बहुत कीमती है । क्योंकि आंख वाला संदेह, अगर हिम्मतपूर्वक तुम उसके साथ चलते ही रहो तो एक न एक दिन तुम्हें आंख वाली श्रद्धा पर पहुंचा देगा ।

संदेह तो सौभाग्य है । लेकिन बीच में रुकना मत, बीच में ठहरना मत । संदेह की परिपूर्णता पर श्रद्धा पैदा होती है, इसलिए श्रद्धा में तो संदेह पैदा हो ही

नहीं सकता। श्रद्धा तो संदेह की सारी सीढ़ियों को पार ही कर चुकी। वे सारे भटकाव, वे सारे प्रश्न, वे सारी जिज्ञासाएं तो कभी की पार कर ली गयीं। वे पर्वतमालाएं तो बहुत पीछे छूट गयीं। वे खाई-खड्डे तो अनुभव कर लिए गये।

संदेह की आग में पक-पक कर ही श्रद्धा पैदा होती है। तो श्रद्धा में से तो संदेह पैदा हो ही नहीं सकता। और अगर श्रद्धा में संदेह पैदा हो तो उसका अर्थ साफ है कि तुम कुछ बचा गये--तुम कुछ संदेह बचा गये। तुमने कुछ संदेह सरका कर रख दिये। तुमने कुछ संदेहों का सामना न किया। तुम संदेहों से संघर्ष न किये। तुमने संदेहों की सुनकर खोजा नहीं, पूछा नहीं, प्रश्न न जगाये, जिज्ञासा न की। तुम संदेहों को पीटते गये, बाद दे गये। जिनको तुमने पीट दिया वे तुम्हारे पीछे खड़े हैं। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कभी भी कमजोर क्षण में, कभी भी कोमल क्षण में, कभी भी सम्यक् अवसर पर जब वे प्रगट हो सकेंगे वे प्रगट हो जाएंगे।

जिसे भी दबाया है उससे छुटकारा नहीं होता। दबाये हुए को बार-बार दबाना पड़ता है, फिर भी छुटकारा नहीं होता। दबाया हुआ तुम्हारे जीवन का सदा के लिए बंधन हो जाता है।

तो अगर श्रद्धा में संदेह उठे तो समझना कि श्रद्धा झूठी थी, संदेह की आग से गुजरी नहीं थी। तुम तो ऐसा प्रश्न पूछ रहे हो कि जैसे हम पके हुए घड़े में पानी भरें तो कहीं ऐसा तो न होगा कि घड़ा बिखर जाए! अगर पका हुआ घड़ा है तो पानी के भरने से बिखरेगा नहीं। हां, कच्चा ही घड़ा हो, लाल रंग से रंग दिया हो, आग से गुजरा ही न हो, पका ही न हो--तो फिर पानी भरोगे, तो मिट्टी तो मिट्टी है, पानी के पाते ही गीली हो जाएगी, पानी के पाते ही बिखर जाएगी। कच्चा रंग हो तो पहली वर्षा में ही उतर जाएगा। कच्चा रंग हो, जरा धूप पड़ेगी और उतर जाएगा।

अगर तुम्हारी श्रद्धा कच्ची है तो संदेह तो उठेंगे, अनिवार्यता है उनका उठना। और वे उठेंगे तो तुम उन्हें दबाओगे। और तुम दबाओगे तो वे फिर-फिर उठेंगे। उनसे इतने सस्ते में छूटने का कोई उपाय नहीं है। संदेहों को जीना पड़ता है। संदेह की आग में भुनना पड़ता है। संदेह की पीड़ा से गुजरे बिना कोई उपाय नहीं, कोई विकल्प नहीं। तुम बचकर नहीं गुजर सकते, संदेह के मध्य से ही जाना होगा। और जाना एकदम अर्थपूर्ण है क्योंकि उस आग से गुजर कर ही तुम्हारी मिट्टी पकेगी। तुम आग के बाहर पके घड़े की तरह आओगे, फिर जल भरे। श्रद्धा का घड़ा पका हो, फिर अमृत भरे, फिर अमृत-घट बने, फिर परमात्मा उतरे।

श्रद्धा में तो संदेह नहीं उठ सकता लेकिन इससे उल्टी बात जरूर सही है—संदेह में श्रद्धा उठ सकती है। संदेह में ही श्रद्धा उठती है। इसलिए अगर तुमने ऐसा पूछा होता कि क्या संदेह में श्रद्धा उठ सकती है, तो मैं कहता : हां, सुनिश्चित रूप से हां।

संदेह में ही श्रद्धा उठेगी, और कहां श्रद्धा उठेगी! अंधेरे में ही दीया जलेगा और कहां दीया जलेगा! लेकिन दीया जला हो तो अंधेरा नहीं आ सकता। रात में ही सुबह होती है। रात की ही परिपूर्णता पर प्रभात होता है। लेकिन दिन में अचानक अंधेरा नहीं आ सकता। सूरज उगा हो और अंधेरा आ जाए तो सूरज झूठा रहा होगा, कागजी रहा होगा, माना हुआ रहा होगा, असली सूरज नहीं हो सकता, कल्पना रहा होगा। तुमने सपना देखा होगा सूरज का, सूरज रहा न होगा। वास्तविक नहीं, बस काल्पनिक ही होगा। तो फिर अंधेरा आ सकता है, तो फिर रात हो सकती है, तो फिर अमावस उतर सकती है।

रात में तो दिन होता ही है; रात ही दिन तक लाती है। संदेह ही श्रद्धा तक लाता है। इसलिए संदेह में तो श्रद्धा उठती है।

मुझे एक यहूदी कहानी प्रीतिकर रही है। दो यहूदी युवक अपने रबाई, अपने गुरु के पास अध्ययन कर रहे हैं। दोनों को धूम्रपान की आदत है। मगर अवसर नहीं मिल पाता। सुबह से लेकर सांझ तक अध्ययन, मनन, ध्यान, साधन ...समय ही नहीं है। सिर्फ रोज सुबह एक घंटा और एक घंटा शाम बगीचे में घूमने मिलता है। वह भी बगीचे में घूमने को नहीं, घूमकर ध्यान करने को, जिसको बौद्ध चंक्रमण कहते हैं।

ध्यान दो तरह से किया जा सकता है, बैठकर, फिर बैठे-बैठे थक जाओ—आखिर चौबीस घंटे बैठे नहीं रह सकते, अंगों का चलना-फिरना जरूरी है, थोड़ा खून की गति होनी जरूरी है—तो फिर चंक्रमण करो, फिर चलो। लेकिन ध्यान की धारा तो चलती ही रहे। वह जो भीतर शांत स्वर गूंज रहा है, गूंजता ही रहे। वह जो भीतर धुन बंधी है, स्मरण जगा है, वह खंडित न हो। तुम में से कोई अगर बोधगया गया है तो उसने वह जगह देखी होगी, वह मंदिर, वह वट-वृक्ष, जहां बुद्ध को ज्ञान मिला, उस वट-वृक्ष के पास तुमने एक छोटा-सा मार्ग भी देखा होगा पत्थरों से पटा हुआ—वह मार्ग है जहां बुद्ध चंक्रमण करते रहे। घंटे भर बैठते बोधिवृक्ष के नीचे, फिर अंग गति चाहते हैं, थोड़ा श्रम चाहते हैं, तो फिर घंटे भर उठकर चलते वृक्ष के पास ही। लेकिन जो ध्यान भीतर सम्हाला था बैठकर उसे चलकर संभालते।

ऐसा ही उस यहूदी गुरु ने भी अपने शिष्यों को कहा था : एक घंटा सुबह, एक घंटा शाम बगीचे में घूमकर ध्यान करो। वही समय था, वही एक मौका था कि किसी वृक्ष की आड़ में, दूर निकलकर धूम्रपान कर लिया जाए। लेकिन दोनों को लाज भी लगती थी, संकोच भी होता था, ग्लानि भी होती थी। दोनों ने सोचा कि हम गुरु से पूछ ही क्यों न लें! पूछ कर करें तो यह जो अपराध-भाव है पैदा न होगा।

दोनों ने तय किया और दूसरे दिन दोनों जब आये बगीचे में, एक तो बहुत उदास था। उदास भी था, क्रुद्ध भी था, क्योंकि उसने गुरु से पूछा और गुरु ने तत्क्षण

कह दिया : नहीं, बिलकुल नहीं, कभी नहीं ! भूलकर भी यह सवाल उठाना मत। ऐसा कैसे हो सकता है ! लेकिन दूसरा बड़ा प्रसन्न था। पहले ने कहा : तुम इतने प्रसन्न क्यों हो ? तो उसने कहा : मैंने जब गुरु को पूछा तो उन्होंने कहा : हां-हां, बिलकुल ठीक है। धूम्रपान कर सकते हो।

बात बड़ी बेबूझ हो गयी ! एक को कहा : कभी नहीं, बिलकुल नहीं ! और दूसरे को कहा : हां, धूम्रपान कर सकते हो। तो पहले ने कहा : यह तो ज्यादती है, यह अन्याय है। मुझे इनकार और तुम्हें स्वीकार ! दूसरे ने कहा : क्या मैं पूछ सकता हूं कि तुमने क्या पूछा था ? तो पहले ने कहा : मैंने पूछा था जो पूछने का हमने तय किया था। मैंने उनसे पूछा कि क्या मैं ध्यान करते समय धूम्रपान कर सकता हूं ? उन्होंने कहा : कभी नहीं, भूलकर भी नहीं, यह सवाल ही मत उठाना, यह बात हो ही नहीं सकती। वे एकदम क्रुद्ध हो गये, आगबबूला हो गये। दूसरा हंसने लगा, उसने कहा : बात समझ में आ गयी। तुम्हारे पूछने में ही भूल थी। तो पहले ने पूछा : तुमने क्या पूछा था ? उसने कहा : मैंने पूछा था कि क्या धूम्रपान करते समय मैं ध्यान कर सकता हूं ? उन्होंने कहा : हां-हां, क्यों नहीं।

धूम्रपान करते वक्त ध्यान किया जा सकता है, इसमें क्या बुराई है, अच्छा ही है। धूम्रपान तो कर ही रहे हो, अगर इन क्षणों को ध्यान से भी जोड़ दिया तो शुभ ही है। लेकिन अगर कोई पूछे कि ध्यान करते वक्त धूम्रपान कर सकता हूं ? यह नहीं हो सकता। ध्यान और धूम्रपान !? नीचे गिर रहे हो। धूम्र का पान करते समय ध्यान करने में ऊपर उठ रहे हो। प्रश्न एक जैसे लगते हैं, मगर एक जैसे नहीं हैं।

तुमने पूछा संतोष सरस्वती, क्या श्रद्धा में भी संदेह उठ सकता है ? कभी नहीं। काश, तुमने पूछा होता क्या संदेह में श्रद्धा उठ सकती है ? तो मैं कहता निश्चित। और तो उठेगी कैसे ! संदेह में तो आदमी जीता ही है। संदेह तो उसकी सहज अवस्था है। संदेह तो स्वाभाविक है। संदेह की रात में ही हम पैदा हुए हैं। वहीं हमारा जन्म हुआ है। प्रभात की हम खोज कर रहे हैं। सुबह की हम तलाश कर रहे हैं। सूरज का हम इंतजार कर रहे हैं।

संदेह में श्रद्धा उठ सकती है। और यह भी तुमसे कह दूं केवल संदेह में ही उठ सकती है। जो संदेह से बचे, वे श्रद्धा से बच गये। तुम्हें बड़ी गलत बातें सिखायी गयी हैं सदियों से। तुम्हें कहा गया है संदेह छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूं संदेह करो, जी भरकर करो, पूरा-पूरा करो। रत्ती भर भी मत छोड़ना क्योंकि जितना तुम छोड़ोगे उतना ही तुम्हें पीछे सताएगा। उससे पहले ही निपट लेना बेहतर है।

संदेह करो, घबड़ाना क्या है ! सत्य इतना विराट है, संदेह नष्ट थोड़े ही कर देगा सत्य को। सत्य है तो संदेह क्या बिगाड़ लेगा ? बाल बांका न करेगा सत्य का।

सत्य है तो तुम मारो कितना ही संदेह से सिर, आज नहीं कल आंखें खुलेंगी, सत्य की प्रतीति होगी। सत्य के होने में ही इतना बल है कि कौन संदेह उसे मिटा पाएगा ! इसलिए मैं कहता हूं खूब संदेह करो, जी भरकर संदेह करो, रस ले-लेकर संदेह करो। और सब संदेह तुम्हारे गिरेंगे; गिरना ही पड़ेगा क्योंकि सत्य है। और जब संदेह गिरते हैं--सत्य के अनुभव से, सत्य के साक्षात से--तो फिर कैसे उठ सकते हैं ? फिर उनके उठने का उपाय कहां रहा ? उनके तो प्राण निकल गये। वे तो अब लाशें हो गये ! अब वे मुर्दे कैसे जग सकते हैं ?

लेकिन तुमने अगर संदेह करने में कंजूसी की और अगर तुम पुरानी परंपराओं को मानकर चलते रहे--कि संदेह तो है मगर उसे दबा गये, ऊपर से विश्वास की ओढनी ओढ़ ली, भीतर तो संदेह है ऊपर राम-नाम की चदरिया ओढ़ ली--तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। तुम आज नहीं कल पाओगे कि राम-नाम की चदरिया काम नहीं आती। चदरिया चदरिया है। भीतर आत्मा नहीं है, संदेह ही संदेह इकट्ठे हो जाते हैं। तुम डरोगे, तुम भयभीत होओगे। तुम्हें सदा एक भय छाया की तरह पीछा करता रहेगा। क्योंकि तुम जानते हो भलीभांति कि कुछ संदेह हैं जिनके साथ तुम बेईमानी कर गये हो। और वे कभी भी उठ सकते हैं। कोई भी छोटी-सी घटना उन्हें उकसा सकती है--किसी की बात, जरा-सी बात। तुम मानते हो ईश्वर है; तुम खूब गहराई से श्रद्धा करते हो; ऐसा तुम सोचते हो कि ईश्वर है--लेकिन कोई जरा-सा संदेह उठा देगा, छोटा बच्चा भी, और तुम्हारा सारा भवन ढहढहा कर गिर जाएगा।

तुम कहते हो कि प्रत्येक चीज जो है उसको बनाने वाला चाहिए, इसलिए ईश्वर है। और अगर किसी बच्चे ने यह पूछ लिया कि ईश्वर को फिर किसने बनाया ? और तुम लड़खड़ा जाओगे। अगर तुम कहो कि ईश्वर को किसी ने नहीं बनाया--तो फिर संसार को ही बनाने वाले की क्या जरूरत है ? अगर ईश्वर बिन बना हो सकता है तो संसार भी बिन बना हो सकता है--तुमने बिन बने होने के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। और अगर तुम यह कहो कि ईश्वर को किसी और ईश्वर ने बनाया है, किसी महाईश्वर ने बनाया है, तो इसका कहां अंत होगा ? पूछा जा सकता है : फिर उस महाईश्वर को किसने बनाया ?

ये दो ही उपाय हैं--या तो कहो कि ईश्वर को किसी ने नहीं बनाया, तो तुम्हारी मौलिक धारणा ही खंडित हो गयी, जिसके आधार पर तुमने ईश्वर को माना था; और या फिर कहो कि ईश्वर को और किसी और ईश्वर ने, उसको फिर और किसी ईश्वर ने। तुम एक अंतहीन गड्ढे में गिर जाओगे। आखिर अंतिम ईश्वर को कौन बनाएगा ? प्रश्न वहीं के वहीं खड़ा है, कहीं भी नहीं गया। तुम सरकाते रहे, तुम छिपाते रहे, तुम चुराते रहे आंखें, तुम बचते रहे, भागते रहे; मगर जो भागेगा, डरेगा,

वह मुक्त नहीं हो सकता।

भय कभी मुक्ति नहीं लाता। सामना करो! संदेह है तो जरूर उसका कुछ उपयोग होगा। परमात्मा ने तुम्हें संदेह दिया है, वह तलवार की तरह है। उसका बड़ा उपयोग है। उससे प्रश्नों को काटो। उससे समस्याओं को काटो। उससे डरो मत।

परमात्मा व्यर्थ कुछ भी नहीं देता है। संदेह दिया है तो उसकी बड़ी सार्थकता है। संदेह दिया है ताकि तुम संदेह के मार्ग से चल-चलकर एक दिन श्रद्धा पर पहुंच जाओ। संदेह तभी तक कर सकते हो जब तक अनुभव नहीं। और संदेह तुम्हें उकसाएगा कि अनुभव करो। क्योंकि संदेह को अगर तुम ठीक से पकड़कर चलो तो एक अपूर्व घटना घटती है। उस अपूर्व घटना को समझ लेना।

संदेह को अगर कोई आत्मसात करे, इनकार न करे, प्रभु की अनुकम्पा माने; जरूर कोई छिपा हुआ राज-रहस्य होगा, ऐसा समझे—तो एक दिन तुम्हें संदेह पर भी संदेह उठेगा। और वह बड़ा अपूर्व क्षण है! और जिस दिन संदेह पर संदेह उठेगा उस दिन घड़ी आयी अनुभव की। उस दिन तुम कहोगे : कब तक शब्दों में भटकता रहूं? कब तक शब्दों के जाल में उलझा रहूं? अब अनुभव चाहिए। आग के संबंध में तो बहुत सोच लिया, सोचने से कुछ तय नहीं होता कि आग है या नहीं। दोनों तरफ तर्क दिये जा सकते हैं—बराबर, समतुल्य तर्क दिये जा सकते हैं।

तर्क तो वेश्या जैसा है। वह तो किसी के भी साथ हो जाता है। जो पैसा चुकाने को राजी हो, उसी के साथ हो जाता है।

यूनान में एक पुरानी कहानी है। यूनान में सोफिस्ट सम्प्रदाय हुआ। यह सोफिस्ट सम्प्रदाय शुद्ध तर्कवादियों का सम्प्रदाय था। इनकी श्रद्धा तर्क में थी। ये कहते थे कि तर्क सब कुछ है। और ये यह भी कहते थे कि सत्य जैसी कोई चीज नहीं है। सत्य तो तुम्हारी मान्यता है। अपनी मान्यता को सुदृढ़ करने के लिए तुम तर्क का जाल खड़ा कर लो। तर्क की बैसाखियां लगा दो तो सत्य खड़ा हो जाता है। हालांकि सत्य जैसी कोई चीज नहीं। सत्य है ही नहीं, सब तर्क ही तर्क है। इसलिए हर सत्य के लिए, जिसको तुम सत्य मानना चाहते हो, तर्क जुटाये जा सकते हैं।

एक बहुत बड़ा सोफिस्ट अपने शिष्यों को... उसे इतना भरोसा था अपने तर्क पर, आधी फीस लेता था शिक्षण देते समय और कहता था आधी तब लूंगा जब तुम अपना पहला विवाद जीतोगे। और स्वभावतः उसके सारे शिष्य विवाद जीतते थे। इसलिए आधी फीस पीछे लेता था। मगर एक महाकंजूस भरती हुआ उसके स्कूल में। उसने आधी फीस दी, तर्क सीखा, फिर किसी से विवाद किया ही नहीं।

महीने बीते, गुरु बेचैन। वर्ष बीतने लगे, गुरु ने कई बार पूछा कि भई, विवाद किसी से नहीं किया?

उसने कहा : मैं विवाद कभी करूंगा ही नहीं। वह आधी फीस की झंझट कौन

ले! तुम मुझसे आधी फीस न ले सकोगे आखिर मैं भी तुम्हारा ही शिष्य हूं।

लेकिन गुरु ऐसे तो नहीं छोड़ दे सकता था। गुरु ने अदालत में मुकदमा किया कि इसने मुझे आधी फीस नहीं चुकायी है। गुरु का हिसाब साफ था। गुरु का हिसाब यह था कि अब तो इसे अदालत में विवाद करना ही पड़ेगा मुझसे, अगर मैं विवाद जीता तो आधी फीस वहीं रखवा लूंगा क्योंकि अदालत कहेगी कि आधी फीस दो। और अगर मैं विवाद हारा तो अदालत के बाहर कहूंगा कि बच्चू कहां जा रहे हो, विवाद तुम जीत गये, आधी फीस! चित भी मेरी पट भी मेरी।

मगर शिष्य भी तो आखिर उसी का शिष्य था। उसने कहा : कोई फिक्र नहीं। अगर अदालत में हारा तो मुझे पता है कि वह बाहर आकर फीस मांगेगा कि तुम जीत गये। तो मैं अदालत मे निवेदन करूंगा कि मैं अदालत में जीता हूं इसलिए अब फीस कैसे चुका सकता हूं? क्योंकि यह तो अदालत का अपमान होगा। और अगर अदालत में मैं हार गया तब तो कोई सवाल ही नहीं। बाहर आकर कहूंगा अदालत में भी हार गया, पहला विवाद भी हार गया, अब कैसी फीस? जब गुरु को यह पता चला कि... तो उसने मुकदमा खींच लिया क्योंकि यह तो... यह तो सेर को सवा सेर मिल गया।

तर्क का कोई अपना पक्ष नहीं है। तर्क इस अर्थ में निष्पक्ष है। वही तर्क ईश्वर को सिद्ध करता है, वही तर्क ईश्वर को असिद्ध करता है। वही तर्क आत्मा को सिद्ध करता है, वही तर्क आत्मा को असिद्ध करता है। और संदेह तर्क में जीता है। लेकिन एक दिन अगर तुम संदेह में जीते ही रहे, जीते ही रहे, तो तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि तुम तर्क के रेगिस्तान में भटक गये हो, जहां एक भी मरूद्यान नहीं—न वृक्ष की छाया है कोई, न दूब की हरियाली है कोई, न पानी के झरने हैं, न पानी के झरनों का संगीत है—तुम एक सूखे मरुस्थल में भटक गये हो। तर्क बिलकुल सूखा मरुस्थल है। वहां घास भी नहीं उगती। तर्क में कोई चीज नहीं उगती। तर्क में तो उगी हुई चीजें हों तो भी मर जाती हैं। तर्क तो जहर है।

मगर यह अनुभव कैसे आएगा? यह तुम संदेह में चलोगे तो ही अनुभव आएगा। और एक दिन जब तुम संदेह में चलते-चलते संदेह से थक जाते हो, संदेह से ऊब जाते हो, संदेह की व्यर्थता देख लेते हो, संदेह की निस्सारता अनुभव कर लेते हो—तब तुम्हारे मन में एक नया प्रश्न उठता है कि मैं अनुभव करके देखूं। विचार करके बहुत देखा, कुछ पाया नहीं, हाथ कुछ लगा नहीं, खाली का खाली हूं, अनुभव करके देखूं, जीवन निकला जा रहा है।

यह अनुभव की आकांक्षा ही श्रद्धा के मंदिर की पहली सीढ़ी है। और जो अनुभव में उतरेगा, जो जानेगा आत्मा को, वह कैसे संदेह करेगा!? जो जानेगा परमात्मा को, वह कैसे संदेह करेगा!?

नहीं, श्रद्धा में संदेह नहीं उठ सकता, मगर श्रद्धा सच्ची होनी चाहिए, आंख-वाली होनी चाहिए। सब संदेहों को पार करके आयी हो। सब संदेहों से निखर कर आयी हो। सब संदेहों ने धार रखी हो, पैना किया हो, पकाया हो।

इसलिए मैं अपने संन्यासियों को कहता हूं कि संदेह से बचना मत, संदेह को दबाना मत, संदेह से भागना मत। संदेह श्रद्धा का सेवक है, शत्रु नहीं। हां, विश्वास का शत्रु है लेकिन श्रद्धा का सेवक है।

अगर तुम मुझसे पूछो तो विश्वास, श्रद्धा का शत्रु है; और संदेह, सेवक है। जिसने विश्वास कर लिया, वह कभी श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होगा। जो विश्वास से हिन्दू है, वह कभी धार्मिक नहीं होगा। और जो विश्वास से मुसलमान है, वह कभी धार्मिक नहीं होगा। उसने तो झंझट ही नहीं ली खोज की। उसने तो बड़ी सस्ती बातें मान लीं, उधार सत्य मान लिए।

दूसरों के सत्य तुम्हारे सत्य न हो सकते हैं, न कभी हुए हैं—न कभी होंगे। दूसरे का सत्य तुम्हारे लिए सदा असत्य ही रहेगा। सत्य तो अपना ही होता है, निज का ही होता है, स्वानुभव का होता है। और जब सत्य स्वानुभव का होता है, फिर कैसा संदेह?

संतोष, श्रद्धा में तो कोई संदेह नहीं उठ सकता। श्रद्धा तो सारे संदेहों को मारकर, सारे संदेहों को पार करके, सारे संदेहों को पीकर, आत्मसात करके आयी है, कुछ बचा ही नहीं है कि अब उठ सके। लेकिन संदेह में जरूर श्रद्धा उठती है। अगर तुम संदेह करोगे तो एक न एक दिन श्रद्धा तक पहुंच जाओगे। जल्दी श्रद्धा मत कर लेना। जल्दबाजी मत करना। सस्ती श्रद्धा मत कर लेना। क्योंकि पिता मानते हैं, तुम मत मान लेना। हालांकि पिता की बड़ी इच्छा होती है कि वे जो मानते हैं, तुम्हें मनवा दें क्योंकि उनके अहंकार की तृप्ति इसमें है। तुम्हारे शिक्षक जो मानते हैं, वह मत मान लेना क्योंकि उनके अहंकार की तृप्ति इसमें है। तुम्हारे पंडित-पुरोहित, तुम्हारे राजनेता जो मानते हैं, उसको मत मान लेना। उन सबकी तो इच्छा यही है कि जल्दी से मानो।

और इसका बड़ा दुष्परिणाम होता है क्योंकि तुम न मालूम कितने तरह के लोगों की बातें मान लेते हो! वे सभी मनवाने को उत्सुक हैं। उनकी किसी की भी इच्छा नहीं कि तुम संदेह करो। क्योंकि उनमें किसी की भी हिम्मत नहीं और सामर्थ्य नहीं कि तुम्हें सत्य तक ले जा सकें।

जो तुम्हें सत्य तक ले जा सकता है, वही तुम्हें संदेह के लिए स्वीकार करेगा; आमंत्रण देगा कि आओ, संदेह करो, प्रश्न उठाओ, जिज्ञासा करो, चलो हम खोजें, हम खोज पर निकलें। लेकिन जो खुद ही डरे हुए हैं, जिन्होंने खुद ही बासे और उधार उच्छिष्ट, दूसरों की टेबल से गिर गये रोटी के टुकड़े बीन लिए हैं, वे तुम से नहीं

कह सकते कि संदेह करो। वे तो खुद ही कंपे हैं संदेह से। वे तो खुद ही डरे हैं संदेह से। वे तो तुम्हारी छाती पर चढ़कर तुम्हारे ऊपर थोप देंगे विश्वास को।

और उनका थोपा हुआ विश्वास तुम्हारे लिए भयंकर सिद्ध होने वाला है। क्योंकि बहुत लोगों की चेष्टा है—मां थोप रही है अपने विश्वास, पिता थोप रहा है अपने विश्वास, भाई थोप रहा है अपने विश्वास, बहन थोप रही है अपने विश्वास और रिश्तेदार, नाते-रिश्तेदार सब अपने विश्वास थोप रहे हैं। तुम न मालूम कितने शिक्षकों से पढ़ोगे पहली कक्षा से लेकर यूनिवर्सिटी की अन्तिम कक्षा तक, वे सभी अपने विश्वास तुम पर थोपेंगे। फिर न मालूम कितने राजनेता हैं, न मालूम कितने अखबार हैं, न मालूम कितनी किताबें हैं—सब अपने विश्वास थोपने को उत्सुक हैं। यह सब कचरा तुम पर ऐसा लद जाएगा, विरोधाभासी कचरा, कि तुम करीब-करीब विक्षिप्त दशा में जियोगे। एक कुछ कहता है, दूसरा कुछ और कहता है। और दोनों एक बात पर राजी हैं कि मानो हमारी; हम जो कहते हैं ठीक कहते हैं। हम तुम्हारे हित में कहते हैं। संदेह करना मत; संदेह किया कि भटक जाओगे।

इस तरह तुम्हारे भीतर विरोधाभासी विश्वास इकट्ठे हो जाते हैं—जो तुम्हारे जीवन को सोख लेते हैं, तुम्हारे रक्त को पी जाते हैं। और तुम्हारे भीतर इतने विरोधी स्वर इकट्ठे हो जाते हैं कि तुम्हें समझ में ही नहीं आता कि कौन स्वर आत्मा का है, कौन स्वर परमात्मा का है! और ऐसी-ऐसी बातें कही जाती हैं कि अगर तुम जरा ही सोचोगे तो बड़े हैरान हो जाओगे। लोगों से कहा जाता है: ईमानदार बनो। और एक साथ कहा जाता है लोगों से कि ईमानदार बनो और ईश्वर पर भरोसा रखो। अब जरा सोचते हो इस विरोधाभास को—ईमानदार बनो और ईश्वर पर भरोसा रखो! अगर तुम ईमानदार हो तो भरोसा नहीं रख सकते क्योंकि भरोसे में तो बेईमानी है। अनुभव होगा तब भरोसा होगा, उसके पहले कैसे भरोसा!? अगर आदमी ईमानदार है तो नास्तिक होगा। नास्तिक ही हो सकता है। क्योंकि वह कहेगा: मैं ईश्वर को जानता नहीं, कैसे मानूं? और अगर ईश्वर को मानेगा तो ईमानदार नहीं हो सकता। और मजा देखते हो, ईमान शब्द का अर्थ ही धर्म हो गया है। मुसलमान धर्म को ईमान कहते हैं। धर्म का अर्थ विश्वास का पर्यायवाची हो गया।

ईमानदार आदमी विश्वास नहीं कर सकता, बेईमान ही विश्वास कर सकता है। ईमानदार आदमी तो प्रश्न उठाएगा, हजार प्रश्न उठाएगा, कठिन प्रश्न उठाएगा; जिनके जवाब न दिये जा सकें ऐसे प्रश्न उठाएगा; जिनको कोई शास्त्र हल न कर सकें ऐसे प्रश्न उठाएगा। निश्चित ही ऐसा व्यक्ति कहीं भी पसंद नहीं किया जाएगा—न मां-बाप पसंद करेंगे, न गुरु पसंद करेंगे, न नेता पसंद करेंगे, न पंडित-पुरोहित-मौलवी पसंद करेंगे, कोई पसंद नहीं करेगा ऐसे आदमी को। प्रश्न उठाने-

वाले आदमी को कौन पसंद करता है ! क्योंकि वह तुम्हारे अज्ञान को प्रगट करवा देता है । उसका प्रश्न तुम्हारे अज्ञान को बाहर ले आता है । तुम्हारे ऊपर-ऊपर तुमने जो ज्ञान थोप रखा है, वह उसको खरोंच देता है, और भीतर के अज्ञान को बाहर निकाल लेता है । वह तुम्हारी छाती पर चढ़ कर पूछता है : सच में तुमने ईश्वर को जाना है ? सच में जाना है ? वह तुम्हें घबड़ा देता है । वह तुम्हें डरा देता है । तुम एकदम से कह भी नहीं सकते कि हां । तुम्हारी हां में भी भय होता है । जाना तो नहीं है. तुमने तो सिर्फ माना है ।

प्रश्न उठाने वाले लोगों को, संदेह करने वाले लोगों को कोई अच्छा नहीं अनुभव करता । उनसे लोग नाराज होते हैं । लोग तो चाहते हैं विश्वास करो; हम जो कहें उसे मानो । क्योंकि हमारी अगर मानते हो तो हमारे ज्ञान को बल मिलता है । और जब हम देखेंगे कि बहुत लोग हमारी बात मानते हैं तो हमें लगेगा कि हम जरूर ठीक ही कह रहे होंगे, यह तभी तो इतने लोग मानते हैं, नहीं तो कैसे इतने लोग मान सकते थे ! यह बड़ा जाल है, बड़ा षडयंत्र है । व्यक्ति को अपने अहंकार पर भरोसा दिलाने के लिए बहुत-से लोगों को झूठ में उतारना पड़ता है, असत्य में उतारना पड़ता है।

मेरी प्रक्रिया बिलकुल और है, बिलकुल भिन्न है । मैं मानता हूं, संदेह व्यक्ति के जन्म के साथ पैदा होता है, इसलिए संदेह ईश्वर का प्रसाद है, उसकी भेंट है। और संदेह का ठीक-ठीक उपयोग करोगे तो एक दिन अद्भुत श्रद्धा का जन्म होगा । फिर कोई संदेह न कभी उठेगा, न उठ सकता है। और ऐसी श्रद्धा ही मुक्तिदायी है जिसमें संदेह असंभव है ।

दूसरा प्रश्न : भगवान ! उस दिन आपको गोली मारने की बात सुनते ही मैं रोती रही। ऐसे तो मैं कभी जिंदगी में किसी की मौत पर भी नहीं रोयी ! अब तो सिर्फ आपकी मौत की बात सुनते ही कांप उठती हूं । क्यों ? कृपया समझाइए ।

* सुमन भारती ! संन्यास में जो दीक्षित हुए हैं उन्होंने अपनी आत्मा मुझसे जोड़ दी; उन्होंने अपने को मुझमें लीन कर लिया, मुझको अपने में लीन कर लिया। संन्यास का यही तो अर्थ है, हमने द्वंद्व छोड़ा, द्वैत छोड़ा, दुई मिटायी, दो से हम एक हुए । शिष्य और गुरु . . . गुरु-परताप साध की संगति . . . एक हो जाते हैं। जितनी यह एकता सघन होती जाती है, उतना ही सत्य प्रगट होता जाता है ।

और अभी सत्य को प्रगट होना है । अभी सत्य के बहुत सोपान चढ़ने हैं । इसलिए मेरे न होने की बात पीड़ा देगी । स्वभावतः पीड़ा देगी । अभी जो होना है नहीं हुआ है और कोई सीढ़ी छीन ले ! और सीढ़ी पर हम चढ़े थे और आधे ही चढ़े थे ! हम नाव में बैठे ही थे कि कोई नाव छीन ले! हम द्वार में प्रविष्ट होने को ही थे, हिम्मत, साहस बांधा था कि कोई दरवाजा बंद कर दे—तो धक्का लगेगा, तो पीड़ा होगी।

तो तू ठीक कहती है कि मैं किसी की मृत्यु पर भी कभी नहीं रोयी । किसी की मृत्यु पर कौन रोता है ? जब भी लोग रोते हैं तो दूसरे की मृत्यु पर नहीं रोते, दूसरे की मृत्यु को देखकर अपनी मृत्यु की याद आती है, उस पर रोते हैं। कौन किसकी मृत्यु पर रोता है ? न तुम दूसरों की खुशियों से खुश होते, न दूसरों के दुखों से दुखी होते । हां, दिखाते हो—औपचारिक, शिष्टाचारवश दो आंसू भी बहाते हो, मुस्कुराते भी हो । कोई मर जाता है तो रो भी लेते हो । रोना पड़ता है । न रोओ तो लोग कहेंगे बड़े कठोर हो, पत्थर हो, पाषाण हो । नहीं चाहते कि कोई पाषाण तुम्हें कहे, तो रो लेते हो ।

एक घर में मैं मेहमान था । उस घर में मृत्यु हो गयी । घर की जो महिला थी—सर्दियों के दिन थे, मैं बाहर बैठा था—उसने मुझे आकर कहा कि आप बाहर बैठे हैं; लोग आएंगे बैठने, तीन दिन पूरे हो गये अब लोग आएंगे बैठने, मैं भीतर रहूंगी, आप यह घंटी बजा देना !

मैंने कहा : घंटी बजाने से क्या प्रयोजन ?

उसने कहा : बस, घंटी बजाते ही मैं दहाड़ मार कर रोऊंगी । रोना बिलकुल जरूरी है, नहीं तो लोग क्या कहेंगे कि घर में मौत हो गयी. . .।

मैंने यह चमत्कार देखा कि वह मजे से काम करती रहती, सब ठीक-ठाक चलता रहता और जैसे कोई आया और मैंने घंटी बजायी. . .। पहली बार तो कोई आया ही नहीं था, मैंने घंटी बजायी और खुद ही भीतर पहुंचा । उसने तो घूंघट मार लिया और दहाड़ मारकर रोने लगी । मैंने कहा : रुक, मैं तो सिर्फ परीक्षा के लिए...। उसने घूंघट में से देखा और हंसने लगी । कहा : आपने भी हद कर दी !

एक शिष्टाचार है । कौन किसके लिए रोता है ? जब पत्नी पति के लिए रोती है तो पति के लिए थोड़े ही रो रही है । उसके भीतर पति ने कुछ जगह बना ली थी जो खाली हो गयी—वह खाली जगह काटती है, वह जब तक भर न जाएगी तब तक रोयेगी । वह उस खाली जगह के लिए रो रही है । पति के साथ वर्षों रही, इन वर्षों में पति ने एक स्थान उसके घर के भीतर ही बना लिया था—उसके भीतर, आत्मा में । एक जगह सुरक्षित हो गयी थी पति के लिए, पति के हटते ही वह जगह खाली हो गयी । वह खाली घाव रिसता है, दुखता है ।

उपनिषद् कहते हैं : पति पत्नी के लिए नहीं रोते, पत्नियां पतियों के लिए नहीं रोतीं । पति पत्नी को प्रेम नहीं करते, पत्नियां पतियों को प्रेम नहीं करतीं । यहां सभी अपने प्रेम में पड़े हैं । यहां सब अपने अहंकार की पूजा में लगे हैं। तुम पत्नी को थोड़े ही प्रेम करते हो ! जरा गौर से देखो तो वाया पत्नी अपने को ही प्रेम करते हो—वाया । सीधे-सीधे कैसे करो, बीच में कुछ चाहिए । जैसे दर्पण से अपने को ही देखते हो, बिना दर्पण के अपनी तसवीर कैसे देखोगे ? कोई दर्पण के सामने

खड़ा है तो तुम यह थोड़े ही कहते हो कि दर्पण को देख रहा है। दर्पण को कौन देखता है ? दर्पण के द्वारा, वाया अपने को देखता है। ऐसे ही पत्नी जब तुम्हें देख-कर एकदम प्रफुल्लित हो जाती है तो तुमने दर्पण में अपनी छवि देखी। पत्नी भागी-भागी आती है, पैर धोती है, जूते उतारती है--अहा ! तुमने दर्पण में अपनी छवि देखी।

मुल्ला नसरुद्दीन कह रहा था अपने मनोवैज्ञानिक को कि हालतें बिलकुल बदल गयी हैं और जिंदगी बरबाद हुई जा रही है। पहले जब मैंने शादी की थी, तीन साल ही हुए, जब मैं घर आता था सांझ को तो पत्नी दौड़कर मेरी जूतियां उतारती थी और पत्नी का कुत्ता भौंकता था। तीन साल हो गये, अब हालत बिलकुल बदल गयी। अब पत्नी भौंकती है और कुत्ता मेरा जूता खींचता है।

लेकिन मनोवैज्ञानिक ने कहा : मैं नहीं समझता, सेवाएं तो वही की वही मिल रही हैं, हर्ज क्या है ? पहले पत्नी जूता उतारती थी, कुत्ता भौंकता था; अब कुत्ता जूता खींचता है, पत्नी भौंकती है। तुम्हें फर्क क्या पड़ रहा है ? तुम्हें सेवाएं वही की वही मिल रही हैं।

पत्नी में तुम अपनी तसवीर देखते हो। पति घर आया, गहने ले आया, फूल ले आया, आइसक्रीम ले आया, मिठाइयां ले आया--पत्नी को अपनी तसवीर दिखाई पड़ती है--अहा ! तो अभी भी मुझे प्रेम करते हैं, तो अभी भी मुझे चाहते हैं। हालांकि जो बहुत होशियार पत्नियां हैं, उनको इससे संदेह हो जाता है कि रोज तो आइसक्रीम लाते नहीं हैं, आज आइसक्रीम लाये हैं, जरूर कुछ गड़बड़ है, दाल में कुछ काला है। जरूर दफ्तर में किसी स्त्री से जरा प्रेमपूर्ण वार्ता की होगी, अपराध-भाव अनुभव हो रहा है तो आइसक्रीम ले आये हैं। ऐसे तो रोज साड़ी खरीदकर नहीं लाते, आज साड़ी खरीद लाये हैं, जरूर कहीं दाल में काला है। जो बहुत कुशल पत्नियां हैं, पहुंची हुई पत्नियां हैं, सिद्ध पत्नियां हैं, वे ऐसे आसानी से नहीं छोड़ेंगी उनको कुछ और दिखाई पड़ता है। वे दर्पण में बहुत गहरे देखती हैं। वे दर्पण के अंतसतल तक देखती हैं, उसके अचेतन तक देखती हैं।

मगर ध्यान रखना, तुम चाहे खुश होओ, चाहे नाराज, दूसरे का उपयोग तुम दर्पण की तरह करते हो। सब संबंध दर्पण हैं। न तो कोई किसी को प्रेम करता है, न कोई किसी को. . .किसी भी अर्थों में किसी से किसी का कोई संबंध नहीं है। हम सब घूम-फिरकर अपने पर लौट आते हैं। . . .इसलिए कौन रोता है किसके लिए सुमन !

लेकिन मेरी मौत की बात सुनकर तुझे लगता है कि तू कांप उठती है। उसका कारण साफ है। मेरे साथ एक यात्रा पर निकली है। यात्रा--जो अभी अधूरी है। यात्रा--जो मेरे साथ भी पूरी होनी बहुत कठिन है, क्योंकि हजार-हजार बाधाएं हैं--

तेरी ही तरफ से बाधाएं हैं। मगर अभी भरोसा है कि मैं हूं तो कल पर टाला जा सकता है। लेकिन यह सुनकर कि कोई मुझे गोली मार दे, तेरा हृदय धक से हो जाएगा, तुझे गोली अभी लग जाएगी। तो फिर तेरा क्या होगा ! अभी तो कुछ यात्रा हुई न थी।

बुद्ध जब मरने लगे और आनंद जब रोने लगा तो तुम जरा उन दोनों की वार्ता पर ध्यान देना। चालीस साल बुद्ध के साथ रहा, बुद्ध के मरने पर रोने लगा --अभी मरे नहीं हैं, बुद्ध ने कहा कि बस अब मैं छोड़ता हूं यह देह। किसी को कुछ पूछना हो तो पूछ ले। तो आनंद तो एकदम रोने लगा। कभी रोया न था, क्षत्रिय था, राजपुत्र था, बुद्ध का चचेरा भाई था। बुद्ध ने कभी उसकी आंख में आंसू न देखे थे। न मालूम कितने भिक्षु मरे, न मालूम कितने भिक्षुओं को दफनाया गया, वह कभी रोया नहीं था। आज अचानक रोने लगा। बुद्ध ने कहा : आनंद तेरी आंखों में आंसू और तू रोता है, क्यों ?

तो उसने कहा : अब तक तो भरोसा था कि आप हैं तो त्राण हो जाएगा। आप हैं तो कोई न कोई उपाय हो जाएगा। अब तक तो यह भरोसा था कि दीया जल रहा है, अगर मेरी आंखें नहीं खुली हैं तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों, एक न एक दिन खुलेंगी और मैं भी रोशनी से भर जाऊंगा। अब आप चले, मेरा क्या होगा ?

जरा खयाल करना, आनंद भी बुद्ध के मरने पर नहीं रो रहा है--आप चले, मेरा क्या होगा ? आनंद भी अपने लिए रो रहा है। उपनिषद् ठीक कहते हैं। साधारण पति-पत्नियों की तो बात छोड़ दो, चालीस वर्ष तक बुद्ध के सत्संग में रहने के बाद भी, निकटतम शिष्य होकर भी, आनंद यह कहता है कि मेरा क्या होगा, आप तो चले। इसमें शिकायत कहीं ज्यादा है। इसमें यह है कि आप तो धोखा दे चले। कि आप तो अपने वचन छोड़ चले। कि आपके आश्वासनों का क्या हुआ ? कि आपने इतने प्रलोभन दिए थे, उन सबका क्या हुआ ? वायदों का क्या हुआ ? आपके वायदों पर तो जीये अब तक और अब आप चले, मेरा क्या होगा ? अगर गौर से देखो तो आनंद अपने लिए रो रहा है।

मगर मैं इसमें कुछ निंदा नहीं कर रहा हूं, यह स्वाभाविक है। न रोये आनंद तो क्या करे ! चालीस साल इस आदमी के चरणों में समर्पित कर दिये ! और अभी सीढ़ी का अंत नहीं आया और सीढ़ी गिरने लगी, और सीढ़ी डगमगाने लगी। अभी नाव उस किनारे नहीं लगी और मझधार में डूबने लगी। स्वाभाविक है।

सुमन, तुझे भी जो धक्का लगा, वह स्वाभाविक है। उस धक्के के लिए बैठ-कर बहुत सोच-विचार न करो, उस धक्के का उपयोग कर लो। यह तो किसी ने प्रश्न ही पूछा था। यह कोई गोली मार देने वाला व्यक्ति नहीं है जिसने प्रश्न पूछा।

गोली मार देने वाले व्यक्ति कहीं प्रश्न पूछते हैं ? पागल हुए हो। प्रश्न पूछकर झंझट खड़ी करेंगे ? प्रश्न पूछकर कोई गोली मारता है ? प्रश्न पूछकर गोली मारेगा तो कल जेलखाने में होगा। फिर पूछने वाले ने तो यही कहा था कि मेरे मन में आपके प्रति बड़ा प्रेम है और साथ ही साथ कभी-कभी घृणा उठती है । आपके प्रति बहुत लगाव है लेकिन कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है, इतनी घृणा उठती है कि लगता है गोली मार दूं। यह तो सिर्फ प्रश्न ही उसने पूछा है, सिर्फ लगता है। यह कोई गोली मारने वाला नहीं है, अपना संन्यासी है। यह गोली मार नहीं सकता, यह पत्थर नहीं मार सकता, गोली की तो बात दूर। यह फूल नहीं मार सकता, गोली की तो बात दूर। यह तो इसने अपने भाव निवेदन किये हैं। यह तो स्पष्टता से, साफ-साफ अपनी बात कही है—कि प्रेम इतना फिर भी ऐसा क्यों होता है ?

प्रेम इतना है इसीलिए ऐसा होता है। क्योंकि हमारा जो प्रेम है वह घृणा से मुक्त नहीं होता है। वह घृणा का ही दूसरा पहलू है। हमारा प्रेम जितना सघन होता है, उतनी ही हमारी घृणा भी सघन होती है ! दोनों में संतुलन रहता है। एक और प्रेम है—बुद्धों का प्रेम, पर वह तो बुद्धत्व के बाद होता है, उस प्रेम में घृणा का कोई नाममात्र भी नहीं होता। उस प्रेम में सिर्फ प्रेम होता है। ऐसा समझो कि तुम गीली लकड़ियां जलाओ तो उसमें से धुआं उठता है। अगर लकड़ियां बहुत गीली हों तो धुआं ही धुआं उठता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन बहुत नाराज हो गया। किसी बात पर पत्नी से झंझट हो गयी थी। गुस्से में एकदम बोला कि इस घर को आग लगा दूंगा। उसका छोटा बेटा जो कोने में बैठा था, वह हंसने लगा। मुल्ला को और क्रोध आया। उसने कहा : तू क्यों हंस रहा है ? उल्लू के पट्ठे, तू क्यों हंस रहा है ?

तो उसने कहा : मैं इसलिए हंस रहा हूं कि आपसे चूल्हा तो चलता नहीं, घर में आग लगाने चले ! असल में चूल्हा नहीं जलता उसी के झगड़े से तो आप घर में आग लगाने की बात कर रहे हैं। चूल्हा जलाने को पत्नी ने कहा था, वह नहीं जला, उसी पर झगड़ा बढ़ा। अब आप कह रहे हैं : घर में आग लगा दूंगा ! देखें! इसलिए मुझे हंसी आ गयी।

अगर लकड़ी बहुत गीली हो तो आग तो पैदा होगी ही नहीं, धुआं ही धुआं पैदा होगा। लकड़ी जितनी सूखी हो उतना कम धुआं पैदा होता है। और लकड़ी अगर बिलकुल सूखी हो तो धुआं पैदा ही नहीं होता, निर्धूम अग्नि जलती है । इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ लकड़ी से धुआं पैदा नहीं होता, लकड़ी में जो पानी पड़ा है, उससे धुआं पैदा होता है। धुआं पानी से पैदा होता है, लकड़ी से पैदा नहीं होता। भूलकर भी मत सोचना कि लकड़ी से धुआं पैदा होता है। आग से धुआं पैदा नहीं होता, धुआं पैदा होता है गीलेपन से, आर्द्रता से।

मनुष्य का जो प्रेम है वह गीली लकड़ी जैसा है। उसमें प्रेम भी है और उसमें घृणा भी है। और इसलिए बहुत धुआं पैदा होता है। आग तो जलती कहां—धुआं ही धुआं होता है। प्रेम के नाम से भी आग कहां जलती है ? आग ही जल जाए तो तुम कुंदन हो जाओ। धुआं ही धुआं पैदा होना है, आंखें खराब हो जाती हैं।

जरा प्रेमियों को तो देखो : लड़ते-झगड़ते ज्यादा हैं, प्रेम वगैरह कहां ! धीरे-धीरे उसी लड़ने-झगड़ने को प्रेम समझने लगते हैं। फिर किसी दिन वह लड़ना-झगड़ना न हो तो खाली-खालीपन लगता है, तलब पैदा होती है। पत्नी मायके चली जाए तो एक-दो दिन अच्छा लगता है, फिर तलब पैदा होती है । तलब किस बात की ? तलब इस बात की कि न कोई झगड़ा न कोई झांसा । घर में बैठे हैं बुद्धू की तरह। अब उसी अखबार को कितनी बार पढ़ो ! पत्नी होती तो कोई रंग निकलता। बात में से बात उठती। थोड़ा घर में शोरगुल रहता। थोड़ी आवाज होती। थोड़े बर्तन बजते। थोड़ी प्यालियां गिरतीं और टूटतीं। कुछ होता मालूम होता। जिंदगी में कुछ चहल-पहल होती । पत्नी चली गयी मायके...!

ऐसे सोचते बहुत थे कि कभी मायके चली जाए तो अच्छा, थोड़ी शांति हो। मगर दिन, दो दिन में सब शांति अखरने लगती है, खलने लगती है । चिट्ठियां लिखने लगते हैं, प्रेम-पातियां लिखने लगते हैं । और पत्नी भी भरोसा कर लेती है इन प्रेम-पातियों पर ! और ये उन्हीं सज्जन की प्रेम-पातियां हैं जिनको दो दिन पहले छोड़कर आयी है। जिनके साथ रहना एक मिनट मुश्किल होता है। जिनके साथ घड़ी-घड़ी कलह है। वे भी जब प्रेम-पातियां लिखने हैं तो...चिट्ठियां तो लोग गजब की लिखते हैं। चिट्ठियां ही लिखनी हैं तो उसमें फिर क्या कंजूसी करनी ! दिल खोलकर कविताएं उड़ेल देते हैं। जो कवि नहीं हैं वे भी चिट्ठियां लिखते वक्त एकदम कवि हो जाते हैं।

और बड़ा मजा है कि जिनका अनुभव तुम्हारे बाबत बिलकुल विपरीत है वे भी भरोसा करते हैं। पति कहता है कि तेरे बिना मन नहीं लगता और पत्नी एकदम मान लेती है—अहा ! मेरे बिना मन नहीं लगता. मैंने पहले ही कहा था, लाख समझाया था कि जाऊंगी तब तड़फोगे, रोओगे । इसलिए तो पत्नियां अक्सर धमकी देती हैं कि मैं मर ही जाऊंगी । उनकी धमकी का मतलब है कि फिर पछताओगे । फिर रोओगे। फिर सिर धुनोगे। फिर याद करोगे । और वे ठीक ही कह रही हैं । पति भी यही सोचते हैं कि अगर मर जाऊं तो इसको पता चलेगा। जब तक हूं तब तक जान खा रही है। जिस दिन मर जाऊंगा, उस दिन याद करेगी। उस दिन कब्र पर फूल चढ़ाएगी, दीये जलाएगी । उस दिन जार-जार रोएगी।

लेकिन न कोई मरता—न पत्नी मरती, न पति मरते। पत्नियां भी मरने का उपाय करती हैं तो दवा की गोलियां, नींद की गोलियां खा लेती हैं, मगर हमेशा

इतनी, जितने में बच जाएं। दस महिलाएं दवा की गोलियां खाती हैं, एक मुश्किल से मरती है दस में से। पति भी मरने के बहुत उपाय करते हैं मगर मरते-करते नहीं। घर से निकल जाते हैं कि चला छोड़कर। ऐसा चक्कर लगाकर मोहल्ले का, थोड़ी गपशप करके घर वापिस आ जाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन ऐसे ही चला गया घर छोड़कर। बस अब चला। उसने कहा : हो गया सब खत्म। चला जाऊंगा, लेट जाऊंगा ट्रेन के आगे और मर जाऊंगा।

पत्नी ने कहा : जाओ भी।

मैं घर बैठा था। मैंने कहा कि ऐसा मत भेजो।

उसने कहा : तुम ठहरो तो, तुम जरा देखो तो। जाने भी दो। जाओ!

मुल्ला थोड़ी देर में वापिस आ गया।

मैंने पूछा : क्यों?

उसने कहा कि पानी गिरने लगा और बिना छतरी लिए ही चला गया।

अब जिसको मरने जाना है वह कोई छतरी की फिक्र करता है!

एक दिन तो मैंने सुना है कि वह बिलकुल पहुंच ही गया रेल पर। दो पटरियां थीं रेल की, दोनों को गौर से देखा, फिर एक पर लेट रहा।

एक चरवाहा जो पास में ही खड़ा अपनी भेड़ें, गाय इत्यादि चरा रहा था, उसने भी देखा उसे लेटते हुए। वह भी बड़ा हैरान हुआ कि दोनों को उसने जांचकर देखा कि किस पटरी पर लेटना है। फिर उसने पूछा कि मेरे मन में एक जिज्ञासा उठती है, अब आप तो जा ही रहे हैं दुनिया से, यह मेरे मन में सवाल उठता है कि आपने बड़ी जांच-पड़ताल की कि किस पटरी पर लेटना है।

उसने कहा कि जांच-पड़ताल न करूं तो क्या बिना जांच-पड़ताल किये ही लेट जाऊं? यह पटरी जंग खायी हुई है, इस पर ट्रेन आती ही नहीं। जंग के हिसाब से लेटा हूं। वह दूसरी पटरी चमक रही है बिलकुल, साफ मामला, फैसला हो जाएगा।

और उस आदमी ने पूछा, जब आप जवाब देने को राजी हैं तो एक सवाल और कि यह टिफिन किसलिए ले आये हैं?

उसने कहा कि और कहीं ट्रेन लेट हो जाए तो, तो भूखे ही मर जाएं? टिफिन लेकर मरने आये हैं?

न कोई मरता... लेकिन धमकियां चलती हैं। धमकियां ये इसलिए दी जाती है कि देखें दूसरे पर क्या असर होता है! पति-पत्नी कलह ही कर रहे हैं—चौबीस घंटे कलह। इसी कलह में कभी-कभी, बीच-बीच प्रेम के भी क्षण होते हैं, बस पानी के बबूलों की तरह फूट-फूट जाते हैं। तुम जिस प्रेम को जानते हो, वह यही प्रेम है।

तुम मुझसे भी प्रेम करोगे तो स्वभावत: यही प्रेम होगा पहले तो और तुम

दूसरा प्रेम लाओगे कहां से! तो तुम्हारे प्रेम में सम्मान भी होगा और गहरा छिपा हुआ कहीं विरोध भी होगा। तुम्हारे प्रेम में प्रेम भी होगा और घृणा भी होगी। तुम एक तरफ से मित्र भी रहोगे, एक तरफ से शत्रु भी।

मगर यह कोई हैरानी की बात नहीं है, यह स्वाभाविक है। रमते रहे, जमते रहे, उठते रहे, बैठते रहे तो धीरे-धीरे निखार लेंगे। पानी को उड़ा देंगे, लकड़ियों को सुखा लेंगे। सत्संग का काम ही इतना है : लकड़ियों को सुखा देना। गुरु-परताप साध की संगति! बैठते-बैठते लकड़ियां सूख जाएंगी। ऐसा सूखा काष्ठ हो जाएगा कि फिर आग उठेगी तो धुआं नहीं होगा। निर्धूम अग्नि प्रेम का शुद्धतम रूप है।

सुमन, जिसने पूछा था प्रश्न कि कभी ऐसी घृणा उठ आती है, उसने कुछ अपनी ही बात नहीं कही, तुम सबकी बात कही। तुम्हारे मन में भी उठ आती है। मैं ऐसे संन्यासियों को जानता हूं जो स्वभावत: बड़ी अपेक्षाएं रखते हैं; फिर कभी अपेक्षा पूरी नहीं हुई, क्रोध में आ जाते हैं। माला निकालकर फेंक दी, फिर उठाकर सिर से लगा लेते हैं, फिर जल्दी से पहन लेते हैं। मैं ऐसे संन्यासियों को जानता हूं, तसवीर निकालकर घर के बाहर फेंक दी, फिर दस-पांच मिनट बाद पहुंचे जल्दी से घुटने टेककर नमस्कार किया, माफी मांगी, फिर तसवीर लाकर वापिस टांग दी। अब चूंकि अपराध-भाव भी पैदा हुआ तो दीया भी जलाया और फूल भी चढ़ा दिये। मुझे खुद संन्यासी आकर कह जाते हैं कि यह सब होता है। ऐसा कभी हो तो नाराज न होना। मैंने कहा : मैं फिक्र ही नहीं करता तुम चाहे फूल चढ़ाओ तो और तुम चाहे फेंको तो। तसवीर तुम्हारी है और तुम्हारे मन का दर्पण है, मेरा उससे क्या लेना-देना!

लेकिन ये स्वाभाविक चित्त की दशाएं हैं क्योंकि चित्त हमेशा द्वंद्वात्मक है। चित्त में हमेशा द्वंद्व है। चित्त में हमेशा विपरीतता बनी रहती है। इस चित्त के पार जब उठोगे तो विपरीतता चली जाएगी। जब चित्त शून्य होओगे, जब ध्यानपूर्ण होओगे, तब तुम्हारे पास प्रेम होगा—जिसमें घृणा नहीं होगी, श्रद्धा होगी; जिसमें संदेह नहीं होगा, आनंद होगा; जिसमें दुख की छाया भी नहीं पड़ती। वह दिन भी आएगा। लेकिन आज ही आ जाए इतनी तुम्हारी सामर्थ्य नहीं, इतनी तुम्हारी तीव्रता नहीं, इतनी तुम्हारी प्रज्वलित अभीप्सा नहीं।

नहीं, दुख न करना। जिसने कहा कि कभी-कभी गोली मार देने का मन होता है, वे कोई गोली मारने वाले नहीं हैं। गोली शायद उनके पास होगी भी नहीं। कोई बंदूक हाथ में दे दे तो शायद समझ में भी नहीं आएगा कि कैसे चलाएं। यह तो सिर्फ भाव की बात कही है उन्होंने।

और यह नाराजगी इसलिए हो जाती है कि अपेक्षाएं बहुत कर लेते हैं। कोई यहां आ जाता है, सोचता है बस आत्मज्ञान लेकर जाना है। फिर आठ-दस दिन ध्यान किया और आत्मज्ञान नहीं हुआ, तो नाराज न हो तो क्या करे! क्रोध से

भर जाता है क्योंकि वह यह सोचकर आया था जैसे कोई दूसरा आत्मज्ञान उसको देगा। जैसे मैं उसे आत्मज्ञान दूंगा। मुझे लोग पत्र लिखते हैं कि हम आपके द्वार से खाली जा रहे हैं। जैसे कि... भिखारियों की तरह सोचते हैं, जैसे कि उनका भिक्षा-पात्र मैं भर दूं। उन्हें अपने पर बिलकुल भरोसा ही नहीं रहा है। कि तुम भिखारी नहीं हो, तुम्हारा भिक्षापात्र भरना नहीं है; तुम भरे ही हुए हो, इसकी प्रत्यभिज्ञा भर करानी है, इसकी पहचान भर करानी है। तुम मालिक हो, स्वामी हो, सम्राट हो, अनंत धन के धनी हो––सिर्फ याद दिलानी है। मुझे कुछ तुम्हें देना नहीं है। देने को कुछ है नहीं, लेने को कुछ है नहीं। तुम्हें जो मिलना चाहिए वह मिला ही हुआ है, सिर्फ याद दिलानी है।

मगर याद तो न करेंगे; यहां इस आशा में बैठे रहेंगे कि आशीर्वाद कोई दे दे और मिल जाए सब, भर जाए झोली और चले घर! ऐसा नहीं होगा तो नाराजगी पैदा होती है। तो क्रोध पैदा होता है।

जितनी ज्यादा अपेक्षा होगी, उतनी ज्यादा निराशा होगी, उतना ज्यादा क्रोध होगा, उतनी घृणा पैदा होगी। अपेक्षा न करो। मेरे पास निरपेक्ष-भाव से बैठो। निरपेक्ष-भाव से बैठने वाला ही संगति करता है, सत्संग करता है। न कुछ चाहिए है, न कुछ चाहने का सवाल है। जो है काफी है, पर्याप्त है। जितना है, उतना जरूरत से ज्यादा है। जो है उसके लिए परमात्मा को धन्यवाद देना है। जो मिला है उसके लिए अनुग्रह से झुकना है। फिर घृणा पैदा नहीं होगी, फिर विरोध पैदा नहीं होगा।

लेकिन तेरी बात मैं समझा, तू कहती है कि उस दिन आपको गोली मारने की बात सुनते ही मैं रोती रही। ऐसे तो मैं कभी जिंदगी में किसी की मौत पर नहीं रोयी! अब तो सिर्फ आपकी मौत की बात सुनते ही कांप उठती हूं। क्यों? कृपया समझाइए।

पहली बार तुझे प्रेम हुआ। पहली बार किसी ने तेरे हृदय पर फूल उगाये। पहली बार किसी ने तेरे हृदय के तारों को छुआ है, छेड़ा है। पहली बार किसी का जीवन तेरे लिए मूल्यवान हुआ है। पहली बार किसी के जीवन से तेरे जीवन का नाता हुआ है। पहली बार किसी के साथ अपनत्व, एकात्मता, आत्मीयता, निकटता की प्रतीति हुई है, इसलिए।

मैं पलकों में पाल रही हूं,
यह सपना सुकुमार किसी का!

जाने क्यों कहता है कोई
मैं तम की उलझन में खोई,
धूममयी वीथी-वीथी में,

लुक-छिपकर विद्युत्-सी रोई;
म कण-कण में ढाल रही अलि,
आंसू के मिस प्यार किसी का!
मैं पलकों में पाल रही हूं,
यह सपना सुकुमार किसी का!

रज में शूलों का मृदु चुम्बन,
नभ में मेघों का आमंत्रण,
आज प्रलय का सिन्धु कर रहा,
मेरी कम्पन का अभिनन्दन;
लाया झंझा-दूत सुरभिमय,
सांसों का उपहार किसी का!
मैं पलकों में पाल रही हूं,
यह सपना सुकुमार किसी का!

पुतली ने आकाश चुराया,
उर ने विद्युत्-लोक छिपाया,
अंगराग-सी है अंगों में
सीमाहीन उसी की छाया;
अपने तन पर भाता है अलि,
जाने क्यों शृंगार किसी का!
मैं पलकों में पाल रही हूं,
यह सपना सुकुमार किसी का!

पहली वार तूने जगत के पार का एक सपना देखा है। पहली बार मेरी आंखों से झांका है, मेरे झरोखे से देखा है। और जीवन में एक नया रंग, एक नयी गंध, एक नया गीत उठा है। इस गीत की अभी कड़ियां जमने को हैं। यह साज अभी पूरा सजा नहीं, यह साज अभी पूरा बैठा नहीं! तार छिड़ गये हैं लेकिन वीणा अभी कसी जानी है। कोई तार ढीला है, कोई तार ज्यादा कसा है––साज अभी बिठाना है। मृदंग पर थाप पड़ गयी है, पहली-पहली आवाज आ गयी है। पर अभी बहुत दूर जाना है, बहुत दूर देश की यात्रा है। पुकार तो सुनायी पड़ गयी है, लेकिन पुकार अंत नहीं है, प्रारंभ है।

और इसलिए अगर तुझे कोई कहे कि मुझे समाप्त कर देगा। तो तेरा क्या होगा? यह जो झंकृत तेरी वीणा है, यह क्या बस झंकृत ही रह जाएगी? यह झंकार भी फिर खो जाएगी। तेरा मन कहेगा : नहीं, अभी कुछ देर और। अभी

मुझे कुछ हो लेने दो। अभी मुझे कुछ बन लेने दो। अभी मुझे कुछ पा लेने दो। यह गीत पूरा हो जाए। ये कड़ियां पूरी बैठ जाएं। यह संगीत पूरा जग जाए। यह स्वाद तो पूरा हो जाने दो।

मिट्टी की इमारत साया देकर मिट्टी में हमवार हुई।
वीरानी से अब काम है और वीरानी किसकी यार हुई।।

डर-डर के क़दम यूं रखता हूं ख्वाबों के सहरा में जैसे।
ये रेग अभी ज़ंजीर बनी, ये छांव अभी दीवार हुई।।

हर पत्ती बोझल हो के गिरी, सब शाखें झुककर टूट गईं।
उस बारिश ही से फ़स्ल उजड़ी जिस बारिश से तैयार हुई।।

छूती है ज़रा तन को जो हवा चुभते हैं रगों में कांटे से।
सौ बार खिज़ां आई होगी, महसूस मगर इस बार हुई।।

वो नाले हैं बेताबी के चीख़ उठता है सन्नाटा भी।
ये दर्द की शब मालूम नहीं कब तक के लिए बेदार हुई।।

अब ये भी नहीं है बस में कि हम फूलों की डगर पर लौट चलें।
जिस राहगुज़र पर चलना है, वो राहगुज़र तलवार हुई।।

अब गैर हवा कितनी ही चले अब गर्म फ़ज़ा कितनी ही रहे।
सीने का जख़्म चिराग़ बना, दामन की आग बहार हुई।।

सुमन, अब लौटने का तो कोई उपाय नहीं, घवड़ा मत। मैं रहूं या न रहूं, जो गीत तुझमें जन्मा है, वह पूरा होगा। जो स्वर तुझमें पैदा हुआ है, वह सम्पूर्ण होगा।

अब ये भी नहीं है बस में कि हम फूलों की डगर पर लौट चलें।
जिस राहगुज़र पर चलना है, वो राहगुज़र तलवार हुई।।

अब गैर हवा कितनी ही चले, अब गर्म फ़ज़ा कितनी ही रहे।
सीने का जख़्म चिराग बना, दामन की आग बहार हुई ।।

अब घवड़ा मत। अब जख़्मों को चिराग बन जाने का क्षण आ गया और अब दामन की आग भी वसंत हो जाएगी। अब अंगारे भी शीतल फूल होंगे। मगर डर लगता है, भय होता है। जब तक बात पूरी नहीं हो गयी, जब तक घटना पूरी नहीं घट गयी, जब तक साधना सिद्धि नहीं बन गयी तब तक सद्गुरु छूट न जाए इससे चिंता होती है। चिंता स्वाभाविक है। मगर घबड़ाओ मत।

अगर किसी ने सच में श्रद्धा से मुझे चाहा है तो यह देह गिर भी जाए

तो भी भेद न पड़ेगा। जो अंगुलियां तुम्हारे हृदय-तंत्री को छेड़ती थीं, छेड़ती ही रहेंगी और जो स्वर तुम्हें पुकारते थे, पुकारते ही रहेंगे,शायद और भी गहनता से। क्योंकि तब वे बाहर से न आएंगे, तब वे तुम्हारे भीतर से ही उठेंगे। और जो सन्निधि तुम्हें मेरे पास मिली है, वह समाप्त हो जाने वाली नहीं है। और जिनकी समाप्त हो जाएगी, समझना कि उनको मिली ही न थी। शिष्य और गुरु का प्रेम एकमात्र प्रेम है जो मृत्यु के पार भी जाता है। मृत्यु उसे खंडित नहीं कर पाती। मृत्यु उसके सामने नपुंसक है।

तीसरा प्रश्न : भगवान ! आपको बार-बार देखकर भी ऐसा लगता है, नहीं देखा है ! कैसे देखूं कि छवि उतरे ही उतरे ?

★ अविनाश भारती ! जो दिखाई पड़ता है, वह मैं नहीं हूं; जो दिखाई पड़ता है, वह तुम भी नहीं हो। दृश्य तो धोखा है, दृश्य तो सपना है, द्रष्टा सत्य है। और तुम मेरे द्रष्टा को न देख सकोगे। मेरे द्रष्टा को देखने का तो एक ही उपाय है कि तुम अपने द्रष्टा को देखो।

द्रष्टा न तो मेरा है, न तो तेरा है। उससे परिचय करने का एक ही रास्ता है कि दृश्य से अपना संबंध छोड़ो, धीरे-धीरे उसको पकड़ो जो देख रहा है, सब देख रहा है। तुम मुझे सुन रहे हो—तुम दो तरह से सुन सकते हो। एक तो मेरे शब्दों पर ही तुम एकाग्र हो जाओ और अपने को बिलकुल भूल जाओ। सुनने वाला याद ही न रहे, बोलने वाला ही दृष्टि में रह जाए, तो तुम चूक जाओगे। तुम्हें मेरे शब्द तो सुनायी पड़ेंगे, मेरे अर्थों से तुम वंचित रह जाओगे। एक और ढंग है सुनने का—मेरे शब्द सुनो मगर उससे भी ज्यादा मूल्यवान है कि तुम्हारे भीतर जो सुन रहा है, उसकी स्मृति न भूले, उसका विस्मरण न हो।

तुम्हारी चेतना का तीर दोहरा होना चाहिए—मेरे शब्दों की तरफ एक और एक तुम्हारे चैतन्य की तरफ। तुम मुझे देख रहे हो, यह तीर का एक पहलू हुआ। तीर का दूसरा पहलू यह होना चाहिए, जो ज्यादा मूल्यवान है—कौन देख रहा है ? दृश्य पर ही मत अटक जाओ, दृश्य में ही मत भटक जाओ, दृश्य में बंद मत हो जाओ। नहीं तो तुम्हारी वही गति होगी जो भौंरे की हो जाती है। इतना खो जाता है कमल में कि जब सांझ सूरज डूबने लगता है और कमल की पंखुड़ियां बंद होने लगती हैं तब भी उसे याद नहीं आती। पंखुड़िया बंद हो जाती हैं, भौंरा कमल में बंद रह जाता, उड़ ही नहीं पाता।

दृश्य में ऐसे ही हम बंध गये हैं, जैसे कमलों में भौंरे बंध जाते हों। हम दृश्य में अटक जाते हैं और द्रष्टा को भूल जाते हैं।

द्रष्टा को याद करो। द्रष्टा को जगाओ, निखारो। द्रष्टा का जितना-जितना

उपयोग हो सके उतना उपयोग करो। फूल को देखो मगर देखने वाले को मत भूलो। चांद-तारों को देखो मगर देखने वाले को मत भूलो। बाजार में चलो, लोगों को देखो, रास्ते पर दुकानों को देखो, मगर देखने वाले को मत भूलो। देखने वाला तो सतत अहर्निश तुम्हारे भीतर बना रहे। इसी को भीखा ने सुमरण कहा है। यही है बुद्ध की सम्मासति, सम्यक स्मृति। यही है गुरजिएफ की सेल्फ रिमेम्ब्रिंग।

तुम कहते हो : आपको बार-बार देखकर भी ऐसा लगता है, नहीं देखा है! लगेगा ही क्योंकि जो तुम देखते हो, वह मैं नहीं हूं, वह तो मिट्टी की देह है--कल नहीं थी, कल फिर नहीं हो जाएगी। वह मैं नहीं हूं। उस मिट्टी की देह में छिपा हुआ जो चैतन्य है--वह मैं हूं, वही तुम भी हो। वहां हम एक हैं। तुम्हारी देह अलग, मेरी देह अलग; लेकिन तुम्हारी आत्मा और मेरी आत्मा अलग-अलग नहीं। चेतना एक सागर है। उस चेतना में देह की लहरें अनंत हैं।

तुम अपने द्रष्टा में डूबो तो तुम मुझे पहचान पाओगे। तुम समाधि में उतरो तो ही तुम मुझे पहचान पाओगे अन्यथा नहीं पहचान पाओगे। जो मुझे बाहर से देखकर चला जाएगा, वह व्यर्थ ही आया व्यर्थ ही गया। तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं। तुम चाहते हो कि जो मेरे भीतर हुआ है, तुम्हारे भीतर हो जाए। वही आकांक्षा तुम्हारे इस विचार में उतरी है कि कैसे देखूं कि छवि उतरे ही उतरे! लेकिन मेरी छवि अगर तुम्हें बहुत ज्यादा घेर ले तो तुम मेरी छवि में बंद हो जाओगे। और छवि मैं नहीं हूं। वह बंधन हो जाएगी, कारागृह हो जाएगी, जंजीर हो जाएगी।

उसे खोजो, चिन्मय को जो मृण्मय में छिपा है। और उसकी खोज अंतर-खोज है। उसे तुम पहले अपने भीतर ही पाओगे, तभी तुम मेरे भीतर देख सकोगे। आकांक्षा जगी है, शुभ आकांक्षा जगी है, तो उसकी पूर्ण आहुति भी होगी, उसका समापन भी होगा।

धूल मिट्टी के जगत में बो दिया यदि
ज्योति का आनंद का लघु बीज,
तो इसे कर अंकुरित विकसित बरसकर,
नेति के उस पार तनिक पसीज!

धूल मिट्टी में दबा लाचार हूं मैं,
खा रही है मुझे मेरी खीझ!
तू मुझे छू दे कि फिर चैतन्य कर दे,
फूल हंस ले और मिट्टी धूल जाए छीज!

मृत्तिका के पात्र में ज्वाला जगा दे,
तू शलभ बन कर शिखा पर रीझ,

धूल मिट्टी के जगत में बो दिया यदि
ज्योति का आनन्द का लघु बीज!

यह अभी लघु बीज है--ज्योति का, आनन्द का। यह वृक्ष बनेगा, बड़ा वृक्ष कि हजारों पक्षी जिस पर बसेरा करें। कि जिसके नीचे सैंकड़ों यात्री छाया में बैठें। एक-एक संन्यासी को विराट बीज बनना है। एक-एक संन्यासी को बीज से विराट बनना है।

धूल मिट्टी के जगत में बो दिया यदि... और परमात्मा ने बो दिया है--धूल में, मिट्टी में, चैतन्य का बीज।

धूल मिट्टी के जगत में बो दिया यदि
ज्योति का आनन्द का लघु बीज,

मगर कोई लघु बीज, लघु बीज नहीं है, दिखाई पड़ता है छोटा। वनस्पति-शास्त्री कहते हैं : एक बीज से सारी पृथ्वी हरी हो सकती है, इतना उसमें छिपा है। सारी पृथ्वी ही क्यों सारे चांद-तारे भी हरे हो सकते हैं एक बीज से, इतना उसमें छिपा है। क्योंकि एक बीज से वृक्ष होता है। वृक्ष में करोड़ों बीज लगते हैं। फिर एक-एक बीज से करोड़ों बीज।...

तुम थोड़ा सोचो! वैज्ञानिक इसकी खोज में लगे हुए हैं कि इस पृथ्वी पर पहली दफा हरियाली कैसे आयी? पहला बीज कहां से आया? एक ही बीज की जरूरत पड़ी होगी, फिर धीरे-धीरे फैलते चले गये। एक बीज से अनंत होते चले गये। अनंत से फिर और अनंत होते चले गये, फिर सारी पृथ्वी हरी हो गयी। आया तो एक ही बीज होगा। कैसे आया? कौन ले आया पहले बीज को?

वैज्ञानिक बहुत तरह की परिकल्पनाएं करते हैं--शायद किसी पुच्छल तारे के पास से गुजर जाने के समय बीज गिर गया हो। शायद किसी उल्कापात के साथ... रात तुम तारों को गिरते देखते हो न, वे तारे नहीं हैं, तारे नहीं गिरते, सिर्फ छोटे-छोटे पत्थर हैं जो हवा के घर्षण से जल उठते हैं और तारों जैसे मालूम होते हैं। शायद किसी उल्कापात के साथ, किसी दूर-दूर आबाद किसी तारे से कोई बीज आ गया होगा, एकाध बीज चिपका हुआ आ गया होगा। बस एक बीज ने सारी पृथ्वी हरी कर दी! सारी पृथ्वी को जीवन से भर दिया। बीज छोटा दिखाई पड़ता है, छोटा है नहीं।

धूल मिट्टी के जगत में बो दिया यदि
ज्योति का आनन्द का लघु बीज,
तो इसे कर अंकुरित विकसित बरस कर,
नेति के उस पार तनिक पसीज!

तो फिर स्वभावतः प्राणों में यह अभीप्सा उठती है कि जब यह बीज बो दिया मिट्टी में तो हे दूर के वासी, हे दूर के माली, हे मालिक--

तो इसे कर अंकुरित विकसित बरस कर,
नेति के उस पार तनिक पसीज !

तो फिर थोड़े पसीजो। हे जगत के प्राण ! थोड़ी दया करो, थोड़ी अनुकम्पा करो ! बरसो कि यह बीज टूटे, कि यह बीज फूटे, कि यह बीज विराट बने, कि यह बीज विस्तीर्ण हो ! विस्तार की आकांक्षा प्रत्येक में छिपी है--बीज में भी, मनुष्य में भी। विस्तार की आकांक्षा, विस्तीर्ण होने की आकांक्षा ही धर्म की मौलिक खोज है। हमने परमात्मा को जो अन्तिम शब्द दिया है--ब्रह्म, वह बड़ा प्रीतिकर है, उसका अर्थ होता है : जो फैलता ही चला जाता है। हमारा शब्द विस्तार भी ब्रह्म से ही बना है। जो विस्तीर्ण होता ही चला जाता है, जिसके विस्तार का कोई अंत नहीं, वह ब्रह्म ! हमारे भीतर भी बीज है जो विस्तीर्ण होना चाहता है, जो ब्रह्म होना चाहता है।

तो प्रार्थना उठती है--

तो इसे कर अंकुरित विकसित बरस कर,
नेति के उस पार तनिक पसीज !
धूल मिट्टी में दबा लाचार हूं मैं,
खा रही है मुझे मेरी खीझ !

स्वभावतः जब तक बीज मिट्टी में दबा है और अंकुरित नहीं हुआ है--खीझता है, विषादग्रस्त होता है। मेरे भाग्य की घड़ी आएगी या नहीं ! वह सौभाग्य का क्षण आएगा या नहीं ? मैं अभागा बीज ही रहकर तो न मर जाऊंगा ? यह खोल टूटेगी या नहीं ? यह कारागृह, ये जंजीरें जो मुझे घेरे हैं, मिटेंगी या नहीं ? मुझ में भी हरे अंकुर निकलेंगे या नहीं ? मैं भी उठूंगा आकाश में, ऊर्ध्वगामी बनूंगा, ऊर्ध्वरेतस ? मुझमें भी हरियाली होगी, फूल लगेंगे, पत्ते लगेंगे। पक्षी गीत गाएंगे मुझ पर बैठकर। चांद-तारों से मैं भी बतकही कर सकूंगा या नहीं ? खीझ पैदा होती है जब तक बीज टूटे न तब तक खीझता है।

और वही खीझ तुम हर मनुष्य में पाओगे। हर आदमी खीझा हुआ है, जरा गौर करो, खीझ के कोई साफ-साफ कारण भी नहीं हैं ! जिस दिन तुम्हारी जिंदगी में कोई दुख का कारण नहीं होता, उस दिन भी खीझ होती है। ऐसा लगता है कि कुछ-कुछ खोया है। कुछ होना था, जो नहीं हो रहा है। साफ पकड़ भी नहीं बैठती, मुट्ठी में कारण भी हाथ नहीं आता कि मैं क्यों नाराज हूं, मैं क्यों खीझा हुआ हूं ? बेबूझ मालूम होता है। और चूंकि हम बेबूझ को बर्दाश्त नहीं कर सकते, हम कोई

बहाना खोज लेते हैं। पति-पत्नी पर खीझ लेता है कि आज रोटी जल क्यों गयी ? आज पानी ठंडा क्यों नहीं है ? पत्नी बच्चों पर खीझ लेती है कि स्कूल से देर से क्यों आये ? बच्चे अपनी किताबें फाड़ डालते हैं।

खीझ सरकती जाती है एक से दूसरे पर। और कुल कारण इतना है कि अगर कोई भी कारण न हो तुम्हारी जिंदगी में दुख का तो भी तुम दुखी रहोगे। तुम्हारी सारी सुविधाएं पूरी कर दी जाएं तो भी तुम दुखी रहोगे। क्यों ? क्योंकि खीझ का कारण सुविधा की कमी नहीं है। विस्तार का अभाव है, ब्रह्म का अभाव है। बीज वृक्ष होना चाहता है, वृक्ष अनंत बीज होना चाहता है, अनंत बीज अनंत वृक्ष होना चाहते हैं--फैलते ही जाना चाहते हैं। चैतन्य का यह जो विस्तार है, यह किसी अंत को मानना नहीं चाहता, यह किसी सीमा में आबद्ध नहीं होना चाहता।

धूल मिट्टी में दबा लाचार हूं मैं,
खा रही है मुझे मेरी खीझ !
तू मुझे छू दे कि फिर चैतन्य कर दे,
फूल हंस ले और मिट्टी धूल जाए छीज !

यही तो प्रार्थना है, जनमों-जनमों कि तू मुझे छू दे। कि फिर चैतन्य कर दे। तोड़ दे मिट्टी के इस घड़े को ताकि मुक्त हो जाए अमृत ! फूल हंस ले ! एक मौका दे दे कि मेरा फूल भी हंस ले आकाश में। और मिट्टी धूल जाए छीज !

मृत्तिका के पात्र में ज्वाला जगा दे
तू शलभ बन कर शिखा पर रीझ !

आदमी परमात्मा को खोजे तो कहां खोजे ? कुछ पता नहीं, कुछ ठिकाना नहीं। कहां छिपा है, इसका कोई संकेत भी नहीं देता। बच्चे लुका-छिपी का खेल खेलते हैं तो थोड़ा संकेत देते हैं। छिप जाते हैं फिर वहां से आवाज दे देते हैं। खोजने का रास्ता बता देते हैं। लेकिन परमात्मा ऐसा छिपा है कि कोई इशारा भी नहीं मिलता, कहां !

ज्ञानी तो कहते हैं : कण-कण में। ज्ञानी तो कहते हैं : पल-पल में। जीसस ने कहा है : पत्थर को उठाओ और उसके नीचे तुम मुझे पाओगे और वृक्ष की शाखा को तोड़ो और उसके भीतर तुम मुझे पाओगे। मगर तुम पत्थर उठाते हो, कुछ नहीं मिलता। और वृक्ष की शाखा तोड़ते हो, कुछ हाथ नहीं आता। शाखा और हाथ से टूट गयी, पत्थर उठाने में और मेहनत हो गयी। ज्ञानी तो कहते हैं : कण-कण में है। वे तो कहते हैं : सब जगह है, पता की कोई जरूरत नहीं। संकेत चाहिए ही नहीं सारी दिशाओं में वही व्याप्त है। लेकिन ज्ञानी की बात ज्ञानी जानें। अज्ञानी

पूछता है : कोई पता हो, ठिकाना हो; कहां पत्र लिखूं ?

एक पोस्ट-आफिस में एक पत्र आया। एक आदमी ने ईश्वर को लिखा था कि मेरी पत्नी बहुत बीमार है और पचास रुपये एकदम चाहिए, इससे कम में काम नहीं चलेगा। पचास रुपये तत्क्षण भेज दो मनीआर्डर से। और पते में लिखा था परम पिता परमेश्वर को मिले। पोस्ट-आफिस के लोगों को दया आयी। बेचारा गरीब! और भी दया आयी कि इसको यह भी पता नहीं कि परमात्मा को कहीं चिट्ठियां लिखी जाती हैं,कहीं चिट्ठियां पहुंचायी जा सकती हैं? किसको उसका पता है? लेकिन होगा बहुत मुसीबत में और होगा भोला-भाला आदमी तो पोस्ट-आफिस के क्लर्कों ने कहा कि हम कुछ इकट्ठा करके चंदा इसे भेज दें। चंदा तो किया मगर पच्चीस ही रुपये चंदा हो पाया। तो उन्होंने पच्चीस रुपये ही भेज दिये कि कुछ तो इसको सहायता मिलेगी।

लौटती ही डाक से चिट्ठी फिर आयी। पता लिखा था परमात्मा को मिले। बड़ी नाराजगी में चिट्ठी लिखी थी उसने। उसने लिखी थी कि यह बात ठीक नहीं है। अगली बार आप सीधे ही भेजना। पोस्ट-आफिस के जरिए भेजा तो उन दुष्टों ने पच्चीस रुपये कमीशन काट लिया।

परमात्मा का कोई पता नहीं है। तुम आकाश की तरफ मुंह उठाकर जब प्रार्थना करते हो तब भी तुम अज्ञात में टटोल रहे हो, तुम सिर झुकाकर जमीन पर रखकर प्रार्थना करते हो तब भी तुम अंधेरे में टटोल रहे हो। उसका कोई पता नहीं है। तुम्हारी भाषा उस तक पहुंचती भी है या नहीं? तुम्हारी प्रार्थनाएं इतनी समर्थ भी हैं कि उसे खोज लेती होंगी या कि सब कोरे आकाश में खो जाता है? इसलिए जो ठीक-ठीक प्रार्थना का सूत्र समझेगा उसकी प्रार्थना ऐसी होगी--

मृत्तिका के पात्र में ज्वाला जगा दे
तू शलभ बन कर शिखा पर रीझ!

हम तो पतंगे बनने से रहे क्योंकि हमें तेरी शिखा कहीं दिखाई पड़ती नहीं। अब तो एक उपाय है कि हमें तू शमा बना दे और तू पतंगा बन। तू हमें खोज, एक ही उपाय है अब। हमारे खोजे से तो नहीं होता। हम तो खोज-खोज थक गये। हम तो जनमों-जनमों से खोज रहे हैं। खोज-खोज कर अनेकों ने तो यही तय कर लिया कि तू है ही नहीं। आखिर कब तक खोजें?

मेरे देखे जो लोग नास्तिक हैं वे लोग अनंत-अनंत जनमों के खोजी हैं। बहुत खोजा, नहीं पाया। फिर-फिर खोजा और नहीं पाया। आखिर आदमी की सामर्थ्य है, बिसात है। कब तक खोजे? तो एक जगह जाकर निर्णय लेना पड़ेगा कि अगर नहीं मिलता तो अब यही निर्णय ले लेना ठीक है कि है ही नहीं। झंझट मिटी, अब

खोज न करनी पड़ेगी। नास्तिक में मैं छिपे हुए जनमों-जनमों के आस्तिक को देखता हूं। जब भी कोई नास्तिक मेरे पास आता है तो मैं झांकता हूं और यही देखता हूं कि बहुत खोजा उसने। खोज-खोजकर थक गया, इतना थक गया, इतने विषाद से भर गया कि अब कब तक खोजता रहे? तो आत्मरक्षा के लिए एक ही उपाय है अब कि तू है ही नहीं। ताकि न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। तू है ही नहीं तो खोज खतम। अब तुझ से झंझट मिटी। अब हम किसी और काम में लगें। जिंदगी चार दिन की है, इस चार दिन की जिंदगी को भोग लें। तेरी खोज में कब तक बरबाद करते रहें।

जब कोई नास्तिक मेरे पास आता है तो मैं अति आतुर हो जाता हूं कि उसे संन्यास में प्रवेश दे दूं। नास्तिक मुझसे पूछते हैं : हम नास्तिक हैं, क्या हमें भी संन्यास देंगे? मैं उनको कहता हूं : आस्तिक में मेरी उतनी उत्सुकता नहीं, जितनी मेरी उत्सुकता नास्तिक में है। क्योंकि नास्तिक बहुत खोज चुका है। शायद निन्यानबे डिग्री तक पहुंच चुका था खोजते-खोजते। बस एक डिग्री और कि क्रांति घटती, कि वाष्पीभूत हो जाता।

लेकिन प्रार्थना का ठीक रूप यही हो सकता है--

मृत्तिका के पात्र में ज्वाला जगा दे
तू शलभ बन कर शिखा पर रीझ,

अब तो एक ही उपाय है कि मैं बन जाऊं ज्वाला और तू शलभ। तू बन पतंगा तू मुझ पर रीझ। तू आ, मेरे आये नहीं कुछ हो सकता। मैं कहां आऊं? तू दौड़ तू मेरी तरफ आ।

और मैं तुमसे कहता हूं : अगर तुम शून्य हो जाओ तो परमात्मा तुम्हारी तरफ सब दिशाओं से दौड़ पड़ता है। जैसे कभी जाकर नदी में मटकी में पानी भरा? जैसे ही तुम मटकी में पानी भरते हो गड्ढा होता है नदी में, चारों तरफ से जल दौड़ पड़ता है। जैसे प्रकृति गड्ढे को पसंद नहीं करती। तुम देखते हो गर्मी में बवंडर उठते हैं, हवा के तूफान आते हैं। क्यों उठते हैं? कैसे उठते हैं? जब बहुत सूरज की गर्मी पड़ती है तो हवा इतनी ज्यादा उत्तप्त हो जाती है कि विरल होने लगती है, उसका सघनपन टूट जाता है, गड्ढे पैदा हो जाते हैं। और जहां गड्ढा पैदा हुआ है, चारों तरफ से हवा दौड़ पड़ती है। उसी हवा के दौड़ने को हम बवंडर कहते हैं। हवा इतनी तेजी से दौड़ती है गड्ढे को भरने को कि बवंडर पैदा हो जाता है।

ठीक ऐसे ही जिस दिन तुम ध्यान में शून्य हो जाओ उस दिन परमात्मा बवंडर की तरह आता है। चारों तरफ से आता है, सब दिशाओं से आता है—ऊपर से

भी, नीचे से भी; बांये से भी, दांये से भी; उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम, सब तरफ से आता है।

मृत्तिका के पात्र में ज्वाला जगा दे
तू शलभ बन कर शिखा पर रीझ,
धूल मिट्टी के जगत में बो दिया यदि
ज्योति का आनंद का लघु बीज !

जब बीज बोया है तो अब उपेक्षा न कर।

अविनाश, मैं जानता हूं, यहां मेरे पास जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, वे वे ही लोग हैं जिनके भीतर बीज को तोड़ने की अभीप्सा जगी है। यह कोई साधारण तीर्थस्थल नहीं है जहां मुर्दे सदियों-सदियों से इकट्ठे होते रहे हैं इसलिए और मुर्दे भी आते जाते हैं। यह कोई काशी नहीं है जहां करवट लेने आखिरी वक्त लोग पहुंच जाते हैं। यह कोई मक्का-मदीना नहीं है जहां की यात्रा कर आये, बस यात्रा कर आये और सब हो गया। यहां तो केवल उनके लिए ही जगह है जो मिटने को राजी हैं, जो टूटने को राजी हैं, जो खोने को राजी हैं, जो शून्य होने को राजी हैं।

तुम शून्य हो जाओ तो परमात्मा दौड़ पड़े। तुम शून्य हो जाओ तो तुम्हारा द्रष्टा जग जाए। और तुम अपने द्रष्टा को देख लो तो तुम मुझे देख लो। जब तक तुम अपने को न देख पाओगे, तुम मुझे भी न देख पाओगे।

और घबड़ाओ मत, उदास न होओ, निराशा का कोई भी कारण नहीं है; रात जब बहुत अंधेरी होती है, तभी सुबह करीब होती है।

ढल रही है सांझ,
ढलने दो,
अंधेरा और बढ़ने दो,
तिमिर को करवटें ले
मन-विविर में मूक सोने दो !
समय अविराम गति से
चल रहा है,
(चुप रहो तुम !)
बन अहेरी
भोर का ले रश्मि-शर
दिग्शिजिनी पर चढ़ाकर वह
ढाह देगा एक पल में
तिमिर-मृग को।

आती है रात, आने दो; सुबह का अहेरी भी आ रहा है, सुबह का शिकारी भी आ रहा है, वह सूरज भी आ रहा है। जैसे-जैसे रात अंधेरी होती जा रही है, वैसे-वैसे सूरज करीब आता जा रहा है। वह अपनी प्रत्यन्चा पर, धनुष पर प्रकाश के तीर चढ़ाकर. . .एक ही तीर में तुम्हारे जनमों-जनमों के अंधकार को विनष्ट कर देगा। एक ही तीर में तुम्हारी मृत्यु छीन लेगा।

लेकिन साधक के जीवन में अंधेरी रात आती है, इसका स्मरण रखना। ईसाई रहस्यवादियों ने उसे ठीक नाम दिया है--डार्क नाइट आफ द सोल--आत्मा की अंधेरी रात। लेकिन सौभाग्यशालियों के जीवन में आती है वह। परम सौभाग्यशालियों के जीवन में आती है। बड़े बड़भागी हैं जो, उनके जीवन में आती है। क्योंकि उसके बाद फिर सुबह है। तड़फो अभी ! सांझ होने लगी, रात अंधेरी होने लगी, विरह की ज्वाला धधकने लगी, धधकने दो और घी डालो इसमें और हवा दो और पंखा दो कि ज्वाला भभके। जल्दी ही सुबह भी होगी।

ढल रही है सांझ,
ढलने दो,
अंधेरा और बढ़ने दो,
तिमिर को करवटें ले
मन-विविर में मूक सोने दो !
समय अविराम गति से
चल रहा है,
(चुप रहो तुम !)
बन अहेरी
भोर का ले रश्मि-शर
दिग्शिजिनी पर चढ़ाकर वह
ढाह देगा एक पल में
तिमिर-मृग को।

यह जो अंधेरे का मृग है, एक तीर में गिर जाएगा, एक क्षण में गिर जाएगा। मगर प्रतीक्षा चाहिए। प्रार्थना और प्रतीक्षा ये दो शब्द याद रखो, शेष सब अपने से हो जाता है। तुम प्रार्थना करो और प्रतीक्षा करो ! प्रार्थना और प्रतीक्षा के मध्य परमात्मा घटता है।

आज इतना ही।
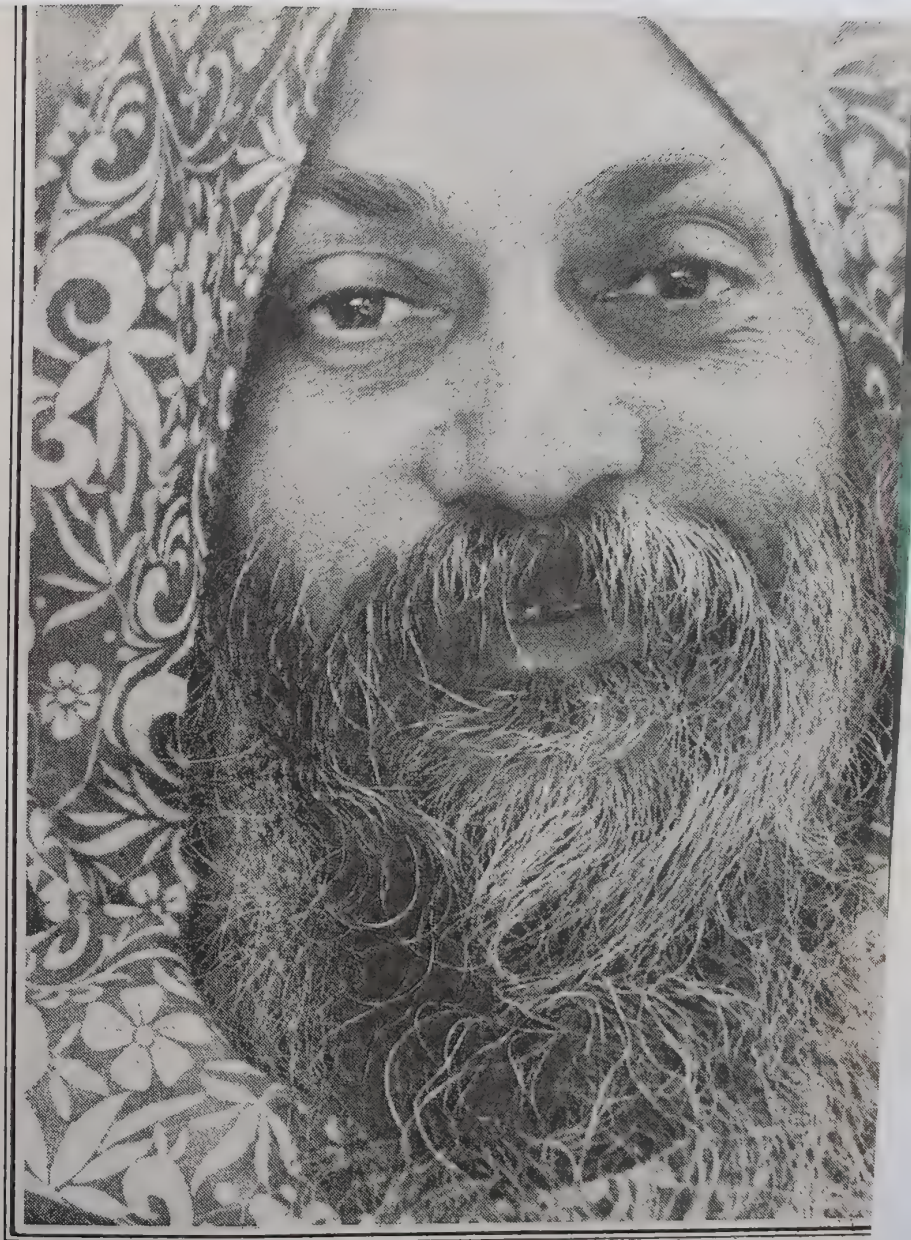
सुगम उपाय जुक्ति मिलबे की

तीसरा प्रवचन; दिनांक २३ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

को लखि सकै राम को नाम ।
देइ करि कौल करार बिसारो, जियना बिनु भजन हराम ।।
वरनत बेद बेदान्त चहूं जुग, नहिं अस्थिर पावत बिसराम।
जोग जज्ञ तप दान नेम व्रत, भटकत फिरत भोर अरु साम ।।
सुर नर मुनिगन पचि पचि हारे, अंत न मिलत बहुत सो लाम।
साहब अलख अलेख निकट हीं, घट घट नूर ब्रह्म को धाम ।।
खोजत नारद सारद अस अस, जातु है समय दिवस अरु जाम।
सुगम उपाय जुक्ति मिलबे की, भीखा इह सतगुरु से काम ।।

साधो, सब महं निज पहिचानी, जग पूरन चारिउ खानी ।।
अविगत अलख अखंड अमूरति, कोउ देखे गुरु ज्ञानी ।।
ता पद जाय कोउ कोउ पहुंचे, जोग जुक्ति करि ध्यानी ।।
भीखा धन जो हरि-रंग-राते, सोइ हैं साधु पुरानी ।।

प्रीति की यह रीति बखानौ ।।
कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन-कमल कर ध्यानो ।।
हो चैतन्य बिचारि तजो भ्रम, खांड धूरि जनि सानौ ।।
जैसे चात्रिक स्वांति बुंद बिनु, प्रान-समरपन ठानौ ।।
भीखा जेहि तन राम भजन नहिं, कालरूप तेहिं जानौ ।।

पानी बहता चलता है
कुछ दुख सहता चलता है
लहरें हैं कुछ मैली-मैली
मौजें हैं कुछ फैली-फैली

तारे झुक-झुक पड़ते हैं
पत्ते चुप-चुप झड़ते हैं
अब्र के टुकड़े उड़ते हैं
कटते हैं फिर जुड़ते हैं

तारे झिम-झिम होते हैं
तायर चुपके सोते हैं
शाखें सर-ब-गरेबां हैं
बिलकुल चुप और हैरां हैं

चांद भी है कुछ खोया-सा
कुछ जागा कुछ सोया-सा
शबनम टप-टप रोती है
जो आंसू है वह मोती है

हर पत्ते में खामोशी है
हर कोंपल में बेहोशी है
हर जर्रा चुप, हर कतरा चुप
अफलाक का एक-एक तारा चुप

सब गुलहाए रीहां चुप हैं
चंपा की सब कलियां चुप हैं
दरिया की सब मौजें चुप हैं
बलखाती सब लहरें चुप हैं

यारब ! ये सब मंजर क्या है !
सहरा क्या है, घर-दर क्या है !

ऐसी स्थिति है आज मनुष्य की। एक गहन सन्नाटा छा गया है । अंतरात्मा की पोर-पोर में न कोई स्वर बजता है, न कोई संगीत उठता है । गीत मर गये हैं, उत्सव मर गया है । आदमी जी रहा है रीता-रीता, खाली-खाली । जिस मटकी में अमृत होना था, उसमें विष भी नहीं है । जिस मटकी में सोना होना था, उसमें राख भी नहीं है । संभावना तो लेकर आये थे न मालूम कितने-कितने फूलों की, कांटे भी दुर्लभ हो गये हैं ।

ऐसा कभी न हुआ था । मनुष्य जाति के इतिहास में आदमी इतना हताश, इतना निराश, इतना रिक्त, इतना अर्थहीन, कभी भी न था। किस कारण यह दुर्घटना घटी है ? घर भी वीरान मालूम होता है ।

सब चल रहा है--धन की दौड़ चल रही है, पद की दौड़ चल रही है और भीतर प्राणों को कोई जैसे काटता जाता है । काम सब चल रहा है, रुका कुछ भी नहीं है ! लेकिन करने वाले में कोई उमंग नहीं रह गयी है, उत्साह नहीं रह गया है। पैरों में नृत्य नहीं है--चलते हैं क्योंकि चलना है । एक कर्तव्यवश करते हैं क्योंकि करना है । एक कर्तव्यवश, लेकिन आह्लाद नहीं है ।

और जहां आह्लाद नहीं है, वहां धर्म कैसे होगा ? और जहां जीवन में उत्सव नहीं है, वहां मंदिर कैसे बनेंगे ? और जहां जीवन गीतों से रिक्त है, वहां तीर्थों के होने का कोई उपाय नहीं है । काबा खाली है, काशी खाली है क्योंकि तुम खाली हो । मंदिर खाली हैं, मस्जिद खाली हैं क्योंकि तुम खाली हो ।

दौड़-धूप बहुत है, आपाधापी बहुत है । इससे भ्रम में मत पड़ जाना । आपाधापी और दौड़-धूप इसीलिए बहुत है कि किसी तरह अपने भीतर का खालीपन दिखाई न पड़े । उलझे रहें, उलझाए रहें । कहीं भी उलझे रहें, कहीं भी उलझाए रहें । कौड़ियों को गिनते रहें कि भीतर न देखना पड़े । लड़ते झगड़ते रहें, व्यर्थ की बातें करते रहें--कि रेडियो सुनें, कि टेलीविजन देखें, कि सिनेमा हो आएं, कि क्लब-घर में बैठकर ताश खेलें ।

पूछो लोगों से क्या कर रहे हो ? कहते हैं : समय काट रहे हैं । समय—जो मिलना इतना मुश्किल ! एक क्षण जो हाथ से चला गया वापिस नहीं लौटता है।

कोई उपाय उसे वापिस लौटाने का नहीं है । उस समय को काट रहे हैं जो मांगे-मांगे न मिलेगा, जो खोजे-खोजे न मिलेगा । ताश के राजा-रानी बना लिए हैं । कि लकड़ी के हाथी-घोड़े बना लिए हैं । बच्चे तो बच्चे हैं ही, बूढ़े भी यहां बच्चे हैं । शतरंजें बिछा ली हैं ।

जिनको तुम समझदार कहो, वे भी बड़े नासमझदार हैं ! कैसी दौड़-धूप है पदों के लिए ! छोटे-छोटे बच्चे कुर्सियों पर खड़े हो जाएं और चिल्लाएं कि हमसे ऊपर कोई भी नहीं, समझ में आता है; मगर दिल्ली में बूढ़ों को क्या हुआ है ? वही खेल है ।

लेकिन इस खेल के पीछे कारण समझने जैसा है । ये सब अपने को उलझाए रखने के उपाय हैं । यह सब एक तरह की मानसिक शराब है। शराबबंदी के पक्ष में हैं लोग और और तरह-तरह की शराबें हैं । पद की शराब है— पद-मद । धन की शराब है--धन-मद । असली शराबें वे हैं। जो मधुशालाओं में बिकती हैं उनकी तो कोई कीमत नहीं--सुबह पियोगे, सांझ उतर जाएगी; सांझ पियोगे, सुबह उतर जाएगी । लेकिन पद का मद ऐसा है कि जीवन-भर नहीं उतरता । और जिन कुर्सियों पर तुम कब्जा कर लेते हो वे तुमसे पहले भी थीं । तुम विदा हो जाओगे, वे कुर्सियां बनी रहेंगी, और दूसरे उन पर लड़ते रहेंगे । जिस धन पर तुमने कब्जा कर लिया है, वह तुम्हारा नहीं है--तुम्हारे पहले भी था, तुम्हारे बाद में भी होगा । तुम आये और गये और तुम व्यर्थ उसमें उलझ गये जो तुम्हारा नहीं था ।

एक ट्रेन में बहुत भीड़ थी । बहुत तलाश करने पर एक सीट खाली दिखी, तो एक सज्जन वहां बैठ गये । थोड़ी देर बाद एक महाराज आये और सज्जन से बोले : यहां से उठिए, यह मेरी सीट है ।

क्या सबूत है ?

मैं यहां अपना रूमाल बिछा गया था ।

कल को आप प्रधानमंत्री की कुर्सी पर रूमाल बिछा देंगे तो क्या वह आपकी हो जाएगी ? उत्तर मिला ।

मगर रूमाल बिछाने के सिवाय और कोई कर भी क्या रहा है ! प्रधानमंत्री भी क्या कर रहे हैं ? रूमाल ही बिछा रहे हैं । राष्ट्रपति भी क्या कर रहे हैं ? रूमाल ही बिछा रहे हैं । कुर्सी तो किसी की भी नहीं है ।

अपना यहां कुछ भी नहीं है और सबने दावा किया है। और जिसने भी दावा किया है वह चोर है । परिग्रह चोरी का लक्षण है । रहो, खेलो, दावा मत करना। जियो, कुर्सियों पर बैठो मौका आये तो, धन को उपयोग करो मौका आये तो, मगर दावा मत करना । यहां कोई भी चीज किसी की नहीं है ।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने विवाह की पांचवीं वर्षगांठ पर पार्टी दिया था । मेजें

सज चुकी थीं, थालियां लगायी जा चुकी थीं। तभी मुल्ला की पत्नी ने कहा : मुल्ला, अन्दर जाइए, आपकी संदूक में जो चांदी के चम्मच पड़े हैं उन्हें ले आइए।

मुल्ला ने कहा : मैं उन्हें नहीं लाऊंगा--चाहे कुछ भी हो जाए मैं उन्हें नहीं लाऊंगा। दूसरे चम्मचों से काम चलाओ।

पत्नी बोली : क्या आप अपने मित्रों का भरोसा नहीं करते ? क्या उनको इतना नीच समझते हैं कि वे चांदी के चम्मच चुरा लेंगे ?

मुल्ला ने कहा : चुराकर तो नहीं ले जाएंगे, मगर पहचान जरूर जाएंगे।

यहां अपना कुछ भी नहीं है। यहां अपना कुछ हो भी नहीं सकता। यहां हम खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ जाते हैं। न कुछ लाते हैं, न कुछ ले जाते हैं। मगर बीच में कितना शोरगुल मचाते हैं, कितनी पताकाएं फहराते हैं, कितने उपद्रव, कितनी झंझटें—अकारण। और यह सब हो रहा है सिर्फ एक आधार पर कि अगर यह न करें तो क्या करें ? अगर ताश न खेलें तो प्राणों का खालीपन काटता है। अगर शतरंज की मोहरें न बिछाएं तो भीतर की रिक्तता का साक्षात करना होता है। अगर बाहर न उलझाए रखें अपने को तो भीतर मुड़कर देखना ही पड़ेगा, देखना ही पड़ेगा--और भीतर सब खाली है। और भीतर तब तक खाली रहेगा जब तक राम का अवतरण न हो।

भीखा कहते हैं : को लखि सकै राम को नाम. . . किसने पहचाना है राम को ? किसने जाना है नाम को ? कौन है जिसने परमात्मा से प्रीति लगायी हो, पहचान बांधी हो ? बस वही जिन्दा है, बस वही सार्थक है। और शेष सब ? शेष सब का जीवन हराम है। राम नहीं तो जीवन हराम है।

को लखि सकै राम को नाम।
देइ करि कौल करार बिसारो, जियना विनु भजन हराम ॥

और राम का यह जो नाम है, यह बुद्धि की बात नहीं है, वह विचार की बात नहीं है। कोई बुद्धि से चलेगा सोचने-समझने तो उसके हाथ कुछ भी न लगेगा। उसकी मुट्ठी खाली रह जाएगी। ऐसे तो राम को नहीं लखा जा सकता। यह तो हार्दिक अनुभूति है। तुम जबान से जपते रहो राम-राम, राम-राम, राम-राम जीवन-भर, अगले जन्म में तोते की तरह पैदा होओगे। किसी पिंजड़े में बन्द होओगे और राम-राम जपोगे। तुम तोते की तरह जन्म लेने का अभ्यास कर रहे हो अगर जबान से ही राम-राम जप रहे हो। और अगर तुम्हारी खोपड़ी में भी राम-राम गूंजता रहे तो क्या होगा ?

खोपड़ी में तो कचरे के सिवाय और कुछ भी नहीं होता। खोपड़ी तो बिलकुल कचरा है--कूड़ा-करकट। थोथे शब्द ! नहीं; जब तक तुम्हारा हृदय राम के भाव से आह्लादित न हो उठे; जब तक तुम्हारे हृदय में तरंगें न उठने लगें भावावेश

की; जब तक तुम भावित न हो उठो; जब तक तुम मस्त न हो उठो; ऐसी मस्ती न छा जाए जो फिर कभी नहीं उतरती; जब तक ऐसा भावावेश न पैदा हो जाए --तब तक राम से कोई परिचय नहीं होता है।

राम से परिचय का स्थल मस्तिष्क नहीं है, हृदय है। राम से संबंध विचार से नहीं जुड़ता, भाव से जुड़ता है। तर्क से नहीं जुड़ता, प्रीति से जुड़ता है। चिन्तन-मनन-अध्ययन से नहीं कोई संबंध है राम का। लाख पढ़ो वेद और लाख पढ़ो कुरान, कुछ हाथ न लगेगा। पंडित हो जाओगे, प्रज्ञावान नहीं। प्रकाश के संबंध में बहुत कुछ जान लोगे लेकिन आंख नहीं खुलेगी, प्रकाश को न जान पाओगे।

और सदा ध्यान रखो, प्रकाश के संबंध में जानना, प्रकाश को जानना नहीं है। यही दर्शनशास्त्र और धर्म का भेद है। दर्शनशास्त्र प्रकाश के संबंध में जानता है और धर्म आंख खोलता है और प्रकाश को जानता है। धर्म स्वाद है। धर्म है पीना और पचाना। धर्म है राम को अपनी हड्डी-मांस-मज्जा बना लेना। धर्म है राम को अपने रोएं-रोएं में समा लेना। उठते-बैठते, सोते-जागते--उसी में उठना, उसी में बैठना, उसी में सोना, उसी में जागना। वही हो जाए तुम्हारे भीतर और कोई शेष न रह जाए। वही भर जाए कि और कुछ रखने की जगह न रह जाए। तब कोई लख सका है। और जो राम को लख सका है, वह भर गया। वह भरा-पूरा हो गया। वह तृप्त हुआ है। उसने जाना है जीवन का अर्थ। उसने जानी है जीवन की गरिमा, गौरव। वह जीवन के अपूर्व आनंद से मंडित हुआ है। वह धन्य-भागी है।

धूप को बांधा किसी ने
ज्यों
छांह की रेशमी-सी
डोर से;
रात बीते स्वप्न की
ज्यों याद स्वर्णिम
दीप्त मन में
भोर से;
कमल जैसे खिल रहा हो
सांझ को. . .

तरम्बुज काटा किसी ने
ज्यों
बीच से, और रख कर गया सहसा कहीं—

यह उसी की लालिमा. . .
यह न तेरा रूप
तैरता है दीप नदिया में
सहज उर्वर कर गया हो कोई जैसे
बांझ को !

राम उतरे तो ऐसे—

कमल जैसे खिल रहा हो
सांझ को. . .
सहज उर्वर कर गया हो कोई जैसे
बांझ को

राम के बिना तो आदमी बांझ है; उसमें कुछ भी नहीं उगता—अनुर्वर, मरुस्थल है। राम के आते ही उपवन हो जाता है, मरूद्यान हो जाता है। झरने फूट पड़ते हैं शीतल जल के, हरियाली उमग आती है, फूल खिलने लगते हैं, दीये जलने लगते हैं। एक ही साथ होली और दीवाली हो जाती है !

लेकिन यह राम हम तो बिसार कर बैठे हैं। हम तो भुला कर बैठे हैं।

देइ करि कौल करार बिसारो. . .और याद रखना, आये थे जब उस लोक से तो आश्वासन देकर आये थे कि बिसारोगे नहीं। देइ करि कौल करार बिसारो... कौल किया था, करार किया था, आश्वासन दिया था कि भूल नहीं जाओगे और भूल गये, और भटक गये। प्रत्येक चैतन्य जब उतरता है अनंत से जगत में तो इसी आश्वासन को देकर उतरता है कि भूलूंगा नहीं, याद रखूंगा। मगर हमारी याद रखने की क्षमता बड़ी छोटी है। और हम जल्दी ही भूल जाते हैं। कंकड़-पत्थर बीनने लगते हैं—रंग-बिरंगे। घर की याद ही भूल जाती है।

हम उन छोटे बच्चों की भांति हैं जो मेलों में खो गये हैं और जिन्हें याद ही नहीं आ रही है घर की। और सांझ होने लगी है। मगर रंग-बिरंगे खिलौने, झूले और न मालूम क्या-क्या मदारियों के चमत्कार, और बच्चा एक झंझट से दूसरी झंझट में पड़ता जा रहा है। मदारियों के डमरू बज रहे हैं, झूले घूम रहे हैं, खिलौने बिक रहे हैं, बांसुरियां बज रही हैं। रंग-बिरंगे लोग, ढंग-ढंग के लोग. . .मेला भरा है। बच्चा भूल ही गया है कि घर भी लौटना है कि सांझ होने लगी। कि दीये जलने लगे। कि मेले के उजड़ने का वक्त आ गया है। और अंधेरे में भटक जाएगा। घर लौटना मुश्किल हो जाएगा। बच्चा भूल ही गया है कि जिनके साथ आया था उनसे कब का साथ छूट गया है। ऐसी हमारी दशा है—मेले में भटके हुए एक बच्चे की भांति।

देइ करि कौल करार बिसारो. . .और ऐसा नहीं है कि अगर हम याद करें तो हमें यह कौल-करार, यह आश्वासन याद न आ जाए। जो भी थोड़े शांत होकर बैठते हैं उन्हें तत्क्षण स्मरण आ जाता है। एक विस्फोट की भांति भीतर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मैं कहां से आया हूं, क्यों आया हूं, क्या प्रयोजन है यहां आने का ? सब भूल बैठा हूं। जिस मालिक ने भेजा है उसे भूल बैठा हूं। जिस काम के लिए भेजा है वह काम भी भूल बैठा हूं। कुछ और ही करने लगा हूं। आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास ! यहां तुम सब हरि को ही भजने आये थे। यहां तुम हरि की ही तलाश में आये थे।

यह कसौटी है जगत, एक परीक्षा है—कि इतने उपद्रव में भी तुम ईश्वर को याद रख सकोगे या नहीं। आये थे यहां एक परीक्षा में उतरने, उत्तीर्ण होने और भूल ही गये। भूल ही गये कहां से आये, कहां जाना है ! कुछ भी पता नहीं है। कहां से आये, कहां जाना है तो दूर—यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं ! मैं हूं भी या नहीं, यह भी पक्का नहीं है। ऐसी दयनीय दशा है !

जियना बिनु भजन हराम ! इसलिए भीखा ठीक कहते हैं: यह तुम जिस ढंग से जी रहे हो, यह जीना हराम है क्योंकि इसमें राम नहीं है। क्योंकि इसमें अपने दिये गये आश्वासन को भी पूरा करने की सामर्थ्य नहीं है। यह जीना बांझ है। इसमें न कुछ उगता है, न फलता है, न फूलता है। तुम एक अमावस की रात हो जिसमें एक दीया भी नहीं जलता। और फिर तुम परेशान होते हो कि दुखी क्यों हूं ? फिर तुम चिन्तित होते हो कि क्या कारण है कि जीवन में कुछ खोया-खोया लगता है। कुछ अधूरा-अधूरा ! नहीं लगेगा तो क्या होगा ?

जिसमें सरूरे-दर्दे-गमे-आशिकी नहीं
वोह जिंदगी, तो मौत है, वोह जिंदगी नहीं

जिसे तुम जिंदगी कह रहे हो उसे क्या खाक जिंदगी कहें ! उसे तो मौत ही कहना चाहिए। एक लम्बा सिलसिला मरने का, जो जन्म से शुरू होता है और मौत पर अंत होता है। सत्तर साल की एक लम्बी मरने की कथा और व्यथा !

जिसमें सरूरे-दर्दे-गमे-आशिकी नहीं
वोह जिंदगी, तो मौत है, वोह जिंदगी नहीं

जिसमें प्रेम का नशा न हो, . . .किस प्रेम का ? परम प्रेम का, प्रभु प्रम का। जिसमें प्रेम का नशा न हो, जिसमें प्रेम की मीठी पीड़ा न हो, उसे जिंदगी मत कहना, वह तो मौत है; धीमी-धीमी है इसलिए पता नहीं चलता। हमें धीमे-धीमे घटने वाली चीजों का पता नहीं चलता, इसे याद रखना। तुम रोज मर रहे हो, प्रतिपल मर रहे हो। एक दिन बीता तो चौबीस घंटे और मर गये।

लेकिन हम उल्टे लोग हैं। हम जन्मदिन मनाते हैं। हम कहते हैं कि यह हमारा तीसवां जन्मदिन है। यह तीसवां जन्मदिन नहीं है, यह मौत का तीसवां पड़ाव है। यह जन्मदिन नहीं है, यह मृत्यु-दिवस है। मौत और करीब आ गयी, और सरक आयी, और नजदीक आ गयी। तुम क्यू में खड़े हो। आगे क्यू छोटा होता जा रहा है। लोग हटते जा रहे हैं, तुम्हारा नम्बर करीब आता जा रहा है। किस क्षण तुम्हारा नाम पुकार लिया जाएगा कहना मुश्किल है।

लेकिन यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि धीमे-धीमे घटने वाली चीजों का पता नहीं चलता। एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था कि क्यों, क्या होगा कारण इसका? बच्चा धीमे-धीमे बढ़ता है, तुम्हें पता नहीं चलता––कब बच्चा था और कब जवान हो गया। जवान धीरे-धीरे बूढ़ा होता है, पता नहीं चलता––कब जवान था, कब बूढ़ा हो गया। इतने धीमे घटती है बात, पत्ते-पत्ते निकलते हैं, पता नहीं चलता कि कब वृक्ष सघन हो गया। कब पत्ते गिर गये . . . पत्ते-पत्ते गिरते हैं और पत्ते-पत्ते उगते हैं।

इस जगत में कोई भी चीज आकस्मिक नहीं होती है। बहुत धीमे और आहिस्ता होती है क्योंकि अनंत काल है। जल्दी नहीं है कोई। यह कोई आदमी की जिन्दगी नहीं है कि भागा-दौड़ी हो कि जल्दी करो। यह तो अनंत, शाश्वत है, यहां कोई जल्दी नहीं है।

वह मनोवैज्ञानिक एक प्रयोग किया। उसने एक मेंढक को उबलते हुए पानी में फेंका। उबलता हुआ पानी, मेंढक तत्क्षण छलांग लगाकर बाहर हो गया। आग थी, पानी नहीं था, मेंढक उसमें रुकता कैसे? मारी लम्बी छलांग जितनी जिंदगी में कभी भी न मारी होगी और एकदम बाहर हो गया। फिर उसी मनोवैज्ञानिक ने उसी मेंढक को ठंडे पानी में रखा और फिर ठंडे पानी को बहुत धीरे-धीरे गरम करना शुरू किया। धीरे-धीरे कुनकुना, कुनकुना, कुनकुना. . .और ठीक पानी उबलने लगा और मेंढक फिर छलांग लगाकर बाहर नहीं निकला; मर गया वहीं। क्या हुआ? इतने धीमे-धीमे पानी गरम हुआ कि मेंढक को कभी पता ही नहीं चला कि अब पानी ठंडा नहीं है, उबल रहा है।

ऐसी ही आदमी की अवस्था है। तुम्हें अगर मौत एकदम से आ जाए तो तुम राम को याद कर लो। महात्मा गांधी को गोली मारी गयी तो जो अंतिम शब्द निकले, वे थे 'हे राम'! यह आकस्मिक थी, यह घटना इतनी आकस्मिक थी कि राम का स्मरण बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन गांधी खाट पर घिस-घिस कर मरते, आहिस्ता-आहिस्ता मरते तो शायद 'हे राम' शब्द भी न निकलता। यह 'हे राम' निकला आकस्मिकता से।

तुम धीरे-धीरे मर रहे हो। तुम इतने आहिस्ता मारे जा रहे हो, जहर इतने

धीमे-धीमे पिलाया जा रहा है, कि पता ही नहीं चलता।

> जिसमें सरूरे-दर्दे-गमे-आशिकी नहीं
> वोह जिंदगी, तो मौत है, वोह जिंदगी नहीं
> जिसमें बराए-रास्त हो उनसे मुआमला
> वल्लाह! ऐन होश है, वोह बेखुदी नहीं
> इक खूने-अंदलीब के दम से थी सब बहार
> फूलों में अब वोह रंग नहीं, दिलकशी नहीं
> अल्लाह रे हिज्रे-यार की हैरततराजियां
> निकला हुआ है चांद, मगर रोशनी नहीं
> उनकी तरफ उठाऊं मैं अब क्या निगाहे-शौक
> अपनी तजल्लियों ही से फुर्सत अभी नहीं
> यूं दिन गुजारती हूं किसी के फिराक में
> जिंदा बराये नाम हूं और जिंदगी नहीं

एक बार अपने जीवन पर विचार करो। एक बार सरसरी नजर डालो अपनी जिंदगी पर। जिंदा बराये नाम हूं और जिंदगी नहीं, यही तुम पाओगे। यही तुम्हारी निष्पत्ति भी होगी––नाम मात्र को जिंदा हूं, जिंदगी कहां? और तुम भी जाने-अनजाने किसी के इंतजार में हो। होश न हो तुम्हें इस बात का। उसी होश के लिए गुरु-परताप साध की संगति! तुम किसी की प्रतीक्षा कर रहे हो, यह भी भूल गये हो किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो।

मुल्ला नसरुद्दीन को उसकी पत्नी ने बाजार भेजा था, कुछ सामान खरीद लाने को। कहीं भूल न जाए, क्योंकि रास्ते में जो भी मिल गया उसी से गपशप. . . घंटों लग जाने वाले हैं। तो उसने कहा कि तुम ऐसा करो कुर्ते में गांठ बांध लो, याद रही आएगी कि सामान लाना है। तो मुल्ला कुर्ते में गांठ बांधकर बाजार गया। सुबह का निकला सांझ घर लौटा। पत्नी ने कहा, सामान लाए? उसने कहा कि नहीं, मैं यह पूछने आया हूं कि यह गांठ किस लिए बांधी थी?

गांठ ही बांध लेने से कुछ भी न होगा। हम सबको भी बहुत गांठें बांधकर भेजा गया है इस संसार में। हमारे अचेतन में सारा अस्तित्व का राज छिपा हुआ है, कुंजियां छिपी हुई हैं। मगर हमें यह भी भूल गया है कि हमारे पास कोई अचेतन है। हम तो अपने मकान के पोर्च में ही जीते हैं, भीतर जाते ही नहीं। हमें तो यह भी याद नहीं कि भीतर भी कुछ है, हम तो इसी को मकान समझते हैं! महल है हमारे पास लेकिन उसमें ऐसे कक्ष हैं जिनमें हम कभी गये नहीं हैं। जिनके द्वार-दरवाजे हमने कभी खोले नहीं।

इक खूने-अदलीब के दम से थी सब बहार
फूलों में अब वोह रंग नहीं, दिलकशी नहीं
अल्लाह रे हिज्रे-यार की हैरत तराजियां
निकला हुआ है चांद, मगर रोशनी नहीं
यूं दिन गुजारती हूं किसी के फिराक में
जिंदा बराये नाम हूं और जिंदगी नहीं

बराये नाम ही जिंदा रहना है या जिंदा होना है? जिंदा होने का एक ही ढंग है, वह है राम को जीना। वह है राम को अपने में जीने देना। जिंदा होने का एक ही ढंग है कि तुम्हारे शून्य में परमात्मा का पूर्ण उतरे। कि तुम्हारी अंधेरी रात में उसका सूरज उतरे। कि तुम्हारे अंतस में, अंतस के सिंहासन पर राम विराजमान हो, तो तुम जियोगे। राम के बिना कोई जिंदगी नहीं है।

देइ करि कौल करार बिसारो, जियना बिनु भजन हराम ।।
बरनत बेद बेदान्त चहूं जुग, नहिं अस्थिर पावत बिसराम ।

और वेद कहते रहते हैं, वेदांत दोहराता रहता है इन्हीं सत्यों को। और तुमने सुने भी हैं ये सत्य। और तुमने याद भी कर लिए हैं ये सत्य। मगर इससे कुछ लाभ नहीं है। पढ़ो वेद कि कुरान कि बाइबिल, इससे कुछ बहुत लाभ नहीं। पढ़ोगे तो वेद मगर पढ़ोगे ही न! वेद का अर्थ खुलेगा नहीं क्योंकि वेद का अर्थ तो तुम्हारे हृदय में छिपा है। वहां है गांठ, वहां खोलनी है गांठ। जब तुम्हारे हृदय की गांठ खुलेगी और हृदय में पड़े हीरे तुम्हें दिखाई पड़ेंगे तो उनकी ही रोशनी में वेद का अर्थ खुलेगा अन्यथा वेद का अर्थ नहीं खुलेगा। वेद कुछ व्याकरण नहीं, भाषा नहीं। वेद तो तुम्हारा स्वानुभव है। वेद-वेदान्त चारों युगों से वर्णन कर रहे हैं उसका। पुकार दे रहे हैं तुम्हें। नहिं अस्थिर पावत बिसराम! लेकिन तुम्हारे चंचल चित्त ने, तुम्हारी भाग-दौड़ ने अभी तक विश्राम नहीं पाया है।

राम को पाओ तो विश्राम मिले। राम ही विश्राम है। राम के बिना कहां विश्राम? दौड़-धूप रहेगी जारी तब तक अंतिम मंजिल न मिल जाए तब तक पड़ाव हैं, रात भर रुक जाओ, सुबह फिर चलना होगा। तब तक चलते ही जाना होगा। और अगर कहीं तुम जिद करके किसी पड़ाव को ही मंजिल समझकर रुक भी गये तो भी तुम्हारे प्राण तड़फते रहेंगे। राम से बिना मिले कोई उपाय नहीं है।

बरनत बेद बेदान्त चहूं जुग, नहिं अस्थिर पावत बिसराम ।
जोग जज्ञ तप दान नेम व्रत, भटकत फिरत भोर अरु साम ।।

और ऐसा भी नहीं है कि तुमने कुछ किया न हो। तुमने योग भी किया, यज्ञ भी किये, तप भी किया, दान भी किया, नियम भी पाले, व्रत भी किये मगर

फिर भी सुबह से सांझ तक सिर्फ भटकाव हो रहा है। क्योंकि यह सब तुमने किया तो, मगर इस करने में राम का प्रेम नहीं था। इस करने में स्वर्ग पाने का लोभ होगा। इस करने में मृत्यु के पार भी व्यवस्था कर लूं अभी से, बीमा कर लूं अभी से, इसकी आकांक्षा होगी। इस सब में नर्क का भय होगा। इस सब में पंडितों ने तुम्हें जो भय और प्रलोभन दिये हैं उनका हाथ होगा, राम का प्रेम नहीं। इसमें भी शायद धन, पद, प्रतिष्ठा पा लेने की आकांक्षा होगी। मंदिरों में भी जाकर तुम क्या मांगते हो?

एक धनी आया और सूफी फकीर जुन्नैद के सामने उसने हजार सोने की अशर्फियां रख दीं। कहा कि इन्हें स्वीकार कर लें, बड़ी कृपा होगी।

जुन्नैद ने कुछ आदमी के भीतर झांका और कहा कि पहले कुछ सवाल। पहला सवाल यह कि तेरे पास और अशर्फियां हैं?

उस आदमी ने कहा: हां हैं, बहुत हैं।

जुन्नैद ने पूछा: और तू और भी अशर्फियां चाहता है या नहीं।

उसने कहा: हां, जरूर चाहता हूं; असल में ये जो हजार अशर्फियां आपके चरणों में चढ़ायी हैं, इसी आशा में कि सुना है मैंने कि आपके चरणों में एक चढ़ाओ और करोड़ गुना मिलता है।

जुन्नैद ने कहा: तो ले जा ये अशर्फियां वापिस क्योंकि तू गलत कारण से ले आया है। तेरे मन में प्रेम का उदय नहीं हुआ है, तू लोभ से ही आया है। यह दान नहीं है, यह तो सौदा है। फिर तू गरीब आदमी है, तुझे अभी और अशर्फियों की जरूरत है। हम अमीर हैं, हमें और अशर्फियों की जरूरत नहीं है। तू ले जा। गरीब आदमी से क्या लेना! लेंगे किसी अमीर से।

जुन्नैद ने लौटा दिया उस आदमी को अशर्फियों के साथ। वह आदमी बहुत गिड़गिड़ाया कि नहीं आप ले लो। जुन्नैद ने कहा: नहीं, ये अशर्फियां पाप हैं क्योंकि इनमें दान नहीं, प्रेम नहीं। मुझसे कुछ संबंध नहीं, तू तो अपना सौदा कर रहा है। तू तो जुआ खेल रहा है। तू तो दांव लगा रहा है। मैं कोई जुआ नहीं हूं, मैं कोई तेरा दांव नहीं बनने वाला। यह कोई सौदा नहीं है, यह कोई दुकान नहीं है। ले जा यहां से, भाग जा यहां से और दुबारा कभी यहां मत आना। और जिन्होंने तुझसे कहा है कि एक दो जुन्नैद को तो करोड़ मिलता है, गलत कहा होगा। बेईमान होंगे वे। जब तक मैं जिंदा हूं तब तक तो ऐसी झूठी बात मत करो। मेरे मरने के बाद जरूर यही लोग इकट्ठे हो जाएंगे, जुन्नैद ने कहा, और यही प्रलोभन।

तुम करते हो योग भी, व्रत भी, तप भी, दान भी, नियम भी, व्रत भी लेकिन क्या तुम्हारी आत्मा के आनंद से इनका जन्म होता है? क्या तुम प्रफुल्लता से करते हो? या कोई प्रलोभन? अगर प्रलोभन है तो भटकते रहोगे सुबह से सांझ तक,

जन्म से मृत्यु तक।

सुर नर मुनिगन पचि पचि हारे . . . इसीलिए तो देवता भी, मनुष्य भी और जिनको हम तथाकथित मुनि कहते हैं वे भी, पचि पचि हारे . . . पच गये, हार गये, बुरी तरह हारे हैं क्योंकि शुरुआत गलत थी। बीज ही गलत बो दिया था, बीज नीम का बो दिया था और आम की प्रतीक्षा करते रहे। पचि पचि हारे! हारते न तो और क्या होता? नीम के बीज से आम का पौधा होने वाला नहीं है। लाख तुम उपाय करो, लाख जोग, यज्ञ, तप, दान, नेम, व्रत, जो भी करना हो करो—नीम का बीज बोया है तो नीम का ही वृक्ष पैदा होगा। और साधारण आदमियों की तो बात छोड़ दो, तुम्हारे तथाकथित मुनि, साधु, महात्मा जरा भी भिन्न नहीं हैं तुमसे। इंच-भर का फासला नहीं है उनमें और तुममें। तुम्हारा गणित, उनका गणित एक।

और शायद इसीलिए तो वे तुम्हें प्रभावित करते हैं। क्योंकि उनकी भाषा और तुम्हारी भाषा एक। शायद इसीलिए तो तुम उनके आसपास इकट्ठे होते हो, क्योंकि वे वही कहते हैं जो तुम सुनना चाहते हो। वे वही कह सकते हैं जो तुम सुनना चाहते हो। उनके पास कुछ और है भी नहीं। कोई क्रांति नहीं है जीवन की। कोई नव का उद्घोष नहीं है। पुरानी पिटी-पिटायी बातों को दोहरा रहे हैं। तुमने भी सुनी हैं वे बातें। इतनी बार कही गयी हैं वे बातें, इतनी बार दोहरायी गयी हैं वे बातें, कि तुम्हारे खून में मिल गयी हैं। और जब असत्य भी बहुत बार दोहराए जाते हैं तो सत्य जैसे मालूम होने लगते हैं।

इसीलिए तो विज्ञापनदाता असत्यों को दोहराए जाते हैं। वे इसकी फिक्र ही नहीं करते कि तुम मानोगे कि नहीं मानोगे—वे दोहराए जाते हैं, दोहराए जाते हैं, दोहराए जाते हैं। एक सीमा है, उसके बाद तुम मानने लगते हो।

अगर सुबह से सांझ तक तुम्हें एक ही बात सुनने को मिले—अखबार में, रेडियो पर, टेलीविजन पर, फिल्म में, बाजार में, सड़कों पर लगे पोस्टरों पर, तुम चाहे सचेतन रूप से ध्यान दो या न दो, तुम चाहे ख्याल करो या न करो कि लक्स टॉयलेट साबुन ही सर्वश्रेष्ठ साबुन है। तुमने शायद ध्यान से इसे पढ़ा भी नहीं मगर रास्ते से गुजरे तो दिखाई तो पड़ गया। और अब तो बिजली के माध्यम से विज्ञापन होता है। तो पहले तो जो विज्ञापन बनते थे बिजली के माध्यम से वे थिर रहते थे। फिर मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि थिर रखना ठीक नहीं। लक्स टॉयलेट साबुन ही सर्वश्रेष्ठ साबुन है, अगर यह थिर रहा प्रकाश तो आदमी एक ही बार पढ़ता है, इसको बुझाओ, जलाओ; बुझाओ, जलाओ। तो जितनी बार बुझाओगे-जलाओगे उतनी बार पढ़ना पड़ता है। तो जितनी पुनरुक्ति होगी, उतना यह अचेतन में बैठता चला जाता है।

अखबार में भी वही, रेडियो पर भी वही, फिल्म में भी वही. . .और इनके साथ-साथ वे सब तत्व जोड़ दो जिनसे लोग प्रभावित होते हैं। अब लक्स टॉयलेट साबुन की डिबिया को, टिकिया को देखने में तो कोई उत्सुक नहीं है लेकिन हेमामालिनी को साथ में खड़ा कर दो। कहो कि हेमामालिनी कहती है कि लक्स टॉयलेट साबुन ही सर्वश्रेष्ठ साबुन है। हेमामालिनी को तो देखना ही पड़ेगा। उसी के साथ देखने में लक्स टॉयलेट साबुन की टिकिया भी देखनी पड़ेगी। और जब हेमामालिनी कहती है तो समझो वेद कहता है। असत्य तो हो ही नहीं सकता।

एक दिन बाजार तुम जाते हो, दुकानदार पूछता है कौन-सा साबुन? और तुम कहते हो लक्स टॉयलेट। और तुम सोचते हो तुम सोचकर कह रहे हो। तुम सोचते हो कि तुम विचारकर कह रहे हो। ये भ्रांतियां हैं तुम्हारी। सोच-विचार साधारण आदमी का लक्षण नहीं है।

अरस्तू की परिभाषा कि मनुष्य विचारशील प्राणी है, सबसे झूठी परिभाषा है। मनुष्यों में कभी-कभी कोई विचारशील हुआ है लेकिन उससे मनष्यों की परिभाषा नहीं बनती। तुम अपवाद से परिभाषा नहीं बना सकते। कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई कबीर, कोई भीखा—कुछ इने-गिने लोग विचारशील हुए हैं, उनसे तुम सभी मनुष्यों की परिभाषा मत करने बैठ जाना। वे अपवाद हैं। अपवाद नियम को सिद्ध करता है। उससे सिर्फ इतना ही साफ होता है कि कभी कुछ अद्भुत लोग अविचार के घेरे से मुक्त हो गये हैं। निर्विचार के चैतन्य को उपलब्ध हो गये हैं। और जो निर्विचार के चैतन्य को उपलब्ध है उसी की क्षमता विचार है। तुम क्या विचार करोगे, तुम तो सोये हो। सपने देख सकते हो।

और सपने बाहर से पैदा करवाये जा सकते हैं। वही किया जा रहा है। विज्ञापन से तुम्हारे चारों तरफ हवा पैदा की जाती है। तुम जानकर हैरान होओगे कि रात सपना तक बाहर से पैदा करवाया जा सकता है। तुम सोये हो रात, तुम्हें कुछ पता नहीं, एक तकिया तुम्हारी छाती पर रख दिया जाए। बस तुम्हारे भीतर एक सपना पैदा होगा कि एक राक्षस छाती पर चढ़ा बैठा है। तकिया है मगर तुम्हें नींद में पता चलेगा कि राक्षस है। कि तुम्हारे पैरों को थोड़ी-सी ठंडी हवा दी जाए और तुम सपना देखोगे कि तुम एक बर्फीले पहाड़ पर चढ़ रहे हो। और पैर ठंडे होते जा रहे हैं। अब तो तुम्हारे सपने भी प्रभावित किये जा सकते हैं। इस पर बहुत प्रयोग चल रहे हैं कि आदमी को सोने भी क्यों शांति से दिया जाए। उसके सपनों में भी काम जारी रखो। धीरे-धीरे जब इसकी कला विकसित हो जाएगी तो तुम्हारे सपने में भी हेमामालिनी खड़ी है, वही लक्स टॉयलेट साबुन लिए हुए, कि लक्स टॉयलेट साबुन सबसे बेहतर साबुन है।

अभी विज्ञापनकर्ताओं ने एक अद्भुत खोज की है जो बड़ी खतरनाक है। तुम

फिल्म देखने जाते हो तो फिल्म तो बड़ी तेजी से घूमती है। तेजी से घूमने के कारण ही तुम्हें फिल्म में गति मालूम होती है। एक आदमी चल रहा है, तो तुम सोचते हो चलते हुए आदमी की कोई फिल्म होती है? चलते हुए आदमी की कोई फिल्म नहीं है, लेकिन उस आदमी ने एक कदम उठाया, दूसरा उठाया, तीसरा उठाया... हजारों चित्र हैं इसके। पैर जरा-सा उठा एक चित्र, फिर जरा-सा उठा दूसरा चित्र, फिर तीसरा... वे सभी चित्र एक साथ तेजी से जा रहे हैं। वे इतनी तेजी से जा रहे हैं कि तुम्हें पैर उठता हुआ मालूम पड़ता है। तुम कभी फिल्म को देखना जाकर तो तुमको लगेगा एक से हजारों चित्र। इन्हीं चित्रों के बीच में एक चित्र डाल देते हैं--बस एक छोटा-सा चित्र--लक्स टॉयलेट साबुन। वह दिखाई भी नहीं पड़ेगा, वह एक ही चित्र है। तुम तो देखने में कुछ और लगे हो वह दिखाई भी नहीं पड़ेगा। तुम्हारी आंखों की पकड़ में भी नहीं आएगा। तुम्हें सुनाई भी नहीं पड़ेगा--लक्स टॉयलेट साबुन, फिर भी तुम्हारा अचेतन मन उसको ग्रहण कर लेगा।

इस पर अभी अमरीका में, रूस में प्रयोग हुए हैं और बड़े अद्भुत नतीजे निकले हैं। जैसे कि रोज कोई आइसक्रीम कितनी बिकती है इसका महीने भर तक औसत निकाला गया; कि समझो, हजार रुपये की बिकती है हर रात सिनेमा में। फिर यह विज्ञापन किया गया सिनेमा में--जो दिखाई भी नहीं पड़ता और सुनाई भी नहीं पड़ता; जो सिर्फ अचेतन मन पकड़ता, है, चेतन मन को पता ही नहीं चलता। उस दिन एकदम दो हजार रुपये का आइसक्रीम बिका। इस पर बहुत प्रयोग किये गये और पाया गया कि चेतन को पता ही नहीं चलता और अचेतन पकड़ लेता है, और आदमी बाहर जाकर वही आइसक्रीम खरीद लेता है जिस आइसक्रीम को अचेतन को पकड़ा दिया गया है।

यह तो बड़ी खतरनाक खोज है। इस खोज का उपयोग राजनेता करेंगे ही। मोरारजी भाई देसाई को ही वोट देना; यह दिखाई भी न पड़े, यह सुनाई भी न पड़े, और यह तुम्हारे अचेतन में बैठ जाए... तुम चले वोट देने...। और तुम सोचोगे कि स्वतंत्रता का उपयोग कर रहे हो, मताधिकार का उपयोग कर रहे हो। यह कोई मताधिकार का उपयोग नहीं है, न कोई स्वतंत्रता का उपयोग है। तुम गुलाम की तरह, सोये आदमी की तरह, मोरारजी भाई की पेटी में वोट डाल आओगे, और इसी भ्रांति में कि तुम एक विचारशील व्यक्ति हो, तुमने सोच-समझकर वोट दिया है।

यह तो आज की बात है, लेकिन सदियों से यह हो रहा है--इसी तरह तुम हिन्दू बनाये गये हो; इसी तरह तुम मुसलमान बनाये गये हो। बाहर से ठोंक-ठोंक कर, विज्ञापन कर-कर के, समझा-समझा कर, कि जीसस ही एकमात्र ईश्वर के इकलौते बेटे हैं। जीसस ही सही हैं। जो जीसस को मानेगा, वही पहुंचेगा। यह

तना ठोस ठोंक-ठोंककर तुम्हारे भीतर डाल दिया गया है कि तुम सोच भी नहीं सकते कि चर्च से कसे अलग हो जाओ। कि कोई समझा रहा है महावीर, कि कोई समझा रहा है बुद्ध, कि कोई समझा रहा है मुहम्मद, मगर वही बात है, वही प्रचार है, वही व्यवसाय है।

तो इस तरह के प्रचार के माध्यम से तुम कुछ करने भी लगोगे लेकिन उस करने में तुम्हारे प्राणों का कोई सहयोग नहीं होगा।

सुर नर मुनिगन पचि पचि हारे, अंत न मिलत बहुत सो लाम... अंत का पता ही नहीं चला उन्हें। अंतिम मंजिल का कोई पता ही नहीं चला उन्हें। राम उन्हें मिला ही नहीं। और ऐसा भी नहीं है कि उनको राम के दर्शन न हुए हों। अनेकों को राम के दर्शन हुए धनुष-बाण लिए; सीता मइया के साथ खड़े हैं; हनुमान जी पास में ही अपनी पूंछ मोड़े बैठे हुए हैं--इसका दर्शन भी हुआ है। मगर जब तक तुम्हें इस तरह के दर्शन हो रहे हैं तब तक तुम समझना कि सपने चल रहे हैं। यह सब सपना है।

राम कोई चित्र की तरह प्रगट नहीं होंगे कि धनुष-बाण लिए खड़े हैं। राम कोई चित्र की भांति प्रगट होने वाले नहीं हैं। राम तो स्वानुभव है--दृश्य की तरह नहीं, द्रष्टा की तरह अनुभव होगा। मैं राम हूं, ऐसा अनुभव होगा। अहं ब्रह्मास्मि, ऐसा अनुभव होगा। जब तक तुम्हें राम बाहर दिखाई पड़ें तब तक समझना ये प्रचारित राम हैं, ये विज्ञापित राम हैं। यह दूसरों ने जो तुम्हें समझाया है सदियों-सदियों तक, उसकी छाया है, उसकी छाप है। तब तक यह कल्पना जाल है।

साहब अलख अलेख निकट हीं... और जिसको तुम खोज रहे हो वह बहुत निकट है। साहब अलख... यद्यपि देखने में नहीं आता, पढ़ने में नहीं आता, उसकी कोई व्याख्या नहीं है, उसका कोई निर्वचन नहीं होता, फिर भी वह बहुत निकट है, निकट से भी निकट है। निकट कहना भी ठीक नहीं क्योंकि वही तुम्हारा अन्तरतम है।

साहब अलख अलेख निकट हीं, घट घट नूर ब्रह्म को धाम। कहां खोज रहे हो--किस धनुर्धारी राम में, किस बांसुरी बजाने वाले कृष्ण में, किस नग्न खड़े महावीर में--कहां खोज रहे हो? वह तुम्हारे भीतर खड़ा है, वह तुम्हारे भीतर विराजमान है। और जैसा तुम्हारे भीतर विराजमान है, ऐसा ही प्रत्येक के भीतर विराजमान है, लेकिन पहली पहचान अपने भीतर होती है।

फिर तो घट-घट नूर ब्रह्म को धाम...। जिसने अपने भीतर देखा उसने सबके भीतर देखा। जिसने एक बूंद में पा लिया उसने सारे सागरों में पा लिया। जिसको अपने भीतर पहचान हो गयी, बस बात हो गयी, मौलिक बात हो गयी। फिर मनुष्यों में ही नहीं, वृक्षों में भी, चट्टानों में भी वही दिखाई पड़ेगा। चट्टान में

वह चट्टान है, वृक्ष में वह वृक्ष है, पशु में पशु, पक्षी में पक्षी, मनुष्य में मनुष्य--ये सारे रूप उसके हैं, ये सारे रंग उसके हैं। परमात्मा बड़ा रंग-बिरंगा है। परमात्मा बड़ा सतरंगा है। परमात्मा पूरा का पूरा इन्द्रधनुष है। परमात्मा संगीत के सातों स्वर है। परमात्मा एक आयामी नहीं है, बहु आयामी है। पूरा सरगम है--सा रे ग म प ध नी . . . पूरा ! कुछ बचता नहीं है उससे, पर पहली पहचान भीतर।

जो उसे बाहर खोजने चलेगा, चूकता रहेगा। बाहर उसे जान ही कैसे सकते हो, जब भीतर नहीं जान सके। निकट जो था वहां नहीं पहचान सके, दूर को कैसे पहचान सकोगे ? जिसने मधु का स्वाद लिया है, जाना मिठास, अब दूसरे को मधु पीते देखेगा, तो जानेगा कि क्या घट रहा है। लेकिन जिसने मधु का स्वयं स्वाद नहीं लिया, वह दूसरे को कितना ही मधु पीते देखे, उसे कुछ भी पता नहीं चलेगा। प्यास लगी और तुमने जल पिया फिर तुम किसी को भी जल पीते देखोगे तो तुम जानोगे कि प्यास की तृप्ति क्या है ! धूप पड़ी और तुम छाया में बैठे तो तुम जानोगे छाया में बैठे हुए आदमी का अनुभव क्या है ! लेकिन तुमने कभी धूप का अनुभव नहीं किया, तुमने कभी छाया नहीं जानी, तुमने प्यास नहीं जानी, तुमने तृप्ति नहीं जानी, तुमने मधु का कभी स्वाद नहीं लिया--तुम कैसे समझोगे ? तुम कैसे पहचानोगे?

दूसरे को देखकर तुम कुछ भी नहीं पहचान सकते हो जब तक कि पहले पहचान अपने भीतर न बन गयी हो, अपने भीतर न रच गयी हो, न पच गयी हो।

साहब अलख अलेख निकट हीं, घट घट नूर ब्रह्म को धाम ।।

अपने हर तारे-नजर में गो इन्हें पाती हूं मैं
फिर भी दिल की उलझनों में हाय खो जाती हूं मैं
लज्जते-गम मेरी राहत, सोजे-दिल मेरा सकूं
तल्खिए-नाकामयाबी में मजा पाती हूं मैं
वक्ते-रुखसत उनकी नजरों ने जो सौंपी थी कभी
आज तक वह याद सीने में निहां पाती हूं मैं
इक तरफ उनकी उम्मीदें, इक तरफ मायूसियां
जिंदगी की रहगुजर से यूं गुजर जाती हूं मैं
उनसे यूं मिलती हूं अपने दिल की खिलवत गाह में
जैसे कोई गुमशुदा-सी चीज पा जाती हूं मैं
चांद को, तारों को, गुल को, गुंचहाए-बाग को
देखती हूं और फिर मायूस हो जाती हूं मैं
दर्द की लज्जत में इतना लुत्फ अब आने लगा
जिंदगी की इशरतों को भूलती जाती हूं मैं

उनकी नजरों ने न जाने चुपके-चुपके क्या किया
दिल बहलता ही नहीं गो लाख बहलाती हूं मैं

एक बार तुम्हें झलक मिले, एक बार तुम्हारी आंख राम से भरे, कि फिर सारा जगत, जैसा तुमने कल तक उसे जाना था, विलीन हो जाता है और एक नये जगत का आविर्भाव होता है। कल तक तुमने जो जाना था, वह झूठा था, माया था; अब जो प्रगट होता है सत्य है।

अपने हर तारे-नजर में गो इन्हें पाती हूं मैं
फिर भी दिल की उलझनों में हाय खो जाती हूं मैं

लेकिन झलक पा-पा कर भी पहले कई बार झलक खो जाएगी। मिलेगी झलक, एक क्षण को टिकेगी और विदा हो जाएगी। मगर इसी तरह धीरे-धीरे थिरता आएगी। झलकें और झलकें और झलकें . . . और एक दिन अचानक सब ठहर जाएगा--झलक झलक न रह जाएगी, झलक तुम्हारा स्वभाव है, ऐसी अनुभूति स्पष्ट हो जाएगी--तब समाधि ! जब तक झलक मिलें तब तक ध्यान, जब झलक थिर हो जाए तो समाधि।

खोजत नारद सारद अस अस, जातु है समय दिवस अरु जाम।

खोज रहे हैं लोग--कोई इस तरह, कोई उस तरह; लेकिन समय व्यतीत हो रहा है। जो खोज रहा है, वह समय गंवा रहा है क्योंकि खोज का मतलब ही है बाहर खोजना; खोज का मतलब ही है यह मान लिया कहीं और है। खोजने वाले में छिपा है, तो खोज कैसे होगी ? सब खोज छोड़नी होगी।

इसे फिर से दोहरा दूं-- राम को वे ही पाते हैं, जो सब खोजकर चुप बठ जाते हैं। सन्नाटे में पाया जाता है, मौन में पाया जाता है, अत्यंत निष्क्रिय चित्त की शांत अवस्था में पाया जाता है। दौड़-दौड़ कर नहीं मिलता, बैठकर मिलता है। इस संसार में सब दौड़कर मिलता है सिर्फ परमात्मा को छोड़ कर, परमात्मा बैठकर मिलता है। सब चीजें दौड़कर मिलती हैं, परमात्मा रुककर मिलता है क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर है, दौड़ते रहोगे, दौड़ में उलझे रहोगे। बैठक लग जाए . . . बैठक कहां लगे ? गुरु-परताप साध की संगति ! किसी बैठे हुए के पास बैठक लग जाएगी, कोई स्वयं जो थिर हो गया है, उसके पास बैठोगे, संक्रामक हो जाएगी थिरता।

सुगम उपाय जुक्ति मिलबे की ...इसलिए भीखा कहते हैं : मैं तुम्हें सुगम उपाय बताये देता हूं--न जोग, न जज्ञ, न तप, न दान, न नेम, न व्रत--सुगम उपाय जुक्ति मिलबे की, भीखा इह सतगुरु से काम ! एक सद्गुरु को पा लो . . . सद्गुरु का काम ही यही है कुल जमा खुद बैठ गया, तुम्हें बैठना सिखा दे; खुद रुक गया, तुम्हें रुकना

सिखा दे। किसी शांत व्यक्ति के पास बैठोगे शांत होने लगोगे। और ऐसा तुम्हें अनुभव नहीं होता ऐसा भी नहीं है। कभी-कभी तुमने देखा, उदास बैठे थे और चार हंसते हुए मित्र आ गये, और तुम उदासी भूल गये और हंसने लगे। और तुमने देखा, तुम हंसते थे, प्रसन्न थे, और चार उदास लोग आ गये और तुम्हारी हंसी खो गयी और तुम भी उदास हो गये।

हम अलग-थलग नहीं हैं, हम एक-दूसरे में प्रवेश करते हैं; हमारी तरंगें एक-दूसरे को आंदोलित करती हैं; हमारी ऊर्जा का आदान-प्रदान हो रहा है; जैसे श्वास जो अभी मेरे भीतर है, क्षण-भर बाद तुम्हारे भीतर होगी और जो तुम्हारे भीतर है, मेरे भीतर होगी। जैसे श्वास का आदान-प्रदान हो रहा है ... यहां हम इतने लोग बैठे हैं, हमारी श्वासें एक से दूसरे में प्रवेश कर रही हैं। ठीक ऐसी ही हमारी जीवन-ऊर्जा भी रोएं-रोएं से एक-दूसरे में प्रवेश कर रही है।

सत्संग का अर्थ है: किसी ऐसे व्यक्ति के पास बैठ जाना जो परमात्मा के पास बैठ गया हो। उसके रोएं-रोएं से, उसकी लहर में उसकी तरंग में बहना, उसके साथ हो लेना, उसके हाथ में हाथ दे देना। और जो बड़े-बड़े उपायों से नहीं हो पाता जिसके लिए--खोजत नारद सारद अस अस--ऐसे बड़े-बड़े खोजी खोजते रहे और खोजते-खोजते समाप्त हो गये, वह अपूर्व बिना प्रयास के घट जाता है, प्रसाद से घट जाता है--गुरु-परताप साध की संगति--वह गुरु के प्रसाद से घट जाता है! सुगम उपाय जुक्ति मिलबे की, भीखा इह सतगुरु से काम।

तूफां उठा-उठा दिये हैं
जब इश्क ने हौसले किये हैं
किस-किस की नजर बचा-बचाकर
आंसू गमे-जीस्त ने पिये हैं
तारीक थीं जिंदगी की राहें
यादों के दिये जला लिये हैं
ऐ हाले-तबाह! ओ कल्बे महजूं!
कुछ हो न सका तो हंस दिये हैं
मत पूछो निगहे-फित्नए-सामां
किस आस पै आज तक जिये हैं
तकमीले-रसूमे-गम हुई है
जब चाक जुनूंने सी लिये हैं
ए हुस्ने-सलूक-ओ-लुत्फे-एहसां!
किस नाज से उसने गम दिये हैं

दिल जान रहा है, हाल अपना
कहने को बहुत लिये दिये हैं
हां बज्मे-सुखन के हमसफीरो
कुछ सोच के होंठ सी लिये हैं
तूफां उठा-उठा दिये हैं
जब इश्क ने हौसले किये हैं

गुरु के पास बैठना इश्क का हौसला है, वह प्रेम का साहस है, दुस्साहस है। क्योंकि गुरु के पास बैठने का एक ही अर्थ है--मिटने की तैयारी, अपने हाथ मिटने की तैयारी, अपने हाथ गलने की तैयारी। जो गुरु के पास बैठ कर गल जाए और बह जाए, उसी को सत्संग मिला। और जिस क्षण तुम गल जाते हो और बह जाते हो उसी क्षण परमात्मा तुम में प्रवेश करता है। जब तुम नहीं हो, तब परमात्मा है। जब तक तुम, तब तक राम नहीं; जब तुम नहीं, तब राम। हारे को हरि-नाम . . . जब तुम बिलकुल हार गये, बिलकुल हार गये, ऐसे हार गये कि बचे ही नहीं, बस तब, उसी क्षण, एक आह्लाद तुम्हारे भीतर से उठता है, सारे जगत में व्याप्त हो जाता है।

साधो, सब महं निज पहिचानी ...तब तुम पहचान सकोगे सब में निज को। जग पूरन चारिउ खानी . . . मनुष्यों में ही नहीं, अंडज, स्वेदज, पिंडज और उद्भिज सब चारों योनियों में तुम उसी को पहचान सकोगे। फिर तो तुम पाओगे जग उसी से भरा है--जग पूरन चारिउ खानी--उसी से पूर्ण है।

अविगत अलख अखंड अमूरति, कोउ देखे गुरु ज्ञानी।

अज्ञेय है वह, अलख है वह, अखंड है वह, अमूर्त है वह, सो इन आंखों से, इन फूटी आंखों से, तो देखने का उपाय नहीं है। चर्म-चक्षुओं से तो वह नहीं देखा जा सकता; ये तो फूटी आंखें हैं, इनसे तो बस वस्तुएं देखी जा सकती हैं, ऊपर-ऊपर की बातें देखी जा सकती हैं। वह अंतरतम जगत का इनसे न देखा जा सकेगा, उसे देखने के लिए तो ज्ञान की आंख चाहिए, ध्यान की आंख चाहिए। कोउ देखे गुरु ज्ञानी . . .कोई जिसने अपने भीतर का अंधकार दूर कर दिया है--गुरु; कोई जिसने ध्यान को जगा लिया है और ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, ऐसा प्रज्ञावान उसे देख पाता है। मगर तुम्हारी भी यह क्षमता है और तुम्हारा भी यह अधिकार है।

ता पद जाय कोउ कोउ पहुंचे, जोग जुक्ति करि ध्यानी।

कभी-कभी, कोई-कोई, बहुत मुश्किल से वहां पहुंच पाया है, कोई ध्यान करने वाला। ध्यान का अर्थ होता है: निर्विचार चित्त। ध्यान का अर्थ होता है: निष्क्रिय

चित्त। ध्यान का अर्थ होता है : निर्विकल्प चित्त——जागरण तो पूरा लेकिन विचार बिलकुल नहीं।

आदमी दो अवस्थाएं जानता है, तीसरी से अपरिचित है। एक अवस्था——विचार तो बहुत, जागरण बिलकुल नहीं। यह हमारा. . .जिसको हम जागरण कहते हैं, यह बड़ा उल्टा शब्द हम उपयोग करते हैं, जिसको हम जागरण कहते हैं उसमें जागरण बिलकुल नहीं है, विचार ही विचार हैं। सुबह तुम जागते ही से करते क्या हो दिन भर फिर——विचार और विचार. . .भीड़ चली आ रही है, विचारों की, एक तारतम्य बंधा रहता है, अखण्ड धारा बहती रहती है। इन्हीं विचारों में तुम अटके रहते हो, इन्हीं विचारों में तुम दबे रहते हो, जैसे दर्पण पर धूल जमी हो ऐसे ही ये विचार तुम्हारी चेतना पर जमे हैं। एक तो यह हमारी अवस्था है, जिसको हम जागरण कहते हैं, जो कि जागरण बिलकुल नहीं है, जो कि नींद का ही दूसरा रूप है——आंख खुली नींद।

और एक दूसरी अवस्था है, जब विचार चले जाते हैं। गहरी. . .गहरी रात्रि में, गहन निद्रा में जब स्वप्न भी नहीं होते, विचार चले जाते हैं मगर तब जागरण भी नहीं होता, तब हम गहरी निद्रा में खो जाते हैं।

तो एक तो अवस्था है सुषुप्ति की, तब नींद इतनी गहरी होती है कि दर्पण ही नहीं बचता, धूल भी नहीं होती। और दिन में जब दर्पण होता है तो धूल बहुत होती है। दोनों अवस्था में हम चूकते हैं। एक तीसरी अवस्था है, इन दोनों के मध्य में——धूल तो न हो और दर्पण हो। एक ऐसी अवस्था पैदा करनी है जो नींद जैसी शांत हो, शून्य हो और जागरण जैसी जाग्रत हो——उस अवस्था का नाम ध्यान है; उस कला का नाम ध्यान है। ध्यानी सोया होता है एक अर्थों में क्योंकि तुम जितने गहरी नींद में शांत होते हो, उतना वह जागा हुआ शांत होता है। और एक अर्थ में जागा होता है, ऐसा जैसा तुम कभी नहीं जागे। और जिसको यह अनुभूति मिल गयी वह जागते में भी जागा है, सोने में भी जागा है; उसका दर्पण निरन्तर खाली है——न विचार उठते, न स्वप्न उठते। इस खाली दर्पण में सारा राज छिपा है, सारे धर्मों का राज छिपा है।

> ता पद जाय कोउ कोउ पहुंचे, जोग जुक्ति करि ध्यानी ॥
> भीखा धन जो हरि-रंग-राते, सोइ हैं साधु पुरानी ॥

और जिनको ऐसा ध्यान मिल गया, उनके मजे की भीखा कहता है क्या बात कहें, कैसे बात कहें, किन शब्दों में कहें ? भीखा धन जो हरि-रंग-राते . . . इतना ही कह सकते हैं कि धन्यभागी हैं वे, बड़भागी हैं वे जो परमात्मा की शराब पीकर मस्त हो रहे हैं। ध्यान में घटती है यह घटना—— एक मधुशाला खुलती है अनन्त की, शाश्वत की।

भीखा धन जो हरि-रंग-राते. . .जो हरि के रंग में रंग गये, जो ऐसे हरि के रंग में रंग गये कि दीवाने हो गये——रंग-राते——पागल हो गये, मदमस्त हो गये, जो भूल ही गये और सब, जिनके लिए हरि ही बस एकमात्र रहा. . .।

हरि शब्द बड़ा प्यारा है; उसका अर्थ होता है : चोर! दुनिया की किसी भाषा में परमात्मा के लिए ऐसा प्यारा शब्द नहीं है। हरि का अर्थ होता है : जो हरण कर ले, चुरा ले, झपट ले। जिस क्षण तुम ध्यान में पहुंचोगे, हरि झपट लेगा, चुरा लेगा सब, छोड़ेगा ही नहीं पीछे कुछ, तुम्हें पूरा-का-पूरा ले लेगा अपने में, पूरा डुबा लेगा जैसे नदी सागर में डूब जाती है, ऐसे हरि तुम्हें चुरा लेगा। हरि चोर है!

भीखा धन जो हरि-रंग-राते, सोइ हैं साधु पुरानी ॥

और उनको ही कहो असली साधु, उनको ही कहो शाश्वत साधु, उन्हीं को कहो जन्मों-जन्मों के साधु, पुराने साधु, प्राचीन साधु, सदियों-सदियों से जो साधुता में उतरे हैं——जो हरि के रंग में मस्त हो जाते हैं।

> रहता है बस खयाल ही तेरा तेरे बगैर
> जीने का इक यही है सहारा तेरे बगैर
> अब वह जमाले-शाम निशाते-सहर कहां
> दुनिया से कर लिया है, किनारा तेरे बगैर
> तू रूठकर चला मगर इतना मुझे बता
> किससे करूंगी मैं शिकवा तेरे बगैर
> बेनूर है बहारे-दो आलम में निगाह में
> धोका है अब हर-एक नजारा तेरे बगैर
> आ और आके छीन ले रूहे-हयात भी
> मैं क्या करूंगी जी के भी तन्हा तेरे बगैर

आ और आके छीन ले रूहे-हयात भी. . .इस जीवन को भी छीन ले, इस अस्तित्व को भी ले ले, अपने में मिला ले!

> आ और आके छीन ले रूहे-हयात भी
> मैं क्या करूंगी जी के भी तन्हा तेरे बगैर

तेरे बगैर जीने का कोई अर्थ ही नहीं है। जियना बिनु भजन हराम . . .तेरे बिना व्यर्थ है जीना, तेरे बिना नाहक का बोझ ढोना है, तेरे बिना मरना बेहतर। तू हो तो जीने का अर्थ है, तू न हो तो जीने का कोई अर्थ नहीं है।

प्रीति की यह रीति बखानौ ॥

भीखा कहते हैं : यह प्रीति की रीति है——मिटने की तैयारी, अपने को पूरा-का-पूरा दे देने की तैयारी; यह निमंत्रण परमात्मा को कि आओ और ले चलो मुझे

पूरा, रत्ती-भर बचाऊंगा नहीं अपने को। जरा बचाया कि बस चूके—या तो पूरा-पूरा दो या जरा भी नहीं दे पाओगे। परमात्मा के जगत में सौदा नहीं होता, समझौता नहीं होता; खंड-खंड नहीं दिया जा सकता, अखंड देना होता है। प्रीति की यह रीति बखानौ। . . .यह प्रीति की रीति है, यह मैं तुमसे कहता हूं।

कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन-कमल कर ध्यानौ ।।

और कितना ही सुख हो, कितना ही दुख हो, अब उसकी चिंता नहीं है, अब तो चिन्ता एक ही है कि तुम्हारे चरण-कमलों पर ध्यान लगा रहे। अब तो एक ही चिन्ता है कि भीतर चेतना का कमल खिला रहे। अब तो बस एक ही बात है—सुबह से सांझ, सांझ से सुबह, हर पल, हर घड़ी—एक ही. . .निर्विचार चित्त जमा रहे, धूल न जमे दर्पण पर।

कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन-कमल कर ध्यानौ ।।
हो चैतन्य बिचारि तजो भ्रम, खांड धूरि जनि सानौ ।।

इस जिंदगी में हालत बड़ी विकृत है। यह जिंदगी ऐसी हो गयी है जैसे शक्कर में किसी ने धूल मिला दी हो; इसे छांटना बड़ा मुश्किल हो गया है। हमने इतना तादात्म्य कर लिया है व्यर्थ के साथ कि सार्थक क्या है, व्यर्थ क्या है; सार क्या है, असार क्या है, छांटना मुश्किल हो गया है। खांड धूरि जनि सानौ. . . अपने ही हाथों हमने शक्कर और धूल को मिला लिया है, अब छांटना मुश्किल हुआ जा रहा है। लेकिन यह भी छंट जाता है, इसके छंट जाने की विधि है : हो चैतन्य विचारि तजो भ्रम—अगर तुम चैतन्य हो जाओ, अगर तुम अपने भीतर बोध को, स्मरण को जगा लो, अगर तुम होश से उठो, होश से बैठो, होश से चलो। तुम जो भी करो उसमें होश का गुण कायम रहे—ओंठ भी हिले, विचार भी जरा-सा तरंग मारे, तो होश के बिना न हो—प्रत्येक कृत्य होशपूर्ण हो जाए। जैसे अभी सन्नाटे में तुम चुप बैठे हो, होशपूर्वक. . .यह सन्नाटा ऐसे ही न गुजर जाए...जाग्रत ... पक्षियों की आवाज सुनाई पड़ने लगती है, राह से कोई गुजरेगा, दूर कोई पन-चक्की चल पड़ी—सब तुम्हारा चैतन्य अनुभव करने लगा। छोटी-छोटी बात. . . एक झींगुर भी बोलेगा तो तुम्हारे होश में आ जाएगा।

चैतन्य को जगाने की एक ही प्रक्रिया है : अपने प्रत्येक कृत्य में होश—चलो तो होशपूर्वक, भोजन करो तो होशपूर्वक, स्नान करो तो होशपूर्वक। चैतन्य को बढ़ाए चलो। जितना-जितना होशपूर्वक काम करोगे उतना चैतन्य सघन होगा। और फिर एक घड़ी आती है जब चैतन्य की सघनता ऐसी होती है कि तुम जो देखोगे वही सत्य होगा, या तुम सत्य ही देखोगे और कुछ देख ही न सकोगे।

हो चैतन्य बिचारि तजो भ्रम, खांड धूरि जनि सानौ ।।

और उस क्षण में धूल अलग हो जाएगी, शक्कर अलग हो जाएगी। उस क्षण में

देह अलग हो जाएगी, आत्मा अलग हो जाएगी। उस क्षण में पदार्थ अलग हो जाएगा, परमात्मा अलग हो जाएगा। उस क्षण में तुम जानोगे घर क्या है, घर का मालिक कौन है। उस क्षण में पुराना तादात्म्य सदियों-सदियों का टूट जाएगा।

जैसे चात्रिक स्वांति बुंद बिनु, प्रान-समरपन ठानौ ।।

जैसे चातक सब लगा देता है दांव पर, वह कहता है : पिऊंगा तो स्वाति की बूंद ही पिऊंगा। ऐसा प्राण को समर्पित करने का प्रण ठान कर बैठ जाता है, ऐसा गहन संकल्प कि बस टकटकी लगाकर देखता रहता है चांद को कि कब टपके स्वाति की बूंद...नहीं पिऊंगा और जल, स्वाति की बूंद ही पिऊंगा। बहुत जल पीकर देख लिए, प्यास बुझती कहां है ! थोड़ी देर के लिए भ्रम होता है फिर प्यास वापिस लौट आती है, अब तो स्वाति का बूंद पीना है और स्वाति की बूंद सदा को तृप्त कर जाए।

ऐसे ही भक्त, ऐसे ही ध्यानी, एक दृढ़ संकल्प करके बैठता है कि बस परमात्मा को ही पिऊंगा; और सब पीकर तो देख लिया। और सब शराबें देख लीं, अब परमात्मा की शराब पिऊंगा। अंगूर से ढली तो बहुत पी, अब आत्मा से ढली पिऊंगा। और धन तो बहुत देखे, अब परम धन को देखूंगा। और पदों को तो बहुत पाया, अब परम पद पाकर रहूंगा।

ऐसी चातक की तरह आंख चांद पर अटक जाए, प्राण बस एक ही अभीप्सा से भर जाएं, तो क्रांति निश्चित ही घटित होती है। यही पात्रता है प्रभु को पाने की।

जैसे चात्रिक स्वांति बुंद बिनु, प्रान-समरपन ठानौ ।।
भीखा जेहि तन राम भजन नहिं, कालरूप तेहिं जानौ ।।

जिसके जीवन में रामभजन नहीं है—भीखा कहते हैं—उसे समझ लेना चाहिए उसकी जिंदगी सिवाय मृत्यु के और कुछ भी नहीं है। बार-बार कहते हैं कि तुम्हारी जिंदगी मृत्यु है अभी ! घर खाली है, घर का मालिक सोया हुआ है। मंदिर तो बन गया है, मंदिर की प्रतिमा कहां है ? यह कैसा वृक्ष है जिसमें न फल लगते हैं, न फूल, न सुगंध उड़ती है ! तुम कैसे पक्षी हो—न पंख फैलाते, न आकाश में उड़ते न चांद-तारों की तरफ यात्रा करते—पिजड़े में बंद हो। और पिंजड़े को जोर से पकड़ लिया है, पिंजड़े को सुरक्षा समझ लिया है !

यह देह तो पिंजड़ा है, इसको इतने जोर से मत पकड़ो—रहो इसमें, इसका उपयोग करो, परमात्मा की भेंट है, इसका सम्मान करो मगर इसको जोर से मत पकड़ो, इसके साथ तादात्म्य मत करो, मत कहो कि मैं देह ही हूं। जियो जग में, भीखा यह नहीं कह रहे हैं कि भाग जाओ संसार को छोड़कर। अगर आंख न बदली और संसार को छोड़कर भी भाग गये तो क्या फायदा होगा ? जोग जज्ञ तप दान

नेम व्रत, भटकत फिरत भोर अरु साम ।... भटकते रहोगे सुबह से सांझ तक, कुछ पाओगे नहीं । असली सवाल दृष्टि का रूपान्तरण है, परिप्रेक्ष्य बदलना चाहिए, तुम्हारे देखने की शैली बदलनी चाहिए, तुम्हें देखने का एक नया गणित, जीवन का एक नया समीकरण आना चाहिए ।

वह समीकरण क्या है, कैसे आएगा ? विचार को छोड़ो, चैतन्य को पकड़ो; नींद को छोड़ो, होश को सम्हालो; बुद्धि से उतरो और हृदय को जगाओ । शब्दों और शास्त्रों में ही मत भटके रहो । शब्दों और शास्त्रों में भटकते-भटकते तो जनम-जनम हो गये । तुम्हें वेद कंठस्थ हैं, तुम्हें गीता याद है; तुम्हें कुरान का पता है, तुमने बाइबिल पढ़ी है--मगर हुआ क्या ? आग कहां जली ? दीयें की कितनी ही चर्चा करो इससे कुछ दीया नहीं जलता ।

गुरजिएफ एक कहानी कहा करता था । एक जंगल में एक सम्राट का आना हुआ; शिकार को आया था । फिर दस्तरखान बिछा, भोजन का वक्त हुआ । बड़े-बड़े बहुमूल्य पकवान बनाकर लाये गये थे । थालियां सजीं । बड़ा आयोजन होने लगा । कुछ चींटियों को बास लगी, चींटियां गयीं-- जो संदेशवाहक चींटियां थीं जो खबर लेने जाती थीं । ऐसा भोजन तो उन्होंने कभी देखा ही नहीं था--ऐसा रंग-बिरंगा भोजन, ऐसी सुवास... जैसे स्वर्ग उतर आया पृथ्वी पर । नाचती हुई लौटीं, मग्न हुई लौटीं । खबर दी और चींटियों को । चींटियों में तो एकदम तूफान आ गया । चींटियां एकदम विक्षिप्त होने लगीं--बातें सुन-सुनकर मूर्च्छित होने लगीं । ऐसा भोजन, इतनी-इतनी थालियां, ऐसी गंध... बात ही ऐसी कि जाने की तो सुध किसको रही !

एक-दूसरे को बताने में ऐसी उत्तेजना फैली कि चींटियों का जो राजा था वह बहुत परेशान हुआ । उसने कहा : ये तो पगला जाएंगी । उसने कहा : तुम रुको, पहले मैं अपने वजीरों को लेकर जाता हूं, पक्का पता लगाकर आता हूं ।

वजीरों को लेकर गया । देखा कि हालत तो ठीक ही थी, जो खबर दी गयी है । मगर बात सुनकर जब चींटियों की यह हालत हुई जा रही है कि लड़खड़ा कर गिर रही हैं, बेहोश हो रही हैं, तो इस भोजन के पास आकर उनकी क्या गति होगी ? अपने वजीरों से कहा : हम क्या करें ?

तो बूढ़े, बड़े वजीर ने कहा : जो आदमी करते हैं वही हम भी करें । मजबूरी में हमें आदमी की नकल करनी पड़ेगी क्योंकि चींटियों के इतिहास में इस तरह की घटना पहले कभी घटी नहीं, आदमियों के इतिहास में घटती रही है ।

सम्राट ने कहा : मैं कुछ समझा नहीं । चींटियों के सम्राट ने कहा : मैं कुछ समझा नहीं ।

उन्होंने कहा कि हम एक नक्शा बनाएं, नक्शे में थालियां बनाएं, थालियों में रंग-बिरंगे भोजन भरें और नक्शे को ले चलें, और नक्शे को बिछा दें और चींटियों से कहें देखो--ऐसे-ऐसे भोजन, ऐसी-ऐसी थालियां...। वे नक्शे में ही मस्त हो जाएंगी, न यहां तक आएंगी न झंझट होगी ।

और यही हुआ । नक्शा बनाया गया, नक्शा लाया गया और चींटियों का तो कहना क्या--बैण्ड-बाजे बजे, नाच-कूद हुआ, स्वागत समारोह हुआ । रात-भर चींटियां सोयी ही नहीं-- नक्शे पर घूम रही हैं, इधर से उधर जा रही हैं; यह रंग, वह रंग । होशियार वजीरों ने थोड़ी-सी सुगंध भी छिड़क दी थी नक्शे पर । नासापुट चींटियों के भर गयें । चींटियां भूल ही गयीं भोजन की बात ।

गुरजिएफ कहता था चींटियां अभी भी नक्शे से उलझी हैं, नक्शे से चिपकी हैं, नक्शे का ही मजा ले रही हैं । और चींटियों के वजीर ने ठीक कहा था कि हमें आदमियों की नकल करनी पड़ेगी ।

ऐसे ही वेद हैं, एक नक्शा; ऐसे ही कुरान है, दूसरा नक्शा; ऐसे ही बाइबिल है, तीसरा नक्शा । और लोग चींटियों की तरह नक्शों से उलझे हैं--कोई वेद से चिपका है, कोई कुरान से, कोई बाइबिल से । आंखें फूटी जा रही हैं उनकी वेद पढ़-पढ़ कर, मस्तिष्क भरमा जा रहा है । लोग गीता ही पढ़-पढ़ कर डोल रहे हैं । वही चींटियों की हालत है । कुरान पढ़-पढ़ कर आनंदित हो रहे हैं, मुहम्मद होने की फिक्र ही न रही । महावीर होने की चिन्ता किसको है ? बुद्ध किसको होना है ? चैतन्य की समाधि को किसे पाना है ? समाधि शब्द ही काफी है । लोग उसी पर शोध कर रहे हैं । पतंजलि के योग-सूत्रों पर ग्रन्थों पर ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं । ब्रह्मसूत्र पर बादरायण के टीकाओं पर टीकाएं लिखी जा रही हैं । नक्शों के नक्शे और नक्शों के भी नक्शे बनाये जा रहे हैं ।

यह सिलसिला लम्बा चल रहा है । भीखा कहते हैं : इससे जागो, इससे कुछ भी न होगा ।

जो भी जागे हैं वे सभी यही कहते हैं : इससे कुछ भी न होगा, असली यात्रा करनी होगी । और असली यात्रा बाहर की तरफ नहीं है, भीतर की तरफ है । असली आंख चाहिए और असली आंख यह चमड़े की आंख नहीं है, ध्यान की आंख है । ध्यान-चक्षु को खोलो, फिर अपूर्व है आनंद, फिर सच्चिदानंद है ।

और यह हो सके यहां तुम्हारे जीवन में इसकी संभावना है । यह हो सकता है । अगर न हो तो तुम्हारे सिवाय कोई और जिम्मेवार न होगा । द्वार खोले जा रहे हैं--तुम अगर पीठ ही किये खड़े रहो, तुम्हारी मर्जी । मैं नक्शा नहीं दे रहा हूं, मैं तो तुम्हें असली भोजन की तरफ पुकार दे रहा हूं । इसलिए नक्शों के मालिक और नक्शों के ठेकेदार मुझसे बहुत नाराज हैं । होंगे ही, क्योंकि उनके नक्शों का क्या होगा ? अगर लोगों ने मेरी बात सुनी और लोग अगर समाधि की तरफ चलने लगे

तो जो पतंजलि के सूत्रों पर किताबें लिख रहे हैं, उनका क्या होगा ? लोगों ने अगर मेरी बात सुनी और उनके भीतर भगवद्गीता उतरने लगी तो भगवद्गीता पर जो हजारों-हजारों टीकाएं लिखी गयी हैं, उनका क्या होगा ? वे जो पंडित शोधकार्य कर रहे हैं विश्वविद्यालयों में बैठे हुए, जिन्होंने जिंदगी शोधकार्य में बिता दी है... क्या खाक शोधकार्य हो रहा है ! अपनी शुद्धि नहीं हो रही है, किताबों में शोधकार्य हो रहा है ! ...उनका क्या होगा ? स्वभावतः वे मुझ पर नाराज होंगे। उनकी नाराजगी समझी जा सकती है।

लेकिन उनकी नाराजगी की चिंता भी नहीं है; चिंता तो मुझे तुम्हारी है कि कहीं ऐसा न हो कि तुम इतने पास आकर, इतने पास आकर चूक जाओ। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि नदी के किनारे आकर भी लोग प्यासे लौट गये हैं। और घोड़े को नदी तक लाया जा सकता है जबरदस्ती पानी तो पिलाया नहीं जा सकता।

गुरु-परताप साध की संगति !

आज इतना ही।
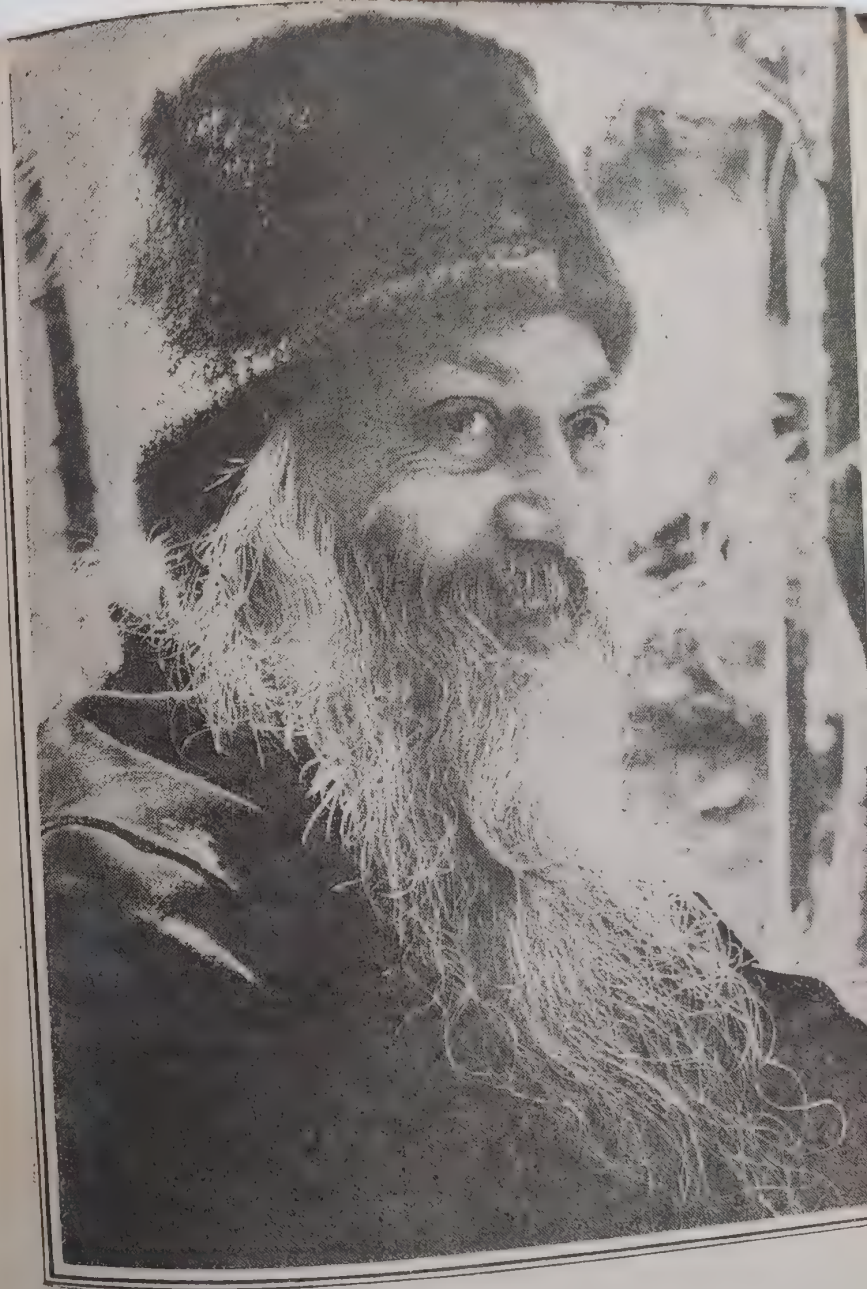
मन के आंगन से साक्षी के आकाश तक

चौथा प्रवचन; दिनांक २४ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

भगवान ! आप विश्वास को सतही और गलत कहते हैं। आप कहते हैं कि सत्य को मानना नहीं, जानना है। लेकिन मनस्विद कहते हैं कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है। इस दृष्टि से क्या साधना में विचार और विश्वास का उपयोग किया जा सकता है ?

भगवान ! मेरी पत्नी मुझे संन्यास लेने से रोक रही है, मैं क्या करूं ?

भगवान ! मैं अपने मन के शैतान से संघर्ष का सतत अभ्यास कर रहा हूं, फिर भी सफलता क्यों नहीं मिलती ?

पहला प्रश्न : भगवान ! आप विश्वास को सतही और गलत कहते हैं। आप कहते हैं कि सत्य को मानना नहीं, जानना है। लेकिन मनस्विद कहते हैं कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है। इस दृष्टि से क्या साधना में विचार और विश्वास का उपयोग किया जा सकता है ?

★ आनन्द मैत्रेय ! मनस्विद जो कहते हैं, ठीक ही कहते हैं और वही खतरा है। मनुष्य जैसा विचार करेगा वैसा ही हो जाएगा लेकिन ऊपर-ऊपर ही, आचरण में ही; अंतस में नहीं, व्यवहार में; व्यक्तित्व में नहीं। आधारशिला इतनी आसानी से नहीं बदलती। जैसे तुमने किसी सम्मोहनविद को प्रयोग करते देखा हो, वह किसी पुरुष को सम्मोहित अवस्था में कह दे कि तुम स्त्री हो तो वह पुरुष स्त्री की तरह चलने लगता है, लेकिन इससे स्त्री नहीं हो जाता; रहता तो पुरुष ही है लेकिन एक भ्रांति का आवरण छा जाता है।

अगर कोई व्यक्ति निरन्तर किसी बात को अपने ऊपर आरोपित करता रहे तो वह आत्मसम्मोहन है, आटो-हिप्नोसिस है। उसे भी लगेगा वैसा ही हो गया, दूसरों को भी लगेगा वैसा ही हो गया। दूसरों को तो स्वभावतः लगेगा क्योंकि दूसरे केवल तुम्हारे बहिरंग को ही देख सकते हैं, तुम्हारे अंतरंग को तो केवल तुम ही देख सकते हो। लेकिन भीतर अगर कोई जरा झांकेगा तो पाएगा ऊपर-ऊपर सब बदल गया, सब रंग ऊपर-ऊपर है; और भीतर ? भीतर तो जो था, जैसा था वैसा का वैसा है; उसमें अंतर नहीं पड़ता है।

विचार आत्मा को रूपान्तरित नहीं करते हैं, न कर सकते हैं। विचार की सामर्थ्य क्या है ? विचार की सामर्थ्य आत्मा से बड़ी नहीं है। लहरें कहीं सागर को रूपान्तरित कर सकती हैं ? हां, सागर रूपान्तरित हो तो लहरें रूपान्तरित हो

जाती हैं। विचार तो तरंगें हैं तुम्हारे अनंत चैतन्य के सागर की, बस लहरें हैं—ऊपर-ऊपर, इनको तुम रंग भी डालो, इनको तुम बदल भी डालो, तो भी तुम्हारा जीवन-अस्तित्व वैसा का वैसा रहेगा जैसा था। हां, एक भ्रांति जरूर पैदा हो जाएगी, और भयंकर भ्रांति पैदा हो सकती है, और भ्रांति महंगी चीज है, बहुत महंगा सौदा है क्योंकि तुम भ्रांति में जीओगे और जीवन हाथ से खिसकता चला जाएगा।

कोई व्यक्ति अभ्यास करे शांत होने का और निरन्तर अभ्यास करे, कोई भी अवस्था में अशांति को प्रगट न होने दे— कोई गाली भी दे तो पी जाए; पत्थर आएं, सह जाए; अपमान हो, अपने को अछूता रखे; भीतर तो तिलमिलाहट होगी मगर उसे बाहर न आने दे; ऐसा साधता रहे, अशांति के किसी भी अवसर को अशांति पैदा न करने दे और जहां-जहां शांति का कोई अवसर मिले वहां शांति को प्रगट करे; कम-से-कम अभिनय करे, तो धीरे-धीरे, केवल समय की बात है, शांति उसका अभ्यास हो जाएगी। और उस अभ्यास से सबसे बड़ा खतरा यही है कि उसे भ्रांति होगी कि मैं शांत हो गया।

एक गांव में एक बहुत अशांत और बहुत क्रोधी व्यक्ति था। इतना क्रोधी, इतना अशांत कि गांव ने ऐसा व्यक्ति नहीं जाना था। पूरा गांव उससे पीड़ित था। दुष्ट था, शक्तिशाली भी था, धनी भी था। क्रोध में जो न कर गुजरे...एक दफे घर को ही उसने अपने आग लगा दी। और एक बार अपनी पत्नी को धक्का देकर कुएं में गिरा दिया। पत्नी की मृत्यु हो गयी। उसी समय गांव में एक जैन मुनि आये थे, दिगम्बर जैन मुनि। पत्नी की मृत्यु ने उसे भी झकझोर दिया, बड़ा वैराग्य उदय हुआ। जाकर जैन मुनि के चरणों में सिर रख दिया और कहा कि मुझे भी दीक्षा दें, मैं मुनि होना चाहता हूं। हो गया बहुत, देख लिया संसार बहुत, दुख ही दुख है, पाप ही पाप है, इस गर्हित गड्ढे से मुझे उबारो!

दिगम्बर जैन मुनि होने की तो सीढ़ियां हैं—पहले कोई ब्रह्मचारी होता है फिर कोई छुल्लक होता है, फिर एलक...ऐसी सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते कोई नग्न दिगम्बर अवस्था तक पहुंचता है। लेकिन उस आदमी ने कहा कि नहीं, मैं तो अभी, इसी वक्त मुनि होने को तैयार हूं।

मुनि भी चमत्कृत हुए—ऐसा संकल्प, ऐसी दृढ़ता! यद्यपि वे समझ न पाये कि न तो यह संकल्प है, न यह दृढ़ता है; यह वही पुराना क्रोधी स्वभाव है, जो क्षण में पत्नी को कुएं में ढकेल दे, वह क्षण में अपने को भी मुनित्व में ढकेल सकता है। जो घर में आग लगा दे, जरा से क्रोध में, वह अपनी जिंदगी में भी आग लगा सकता है। लेकिन मुनि तो बहुत आह्लादित हुए, उन्होंने तत्क्षण उसे दीक्षा दी। और कहा, बहुत लोग आते हैं, बहुत खोजी आते हैं मगर तुम जैसा खोजी नहीं। और चूंकि तुमने क्रोध के जीवन का परित्याग किया है, तुम्हें मैं नाम देता हूं—मुनि

शांतिनाथ।

शांतिनाथ की ख्याति बहुत फैली क्योंकि दूसरे मुनि अगर दिन में एक बार आहार करते तो शांतिनाथ दो दिन में एक बार आहार करते। दूसरे मुनि अगर सीधे-सपाट रास्तों पर चलते तो शांतिनाथ इरछे-तिरछे, कंकड़-पत्थरों, कांटों से भरे रास्तों पर चलते। दूसरे मुनि अगर वृक्षों की छाया में बैठते तो शांतिनाथ सूरज के नीचे, जलती हुई आग बरसती हो, वहां खड़े होते। सर्दी के दिन होते तो दूसरे मुनि घास-पूस को ओढ़कर सो रहते मगर शांतिनाथ खुले आकाश के नीचे, नग्न पड़े रहते। ख्याति बढ़ने लगी, लेकिन इस सबके पीछे वही क्रोधी स्वभाव था, वही अहंकारी स्वभाव था। क्योंकि क्रोध अहंकार की छाया है, क्रोध अहंकार की ही परिणति है—जितना अहंकार होता है, उतना ही क्रोध होता है। अब क्रोध ने नया रूप लिया था—तपस्वी का, तपश्चर्या का, पुण्य का। अहंकार ने अब नये आभूषण पहने थे—दिगम्बरत्व के, नग्नता के, त्याग के, व्रत के, नियम के।

कल ही भीखा ने कहा न—कि करो त्याग, करो तपश्चर्या, करो दान, करो नियम, करो व्रत, कुछ भी न होगा। अगर अहंकार न मरे तो कुछ भी नहीं होता है, क्योंकि अहंकार इन सबका अपशोषण कर लेता है। अहंकार इतना कुशल है कि श्रेष्ठतम वस्तु को भी पचा जाता है। और यह तो शुद्ध अहंकारी आदमी था। इसकी ख्याति फैलती चली गयी, फैलती चली गयी। दूर-दूर से इसे निमंत्रण आने लगे।

वर्षों बाद मुनि शांतिनाथ दिल्ली में विराजमान थे। उनके गांव का एक युवक जो उनके साथ ही पढ़ा था, उनके साथ ही बड़ा हुआ था, उनके दर्शन को आया। देखते ही शांतिनाथ उसे पहचान तो गये, लेकिन क्या पहचानना दो कौड़ी के इस आदमी को! न पहचानते यह सवाल ही न था, वर्षों साथ थे, लंगोटिया यार थे, लड़े थे, झगड़े थे, दोस्ती की थी, साथ-साथ वर्षों जिये थे। मित्र देख तो लिया कि पहचान गये हैं मगर नहीं पहचानना चाहते हैं। क्योंकि कहां अब मुनि शांतिनाथ और कहां तुम संसारी, जमीन-आसमान का फर्क हो गया; कहां तुम नारकीय और कहां वे मोक्ष में विराजमान! तुम्हें पहचानें, यह भी अपमानजनक है; कभी तुमसे कोई संबंध रहा, यह भी दीनता प्रगट करेगा तो मुंह फिर लिया, औरों से बात करने लगे।

वह आदमी आया था बड़े भाव से; यह ढंग देखा तो ख्याल उठा कि कुछ फर्क हुआ नहीं, बात वहीं के वहीं है। नग्नता क्या करेगी? तपश्चर्या क्या करेगी? ऊपर से आरोपित आचरण क्या करेगा? आत्मा वही की वही है। उसने परीक्षा के लिए पूछा कि महाराज, क्या मैं आपका नाम पूछ सकता हूं?

शांतिनाथ तो एकदम आगबबूला हो गये, बाहर नहीं आयी आग, अभ्यास काफी था, मगर भीतर तो एक लपट आ गयी। भली भांति पता है इस आदमी को

कि मेरा नाम क्या है ! पुराना नाम भी पता है, नया नाम भी पता है । लेकिन प्रत्यक्ष में इतना ही कहा : अरे मूढ़ ! अखबार नहीं पढ़ता ? सारी दुनिया जानती है कि मैं कौन हूं, तुझे पता नहीं है ! मेरा नाम है शांतिनाथ !

मित्र को तो पक्का भरोसा आ गया कि जो सोचा था, ठीक ही सोचा था। मैंने तो नाम ही पूछा था, इतना क्रुद्ध हो जाने की क्या जरूरत थी । थोड़ी देर इधर-उधर की बात हुई, उस आदमी ने फिर कहा : महाराज, मेरी जरा स्मृति कमजोर है, मैं भूल गया, आपने क्या नाम बताया था ?

पास में कोई कुआं होता तो शांतिनाथ धक्का दे देते मगर वहां कोई कुआं था भी नहीं। फिर अभ्यास, तपश्चर्या, नियम, व्रत की बड़ी दीवाल भी थी बीच में; एकदम उसको छलांग भी नहीं सकते थे । वही प्रतिष्ठा भी थी, उसको तोड़ भी नहीं सकते थे । कहा : मूढ़ मैंने बहुत देखे मगर तू महामूढ़ है । सुना नहीं तूने, ठीक से सुन ले, एक बार और कहे देता हूं, मेरा नाम मुनि शांतिनाथ।

फिर थोड़ी देर इधर-उधर की बात चली और उस आदमी ने कहा : महाराज, बस एक बार और, आपका नाम क्या है ?

इतना सुनना ही था कि टूट गये सब नियम-व्रत, भूल गयी सब साधना, उठा लिया पास में पड़ा एक डंडा, मार दिया उसकी खोपड़ी में और कहा कि अब समझ तभी तुझे याद रहेगा, मेरा नाम शांतिनाथ ।

उस आदमी ने कहा : महाराज, नाम तो मुझे आपका भली भांति याद है, मैं बस इतना कहना चाहता हूं कि नाम ही है, आप वही के वही हैं, कहीं कोई अंतर नहीं पड़ा है ।

ऊपर से आदमी साध ले सकता है । मनस्विद ठीक कहते हैं कि तुम जैसा विचार करोगे वैसे हो जाओगे, मगर विचार में ही हो पाओगे । और विचार जरूर तुम्हारे आसपास एक वर्तुल बना देंगे, मगर विचार तुम्हारी आत्मा को रूपान्तरित नहीं करते । आत्मा तो रूपान्तरित होती है निर्विचार में, शून्य में, ध्यान में, समाधि में । लेकिन मनस्विद इस संबंध में कुछ भी नहीं कह सकते क्योंकि मनस्विद विचार के पार जाते ही नहीं । यही तो दुर्भाग्य है आधुनिक मनोविज्ञान का कि वह मन के पार और कोई अस्तित्व मानता नहीं है, बस मन पर समाप्ति है । इसलिए मनस्विद मनुष्य के संबंध में जो भी कहता है, वे अधूरे सत्य हैं । और स्मरण रहे अधूरे सत्य झूठों से भी ज्यादा घातक होते हैं, क्योंकि उनमें सत्य की थोड़ी-सी झलक होती है; झूठ तो बिलकुल झलक रहित होता है, उसे पहचान लेने में कठिनाई नहीं । अधूरे सत्य, अध-कचरे सत्य बहुत खतरनाक होते हैं क्योंकि भ्रांति देते हैं सत्य की, आभा, झलक सत्य की देते हैं और सत्य होते भी नहीं ।

मनोविज्ञान आधे में अटका है—न तो मनोविज्ञान पदार्थवादी है कि कह सके

हिम्मत से कि सिर्फ पदार्थ है और कुछ भी नहीं; और न आत्मवादी है कि कह सके कि आत्मा ही है परम सत्य, शेष सब सीढ़ियां हैं । मनोविज्ञान दोनों के मध्य में अटका है । मनोविज्ञान है धोबी का गधा, न घर का न घाट का । न तो शरीर को ही परिसमाप्ति मानता है और न आत्मा तक आंखें उठता है । दोनों के बीच में है मन, शरीर और आत्मा के बीच में है विचार का जगत, मनोविज्ञान अभी विचार के जगत में ही उलझा है । इसलिए मनोविज्ञान की जो उपलब्धियां हैं, कोई बड़ी उपलब्धियां नहीं हैं ।

मनोविश्लेषक तीन साल, चार साल, पांच साल के मनोविश्लेषण के बाद भी कोई बड़ी सहायता मानसिक रूप से रुग्ण लोगों को नहीं पहुंचा पाता । इतनी सहायता तो कुछ दिनों के ध्यान से ही मिल जाती है । इतनी सहायता तो जापान में एक पुरानी परंपरागत व्यवस्था है, कि जब भी कोई पागल या विक्षिप्त हो जाता है तो उसे ले जाते हैं बौद्ध आश्रम में । हर बौद्ध आश्रम में आश्रम निवासियों से दूर कुछ झोपड़े होते हैं उनमें पागलों को रख देते हैं, उनको खाना पहुंचा देते हैं, न उनसे कोई बात करता, न उनसे कोई चीत करता, उन्हें बिलकुल अकेला छोड़ देते हैं । और हैरानी की बात है कि तीन-चार सप्ताह में पागल ठीक हो जाता है। सिर्फ अकेला छोड़ देते हैं । परिवार, समाज से अलग खींच लेते हैं, उसकी जरूरतें पूरी कर देते हैं लेकिन उससे कोई बातचीत नहीं करता ।

मनोवैज्ञानिक चार-पांच साल बातचीत और सिर फोड़ने के बाद—खुद का भी और मरीज का भी— इतनी सहायता नहीं पहुंचा पाता जितना झेन फकीर जापान में तीन-चार सप्ताह के एकांत निवास से पहुंचा देते हैं । अब तो पश्चिम से इस प्रक्रिया को समझने के लिए लोग जापान जा रहे हैं ।

क्या कारण होगा ? इतनी आसानी से हल हो जाता है ! बड़े सत्य अगर स्वीकार किये जाएं तो छोटी बीमारियां क्षण में तिरोहित हो जाती हैं । लेकिन अगर तुम बीमारियों के ऊपर देखो ही न तो बीमारियां बहुत बड़ी मालूम होती हैं । जिसने अपना आंगन ही देखा है और आकाश नहीं, उसे आंगन बहुत बड़ा मालूम होता है ।

पुरानी कहानी है । एक लोमड़ी सुबह-सुबह उठी । भूख लग आयी थी, नाश्ते की तलाश में चली । उसने लौटकर अपनी छाया देखी । बड़ी छाया बन रही थी । सुबह का सूरज उग रहा था सामने, बड़ी छाया बनी । उस लोमड़ी ने कहा कि आज तो एक ऊंट मिले शिकार के लिए तो ही नाश्ता हो सकेगा । दोपहर तक ऊंट को खोजती रही । ऊंट मिल भी जाता तो क्या करती ? ऊंट मिला भी नहीं, भूख बढ़ती भी गयी, फिर उसने लौटकर एक बार छाया को देखा । अब दोपहरी थी, सूरज ऊपर आ गया था, छाया बिलकुल सिकुड़ कर नीचे पड़ रही थी, करीब-करीब

न के बराबर। वह लोमड़ी कहने लगी अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो काफी!

छाया को देखकर अगर तुम निर्णय करोगे तो तुम्हारे निर्णय बहुत कीमती नहीं हो सकते। विचार तो छाया मात्र हैं, और विचार तो तुम्हारी विक्षिप्तता है। विक्षिप्तता को ही अगर अंतिम मान लेना है तो फिर इस विक्षिप्तता से समाधान कैसे होगा? समाधान कहां से आएगा? इसलिए सिग्मंड फ्रायड ने, इस सदी के सबसे बड़े मनस्विद ने, अपने अंतिम निष्कर्षों में यह बात कही है कि मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता, ज्यादा-से-ज्यादा हम इतना ही कर सकते हैं कि मनुष्य को सामान्य रूप से दुखी रहने का अभ्यास करवा दें। सामान्य दुख से संतुष्ट रहना सिखा दें, इतना ही कर सकते हैं, मनुष्य सुखी कभी नहीं हो सकता। यह निष्कर्ष इस बात का सबूत है कि बस आंगन को ही सब मान लिया तो अब हल कैसे हो?

हल हमेशा पार से आते हैं। हल हमेशा विराट से आते हैं। समाधान के लिए तुम ही सब कुछ नहीं हो, तुमसे भी ऊपर कुछ है—तो ही मार्ग खुलता है। अन्यथा मार्ग नहीं खुलता। परमात्मा को स्वीकार किये बिना मनुष्य कभी आनंदित नहीं हो सकता और परमात्मा को अस्वीकार किया कि फिर मनुष्य अपनी विक्षिप्तता में ही जी सकता है। फिर सिग्मंड फ्रायड ही सत्य है कि ज्यादा-से-ज्यादा हम मनुष्य को सामान्य विक्षिप्तता का पाठ सिखा सकते हैं कि ज्यादा विक्षिप्त न हो जाओ, कम-से-कम विक्षिप्त रहो। अंतर, स्वस्थ आदमी में और विक्षिप्त आदमी में मात्रा का ही होगा, फ्रायड के हिसाब से, गुण का नहीं होगा। फ्रायड बुद्ध को स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि बुद्धत्व का अर्थ होता है: परम स्वास्थ्य। हमारे पास स्वास्थ्य शब्द बड़ा कीमती है। स्वास्थ्य का अर्थ होता है: स्वयं में स्थित हो जाना। लेकिन स्वयं को तो स्वीकार ही नहीं करता मनोविज्ञान, वह तो विचार की भीड़ को ही स्वीकार करता है!

पश्चिम का एक बड़ा विचारक डेविड ह्यूम, डेविड ह्यूम नास्तिकों के लिए ऐसे ही है जैसे आस्तिकों के लिए कृष्ण, क्राइस्ट। इसलिए मैं डेविड ह्यूम को कहता हूं: संत डेविड ह्यूम। डेविड ह्यूम ने बहुत बार पढ़ा, सुकरात से लेकर इकहार्ट तक सारे संतों ने एक ही बात कही—भीतर जाओ, परम आनंद है वहां, आत्मा का राज्य, कि प्रभु का राज्य; बस, भीतर जाओ, सब पाओगे—धनों का धन, पदों का पद!...पढ़ते-पढ़ते एक दिन, जानते हुए भी कि भीतर क्या रखा है, उसने भी आंखें बंद कीं और भीतर देखा। एक ही दिन देखा बस और डायरी में लिखा: कुछ नहीं है, सिर्फ विचार ही विचार हैं—स्मृतियां, विचार, कल्पनाएं, ऊहापोह; न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा है; न कोई स्वर्ग का राज्य है, न कोई सच्चिदानंद है; कुछ भी नहीं है।

संत डेविड ह्यूम इतना भी न समझ सका कि यह काम एकाध बार आंख

बंद करने से नहीं होता। यह तो ऐसा ही हुआ कि मैं एक सज्जन को जानता हूं, विश्वविद्यालय में अध्यापक थे मेरे साथ; व्यायाम करने जाते थे, एक डंड लगाते और उठकर अपनी मसल नापते! अब ऐसे आदमी कहीं डंड-बैठक लगा सकते हैं? दो-तीन दिन में ही मुझसे बोले कि कुछ सार नहीं है, मैंने लगाकर देखे डंड-बैठक, कुछ और ही राज होगा, मसल तो वैसे के वैसे ही हैं। मगर उन्होंने तो कम-से-कम तीन दिन किया था अभ्यास, डेविड ह्यूम तो एक ही दिन...! और वह तो शरीर का अभ्यास था, डेविड ह्यूम ने थोड़ा-सा मन का अभ्यास किया!...अभ्यास क्या खाक कहो उसे, एक बार आंख बंद करके, बैठकर भीतर देखा, देखा वहां विचारों की चहल-पहल, आना-जाना, बस आंख खोल दी होगी, कहा कि कुछ है नहीं, बस विचार ही विचार हैं।

मगर एक बात डेविड ह्यूम जैसा विचारशील व्यक्ति भी चूक गया—किसने देखा कि विचार हैं? यह कौन है जिसने देखा कि विचार ही विचार हैं? निश्चित ही जिसने देखा, वह स्वयं विचार नहीं हो सकता—वह साक्षी है। लेकिन थोड़े दिन डुबकी मारता तो इस साक्षी से संबंध जुड़ता। वह साक्षी मन के पार है। वही साक्षी आत्मा है। उसी साक्षी में क्रांति घटती है। वही आकाश है, मन तो छोटा आंगन है।

हां, मन के अभ्यास से तुम सज्जन बन सकते हो, लेकिन मन के अभ्यास से तुम कभी संत नहीं बन सकते। और सज्जन के भीतर दुर्जन छिपा ही रहता है; सज्जन दुर्जन को दबा लेता है। दुर्जन और सज्जन में बहुत भेद नहीं है—दुर्जन सज्जन को दबा लेता है और सज्जन दुर्जन को दबा लेता है। लेकिन दोनों में कोई बुनियादी भेद नहीं है। अगर तुम दुर्जन को थोड़ा कुरेदोगे तो उसके भीतर सज्जन पाओगे।

इसलिए तुम कभी-कभी चकित भी होते हो, किसी शराबी में तुम ऐसी भलमनसाहत पाओगे जो कि भले आदमियों में नहीं होती। और किसी चोर में कभी तुम इस तरह की मैत्री पाओगे जो कि सज्जनों में नहीं होती। और कभी किसी पापी में तुम ऐसी करुणा पाओगे कि तुम्हारे तथाकथित महात्माओं में नहीं होती। कि नदी में कोई डूबता हो तो चोर या पापी छलांग लगाकर उसको बचाने जाएगा; जो माला जप रहा है, वह तो और आंख बंद करके जोर-जोर से हरे-राम, हरे-राम, हरे-राम करने लगेगा कि अब यह और कहां की झंझट बीच में आ गयी! वह अपनी माला जपे कि आदमी को बचाये? अगर कहीं आग लग गयी हो तो शायद शराबी चला जाए आग में जलते हुए किसी बच्चे को बचाने, होशियार तो अपने घर का रास्ता लेगा।

दुर्जन के भीतर सज्जन छिपा होता है और सज्जन के भीतर दुर्जन छिपा

होता है। सज्जन को कुरेदो जरा और तुम दुर्जन को पाओगे। अभी देखा नहीं मुनि शांतिनाथ को जरा कुरेदा, खुरेचता ही गया वह आदमी और भीतर की असलियत बाहर आ गयी। सज्जन और दुर्जन में बहुत फर्क नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने दिल्ली प्रधान मंत्री को फोन लगाया। पूछा: आप कौन सज्जन बोल रहे हैं ?

दूसरी तरफ से आवाज आयी——मैं मंत्रीजी का चपरासी बोल रहा हूं, रुकिए, लीजिए सेक्रेटरी साहब से बात कीजिए।

मुल्ला ने पूछा : आप कौन सज्जन बोल रहे हैं ?

जबाब मिला——मैं मंत्रीजी का सेक्रेटरी हूं। कहिए क्या काम है ?

मुल्ला ने कहा : मुझे तो प्रधानमंत्री जी से ही मिलना है।

कुछ क्षण बाद पुनः फोन पर किसी की आवाज सुनायी दी। मुल्ला ने अपना प्रश्न फिर पूछा : आप कौन सज्जन बोल रहे हैं ?

इस बार एक रोबीली आवाज आयी——अरे, मैं कोई सज्जन-वज्जन नहीं, खुद प्रधानमंत्री बोल रहा हूं।

कभी-कभी तो बिना कुरेदे भी सत्य प्रगट हो जाते हैं। कुरेदना भी सदा आवश्यक नहीं होता।

आनंद मैत्रेय, मनस्विद् ठीक कहते हैं——आदमी जैसा सोचता है वैसा हो जाता है। मगर बस ऊपर-ऊपर क्योंकि सोचने की क्षमता ही कितनी है ? आदमी अगर सोचने से ही वैसा हो जाता हो, सच में ही वैसा हो जाता हो तब तो दुनिया बड़ी सस्ती होती, तब तो जीवन बड़ा आसान होता। तुम बैठकर सोच लेते कि मैं ईश्वर हूं, मैं ईश्वर हूं, मैं ईश्वर हूं, मैं ईश्वर हूं . . . सोचते ही रहते रोज बैठकर, कई लोग सोचते हैं, इससे कुछ ईश्वर नहीं हो जाओगे। असल में तो जितना सोचोगे उतना ही पक्का होता जाएगा कि नहीं हो। अगर थे ही, अगर हो ही तो फिर सोच क्या खाक रहे हो ! अगर कोई पुरुष रास्ते पर चलता हुआ, कहता हुआ जाए——मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं, मैं पक्का कहता हूं कि मैं पुरुष हूं, मैं दृढ़ निश्चय से कहता हूं कि मैं पुरुष हूं. . .तो सारे गांव को शक हो जाएगा कि मामला कुछ गड़बड़ है। अगर पुरुष हो तो कहने की जरूरत क्या ?

एक मुसलमान खलीफा उमर ने एक आदमी को पकड़वाया, क्योंकि वह आदमी घोषणा करता था कि मुहम्मद के बाद मैं ही दूसरा पैगम्बर हूं। मैं नया संशोधन लाया हूं, नयी कुरान लाया हूं। मैं नया धर्म लाया हूं। मुहम्मद जो नहीं कर पाये अब मैं करूंगा। निश्चित ही कोई और देश हो तो लोग बर्दाश्त कर लें, मुसलमान तो बर्दाश्त नहीं कर सकते। उनकी तो बर्दाश्त की कोई सीमा है ही नहीं। उनके पास तो धैर्य है ही नहीं। फौरन उसे पकड़ लिया गया, लोगों ने मारा-पीटा और खलीफा

के पास ले चले। खलीफा भी बहुत नाराज हुआ। उसने कहा कि एक ही ईश्वर है और उस ईश्वर का एक ही पैगम्बर है और उस पैगम्बर का नाम है——हजरत मुहम्मद; और कोई न पैगम्बर है और न कोई ईश्वर है।

यह पकड़ तो मुसलमानों की ऐसी है कि मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन नास्तिक हो गया था तो किसी ने पूछा कि नसरुद्दीन, अब तो तुम नास्तिक हो गये, तुम्हारा सिद्धांत क्या है ?

उसने कहा कि मेरा सिद्धांत है : कोई ईश्वर नहीं है और उसका एक ही पैगम्बर है——हजरत मुहम्मद !

ऐसी पकड़ है कि ईश्वर नहीं है तो भी. . .मगर हजरत मुहम्मद तो पैगम्बर हैं ही। खलीफा बहुत नाराज हुआ। उसने कहा कि सात दिन के लिए इस आदमी को जेलखाने में डाल दो जंजीरों में। सात दिन का मौका देते हैं तुझे सोचने का, समझ ले, सोच ले, तय कर ले; अगर होश में आ गया तो ठीक, नहीं तो गर्दन काट दी जाएगी। सात दिन का अवसर देते हैं अगर तू क्षमा मांग लेगा, छुटकारा हो जाएगा तेरा। उस आदमी को खंभे से बांध दिया गया, कोड़े मारे गये, सात दिन सब तरह से सताया गया।

सात दिन बाद उमर गया जेलखाने में, वह आदमी बंधा था खंभे से, लहु-लुहान था। पूछा कि कहो अब क्या विचार है ? उसने कहा : ईश्वर एक और उसका नया पैगम्बर मैं।

उमर ने कहा : तुझे होश नहीं आया, इतना पिटा-कुटा, खून जगह-जगह जम गया है, जमीन पर खून जमा है, खंभे पर खून जमा है, चमड़ी जगह-जगह कट गयी——तुझे होश नहीं आया ?

उसने कहा : होश ! मुझे पक्का भरोसा हो गया है कि मैं पैगम्बर हूं क्योंकि जब मैं चलने लगा तो ईश्वर ने खुद ही कहा था कि मेरे पैगम्बर सदा बहुत सताये जाते हैं। अब तो मुझे पक्का ही भरोसा आ गया।

तभी एक दूसरा आदमी जो किसी दूसरे खंभे से बंधा था, खिलखिला कर हंसने लगा। उमर ने पूछा कि तू क्यों हंस रहा है ?

उस आदमी ने कहा : मैं इसलिए हंस रहा हूं कि मैं स्वयं परमात्मा हूं और मैं तुमसे कहता हूं कि यह आदमी झूठ बोल रहा है, इसको मैंने कभी भेजा ही नहीं; मुहम्मद के बाद मैंने किसी को भेजा ही नहीं। वे इसलिए पकड़े गये थे सज्जन कि वे अपने को ईश्वर होने की घोषणा कर रहे थे।

घोषणा तो तुम कर सकते हो आसानी से। क्या कठिनाई है, रोज सुबह से उठकर मंत्र जपो—— अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि. . .जपते ही रहो, जपते ही रहो, जपते ही रहो. . .छाप पड़ती जाए, पड़ती जाए, संस्कार गहरा होता जाए, तो एक

दिन नींद में भी तुम बर्राने लगोगे––अहं ब्रह्मास्मि ! सोते में भी सिलसिला जारी रहेगा––अहं ब्रह्मास्मि ! मगर यह तो विचार मात्र है। नहीं, ऐसे कोई नहीं जानता ब्रह्म होने को। ब्रह्म होने को जानने का उपाय दूसरा है, बिलकुल उल्टा है, निर्विचार हो जाओ––अहं ब्रह्मास्मि दोहराना नहीं है, एक ऐसी शांत, मौन, शून्य अवस्था जहां कोई विचार की तरंग नहीं रह जाती, वहां अनुभव होता है कि मैं परमात्मा हूं। लेकिन उस अनुभव में 'मैं' का कोई अनुभव नहीं होता, यह तो भाषा में कहना पड़ता है इसलिए। उस अनुभव में सिर्फ परमात्मा है––ऐसा अनुभव होता है। उस 'मैं' में और सब भी समाहित होते हैं। उस 'मैं' में सब मैं समाहित होते हैं।

इसलिए जिन्होंने जाना है उन्होंने ऐसा नहीं कहा है कि मैं परमात्मा हूं और तुम नहीं; जिन्होंने जाना है उन्होंने कहा है कि मैं परमात्मा हूं और तुम भी। बुद्ध ने कहा है : जिस क्षण मैं बुद्ध हुआ उस दिन सारा अस्तित्व मेरे साथ बुद्ध हो गया––आदमी ही नहीं पशु-पक्षी भी, पशु-पक्षी ही नहीं पौधे-पत्थर भी। बुद्ध ठीक कहते हैं : जिस क्षण मैं बुद्ध हुआ उस क्षण मैंने जाना––अरे, मैं तो हूं ही नहीं, सिर्फ बुद्धत्व है; सिर्फ भगवत्ता है; कण-कण में वही व्याप्त है। जो मुझमें है वही बाहर है; जो भीतर, वही बाहर। मगर यह विचार से नहीं होगा।

और दोनों बातों में एक-सा––बाहर से कम-से-कम––तालमेल मालूम हो सकता है, यही खतरा है। जो आदमी जानकर कह रहा है अहं ब्रह्मास्मि, कि मैं ब्रह्म हूं, निर्विचार के अनुभव से जिसे यह उपलब्धि हुई वह, और जो विचार को दोहरा-दोहराकर कह रहा है अहं ब्रह्मास्मि, बाहर से तो तुमको दोनों एक जैसे ही मालूम पड़ेंगे। यही मुश्किल है, यही अड़चन है। बाहर से तौलने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन भीतर तो तुम तौल ही सकते हो।

सूफी फकीर बायजीद मक्का की यात्रा को चला। उसके शिष्यों ने, उसके मित्रों ने तीन सौ दीनार इकट्ठे कर दिये थे यात्रा के लिए। वह तीन सौ दीनार लेकर गांव से बाहर ही निकला था कि एक फकीर झाड़ के नीचे बैठा था, उसने कहा : रुक बायजीद, कहां जा रहा है ?

बायजीद ने कहा कि मैं हज-यात्रा को जा रहा हूं, मक्का की यात्रा को जा रहा हूं; काबा के पत्थर के सात चक्कर मुझे लगाने हैं।

उस फकीर ने कहा : नाहक परेशान न हो, कितने पैसे हैं तेरे पास ?

बायजीद ने कहा : मेरे पास तीन सौ दीनार हैं, मेरे शिष्यों, भक्तों ने इकट्ठे किये हैं।

उस आदमी ने कहा : तू मेरे सात चक्कर लगा और तीन सौ दीनार मुझे दे, तेरा हज पूरा हो गया। और बायजीद ने यह किया––उसने तीन सौ दीनार उस फकीर को दे दिये, उसके सात चक्कर लगाये, चरण छूकर नमस्कार किया, हाथ

चूमा, घर वापिस लौट आया।

लोगों ने कहा : अरे, बड़े जल्दी लौट आये ! अभी गये, अभी लौट आये ! अभी लोग गांव के बाहर विदा करके घर लौट भी न पाये थे कि बायजीद को आते देखा कि मामला क्या है ! इतने जल्दी ! बायजीद ने कहा : हज की यात्रा हो गयी। क्योंकि वह आदमी मुझे मिल गया है, अब कहीं जाने की कोई जरूरत न थी, उसकी आंख में मैंने झांका और मैंने पहचाना, थोड़ी-थोड़ी झलक मुझे भी मिली है। जो मेरे भीतर दीये की तरह जला है, उसके भीतर सूरज की तरह मौजूद था। जिसको मैंने अभी खिड़की से झांका है, दूर से झांका है, वह वहां विराजमान था। वह अद्भुत आदमी था।

लोगों ने कहा : और तीन सौ दीनार क्या हुए ?

उसने कहा : तीन सौ दीनार ! वे तो उस फकीर को भेंट कर आया। जब हज की यात्रा हो गयी, यात्रा के लिए ही दिये थे तुमने !

बायजीद खुद भी थोड़े-से अनुभव में डूब रहा है तो वह अनुभव दूसरे में भी देखने की क्षमता देगा। पहले तो उनमें देखने की क्षमता देगा जिनको अनुभव हुआ है, जो जाग गये हैं; फिर उनमें भी देखने की क्षमता देगा जो अभी नहीं जागे हैं, जिनको अनुभव नहीं हुआ है, जो सो रहे हैं। आखिर सोया हुआ आदमी है तो बुद्ध, सोया है, तो जाग उठेगा। आखिर बीज भी है तो फूल, अभी सोया है, कल जाग उठेगा और खिल जाएगा।

लेकिन यह सिर्फ विचार करने से नहीं हो सकता। पश्चिम में मनोविज्ञान के इस विचार का बड़ा परिणाम हुआ, ऐसा परिणाम हुआ कि ईसाइयों में एक सम्प्रदाय ही खड़ा हो गया––क्रिश्चियन साइंटिस्ट कहलाने लगे वे लोग––उनका मूल आधार यही है कि तुम जो सोचते हो वही हो जाते हो।

मैंने एक कहानी सुनी है। एक युवक रास्ते से जा रहा था और वहां से एक क्रिश्चियन साइंटिस्ट आ रहा था। उस युवक से उसने, क्रिश्चियन साइंटिस्ट ने पूछा कि अब तुम्हारे पिता के संबंध में क्या खबर है ?

पिता का मित्र था वह, युवक भी जानता था। उसने कहा : उनकी हालत खराब है। आज तीन महीने से बीमार हैं। बिस्तर से उठते भी नहीं।

उस आदमी ने कहा : यह सब बकवास है। ये सब विचार हैं। यह बीमारी विचार है। अगर तुम विचारोगे कि मैं बीमार हूं तो बीमार हो जाओगे। अगर विचारोगे कि मैं स्वस्थ हूं, स्वस्थ हो जाओगे। यह सब विचार है और कुछ भी नहीं, मैं तुझसे कहता हूं।

कुछ दिनों बाद फिर रास्ते पर उस युवक से मिलना हुआ तो क्रिश्चियन साइंटिस्ट ने पूछा कि अब तेरे पिता के क्या हाल हैं ?

उसने कहा कि अब वे सोचते हैं कि वे मर गये ! और क्या कहो अब ! अगर बीमारी विचार है तो मरना भी विचार है ! अब सोचते हैं कि मर गये चूंकि वे सोचते हैं कि मर गये, इसलिए हमने दफना भी दिया, अब और करते भी क्या !

सब विचार है ? तो फिर तुम्हारे भीतर कुछ भी थिर न रह जाएगा क्योंकि विचार तो क्षण-भर भी ठहरता नहीं—अभी सुख, अभी दुख; अभी प्रसन्न हो, अभी न प्रसन्न हो गये; अभी खुश थे, अभी नाच रहे थे, अभी चित्त एकदम विषाद से भर गया। तब तो तुम्हारी जिंदगी एक क्षणभंगुर धारा होगी, पानी के बबूले होंगे और अगर तुम जोर से पकड़कर किसी विचार को सम्हाल भी लोगे तो विचार ही है, भूल मत जाना।

मेरे पास एक सूफी फकीर को लाया गया जो तीस साल से सिद्ध समझा जाता था। उसके अनेकों शिष्य थे। जब वह मेरे पास लाया गया तो दो सौ उसके शिष्य साथ आये थे। और उन्होंने कहा कि यह पहुंचा हुआ सिद्ध है। इसे हर चीज में परमात्मा दिखाई पड़ता है—फूल में, पत्ते में, पत्थर में। इसकी आंखों में सिवाय परमात्मा के और कोई दिखाई ही नहीं पड़ता। यह तो मंसूर की हैसियत का आदमी है—अनहलक इसका उद्घोष है। मैंने उनसे कहा कि तुम जाओ और फकीर को मेरे पास तीन दिन के लिए छोड़ दो।

तीन दिन वह फकीर मेरे पास रहा। खाना इत्यादि खिलाने के बाद जब हम पास बैठे तो मैंने उनसे कहा कि यह अभ्यास कितने दिन से किया है ?

उन्होंने कहा : कोई तीस साल हो गये, सतत अभ्यास किया—ईश्वर है, बस ईश्वर है, सब तरफ ईश्वर है। अब मुझे सब तरफ ईश्वर दिखाई पड़ने लगा।

मैंने कहा : अब तो तुम्हें पक्का दिखाई पड़ने लगा है ?

उसने कहा : हां, पक्का दिखाई पड़ने लगा है, कच्चा क्यों ?

तो मैंने कहा : तीन दिन के लिए तुम अभ्यास बंद कर दो। अब तीन दिन के लिए यह बात ही छोड़ दो कि सब में ईश्वर है।

उसने कहा : उससे क्या होगा ?

मैंने कहा कि तीन दिन के बाद विचार करेंगे। डरा हुआ लगा वह थोड़ा ! मैंने कहा : डरते क्यों हो ? अगर ईश्वर का अनुभव हो गया है तो विचार के छोड़ने से अनुभव चला नहीं जाएगा।

उसने कहा : हां, यह बात तो ठीक है अगर ईश्वर है ही, अगर अनुभव होने ही लगा है, तो तीन दिन के अभ्यास नहीं करने से क्या फर्क पड़ता है !

तीसरे दिन वह आदमी मुझ पर नाराज हो गया। उसने कहा : आपने मेरी तीस साल की मेहनत खराब कर दी। अब मुझे झाड़ फिर झाड़ दिखाई देने लगे और पत्थर फिर पत्थर दिखाई देने लगे, वह ईश्वर खो गया।

मैंने कहा : वह ईश्वर कभी था ही नहीं इसीलिए खो गया। वह सिर्फ अभ्यास था, आत्मसम्मोहन था। तीस साल का आत्मसम्मोहन तीन दिन में टूट सकता है, तीन क्षण में टूट सकता है, उसका कोई मूल्य नहीं है; वह धोखा है, वह आत्मवंचना है।

मैं ऐसी आत्मवंचना की शिक्षा नहीं देता हूं। मैं तुमसे नहीं कहता हूं कि तुम सोचो। मैं तुमसे नहीं कहता हूं कि तुम विचारो। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम निर्विचार में चलो, तुम सोच छोड़ो, तुम उस दशा में आ जाओ जहां सोच-विचार होते ही नहीं; फिर देखो, फिर जो दिखाई पड़े वह है और उसे फिर तुम से कोई भी न छीन सकेगा। मैं मनोविज्ञान नहीं सिखा रहा हूं, मैं तुम्हें अध्यात्म सिखा रहा हूं। दुनिया के अधिकतर धर्म मनोविज्ञान पर समाप्त हो जाते हैं; दुनिया का बहुत थोड़ा-सा हिस्सा अध्यात्म को छू पाता है, छू पाया है। बहुत थोड़े-से बुद्धपुरुष अध्यात्म को छू पाये हैं। अध्यात्म की मौलिक आवश्यकता है निर्विचार-चैतन्य !

लेकिन चारों तरफ तुम्हें विचार ही सिखाया जाता है—मां-बाप भी कहते हैं, अच्छे विचार करो; स्कूल में शिक्षक कहते हैं, अच्छे विचार करो; पंडित-पुरोहित कहते हैं, अच्छे विचार करो तो अच्छे हो जाओगे। जैसा विचार करोगे वैसे हो जाओगे। और ठीक कहते हैं मगर ठीक अधूरा है। और जब तुम यही सुनते हो, यही बार-बार गुनते हो, और यही तुम्हारे जीवन का अनुभव बन जाता है, तो तुम दूसरों के संबंध में भी इसी तरह सोचने लगते हो, देखने लगते हो। तुम खुद तो अंधे हो ही जाते हो अपने प्रति, तुम दूसरों के प्रति भी अंधे हो जाते हो। स्वभावतः तुम दूसरों के संबंध में उसी ढंग से सोचते हो जिस ढंग से तुम अपने संबंध में सोचते हो। और तो कोई उपाय भी नहीं है सोचने का। मनुष्य अपना ही प्रक्षेपण करता है।

सत्य प्रिया ने एक छोटी-सी कहानी मुझे भेजी है।

एक डी. आई. जी. थे। वे जब नौकरी से मुक्त हुए तो उन्हें पचास हजार रुपया मिला। उन्होंने सोचा ये पैसे बैंक में जमा करवा दें तो ब्याज मिलता रहेगा। वे रुपये लेकर बैंक में जमा करवाने जा रहे थे कि उनके एक मित्र जो कृषि अधिकारी थे, उनको रास्ते में मिल गये। उन्होंने कहा : 'आप भूलकर भी रुपये बैंक में जमा मत करवाएं। बैंक में हड़ताल हो जाती है, जरूरत होने पर रुपया निकाल नहीं सकते, कभी बैंकों का दिवाला भी निकल जाता है।'

डी. आई. जी. बोले, 'हमें व्यापार करना आता नहीं।'

इस पर कृषि अधिकारी ने कहा : 'मेरी मानें तो जमीन खरीद कर खेती करवाएं। व्यापार की झंझट में पड़ना उचित भी नहीं।' उन्होंने एक पेंसिल और कागज मंगवाया और कहा कि 'मान लीजिए हमने एक मक्का का दाना जमीन में बोया, उसमें से तीन भुट्टे निकले।' फिर कागज पर हिसाब लगाकर बताया कि 'यदि

एक भुट्टे में दो सौ दाने लगें तो कुल मुनाफा होगा छः सौ प्रतिशत ! कुल चार महीने की बात है, फिर आप बंगला खरीदें, कार खरीदें, चुनाव लड़ें--जो दिल में आये सो करें; माला-माल हो जायेंगे।'

डी. आई. जी. को बात जंच गयी। उन्होंने एक जमीन खरीद ली। फिर बैंक से कर्ज लेकर एक ट्रेक्टर भी खरीद लिया। उन्होंने फसल बोयी। परन्तु उस साल खूब अतिवृष्टि हुई। सारी फसल बह गयी। दूसरे साल उन्होंने ज्यादा मुनाफे के लोभ में कृषि अधिकारी के बताये अनुसार कर्ज लेकर खूब खाद दी। परन्तु उनके भाग्य ने साथ नहीं दिया और उस वर्ष सूखा पड़ गया। कर्जा चुकाने में सारा घर का सामान नीलाम हो गया। अकेले आदमी थे। दो लंगोटी बची थीं। सोचा काली-कमली वाले के आश्रम में चला जाऊंगा, वहां एक कम्बल और एक टाइम भोजन मिल जाएगा, बैठकर राम का नाम लेंगे। वे जब जा रहे थे तो रास्ते में कुंभ के मेले में एक नागाओं की जमात जा रही थी। वे खूब सारे नंगे साधु। उन्हें देखकर डी. आई. जी. ने उनके गुरु को साष्टांग प्रणाम कर निवेदन किया कि 'एक प्रश्न का उत्तर दें।'

नागा महात्मा बोले : 'बच्चे, क्या शंका है ?'

डी. आई. जी. बोले : 'महात्माजी, मैंने खेती का धंधा किया तो मात्र दो लंगोटी बचीं। आप सबने क्या धंधा किया जो लंगोटी तक नहीं बचीं ?'

आदमी सोचता तो अपने ही हिसाब से है। हम दूसरों के संबंध में जो सोचते हैं, हम दूसरों के संबंध में जो कहते हैं, वह वस्तुतः अपने ही संबंध में कहा गया होता है। तुमने अगर विचार को ही जीवन की आधारशिला बनाया तो तुम खुद तो धोखे में रहोगे ही, तुम औरों के संबंध में भी धोखे खाओगे। क्योंकि तुम उनके विचार ही देखोगे, उनका आचरण ही देखोगे; उनके अंतस तक देखने वाली पैनी आंखें तुम्हारे पास न होंगी। और अंतस का रूपान्तरण ही एकमात्र रूपान्तरण है और सब क्रांतियां झूठी हैं।

इसलिए मैं कहता हूं कि विश्वास सतही है और गलत है। परमात्मा को मानना नहीं है, जानना है। क्योंकि जानना ही असली चीज है, मानना कैसे असली हो सकता है ? मानने का तो अर्थ ही हुआ कि शुरू से ही बेईमानी, शुरू से ही धोखा; पता नहीं था और मान लिया। असत्य से शुरुआत करके सत्य तक कैसे पहुंचोगे ? पहला कदम असत्य है तो अंतिम मंजिल कैसे सत्य हो सकेगी ? यह तो सीधा-सा गणित है। यह रोशनी तो इतनी सीधी-साफ है कि अंधे को भी दिखाई पड़ जाए। यह गणित इतना स्पष्ट है कि इसके लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता नहीं चाहिए। जो आदमी ईश्वर को मानता है, वह क्या कर रहा है ? वह भीतर तो जानता है कि मुझे कुछ पता नहीं—पता नहीं, हो; पता नहीं, नहीं हो !

मुल्ला नसरुद्दीन मरने लगा। मौलवी ने कहा कि नसरुद्दीन जिंदगी-भर तो मस्जिद में दिखाई नहीं पड़े लेकिन अब आखिरी समय तो परमात्मा को याद कर लो, नहीं तो पीछे पछताओगे।

मुल्ला हाथ टेककर उठा, बैठा, हाथ जोड़े आकाश की तरफ, पहले बोला : हे परमात्मा ! दीन-दरिद्र हूं, पतित हूं, पापी हूं; तुम तो पतित-पावन हो, जिंदगी-भर तो याद नहीं किया मगर क्षमा करना; मैं तो बालक हूं, तुम पिता हो। इसके बाद. . .यह बात पूरी की, थोड़ी देर चुप रहा, फिर से हाथ जोड़े और आकाश की तरफ देखकर बोला कि हे महाशैतान ! हे परम पिता ! मुझ पर ख्याल करना। मैं तो नासमझ, अज्ञानी, मुझ पर दया करना।

मौलवी तो बहुत हैरान हुआ। ईश्वर से तो प्रार्थना उसने सुनी थी, लेकिन शैतान से ! उसने बीच में ही मुल्ला को हिलाया और कहा कि होश में हो कि सन्निपात में आ गये ?

मुल्ला ने कहा : रोको-टोको मत। क्या पता किसके हाथ में पड़ें। समझदार आदमी सबको मनाकर रखता है। अगर हो ईश्वर तो ठीक, कहने को रहेगा। न हो ईश्वर, शैतान हो तो भी ठीक, कहने को रहेगा। दोनों न हों, अपना क्या बिगड़ता है ! कहने में क्या जा रहा है ? हल्दी लगे न फिटकरी रंग चोखा हो जाए. . . अपना बिगड़ता क्या है, दो शब्द बोले लेते हैं शैतान से भी।

जो आदमी मानता है उसकी मान्यता कितनी गहरी हो सकती है ? कैसे गहरी हो सकती है ? भीतर तो जानता ही है कि मुझे पता नहीं—हो, न हो। थोप रहा है मान्यता को; जबरदस्ती लाद रहा है मान्यता को—भय के कारण, लोभ के कारण, सामाजिक दबाव के कारण। ऐसी मान्यता से क्रांति होगी ? ऐसी मान्यता से तुम्हारे जीवन में मोक्ष फलेगा ? यह मान्यता तो बंधन है; यह तो कारागृह है; इससे तो और जंजीरें कस जाएंगी; इससे तो तुम्हारा अज्ञान और सघन हो जाएगा और जिसने मान लिया वह फिर जानने की यात्रा पर नहीं निकलता। क्या निकले ! जब मान ही लिया तो अब जानना क्या है !

इसीलिए तो दुनिया में इतने आस्तिक हैं मगर धार्मिक कहां ! नास्तिकों और आस्तिकों में तुम कोई फर्क देखते हो ? जो आस्तिक कर रहा है, वही नास्तिक कर रहा है; जो नास्तिक कर रहा है, वही आस्तिक कर रहा है। अंतर कहां है ? हां आस्तिक मंदिर जाता, नास्तिक मंदिर नहीं जाता। नास्तिक लाइंस क्लब चला जाता होगा, कि रोटरी क्लब चला जाता होगा, कि फिल्म में जाकर बैठ जाता होगा। उनके छोटे-मोटे व्यवहारों में भेद होंगे मगर उनके जीवन में क्या अंतर है ? अगर नास्तिक तुम्हें बताये न कि नास्तिक है, क्या तुम पहचान सकोगे उसके व्यवहार से कि नास्तिक है ? नहीं पहचान सकोगे।

तुम्हारे आस्तिक और नास्तिक दोनों झूठे हैं क्योंकि दोनों ने खोज नहीं की और बिना खोज किये मान लिया है। मेरा आग्रह, मेरा जोर खोज पर है। मैं तुम्हें जिज्ञासु बनाना चाहता हूं। मैं तुम्हें मुमुक्षु बनाना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि तुम कुछ मानकर चलो। मैं चाहता हूं कि तुम सिर्फ एक प्रश्न लेकर उठो, एक गहन जिज्ञासा, एक अभीप्सा जानने की—क्या है ? निश्चित ही कुछ है, इसे मानने की जरूरत नहीं है। तुम हो, यह अस्तित्व है, ये चांद-तारे हैं; ये चांद-तारों के बीच बंधा हुआ संगीत है, एक लयबद्धता है, यह विराट अस्तित्व बिखर नहीं जाता, यह सधा है; कोई अदृश्य ऊर्जा इसे बांधे है, जरूर कुछ है। लेकिन उस कुछ को मानो क्यों, खोजो क्यों नहीं ? वह कुछ हमारे भीतर भी मौजूद है। उसी धागे में हम भी पिरोये हुए हैं, उसी माला के हम भी मनके हैं, तो अपने भीतर उस धागे को तलाशें, खोजें। अपने भीतर वह धागा दिखाई पड़ जाएगा तो सबके भीतर वह धागा दिखाई पड़ जाएगा। और जब दिखाई पड़ता है तो दर्शन मुक्तिदायी है— फिर कोई संदेह नहीं उठ सकता; फिर कोई तुम्हें डिगा नहीं सकता। सारी दुनिया भी कहे कि ईश्वर नहीं है तो भी तुम हंसोगे।

रामकृष्ण के पास विवेकानंद जब गये और उन्होंने पूछा कि क्या ईश्वर है ? यह प्रश्न उन्होंने बहुतों से पूछा था। रवीन्द्रनाथ के दादा से भी पूछा था। उनकी बड़ी ख्याति थी— महर्षि देवेन्द्रनाथ। उनका दूर-दूर तक नाम था। वे बजरे पर रहते थे। नदी के भीतर एक बजरा बना लिया था बस उसी पर रहते थे। विवेकानंद तैर कर आधी रात में बजरे पर चढ़ गये, बजरा हिल गया, दरवाजा धक्का देकर खोल दिया। ध्यान करते थे देवेन्द्रनाथ, जाकर उनको झकझोर दिया। आधी रात, पानी में तरोबोर यह युवक...पागल मालूम होता है। और पूछा, ईश्वर है ? यह कोई वक्त है पूछने का ! ? ये कोई ढंग हैं पूछने के, यह कोई जिज्ञासा करने का शिष्टाचार है ! ? झिझक गये देवेन्द्रनाथ कि आदमी कुछ खतरनाक मालूम होता है। पता नहीं गर्दन दबा दे या क्या करे, अकेले बजरे पर ! थोड़े झिझके। बस झिझके थे कि विवेकानंद वापिस कूद गये।

उन्होंने कहा : युवक वापिस लौट चले, क्यों ?

उन्होंने कहा : आपकी झिझक ने सब कह दिया। झिझक सब बता गयी। कहते हैं देवेन्द्रनाथ को ऐसी चोट कभी किसी ने न दी थी। बात तो सच थी, घाव कर गयी। झिझक सब बता गयी !

फिर इसी विवेकानंद ने जाकर एक दिन रामकृष्ण को पकड़ लिया। सोचा था रामकृष्ण को भी ऐसे ही झकझोर दूंगा। लेकिन भ्रांति हो गयी वहां, रामकृष्ण और ही तरह के व्यक्ति थे। कोई मान्यता नहीं थी उनकी, बोध था, ज्ञान था, अनुभव था। रामकृष्ण से पूछा : ईश्वर है ?

रामकृष्ण ने विवेकानंद को पकड़कर झकझोरा और कहा : अभी जानना चाहते हो ? इसी वक्त ? तैयारी है ?

यह विवेकानंद सोचकर न आये थे कि कोई ऐसा पूछेगा। एक क्षण को झिझके।

रामकृष्ण ने कहा : अभी तैयारी नहीं है. झिझक सब कहती है। जब तैयारी हो, आ जाना, दिखा दूंगा। सोच-समझकर आना था जब पूछने आये थे, यहां बात-चीत नहीं होती। और इसके पहले कि विवेकानंद कुछ कहें, रामकृष्ण झपटे, लात मार दी विवेकानंद की छाती में ! यह तो सोचा ही नहीं था, विवेकानंद सोचते थे कि मैं एक मजबूत युवक और रामकृष्ण ऐसा व्यवहार मेरे साथ करेंगे ! और भी शिष्य बैठे थे, सत्संग चल रहा था, वे भी नहीं समझे कि यह क्या हो रहा है ! रामकृष्ण ने ऐसा किसी और के साथ कभी किया भी नहीं था। इतना बलशाली कोई और कभी आया भी न था। लात का लगना था और विवेकानंद बेहोश हो गये। घंटों बाद होश में आये। होश में आते ही आंखों से आंसू बहने लगे. चरण पकड़ लिए रामकृष्ण के और कहा कि जो अनुभव हुआ है, ऐसा कभी न हुआ था। जो अपूर्व शांति देखी, ऐसी कभी न देखी थी। फिर सदा के लिए रामकृष्ण के हो गये। रामकृष्ण ने विवेकानंद को लात मारकर सदा के लिए अपना बना लिया। गये थे रामकृष्ण को हराने, पराजित करने—मिट कर लौटे।

ईश्वर को जानना एक बात है, मानना दूसरी बात है। मानते रहो, मानने से कुछ भी न होगा, जिंदगी गंवाओगे। इतना समय जानने में लगा दो तो परमात्मा दूर नहीं है। भीखा ने कहा न, बहुत पास है। बस खोजने की त्वरा चाहिए, तीव्रता चाहिए—मगर खोजने की। मानते हैं कायर, खोजते हैं वीर। मानते हैं जो नहीं जानना चाहते हैं। मानना टालने का एक उपाय है कि हां-हां भाई ईश्वर है, अब सिर तो न खाओ। मानना टालने का एक उपाय है कि अच्छा-अच्छा, ऐसा ही होगा, कि ज्यादा झंझट न करो; चलो, रविवार को चर्च हो आएंगे; कि कभी मंदिर की घंटी बजा देंगे; कौन झंझट करे, कौन विवाद करे।

तुमने ईश्वर को माना है एक सामाजिक शिष्टाचार की तरह लेकिन यह तुम्हारी कोई जीवंत आकांक्षा नहीं, अभीप्सा नहीं; यह तुम्हारे प्राणों की प्यास नहीं। तुम पानी को मानने से तृप्त नहीं होते, पानी को पिओगे तब तृप्त होओगे। तुम और चीजें इस तरह नहीं मान लेते। अगर कोई तुमसे कहे कि मान लो कि तुम लखपति हो, तो तुम कहोगे ऐसे कैसे मान लूं ? पहले लाख होने तो चाहिए, हैं कहां ? मानने से क्या होगा, और हंसी-मजाक होगी दुनिया में। नहीं, तुम ऐसे नहीं मानते। कोई तुमसे कहे कि मान लो कि तुम बड़े पद पर हो—राष्ट्रपति हो, प्रधानमंत्री हो। मगर तुम ऐसे नहीं मानते, तुम कहते हो ऐसे मानने से क्या होगा और पुलिसवाले

पकड़कर ले जाएंगे।

मैंने सुना है—मुल्ला नसरुद्दीन कहा करता था कि वह किसी भी आदमी को बड़ी आसानी से लखपति बना सकता है। लखपति बनने के नेक इरादे से कई लोग उसके पास आने लगे। मुल्ला ने कहा : लखपति बनना तो अत्यन्त सरल है लेकिन उसके लिए तीन शर्तें पूरी करनी जरूरी हैं। पहली शर्त यह है कि तुम्हें पंद्रह दिनों तक मेरे साथ रहना होगा।

यह कोई आसान बात नहीं, मुल्ला नसरुद्दीन के साथ पंद्रह दिन साथ रहना। तुम्हें पहले समझा दूं तो तुम्हें अर्थ समझ में आएगा। एक आदमी के पास एक सड़ी हुई भेड़ थी, जिसकी बदबू सारे मोहल्ले में घूमती थी। उसको मजाक सूझा, उसने गांव में डुंडी पिटवा दी कि जो आदमी भी घंटे-भर इस भेड़ के साथ कमरे में रह जाएगा, उसको मैं हजार रुपया इनाम दूंगा। बड़े-बड़े हिप्पी, बड़े-बड़े पहुंचे हुए महात्मा आये, तपस्वी, त्यागी. . .मगर घंटा-भर कौन कहे, भीतर जाएं और मिनट भी न बीते और बाहर आ जाएं कि नहीं भाई, प्राण घुटते हैं।

अखीर में मुल्ला नसरुद्दीन आया। और तुम्हें पता है क्या हुआ? आधा घंटे बाद भेड़ बाहर आ गयी। भेड़ से लोगों ने पूछा कि क्या हुआ?

तो भेड़ ने कहा : यह आदमी मेरी जान ले लेगा, मेरी सांस घुटती है, मेरी दम घुटती है।

तो मुल्ला नसरुद्दीन कहता था कि पहली शर्त यह कि तुम्हें पंद्रह दिन तक मेरे साथ रहना होगा। दूसरी शर्त यह है कि मैं जो कहूं वह करना होगा।

वह भी बड़ी झंझट की बात थी क्योंकि वह बातें उल्टी-सीधी लोगों से करने को कहता। किसी को कह देता यह बेपेंदी का वर्तन ले जाओ, कुएं से पानी भरो। अब भरते रहो दिन-रात पानी, पानी कभी भरेगा नहीं आखिर पच जाओगे। उल्टे-सीधे काम करवाता। पंद्रह दिन में जान ले लेगा।

और तीसरी तथा आखिरी शर्त यह है कि जो लखपति बनना चाहता है उस आदमी को पहले से करोड़पति होना चाहिए। स्वभावतः जो करोड़पति है उसको लखपति बनाना आसान मामला है।

तुम से कोई कहे कि मान लो कि लखपति हो तो तुम मानने को राजी नहीं होओगे। तुम कहोगे कि महाराज कुछ नगद, कुछ खनखनाहट, कुछ आवाज करवाकर बताइए; कुछ नोटों में से नोट निकाल कर बताइए, ऐसे मानने से क्या होगा? लेकिन जब कोई तुमसे कहता है ईश्वर को मान लो, तो तुम मान लेते हो। असल में तुम जानना ही नहीं चाहते हो। तुम कहते हो कौन हुज्जत में पड़े—हो, तो ठीक; न हो, तो ठीक—किसको लेना-देना है! तुम इस योग्य भी नहीं मानते परमात्मा को कि विवाद करो।

बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि एक जमाना था कि लोग विवाद करते थे कि ईश्वर है या नहीं। कुछ लोग, थोड़े-से लोग, कहते थे कि नहीं है। मगर अब जमाना बदल गया, अब हालत यह है कि कोई विवाद ही नहीं करना कि ईश्वर है या नहीं। अब लोगों को इतनी भी उत्सुकता नहीं है कि कोई कहे कि नहीं है। अगर तुम किसी सभा-समाज में विवाद छेड़ने लगो तो लोग कहेंगे कहां की बकवास, अरे किसी फिल्म की बात करो जो फिल्म बम्बई में चल रही हो—कैसी है, अच्छी है, बुरी है! कुछ दिल्ली की बात करो—कि कौन ने किसको पछाड़ा! कुछ मतलब की बात करो, कुछ रसपूर्ण बात करो; यह कहां की ईश्वर की बात छेड़ दी! ईश्वर की लोग बात नहीं करना चाहते और मजा यह है कि सब ईश्वर को मानने वाले लोग हैं, और बात करने योग्य भी नहीं मानते ईश्वर को!

विचार से यही हो सकता है—एक थोथा आडम्बर। मैं चाहता हूं कि तुम्हारे जीवन में ईश्वर की किरण उतरे; तुम्हें ईश्वर का स्वाद मिले; तुम उसके अमृत घट से पिओ; तुम उसके साथ लवलीन हो जाओ, तल्लीन हो जाओ; तुम उसके साथ उठो, बैठो, सोओ, नाचो, गाओ। इसलिए मैं यह नहीं कह सकता तुमसे कि सिर्फ विचार करने से काम हो जाएगा; मैं तो कहूंगा, निरन्तर कहूंगा, बार-बार कहूंगा—निर्विचार होना होगा। ईश्वर की बात ही छोड़ दो—है या नहीं, यह तुम कैसे निर्णय कर सकते हो? अंधा आदमी कैसे निर्णय करेगा कि प्रकाश है या नहीं? बहरा आदमी कैसे निर्णय करेगा कि ध्वनि है या नहीं? आंख की तलाश करो। कान की तलाश करो। जिस दिन आंख होगी तुम जानोगे प्रकाश है; जिस दिन कान होगा तुम जानोगे ध्वनि है। वही जानना रूपान्तरकारी है, वही जानना सार्थक है।

दूसरा प्रश्न : भगवान! मेरी पत्नी मुझे संन्यास लेने से रोक रही है, मैं क्या करूं?

★ भैयालाल! भैया, पत्नी की ही मानो; नाहक की झंझट न लो। पत्नी पर तुम अगर अपना बल सिद्ध कर पाते तो यह प्रश्न पूछते ही नहीं। पत्नी पर तुम्हारा बल तो है नहीं। अगर पत्नी कह रही है संन्यास मत लो, तो भूल कर मत लेना। इस झंझट में पड़ना ही मत, नहीं तो पत्नी बहुत उपद्रव खड़ा करेगी। और रहना पत्नी के साथ है। और मेरे संन्यास में पत्नी को छोड़कर जाना नहीं है, यही झंझट है।

पुराना संन्यास बड़ा सरल था। लोग सोचते हैं कठिन था, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं बड़ा सरल था। सबसे बड़ी सरलता यह थी कि भाग गये पत्नी को छोड़कर। आमतौर से लोग समझते हैं कि मैंने संन्यास को सरल बना दिया है. वे बिलकुल गलत समझते हैं, उन्हें जीवन का कोई अनुभव ही नहीं है। मैंने पहली बार संन्यास

को कठिन बनाया है क्योंकि पत्नी के साथ ही रहना है और संन्यास। आग में ही खड़े रहना है और जलना नहीं है। पानी में चलना है और पानी को छूने नहीं देना है। पुराना संन्यास तो सस्ता है, भाग ही गये अब पत्नी कहां खोजती फिरेगी तुम्हें! सिर इत्यादि घुटा लिया, नाम बदल गया, भभूत रमा ली, तरह-तरह के टीका-तिलक लगा लिए--पत्नी मिल जाए तो भी पहचान न पाये। और भाग गये; इतना बड़ा देश, बैठ गये किसी गुफा में, किसी जमात में सम्मिलित हो गये; पत्नी कहां खोजती फिरेगी?

पुराना संन्यास सरल था क्योंकि भगोड़ापन था, पलायनवाद था, कायरता थी। नया संन्यास निश्चित ही कठिन है क्योंकि चुनौतियों से हटना नहीं है।

तुम्हारी पत्नी के संबंध में मुझे पता नहीं, मगर तुम्हारा प्रश्न बताता है भैयालाल, कि भैया, ऐसी झंझट में न पड़ो तो अच्छा। ऐसे नाम वाले लोगों की पत्नियां खतरनाक होती हैं। तुम सीधे-साधे आदमी होओगे।

मैंने सुना है--एक बस में एक महिला ने झल्लाते हुए अपने पास बैठे व्यक्ति मुल्ला नसरुद्दीन से कहा: आप बड़े बदतमीज हैं जी! आप क्यों बार-बार मेरे मुंह पर सिगरेट का धुआं छोड़ रहे हैं? आपको शर्म नहीं आती?

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: शर्म तो आपको आनी चाहिए देवीजी! आप मुझसे इतने सटकर क्यों बैठी हैं? और सटकर ही नहीं बैठी हैं बार-बार अपने हाथ से हुद्दे दे रही हैं।

महिला ने कहा: आप बड़े बेशुऊर हैं। मैं हुद्दे नहीं दे रही, देखते नहीं कि मैं मोटी हूं, सांस ले रही हूं! आपको महिलाओं से बात करने का ढंग भी पता नहीं?

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: देवीजी, मुझे नहीं पता कि महिलाओं से कैसी बात करनी चाहिए, मगर आपको तो पता होगा कि एक भारतीय स्त्री के क्या आदर्श हैं। कम-से-कम आपको तो उसका पालन करना चाहिए।

उस महिला ने कहा: आप परले दर्जे के बेवकूफ हैं। यदि आप मेरे पति होते तो मैं जरूर आपको जहर दे देती।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा: क्षमा करिए देवीजी, यदि आप मेरी पत्नी होतीं तो यह कष्ट आपको न करना पड़ता, मैं खुद ही जहर पी लेता।

अब पता नहीं भैयालाल आपकी पत्नी किस ढंग-ढोर की हैं, क्या व्यवहार-सद्व्यवहार आपके साथ करेंगी संन्यास लेने पर! मगर जहां तक सौ में निन्यानबे मौके तो यही हैं कि यह झंझट आप न लो तो अच्छा। आप पत्नी को यहां लाने लगो। पहले मुझे उसे संन्यासी बना लेने दो। मैं इसी ढंग से काम करता हूं। इससे पुरुषों की इज्जत बच जाती है। पहले पत्नियों को संन्यासी बना लेता हूं फिर

उनको बनना ही पड़ता है। फिर ऐसा पति कहां जो पत्नी की आज्ञा टाले। और मेरा स्त्रियों से गणित बिलकुल जम जाता है।

इसलिए तुम सिर्फ इतना ही करो, अगर इतना ही कर पाओ तो बहुत कि किसी तरह पत्नी को यहां लाने लगो--उसे सुनने दो, उसे गुनने दो, उसे नाचने दो, उसे ध्यान करने दो--आज नहीं कल वह संन्यासी होना चाहेगी। जिस दिन वह होना चाहेगी उस दिन तुम्हारे लिए भी रास्ता खुल जाएगा। उसके पहले तुम व्यर्थ की चिन्ताओं में, बेचैनियों में पड़ जाओगे। वह तुम्हारा जीना हराम कर देगी, चौबीस घंटे तुम्हें सताएगी। और भागने मैं नहीं दूंगा।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं: अब संन्यास ले लिया, अब हमको यहीं रहना है, घर नहीं जाना है। असल में यहां रहना है, इससे प्रयोजन सिर्फ इतना ही है कि घर नहीं जाना है। घर क्यों नहीं जाना है? 'कि नहीं अब यहीं रहने का मन होता है।' यहीं रहने का मन नहीं है असली बात, मैं उनसे कहता हूं: असली बात कहो। वे कहते हैं: 'अब आप तो जानते ही हैं।'

एक मित्र बनारस के संन्यास लेकर गये, बामुश्किल भेजा उन्हें...उनको समझाकर कि जाओ भई। कोई पांच-सात दिन बाद ही उनकी चिट्ठी आयी कि पत्नी ने अस्पताल में भरती करवा दिया है क्योंकि पत्नी कहती है कि तुम पागल हो गये। मैं जितना मना करता हूं उतना ही कोई मेरी मानता नहीं। सब मेरी पत्नी की मानते हैं। मैं डॉक्टरों को भी समझाता हूं, डॉक्टर कहते हैं: 'चुप रहो भाई, सभी पागल यही कहते हैं कि पागल नहीं हैं। तुम बकवास न करो, तुम शांत रहो, तुम लेटे रहो, दवा लो, इलाज करवाओ।'

पागल क्यों पत्नी ने समझ लिया? क्योंकि वे घर हंसते हुए पहुंचे, प्रसन्न पहुंचे। और पत्नी ने कहा कि हंसते हुए और प्रसन्न कभी देखा नहीं था उनको। और भजन-कीर्तन करने लगे...। उन्होंने सोचा होगा पहले से ही छाप मार दूं। पहले से ही, नहीं तो पीछे फिर मुश्किल हो जाएगा। मगर पत्नी ने भी उन्हें पकड़ा उसी वक्त, मोहल्ले के लोगों को इकट्ठा कर लिया कि इनका दिमाग खराब हो गया है, भले-चंगे घर से गये थे। उन्होंने मुझे लिखा है कि मैं...मुझे बहुत हंसी आती है कि हद हो गयी, मैं बिलकुल ठीक हूं, लोग मुझे पागल समझ रहे हैं। चूंकि मुझे हंसी आती है, वे मुझे और पागल समझते हैं। और सबकी सहानुभूति पत्नी के साथ है। मैंने उनको खबर भेजी कि बेहतर यहीं है कि तुम वैसे ही हो जाओ उदास जैसे पहले थे--न भजन-कीर्तन करो, न हंसो, न गाओ। पत्नी की मानकर चलो, नहीं तो वह तुम्हें मुसीबतों में डाल देगी।

एक बात ख्याल में रखना, पुरुष ने स्त्री पर कब्जा करने की कोशिश की है सदियों में और एक तरह से पुरुष ने बहुत कब्जा स्त्री पर कर भी लिया है। उसके

हाथ से सारी आर्थिक स्वतंत्रता छीन ली, सामाजिक स्वतंत्रता छीन ली, जीवन में गति करने के दृष्टि से उसे बिलकुल पंगु कर दिया, उसके पैरों में जंजीरें डाल दीं --नाम उनको अच्छे-अच्छे दिये, आभूषणों के नाम दिये। उसके जीवन को बिलकुल घर में बंद कर दिया और स्वतंत्रता मनुष्य के जीवन की बड़ी अनिवार्यता है।

पुरुष ने स्त्री को सब तरह से परतंत्र कर दिया, इसका बदला स्त्री न ले यह असंभव है। तुमने सब तरह से उसे परतंत्र कर दिया, इसका इकट्ठा बदला वह तुमसे लेती है। बाहर के जगत में तो उसकी कोई गति नहीं है लेकिन घर के जगत में वह तुम्हें पूरी तरह दबा देती है। इस तरह का पुरुष खोजना ही मुश्किल है जो अपनी पत्नी से न डरता हो। डरना ही पड़ेगा क्योंकि तुमने उसे बहुत डराया है। ख्याल रखो जीवन का नियम, जब तुम किसी को डराओगे, तुम्हें डरना पड़ेगा और जब तुम किसी को गुलाम बनाओगे तो तुम्हें गुलाम बनना पड़ेगा। अगर स्वतंत्र रहना है तो दूसरे को स्वतंत्र करो। अगर तुम चाहते हो कि तुम मुक्त रहो तो किसी को बंधन में मत बांधो।

बीरबल ने एक दिन कहते हैं अकबर को कहा--ऐसे ही बातचीत में बात निकल आयी होगी--कि तुम्हारे दरबार में सब दब्बू हैं, सब पत्नियों से डरते हैं। अकबर ने दूसरे दिन ही अपने दरबारियों से कहा : ईमानदारी से, जो लोग अपनी पत्नियों से डरते हों, वे बायें तरफ खड़े हो जाएं और जो पत्नियों से न डरते हों, वे दायें तरफ खड़े हो जाएं। मगर ईमानदारी से, कोई धोखा न दे क्योंकि जिसने धोखा दिया या धोखा देते हुए पकड़ा गया...इसकी जांच-पड़ताल की जाएगी पीछे तो फांसी की सजा होगी। एकदम बायीं तरफ कतार लग गयी, सारे दरबारी बड़ी-बड़ी तलवारें लटकाये खड़े बायें तरफ। सिर्फ एक दुबला-पतला आदमी, जिसकी कोई हैसियत ही न थी दरबार में, जो आखिरी समझा जाए, वह भर दायीं तरफ आकर खड़ा हो गया।

अकबर ने भी कहा कि हद हो गयी, बड़े-बड़े बहादुर, सूरमा, युद्धों के विजेता बड़े तमगे जिन्होंने जीते, सोने के तमगे लटकाये हुए और तलवारें...खड़े हैं बायीं तरफ सिर झुकाये और यह बिलकुल सूखा-रूखा आदमी, एक तमगा कभी जीता नहीं, कभी एक युद्ध में लड़ा नहीं, तलवार पकड़ने का शुऊर नहीं--यह खड़ा है दायीं तरफ! मगर फिर भी कहा कोई बात नहीं, कम-से-कम एक आदमी तो है दरबार में जो अपनी पत्नी से नहीं डरता।

उस आदमी ने कहा : क्षमा करें महाराज! आप गलत न समझें। जब मैं घर से चलने लगा तो मेरी पत्नी ने कहा--भीड़-भाड़ से जरा दूर ही खड़े होना। इसलिए मैं इस तरफ खड़ा हूं, और कोई कारण नहीं है। कहीं उस दुष्ट को पता चल जाए कि भीड़-भाड़ में खड़ा हुआ तो रात ही मुसीबत...।

मैंने एक और कहानी सुनी है। किसी और सम्राट के दरबार में यही बात चली। सदियों पुरानी है यह बात क्योंकि आदमी और स्त्री का संबंध सदियों-सदियों में बिचारा गया है और अब तक रुग्ण है, अब तक भी स्वस्थ नहीं हो पाया है। पूछने पर पता चला कि सारे दरबारी अपनी पत्नियों से डरते हैं। तो उसने अपने बड़े मंत्री को कहा कि तू दो घोड़े लेकर जा--एक काला और एक सफेद, हमारे जो श्रेष्ठतम घोड़े हैं और सारे राज्य में घूम और जो व्यक्ति भी पत्नी से न डरता हो, वह जो भी घोड़ा पसंद करे, उसको दे देना भेंट मेरी तरफ से।

उन दिनों घोड़ा बड़ी शानदार चीज थी और सम्राट के पास सचमुच ही कीमती घोड़े थे। वह आदमी लेकर चला, हजारों लोगों से पूछा लेकिन उन्होंने कहा कि भाई, घोड़ा लेने का तो बहुत दिल होता है मगर झूठ बोलना ठीक नहीं है। और सम्राट से झूठ बोलना क्या उचित, फिर बात पकड़ गयी पीछे तो झंझट होगी, हम तो डरते हैं। थका जाता था वजीर कि एक दिन एक ठेठ जंगली स्थान में जहां दो-चार झोपड़े थे, एक आदमी बैठा हुआ अपने शरीर पर मालिश कर रहा है, बड़ी-बड़ी उसकी मसल हैं, बड़े पंजे हैं उसके, होगा कम-से-कम सात फीट ऊंचा कि अगर शेर से भी जूझ जाए तो शेर को भी पछाड़ दे ऐसा उसका बल है। वजीर को ढाढस बंधा। उसने कहा कि कम-से-कम यह आदमी घोड़ा जीत लेगा। घोड़े को सामने बांधकर वजीर ने उससे पूछा कि भई पूछता हूं तुमसे, अपनी पत्नी से तो नहीं डरते?

उस आदमी ने अपना पंजा वजीर को दिखलाया और पंजा बंद करके दिखलाया और कहा कि देखते हो यह पंजा, जिसकी गर्दन पर कस जाए वह खत्म। उसने अपनी मसलें उठा कर बतायीं, उसने कहा देखते हो ये मसल, ये चट्टान पर हाथ मार दूं तो चट्टान टूट जाए।

वजीर ने कहा : तो फिर ठीक, तेरी पत्नी कहां है?

तो पत्नी पास ही बैठी हुई अनाज बीन रही थी, एक दुबली-पतली औरत, बिलकुल दुबली-पतली औरत कि यह आदमी तो उसको मरोड़ कर फेंक दे तो उसका कहीं पता ही न चले। कहा : वह है मेरी पत्नी।

तो वजीर ने कहा कि ठीक है तो तुम घोड़ा चुन लो। सम्राट ने कहा है कि जो भी अपनी पत्नी से न डरता हो, वह घोड़ा चुन ले, सफेद या काला, कौन-सा घोड़ा?

उस आदमी ने कहा : लल्लू की मां, कौन-सा घोड़ा चुनूं--सफेद कि काला?

वजीर ने कहा : कोई भी नहीं मिलेगा। गये काम से। अगर यह भी लल्लू की मां से ही पूछना है तो मालकियत खत्म।

पुरुष ने स्त्री की सारी स्वतंत्रता छीन ली है और इसलिए स्त्री के पास अब

कुछ नहीं बचा है स्वतंत्रता के नाम पर। और उसका प्रतिशोध स्त्री लेती है इसलिए पुरुष को सब तरह से सता सकती है। उसके सताने के ढंग स्त्रैण हैं। पुरुष गुस्से में आ जाएगा तो स्त्री को मारेगा, स्त्री गुस्से में आ जाएगी तो अपना सिर पीटेगी। मगर तुम स्त्री को मारो तो अपना बचाव कर सकती है और जब स्त्री अपना सिर पीट ले तो क्या बचाव करोगे तुम? उसके तुम्हें सताने के ढंग भी बहुत भिन्न हैं—वह रोयेगी, दुखी होगी, पीड़ित होगी, और तुम्हें इस हालत में पैदा कर देगी कि तुम्हें लगने लगे कि तुम अपराधी हो। मगर इसके भीतर सदियों पुरानी एक भ्रांत धारणा काम कर रही है कि स्त्री-पुरुष मित्र नहीं हो सकते। अब तक हमने स्त्री को स्वतंत्रता नहीं दी है और जब तक स्वतंत्रता नहीं है स्त्री को, तब तक पुरुष भी स्वतंत्र नहीं हो सकता।

संन्यास तुम लेना चाहते हो, शुभ भाव तुम्हारे मन में उठा, लेकिन जल्दी न करो, जल्दी की कोई जरूरत नहीं है। मेरा अपना अनुभव यह है कि अगर पत्नी और पति दोनों साथ-साथ संन्यास लें तो गहराई बहुत बढ़ती है। क्योंकि दोनों एक दूसरे के सहयोगी हो जाते हैं; दोनों का तालमेल गहन बैठ जाता है; दोनों बाधा नहीं बनते, एक दूसरे के लिए सीढ़ी बन जाते हैं, एक दूसरे को हाथ का सहारा देते हैं। अगर दो में से एक भी संन्यास ले ले तो दूसरा बाधा डालने की कोशिश करता है, दूसरा हर तरह से अड़चन खड़ी करता है। और संन्यास तो वैसे ही कठिन साधना है। संसार में रहकर फिर अगर बाधाएं पैदा की जाएं और घर में ही बाधाएं पैदा की जाएं तो मुश्किल हो जाएगा ध्यान में उतरना, मुश्किल हो जाएगा चैतन्य को जगाना—छोटी-छोटी बातें, छोटा-छोटा उपद्रव चौबीस घंटे घेरे रहेगा।

इसलिए मेरी सलाह है—पत्नी को भी लाओ, उसे भी मुझे सुनने दो, उसे भी सत्संग में डूबने दो। संन्यास की बात ही अभी मत उठाओ, जरा ठहरो। हर चीज अपने समय पर शुभ है। संन्यास होगा अगर अभीप्सा जगी है तो होगा, कोई भी रोक नहीं सकता—न पत्नी रोक सकती है, न कोई और रोक सकता है। अगर तुम्हारे प्राणों में गीत बज गया है तो घटना घटेगी। जो भीतर है वह बाहर भी घटेगा, लेकिन बाहर की बहुत जल्दी मत करना।

इन हीरे ऐसे अश्कों को आरिज पर लुटाकर मत रोको
याकूत के ऐसे होटों को दांतों से चबाकर मत रोको
इक बात है जो रह जाएगी, यह वक्त कहां फिर पाऊंगा
उस पार मुझे जाने भी दो, रोको न मुझे मैं जाऊंगा

खूंखार निगाहों के डर से लब तक न हिलें यह क्या मानी
तकदीर की भोली बातों को हम सुनते रहें यह क्या मानी

सदियों के भयानक माजी की इन कंदीलों को बुझाऊंगा
उस पार मुझे जाने भी दो, रोको न मुझे मैं जाऊंगा

कब तक यह अमामा कुफ्रोदीन के ढोंग रचाये जायेगा
कब तक यह पुजारी दुनिया को उंगली पै नचाये जायेगा
इन झगड़ों से जो पाक रहे वह बस्ती एक बसाऊंगा
उस पार मुझे जाने भी दो, रोको न मुझे मैं जाऊंगा

ऐसा भी जमाना आयेगा, जब हम दोनों मिल जायेंगे
हर मंजर कैफ-आगीं होगा, हर कैफ पै हम लहरायेंगे
दुनिया ही निराली पाओगी, जिस वक्त मैं वापिस आऊंगा
उस पार मुझे जाने भी दो, रोको न मुझे मैं जाऊंगा

जाना है उस पार—उस पार यानी भीतर, उस पार यानी अंर्ततम में। जाना है उस पार और कोई रुकावट से रुकना नहीं है। मगर एक कुशलता चाहिए, एक कला चाहिए।

संन्यास बड़ी-से-बड़ी कला है। और जब तुम परिवार में हो—पत्नी है, बच्चे हैं, मां है, पिता हैं—धीरे-धीरे सबको राजी करो; उनके राजीपन से जाओ। भीतर तो जाना शुरू कर दो, ध्यान में तो उतरने लगो लेकिन बाहर का जो रूपान्तरण है वह सबके राजीपन से।

महावीर के जीवन में प्यारा उल्लेख है। महावीर संन्यस्त होना चाहते थे। महावीर की मां ने कहा: 'मेरे रहते नहीं, मैं जब मर जाऊं तब, मैं न सह पाऊंगी और अगर तुमने संन्यास लिया तो तुम्हारा संन्यास मेरी मौत बनेगी।' महावीर तो यह सोच भी नहीं सकते थे कि कोई की मौत उनके कारण हो। चींटी को भी मारने की उनकी इच्छा न थी, तो अपनी मां को मारते! परोक्षरूपेण सही मगर जुम्मेवारी तो होती, तो रुक गये। दो साल बाद मां की मृत्यु हो गयी। दफना कर लौट रहे हैं। रास्ते में अपने बड़े भाई से कहा कि अब मुझे आज्ञा दे दें, मां की वजह से रुका था।

बड़े भाई ने कहा: 'हद हो गयी, एक पहाड़ हमारी छाती पर टूटकर गिरा कि मां चल बसी और तुम्हें शर्म नहीं आती? मुझे छोड़कर जाते हो। यह वक्त जाने का है? मुझे सहारा दो। अभी नहीं, जब तक मैं आज्ञा न दूं संन्यास नहीं।'

और महावीर फिर रुक गये। लेकिन दो वर्ष में ही भाई को आज्ञा देनी पड़ी; आज्ञा ही नहीं देनी पड़ी, प्रार्थना करनी पड़ी। क्योंकि दो वर्ष में महावीर ध्यान में उतरते गये, उतरते गये, उतरते गये। ऐसे ध्यान में उतर गये कि घर में उनकी मौजूदगी भी पता चलनी बंद हो गयी। ऐसे शून्य हो गये कि हैं या नहीं बराबर हो गया। लोग गुजर जाते उन्हें पता न चलता, वे स्वयं गुजरते तो लोगों

को उनका पता न चलता; न किसी के काम में अड़चन न किसी के काम में बाधा, न हस्तक्षेप, न अवरोध। होना न होने के बराबर कर दिया, बिलकुल बराबर कर दिया। आखिर एक दिन घर के लोगों को ही यह अनुभव में आना शुरू हुआ कि अब हम व्यर्थ रोक रहे हैं। किसको रोक रहे हैं? अब सिर्फ शरीर रुका है, पिंजड़ा पड़ा है; हंसा तो जा चुका, हंसा तो उड़ गया। घर के सारे लोगों ने जुड़कर प्रार्थना की महावीर से कि अब हम न रोकेंगे; अब ज्यादती हो जाएगी, अब तुम्हें जो शुभ लगता हो वैसा करो क्योंकि वैसे ही तुम जा चुके हो, सिर्फ देह रुकी है।

यही मैं तुमसे भी कहूंगा। हवा बनाओ घर की, एक वातावरण बनाओ घर का। तुम्हारा ध्यान बढ़े, तुम्हारा प्रेम बढ़े, तुम्हारी शांति बढ़े, तो पत्नी क्यों अड़चन देगी? तो बच्चे क्यों बाधा डालेंगे? और पत्नी अगर अड़चन दे रही है तो उसका कारण है—सदियों-सदियों से संन्यास के नाम पर जो हुआ है, वह। सदियों-सदियों में पत्नियां सतायी गयी हैं, बच्चे अनाथ हो गये हैं—बाप जिंदा है और बच्चे अनाथ हो गये हैं क्योंकि बाप संन्यासी हो गया; पति जिंदा है और पत्नी विधवा हो गयी क्योंकि पति संन्यासी हो गया।

पांच हजार साल भारत में स्त्रियों ने जो सहा है संन्यास के नाम पर, वह इतना ज्यादा है कि कोई भी पत्नी भयभीत हो जाएगी। संन्यास शब्द ही दूषित हो गया। फिर तुम चाहे मेरे संन्यासी होना क्यों न चाहो, संन्यास शब्द से ही घबड़ाहट पैदा हो जाती है। जरा पत्नी को आने दो सत्संग में, उसे समझने दो कि यह संन्यास एक नया ही अवतरण है, एक नयी धारणा है—यह न तो स्त्री के खिलाफ है, न बच्चों के खिलाफ है, न परिवार के, न प्रेम के; यह तो पक्ष में है। मेरा संन्यास संसार के विपरीत नहीं है, संसार के अतिक्रमण में है। संसार को छोड़ना नहीं है, संसार में जागना है।

लेकिन भीतर तो तुम ध्यान में उतरना शुरू हो जाओ; उसमें तो कोई बाधा नहीं डालेगा, उसमें तो पत्नी की आज्ञा लेने की जरूरत नहीं है, पत्नी को पता ही क्यों चले। रात के आधे, आधी रात जब पत्नी भी सोयी हुई हो तब उस बिस्तर पर बैठ जाओ। किसी को पता ही क्यों चले, कानों कान खबर क्यों हो! लेकिन ध्यान में डूबने लगो। ध्यान ही असली संन्यास है। फिर बाहर के कपड़े तो कभी भी रंग देंगे, बाहर के कपड़ों के रंगने की इतनी चिन्ता नहीं है। और बाहर के कपड़ों को रंगकर झंझट इतनी खड़ी हो जाए कि भीतर का ध्यान मुश्किल में पड़ जाए, ऐसी सलाह मैं नहीं दे सकता हूं।

आखिरी सवाल : भगवान! मैं अपने मन के शैतान से संघर्ष का सतत

अभ्यास कर रहा हूं फिर भी सफलता क्यों नहीं मिलती?

★ रामानंद! संघर्ष में ही विफलता है। संघर्ष में सफलता संभव नहीं है। संघर्ष गलत प्रारम्भ है। समझ चाहिए, संघर्ष नहीं। जिससे तुम लड़ोगे, उसको तुम बल दोगे क्योंकि जिससे तुम लड़ रहे हो वह तुम्हारा ही अंग है। मन से लड़ रहे हो, किससे लड़ रहे हो? मन तुम्हारी ही ऊर्जा है। क्रोध है, लोभ है, मोह है, काम है—ये तुम्हारी ही ऊर्जाएं हैं; इनसे तुम लड़ोगे तो अपने बायें हाथ को दायें हाथ से लड़ा रहे हो। पागल हो! कौन जीतेगा, कौन हारेगा? न कभी जीत होगी, न कभी हार होगी। शक्ति गंवाओगे और टूटोगे, खंडित होओगे, नष्ट होओगे; विक्षिप्त हो जाओगे, विमुक्त नहीं।

संघर्ष नहीं चाहिए, समझ चाहिए। मन को समझो। मन की प्रत्येक अभिव्यक्ति को समझो। क्रोध क्या है, समझो। क्रोध की गहराई में उतरो। क्रोध की आधारशिला में उतरो। क्रोध की जड़ को पकड़ो। काम क्या है, समझो। तुम्हें लड़ना सिखाया गया है, समझना नहीं सिखाया गया। और जितना तुम लड़ोगे उतना ही तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि जितना तुम लड़ोगे, उतना ही तुम्हारा मन भी लड़ने में कुशल हो जाएगा। जब दो आदमी लड़ते हैं तो दोनों की कुशलता बढ़ती है। अखाड़ों में देखते न, लोग अभ्यास के लिए कुश्ती करते रहते हैं—दोनों की कुशलता बढ़ती रहती है। कौन हारता, कौन जीतता, यह सवाल नहीं मगर दोनों की लड़ने की क्षमता बढ़ती रहती है। तुम अगर मन से लड़ोगे, तुम्हारी भी लड़ने की क्षमता बढ़ेगी, मन की भी लड़ने की क्षमता बढ़ेगी—दोनों बलशाली होते जाओगे। और जितने बलशाली होओगे, उतना ही संघर्ष ज्यादा, उतना ही शक्ति का अपव्यय ज्यादा।

ऐसे नहीं चलेगा। मैं संघर्ष नहीं सिखाता। मेरा तो सारा सूत्र समझ का है। ध्यान करो मन पर, लड़ना क्या है! मन बुरा है, ऐसा मानकर क्यों बैठ गये? समझाया है पंडित-पुरोहितों ने तो मान लिया है। इसीलिए तो चाहता हूं कि पंडित-पुरोहितों से मुक्त हो जाओ; उनके कारण ही तुम्हारी जिंदगी झंझट बनी है। उनके कारण ही तुम्हारी जिंदगी एक लंबी कहानी है व्यथा की, जिसमें आनंद का कोई गीत न फूटा है, न फूट सकता है। जिसमें विषाद ही विषाद आएगा और मौत आएगी—महा जीवन नहीं, अमृत का तुम्हें कोई अनुभव न हो सकेगा।

लड़ने का मतलब होता है—दबाना। किसी तरह दबाकर बैठ भी गये तो आज नहीं कल, कभी तो छुट्टी लोगे...इसलिए तुम्हारे साधु-संत छुट्टी नहीं ले सकते, चौबीस घंटे छाती पर चढ़े बैठे रहेंगे, अपनी ही छाती पर खुद ही चढ़े बैठे हैं। थोड़ी देर को भी फुर्सत नहीं है। हंस भी नहीं सकते क्योंकि उतनी छुट्टी लेने में भी खतरा है, उतनी देर में ही वह जो दबाया है, वह उभरकर बाहर आ जाए!

तुम्हारे साधु-संत आंख नीचे झुकाकर चलते हैं--कोई सुन्दर स्त्री रास्ते पर दिखाई न पड़ जाए ! यह मुक्ति हुई या बंधन हुआ ? अगर सुन्दर स्त्री के दिखाई पड़ने में इतनी घबड़ाहट है, यह कौन-सी जीत है ? इस जीत की कितनी कीमत है ? दो कौड़ी भी मूल्य नहीं। अगर ऐसे आंख चुरा-चुराकर चले तो सबूत दे रहे हो तुम कि तुम्हारे भीतर सब रोग मौजूद हैं। हां, पर्दे की ओट कर दिये हैं। और रोग पर्दे की ओट में बलशाली हो जाते हैं, ख्याल रखना, क्योंकि वे भी अभ्यास कर रहे हैं, वे भी डंड-बैठक लगा रहे हैं, वे भी तैयारी कर रहे हैं कि अब की बार हमला हो तो तुम्हें चारों खाने चित कर देना है।

मैंने सुना है--एक बार एक शिकारी जो कि नया-नया शिकारी हुआ था, शिकार के लिए जंगल गया। जैसा कि शिकार में होता है; वृक्ष पर मचान बंधवाया गया। कुछ समय पश्चात शेर आया। शिकारी ने शेर को देखा और शेर ने शिकारी को। शिकारी नया था, शेर भी नया था। इसलिए स्वभावतः शिकारी का निशाना चूक गया और गोली शेर के ऊपर से निकल गयी। इधर शेर ने भी शिकारी की तरफ छलांग मारी, मगर वह भी मचान से करीब चार-छः इंच नीचे रह गया। शिकारी ने उसकी गर्म सांसें और लाल-लाल आंखें अपने बहुत निकट महसूस कीं। छलांग में असफल हो जाने पर शेर भाग गया।

शिकारी अपनी असफलता पर बहुत दुखी था, अतः वह दूसरे दिन निशानेबाजी की प्रैक्टिस के लिए जंगल पहुंचा। वह जिस जगह प्रैक्टिस कर रहा था, उसने देखा : पास की झाड़ियों से बार-बार किसी चीज के गिरने की आवाजें आ रही हैं। उसने सोचा : आखिर बात क्या है, देखना चाहिए।

देखा, तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा--- कल वाला शेर झाड़ियों में ऊंचीकूद की प्रैक्टिस कर रहा था।

तुम अभ्यास करोगे मन से लड़ने का, मन भी अभ्यास करेगा तुमसे लड़ने का, जीत कभी होने वाली नहीं। संघर्ष से कभी कोई सफलता हाथ नहीं लगती। संघर्ष ही तुम्हारी असफलता का आधार है। समझ को पकड़ो, बोध को पकड़ो। ज्ञान का, ध्यान का का दीया जलाओ ! मन के साथ पहले से ही पक्षपात मत कर लो कि बुरा है। परमात्मा ने जो भी दिया है शुभ ही है, हमें उसका उपयोग करना आना चाहिए। क्रोध का अगर कोई ठीक-ठीक राज खोल ले तो करुणा प्रगट होती है। और कामवासना की ग्रंथि को जो खोलने में समर्थ हो जाता है, उसके जीवन में ब्रह्मचर्य का फूल लगता है। कामवासना ब्रह्मचर्य को छिपाये है। कामवासना बीज है, ब्रह्मचर्य फूल है। और क्रोध करुणा की खोल है। खोल गिर जाए, करुणा प्रगट हो।

बीज को फेंक मत देना और बीज से लड़ना नहीं है, बीज को जमीन में

बोना है। समझ की भूमि में बीज को बोओ, ध्यान की वर्षा होने दो, ज्ञान की धूप पड़ने दो, प्रेम को रखवाली करने दो और जल्दी ही वह घड़ी आएगी कि तुम जिन हो सकोगे, तुम विजेता हो सकोगे। मैं तुम्हें जो सिखा रहा हूं वह बिना लड़े जीत की कला है; बिना लड़े विजय का शास्त्र है।

आज इतना ही।

बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी

पांचवां प्रवचन; दिनांक २५ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जहांतक समुंद दरियाव जल कूप है,
लहरि अरु बूंद एक पानी ।
एक सुबर्न को भयो गहना बहुत,
देखु बीचारकै हेम खानी ।
पिरथी आदि घट रच्यो रचना बहुत,
मिरतिका एक खुद भूमि जानी ।
भीखा इक आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी ।

राखो मोहि आपनी छाया । लगैं नहिं रावरी माया ।।
कृपा अब कीजिये देवा । करौं तुम चरन की सेवा ।।
आसिक तुझ खोजता हारे। मिलहु मासूक आ प्यारे ।।
कहौं का भाग मैं अपना । देहु जब अजप का जपना ।।
अलख तुम्हरो न लख पाई । दया करि देहु बतलाई ।।
वारि वारि जावं प्रभु तेरी । खबरि कछु लीजिये मेरी ।।
सरन में आय मैं गीरा । जानो तुम सकल परपीरा ।।
अंतरजामी सकल डेरो । छिपो नहिं कछु करम मेरो ।।
अजब साहब तेरी इच्छा । करो कछु प्रेम की सिच्छा ।।
सकल घट एक ही आपै । दूसर जो कहै मुख कापै ।।
निरगुन तुम आप गुनधारी । अचर चर सकल नरनारी ।।
जानो नहिं देव मैं दूजा । भीखा इक आतमा पूजा ।।

आत्मा
किसी फल की तरह
पक गयी है

देह पुराने किसी
वृक्ष की तरह
थक गयी है

पहले
वृक्ष गिरेगा या फल
क्या जाने

पल गिरने का
दोनों के
पास है

आसपास मेरे
अंतिम आनंदों का
महारास है

और मैं एक
घना उजाला
हुआ जा रहा हूं

अनजाने तत्वों से

निरंतर
छुआ जा रहा हूं

वृक्ष थकी देह है
आत्मा पका फल
गिरने का पल
दोनों का पास है

आसमान
जरूरत से ज्यादा
पीला हो गया है

और प्रतिबिंबित है
आत्मा के पके फल का रंग
ऊपर उठ कर उस पीलेपन पर

मन पर कुछ
इंद्रधनुष जैसा
खिंच गया है

अंतिम आनंदों का महारास
वर्षा की एक
झड़ी है मानो

जीवन की संध्या की
यह
मनचीती घड़ी है मानो

लेकिन बहुत कम ऐसे सौभाग्यशाली लोग हैं जो जीवन की अंतिम घड़ी में ऐसा कह सकें कि

जीवन की संध्या की
यह
मनचीती घड़ी है मानो

अंतिम आनंदों का महारास
वर्षा की एक
झड़ी है मानो

बहुत कम सौभाग्यशाली ऐसे लोग हैं जो यह कह सकें जब मृत्यु द्वार पर

दस्तक दे—

आसपास मेरे
अंतिम आनंदों का
महारास है

और मैं एक
घना उजाला
हुआ जा रहा हूं

अनजाने तत्वों से
निरंतर
छुआ जा रहा हूं

मरते सभी हैं, लेकिन कुछ ऐसे मरते हैं कि मर कर अमृत को पा लेते हैं। जीते सभी हैं, लेकिन कुछ ऐसे जीते हैं कि जीवन को जान ही नहीं पाते और कुछ ऐसे जीते हैं कि जीवन में ही महाजीवन की झलक पकड़ आ जाती है। जीवन को ऐसे जीना कि जीवन का सत्य पकड़ में न आये—संसार है; और जीवन को ऐसे जीना कि जीवन का आधार पकड़ में आ जाए—संन्यास है। संन्यास और संसार जीवन को जीने की शैलियों के नाम हैं।

और संसारी अभागा है क्योंकि जियेगा तो जरूर लेकिन पायेगा कुछ भी नहीं; दौड़ेगा बहुत, पहुंचेगा कहीं भी नहीं; बड़ी आपाधापी और हाथ में अंततः राख के सिवाय कुछ भी नहीं; बहुत भाग-दौड़, बड़ी चिन्ता, बड़ा संघर्ष, मिलती है अंत में कब्र। संन्यासी वह है जो जीवन को जागकर जीता है; जो जीने में जागने को जोड़ देता है; जो जीवन के अंधेरे में ध्यान का दीया जला लेता है। फिर पहचान होने लगती है परमात्मा से, फिर रोज-रोज घनी होने लगती है यह पहचान, यह आलिंगन रोज-रोज गहरा होने लगता है, यह मिलन महामिलन बन जाता है। वह घड़ी फिर दूर नहीं जब छूटना नहीं हो सकेगा। और तब तुम्हारे जीवन का अंधेरा भी उजाला हो जाएगा और रात भी दिन और मृत्यु भी अमृत!

आसपास मेरे
अंतिम आनंदों का
महारास है

और मैं एक
घना उजाला
हुआ जा रहा हूं

अनजाने तत्वों से
निरंतर
छुआ जा रहा हूं

मन पर कुछ
इंद्रधनुष जैसा
खिंच गया है

अंतिम आनंदों का महारास
वर्षा की एक
झड़ी है मानो

जीवन की संध्या की
यह
मनचीती घड़ी है मानो

लेकिन संध्या के सौंदर्य को वे ही जान पाएंगे जिन्होंने प्रभात का सौंदर्य भी जाना है और भर-दोपहरी का आनंद भी। जो पल-पल घड़ी-घड़ी उसके नृत्य को पहचानते चले, वे संध्या में उसका महारास देख सकेंगे। लेकिन जिन्होंने पूरा दिन ही सोये-सोये बिता दिया, संध्या भी उनकी व्यर्थ हो जाएगी।

अधिक लोगों की जीवन की यात्रा तो व्यर्थ है ही, मृत्यु की मंजिल भी व्यर्थ हो जाती है। और इसीलिए तो तुम इतने डरे हुए हो मृत्यु से। तुम्हारा डर मृत्यु का डर नहीं है, तुम्हारा डर इसी बात का है कि अभी तो जीवन जिया नहीं, कहीं मौत न आ जाए! अभी तो फल पका नहीं, कहीं डाल से गिर न जाए। अभी तो वृक्ष फूला भी नहीं, कहीं सूख न जाए। अभी वसंत तो आया ही नहीं और यह पतझड़ आने लगा और ये पत्ते सूखने और झरने लगे। तुम्हारा भय मृत्यु का भय नहीं है, तुम्हारा भय है कि आज तक तो मैं व्यर्थ ही रहा हूं और कल का अब कुछ भरोसा न रहा। मौत तुमसे 'कल' छीन लेगी, और क्या छीनेगी? लेकिन जो आज जिया है, उससे क्या छीन सकती है मौत? मौत सिर्फ 'कल' छीन सकती है, 'आज' नहीं छीन सकती। मौत सिर्फ भविष्य छीन सकती है, वर्तमान नहीं छीन सकती। तुम मौत की नपुंसकता देखते हो, सिर्फ भविष्य छीन सकती है; भविष्य—जो कि है ही नहीं; वर्तमान को नहीं छीन सकती; वर्तमान—जो कि है।

इसलिए जो वर्तमान में जीना सीख ले वही संन्यासी है। और जो वर्तमान में जी लेता है, वह परमात्मा से परिचित हो जाता है क्योंकि वर्तमान परमात्मा की अभिव्यक्ति है। अनंत-अनंत रूपों में, वह एक ही प्रकट हो रहा है—वही पक्षियों के गीत में, वही रात के सन्नाटे में, वही झरनों के संगीत में, उसी की टंकार है वीणा

में, वही बादलों की गड़गड़ाहट में।

लेकिन कौन होगा परिचित उससे? जो वर्तमान के क्षण में जागरूक होगा। हम तो सोये हैं। हम तो ऐसे सोये हैं कि अतीत के सपने देखते हैं; जो बीत गया उसे दोहराते हैं, उसकी जुगाली करते हैं। हम तो भैंसों की तरह हैं। बैठे हैं, जुगाली कर रहे हैं। और या फिर भविष्य की कल्पनाएं करते हैं। जो नहीं है, उसमें हमारा बड़ा रस है—अतीत भी नहीं है और भविष्य भी नहीं है। और जो है, उसकी तरफ पीठ किये बैठे हैं। हम जैसा बुद्धिमान खोजना बहुत मुश्किल है!

है तो यह क्षण, यह क्षण महा क्षण है क्योंकि इसी क्षण से शाश्वत का द्वार खुलता है। जो इस क्षण में झांकता है, वह नास्तिक नहीं रह सकता। इस क्षण में झांकते ही परमात्मा की छवि इतने रूपों में टूट पड़ती है, इतनी दिशाओं से, इतने आयामों से, झड़ी लग जाती है, धुआं-धार झड़ी लग जाती है। फिर कैसे तुम रीते रह जाओगे? फिर कैसे तुम अनछुए रह जाओगे? फिर कैसे तुम बिना भीगे रह जाओगे? आंखें ही नहीं भीगेंगी, तुम्हारी आत्मा भी भीग जाएगी। आनंद तुम्हारे पोर-पोर में समा जाएगा।

और परमात्मा, स्मरण रहे, मंदिरों और मस्जिदों में छिपा हुआ नहीं बैठा है। परमात्मा प्रगट है, निर्वस्त्र है, चारों तरफ मौजूद है। झांको तो तुम्हारे भीतर मौजूद है और ऐसे दौड़ते रहो काबा और काशी और कैलाश... तुम्हारी मर्जी! लोग सस्ता पाना चाहते हैं कि चले तीर्थयात्रा को चले हज-यात्रा को। परमात्मा इतना सस्ता नहीं मिलता, नहीं तो सब हाजियों को मिल जाए—हाजी मस्तान को भी मिल जाए। परमात्मा इतना सस्ता नहीं मिलता, नहीं तो हर तीर्थयात्री को मिल जाए। और कुछ लोग तो तीर्थों में अड्डा जमाकर ही बैठे हैं, उनको तो ऐसा मिले...।

लेकिन काशी जाकर देखा? भीखा सबसे पहले काशी गये थे, इसी आशा में कि शायद काशी में मिल जाएगा—भटके बहुत, द्वार खटखटाए बहुत, अंततः खाली लौटे। कहा लौटकर कि शास्त्र को जानने वाले बहुत हैं वहां लेकिन सत्य को जानने वाला कोई भी नहीं। काशी के लोग तो नाराज हुए होंगे। काशी पुण्य नगरी और कोई कह दे कि सत्य को जानने वाला कोई नहीं। और यह भीखा, यह छोकरा इसको जैसे सत्य का पता हो! काशी के महापंडितों को खली होगी बात। लेकिन भीखा भी क्या करे—जैसा है वैसा न कहे तो क्या करे! उसने कहा: देखा बहुत शास्त्र-ज्ञान, बड़े शब्दों के धनी, व्याकरण के जानकार; वेदों के पंडित, जिन्हें वेद कंठस्थ, ब्रह्मसूत्र कंठस्थ, गीता कंठस्थ; जिनकी भाषा में बड़ा माधुर्य; जिनके तर्क-जाल बड़े सुगढ़, बड़े गणित की कसौटी पर कसे हुए; जिनसे विवाद मुश्किल, जो किसी का भी मुंह बंद कर दें, जो बड़े शास्त्रार्थी—लेकिन सत्य जिनके पास नहीं, सत्य का अनुभव जिनके पास नहीं। लौट आये काशी से, खाली हाथ लौट आये।

और मिला सत्य, जरूर मिला; जिसकी तलाश है उसे मिलेगा। जो प्यासा है, उसे मिलेगा। प्यासे के लिए सरोवर निश्चित है। प्यास बनायी परमात्मा ने, उसके पहले सरोवर बनाया है। भूख दी, उसके पहले भोजन। तलाश दी, उसके पहले मंजिल।

यह जगत एक अराजकता नहीं है—यह जगत एक बड़ा सुसंगत, संगीतबद्ध, लयबद्ध, अनुशासित, अस्तित्व है। यहां प्रत्येक घटना जो घट रही है, यूं ही नहीं, अनायास नहीं—शृंखला है एक, सुसंगति की व्यवस्था है एक, भीतर छिपे हाथ हैं कोई जो सब सम्हाले हैं। इतना विराट अस्तित्व दुर्घटना नहीं हो सकता। वैज्ञानिक कहते हैं : यह सिर्फ एक दुर्घटना है। ऐसा कहकर वैज्ञानिक यही बताते हैं कि विज्ञान भी एक नया अंधविश्वास हो गया है। इस विराट अस्तित्व को दुर्घटना कहते हो! रोज सुबह सूरज उग आता है, रोज सांझ सूरज डूब जाता है; इतने चांद-तारे—यह सब व्यवस्था से चल रहा है।

इतनी व्यवस्था, इतनी संगति, अकारण नहीं हो सकती, इसके पीछे महाकारण होना ही चाहिए। तुम्हें अगर रेगिस्तान में एक घड़ी पड़ी मिल जाए तो क्या तुम कह सकोगे—यह अनायास पैदा हो गयी होगी, सदियों-सदियों तक हवा के थपेड़े खाते-खाते, रेत और पत्थरों की चोट और वर्षा और धूप-धाप इस सब चोट खाते-खाते यह यंत्र बन गया होगा, यह घड़ी बन गयी होगी ? नहीं तुम ऐसा न कह सकोगे, बड़े-से-बड़ा वैज्ञानिक भी ऐसा न कह सकेगा; वह भी कहेगा कि कोई यात्री आया होगा...।

मैंने सुना है, एक भारतीय कारागृह में तीन कैदी बंद थे। कोई कारागृह को देखने आया था। उसने पहले कैदी से पूछा कि तुम क्यों बंद हो ?

उसने कहा : घड़ी के कारण।

समझा नहीं कुछ पूछने वाला, उसने कहा : घड़ी के कारण ! क्या घड़ी चुरायी थी ?

उसने कहा : नहीं-नहीं, समझे नहीं आप। मेरी घड़ी थोड़ी धीमी चलती है, इसलिए दफ्तर रोज देर से पहुंचता था, सो उन्होंने जेलखाने में डाल दिया।

दूसरे से पूछा : तुम क्यों बंद हो ?

उसने कहा : मैं भी घड़ी के कारण।

उन्होंने कहा : हद हो गयी ! तुम्हारी घड़ी भी क्या धीमे-धीमे चलती थी ?

उसने कहा कि नहीं, मेरी घड़ी तेज चलती थी, मैं रोज दफ्तर जल्दी पहुंच जाता था तो शक हो गया कि जल्दी क्यों आता हूं, कुछ मतलब होगा, रोज जल्दी क्यों आता हूं, कोई फाइल चुरानी है, कोई दफ्तर में सेंध लगानी है !

तीसरे से पूछा : और तुम क्यों बंद हो ?

उसने कहा : मैं भी घड़ी के कारण।

उस आदमी ने कहा : हद हो गयी ! घड़ी ही घड़ी के कारण लोग बंद हैं ! तुम्हारी घड़ी को क्या हो गया था ?

उसने कहा : मेरी घड़ी बिलकुल ठीक समय पर चलती थी, मैं ठीक समय पर दफ्तर पहुंचता था।

तो उस आदमी ने पूछा कि चलो इसको पकड़ा कि धीमे, देर से पहुंचता था; इसको पकड़ा कि जल्दी पहुंचता था। तुमको क्यों पकड़ा ?

उन्होंने कहा : मुझे इसलिए पकड़ा कि उन्हें शक हुआ कि घड़ी इम्पोर्टिड है, बिना टैक्स चुकाये भीतर लायी गयी है। भारत में तो नहीं बनी इतना पक्का है।

घड़ी तुम्हें पड़ी मिल जाए रेगिस्तान में तो तुम एकदम से न कह सकोगे कि आकस्मिक है। इतने विराट अस्तित्व को आकस्मिक कहते हो ? तो विज्ञान भी फिर अंधविश्वास की बातें करने लगा। बड़े वैज्ञानिक ऐसा नहीं कहते। प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंग्टन ने अपने जीवन-संस्मरणों में लिखा है कि जब मैं युवा था तो सोचता था कि जगत एक वस्तु है—वस्तु मात्र, कोई चैतन्य नहीं। लेकिन अब अपनी वृद्धावस्था म, जीवन-भर के अनुभव के बाद मैं यह कह सकता हूं कि जगत वस्तु जैसा नहीं मालूम होता, विचार जैसा मालूम होता है और विचार भी एक सुसंगत विचार। इसके पीछे कुछ रहस्य छिपा मालूम होता है। अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा है कि आकाश और चांद-तारों को खोजते-खोजते एक बात तो तय हो गयी कि रहस्यवादी जो कहते हैं ठीक ही कहते होंगे। इतना रहस्य है कि इसके पीछे कोई अदृश्य हाथ होने ही चाहिए।

जो व्यक्ति वर्तमान के क्षण में डुबकी मारेगा, रहस्य में डुबकी लग जाएगी उसकी और रहस्य परमात्मा का दूसरा नाम है। परमात्मा शब्द का उपयोग चाहे न भी करो तो चलेगा क्योंकि परमात्मा शब्द बहुत गंदा हो गया है, गलत हाथों में पड़ा रहा—पंडित, पुजारी, पुरोहित, मौलवी—उन्होंने इस शब्द को इतना घिसा है, इतना पिसा है; इस शब्द के साथ इतने खेल किये हैं, इतना शोषण किया है; इस शब्द के आसपास इतने जाल रचे, मकड़ियों के जाल, जिनमें न मालूम कितने लोगों को फंसाया है; यह शब्द अश्लील हो गया है, अब इस शब्द का उच्चारण करते भी विचारशील व्यक्ति थोड़ा झिझकता है।

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक फुलर ने एक प्रार्थना लिखी है, प्रार्थना बड़ी बेहूदी है, प्रार्थना जैसी जरा भी नहीं। फुलर जैसा समझदार आदमी और ऐसी प्रार्थना लिखेगा, बड़ी चौंकाने वाली बात है। लेकिन कारण साफ है कि ऐसी प्रार्थना क्यों लिखी क्योंकि हमारे शब्द, सारे महत्वपूर्ण शब्द गलत हाथों में पड़कर गलत हो गये हैं। फुलर की प्रार्थना शुरू होती है—हे परमात्मा ! लेकिन मैं साफ कर

दूं कि परमात्मा से मेरा क्या अर्थ है। अब यह प्रार्थना है कि पहले मैं साफ कर दूं कि परमात्मा से मेरा क्या अर्थ है--मेरे तीन अर्थ हैं। इस तरह प्रार्थना चलती है! कि मेरी आत्मा को शांति दो। पहले मैं यह बता दूं कि मेरी आत्मा से मेरा क्या अर्थ है और शांति से मेरा क्या अर्थ है। ऐसी प्रार्थना चलती है! प्रार्थना चलती कई पेजों तक। उसमें प्रार्थना जैसा कुछ भी नहीं लगता, ऐसा लगता है कि जैसे कोई बच्चा, प्रायमरी स्कूल का, शिक्षक को उत्तर दे रहा हो--भूगोल के कि इतिहास के, मगर प्रार्थना जैसा कुछ भी नहीं है।

मगर फुलर का भय मैं समझता हूं, परमात्मा शब्द का उपयोग करो, तत्क्षण डर लगता है कि लोग समझेंगे कि तुम वही परमात्मा की बात कर रहे हो जिसके आधार पर पंडित-पुरोहित आदमी की छाती पर सवार रहे हैं। आत्मा की बात करो, तत्क्षण डर लगता है कि वही साधु-संन्यासी जिन्होंने आदमी की गर्दन दबायी है, आत्मा के नाम पर आत्मा मारी है, उन्हीं की बात कर रहे हो।

तो फुलर को समझाना पड़ता है कि परमात्मा से मेरा अर्थ क्या, आत्मा से मेरा अर्थ क्या। अर्थ समझाने में ही इतनी लम्बी प्रार्थना हो जाती है कि उसमें से प्रार्थना का तत्त्व खो जाता है। प्रार्थना में तो एक निर्दोषता होनी चाहिए, एक सरलता होनी चाहिए, एक भावोन्माद होना चाहिए, एक मस्ती होनी चाहिए। मस्ती वगैरह तो बची कहां, गणित का हिसाब हो गया। फुलर वैज्ञानिक है सो प्रार्थना भी विज्ञान हो गयी।

मगर जिन्होंने वर्तमान के क्षण में डुबकी लगायी है, उन्होंने परमात्मा को निश्चित जाना है, वे परमात्मा उसे कहें या न कहें। बुद्ध ने नहीं कहा, पंडित-पुरोहितों के कारण नहीं कहा। लोग सोचते हैं, बुद्ध ने परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं किया क्योंकि वे नास्तिक थे। लोग गलत सोचते हैं। लोग बुद्ध को नहीं जानते। असल में बिना बुद्ध हुए बुद्ध को जानने का कोई उपाय भी नहीं है। सिर्फ बुद्धों के वचन ही बुद्धों के संबंध में सार्थक हो सकते हैं। लेकिन बुद्ध कहते हैं कि बुद्ध ईश्वर को नहीं मानते।

बुद्ध और ईश्वर को न मानें तो कौन मानेगा? हां, मानते नहीं हैं, जानते हैं। लेकिन शब्द का उपयोग नहीं किया, सोचकर नहीं किया क्योंकि पंडित-पुरोहितों का इतना जाल, इतना व्यवसाय, इतना उपद्रव, यज्ञ-हवन, इतनी हिंसा, कि बुद्ध ने सोचा कि ईश्वर शब्द का उपयोग करना अर्थात् इन्हीं पंडित-पुरोहितों की जमात में खड़े हो जाना है। नहीं, वे चुप रहे। उन्होंने कहा : जाओ भीतर और जानो, मुझसे मत पूछो। जो है, वह है। कहने से सिद्ध नहीं होता, इनकार करने से असिद्ध नहीं होता है। जो है, वह है। मानो तो हो नहीं जाता, नहीं मानो तो मिट नहीं जाता। जागो और देखो, सोये-सोये मत पूछो। आंख खोलो और देखो; सूरज है तो दिखाई

पड़ेगा; रोशनी है तो दिखाई पड़ेगी; इंद्रधनुष निकला है तो दिखाई पड़ेगा; नहीं है तो मेरे कहने से क्या होगा!

बुद्ध के पास मौलुंकपुत्त नाम का एक दार्शनिक आया। उसने कहा : ईश्वर है?

बुद्ध ने कहा : सच में ही तू जानना चाहता है या यूं ही एक बौद्धिक खुजलाहट?

मौलुंकपुत्त को चोट लगी। उसने कहा : सच में ही जानना चाहता हूं। यह भी आपने क्या बात कही! हजारों मील की यात्रा करके कोई बौद्धिक खुजलाहट के लिए आता है?

तो फिर बुद्ध ने कहा : तो फिर दांव पर लगाने की तैयारी है कुछ।

मौलुंकपुत्त को और चोट लगी, क्षत्रिय था। उसने कहा : सब लगाऊंगा दांव पर। हालांकि यह सोचकर नहीं आया था। पूछा उसने बहुतों से था कि ईश्वर है और बड़े वाद-विवाद में पड़ गया था। मगर यह आदमी कुछ अजीब है, यह ईश्वर की तो बात ही नहीं कर रहा है, ये दूसरी ही बातें छेड़ दीं कि दांव पर लगाने की कुछ हिम्मत है। मौलुंकपुत्त ने कहा : सब लगाऊंगा दांव पर, जैसे आप क्षत्रिय पुत्र हैं, मैं भी क्षत्रिय पुत्र हूं, मुझे चुनौती न दें।

बुद्ध ने कहा : चुनौती देना ही मेरा काम है। तो फिर तू इतना कर--दो साल चुप मेरे पास बैठ। दो साल बोलना ही मत--कोई प्रश्न इत्यादि नहीं, कोई जिज्ञासा वगैरह नहीं। दो साल जब पूरे हो जाएं तेरी चुप्पी के तो मैं खुद ही तुझसे पूछूंगा कि मौलुंकपुत्त, पूछ ले जो पूछना है। फिर पूछना, फिर मैं तुझे जवाब दूंगा। यह शर्त पूरी करने को तैयार है?

मौलुंकपुत्त थोड़ा तो डरा क्योंकि क्षत्रिय जान दे दे यह तो आसान मगर दो साल चुप बैठा रहे...! कई बार जान देना बड़ा आसान होता है, छोटी-छोटी चीजें असली कठिनाई की हो जाती हैं। जान देना हो तो क्षण में मामला निपट जाता है कि कूद गये पानी में पहाड़ी से, कि चले गये समुद्र में एक दफा हिम्मत करके, कि पी गये जहर की पुड़िया--यह क्षण में हो जाता है। इतने तेज जहर हैं कि तीन सैकंड में आदमी मर जाए, बस जीभ पर रखा कि गये, एक क्षण की हिम्मत चाहिए। लेकिन दो साल चुप बैठे रहना बिना जिज्ञासा, बिना प्रश्न, बोलना ही नहीं, शब्द का उपयोग ही नहीं करना--यह जरा लम्बी बात थी मगर फंस गया था। कह चुका था कि सब लगा दूंगा तो अब मुकर नहीं सकता था, भाग नहीं सकता था। स्वीकार कर लिया, दो साल बुद्ध के पास चुप बैठा रहा।

जैसे ही राजी हुआ वैसे ही दूसरे वृक्ष के नीचे बैठा हुआ एक भिक्षु जोर से हंसने लगा। मौलुंकपुत्त ने पूछा : आप क्यों हंसते हैं?

उसने कहा : मैं इसलिए हंसता हूं कि तू भी फंसा, ऐसे ही मैं फंसा था। मैं भी ऐसा ही प्रश्न पूछने आया था कि ईश्वर है और इन सज्जन ने कहा कि दो साल चुप। दो साल चुप रहा, फिर पूछने को कुछ न बचा। तो तुझे पूछना हो तो अभी पूछ ले। देख, तुझे चेतावनी देता हूं, पूछना हो अभी पूछ ले, दो साल बाद नहीं पूछ सकेगा।

बुद्ध ने कहा : मैं अपने वायदे पर तय रहूंगा, पूछेगा तो जबाब दूंगा। अपनी तरफ से भी पूछ लूंगा तुझसे कि बोल पूछना है ? तू ही न पूछे, तू ही मुकर जाए अपने प्रश्न से तो मैं उत्तर किसको दूंगा ?

दो साल बीते और बुद्ध नहीं भूले। दो साल बीतने पर बुद्ध ने पूछा कि मौलुंकपुत्त अब खड़ा हो जा, पूछ ले।

मौलुंकपुत्त हंसने लगा। उसने कहा : उस भिक्षु ने ठीक ही कहा था। दो साल चुप रहते-रहते चुप्पी में ऐसी गहराई आयी; चुप रहते-रहते ऐसा बोध जमा, चुप रहते-रहते ऐसा ध्यान उमगा; चूप रहते-रहते विचार धीरे-धीरे खो गये, खो गये, दूर-दूर की आवाज मालूम होने लगे; फिर सुनायी ही नहीं पड़ते थे, फिर वर्तमान में डुबकी लग गयी और जो जाना...बस आपके चरण धन्यवाद में छूना चाहता हूं। उत्तर मिल गया है, प्रश्न पूछना नहीं है।

परम ज्ञानियों ने ऐसे उत्तर दिये हैं—प्रश्न नहीं पूछे गये और उत्तर मिल गये हैं। प्रश्नों से उत्तर मिलते ही नहीं, शब्दों से उत्तर मिलते ही नहीं—शून्य से मिलता है उत्तर। और जो उत्तर मिलता है, वही परमात्मा है। और तब तुम्हें चारों तरफ वही एक दिखाई पड़ता है। अभी कहीं नहीं दिखाई पड़ता फिर ऐसी जगह नहीं दिखाई पड़ती जहां न हो। अभी तुम पूछते हो परमात्मा कहां है; फिर पूछोगे परमात्मा कहां नहीं है !

तुमने सुना न, नानक जब यात्रा करते हुए मक्का पहुंचे तो पैर करके मक्का की तरफ सो गये। निश्चित पंडित-पुरोहित नाराज हुए। मक्का के ठेकेदार नाराज हुए। खबर मिली उनको तो भागे आये और कहा कि देखने से साधु-पुरुष मालूम होते हो, शर्म नहीं आती कि काबा के पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके सो रहे हो ?

तो पता है नानक ने क्या कहा ? नानक ने कहा कि मेरी भी मुश्किल है, तुम अच्छे आ गये। मेरी थोड़ी सहायता करो। मेरे पैर उस तरफ कर दो जिस तरफ परमात्मा न हो।

कहां करोगे ये पैर ? कहानी तो और आगे जाती है मगर मैं मानता हूं, कहानी यहीं पूरी हो गयी, असली बात यहीं पूरी हो गयी, बाकी तो जोड़ी हुई बात है, प्रीतिकर है बाकी बात। कहानी तो और आगे जाती है कि पंडित-पुजारियों ने

क्रोध में नानक के पैर पकड़कर दूसरी दिशाओं में मोड़े लेकिन जिन दिशाओं में पैर मोड़े, उसी दिशा में काबा का पत्थर मुड़ गया।

यह तो प्रतीक है। मैं इसको ऐतिहासिक घटना नहीं मानता; काबा के पत्थर इतनी आसानी से नहीं मुड़ते। और काबा का पत्थर अकेला नहीं मुड़ सकता, उसके साथ पूरी काबा की बस्ती को मुड़ना पड़ेगा। काबा की बस्ती अकेली नहीं है, उसके साथ पूरा अरब मुड़ेगा। अरब अकेला नहीं है, उसके साथ पूरी दुनिया को मुड़ना पड़ेगा। दुनिया अकेली नहीं है, सब चांद-तारे...बहुत झंझट हो जाएगी। यहां चीजें जुड़ी हैं। यहां एक का हटना, सबका अस्त-व्यस्त होना हो जाएगा।

नहीं, इतना उपद्रव नानक पसंद भी न करेंगे। यह कहानी पीछे जोड़ दी गयी मगर कहानी फिर भी महत्त्वपूर्ण है, जितना जोड़ा गया वह भी महत्त्वपूर्ण है, वह भी इशारा है। वह भी यह कह रहा है कि जिस तरफ पैर करोगे, उसी तरफ काबा का पत्थर है। मोड़ने की जरूरत नहीं है क्योंकि हर पत्थर काबा का पत्थर है। अगर काबा का पत्थर पवित्र है तो ऐसा कोई पत्थर नहीं है जो पवित्र न हो। नासमझ हैं जो काबा जाते हैं पत्थर चूमने। जिनमें समझदारी है वे अपने घर के सामने जो मील का पत्थर लगा है उसको चूम लेंगे, सात चक्कर लगाकर घर वापिस लौट आएंगे, काबा की यात्रा पूरी हो गयी।

जिस पत्थर को चूमोगे, उसी को पाओगे। जीसस ने कहा है : तोड़ो हर पत्थर को और मुझे पाओगे, उठाओ पत्थर को और मुझे छिपा पाओगे। वही है, उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।

जहां तक समुंद दरियाव जल कूप है...भीखा कहते हैं : समुद्र हो, कि नदी हो, कि सरोवर हो, कि कुआं हो इससे भेद नहीं पड़ता सबके भीतर जल एक है।

लहरि अरु बूंद एक पानी...फिर लहर हो कि बूंद हो इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता सभी के भीतर जल एक है। लेकिन हम आकारों में उलझ जाते हैं। सागर का आकार बड़ा है छोटी-सी तलैया गांव की...कैसे मानें कि दोनों एक हैं ? आकार को देख रहे हैं—सागर का आकार बड़ा है, तलैया का आकार छोटा है। कहां सागर और कहां तुम्हारे घर में आंगन का कुआं ! सागर इतना बड़ा, कुआं इतना छोटा।

तुम आकार को देखकर उलझोगे तो भ्रांति हो जाएगी। आकार में जरूर भेद है मगर दोनों आकारों में जो विराजमान है, वह निराकार है। वह जल जो कुएं में है और जो सागर में है, अलग-अलग नहीं है। बूंद में जो है, बड़ी लहर में जो है, एक ही है। परमात्मा बूंद में कम नहीं है और सागर में ज्यादा नहीं है।

इस गणित को थोड़ा समझो। साधारण गणित नहीं है यह, यह आध्यात्मिक गणित है। साधारण गणित में बूंद सागर के बराबर नहीं हो सकती।

पश्चिम के एक बहुत बड़े गणितज्ञ पी. डी. ऑस्पेन्स्की ने एक अद्भुत किताब लिखी है : टर्शियम ऑर्गानम--सत्य का तीसरा सिद्धांत। अपनी उस अद्भुत गणित की किताब में उसने कुछ वक्तव्य दिये हैं जो बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। उसमें एक वक्तव्य यह है कि साधारण गणित कहता है कि बूंद और सागर एक नहीं--बूंद छोटी है, सागर बड़ा है। असाधारण गणित भी है एक, अलौकिक गणित भी है एक जो कहता है : बूंद और सागर बराबर हैं।

ईशावास्य का वचन तुम्हें याद है--उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। यह असाधारण गणित है। यह आध्यात्मिक गणित है। नहीं तो बैंक से जाओ, अपने सब रुपये निकाल लाओ, इस आशा में मत बैठे रहना कि पीछे सब रुपये बाकी रहे। निकाल लिए तो गये फिर तुम लाख ईशावास्य को ले जाकर दिखाओ बैंक के मैनेजर को कि भाई, ईसावास्य भी तो देखो--पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लें फिर भी पीछे पूर्ण ही शेष रहता है. . .तो मेरे हजार रुपये मैं निकाल ले गया इससे क्या होता है? हजार रुपये तो शेष रहने ही चाहिए।

साधारण दुनिया में वह गणित काम नहीं आएगा। वह इस जगत का गणित नहीं है, वह किसी और जगत का गणित है--पारलौकिक है, इस जगत का अतिक्रमण करता है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है!

उस गणित के जगत में बूंद और सागर बराबर हैं। क्यों? क्योंकि जो बूंद का राज है, वही सागर का राज है। वज्ञानिक कहता है : बूंद का राज क्या है? एच टू ओ, कि बूंद उद्जन और अक्षजन दो वायुओं से मिलकर बनी है। दो हिस्से उद्जन के, एक हिस्सा अक्षजन का--एच टू ओ। यह बूंद का राज है मगर यही तो सागर का राज भी है। जो बूंद की कुंजी है वही सागर की कुंजी है। सागर आखिर है क्या? बहुत-सी बूंदों की भीड़ है। जैसे तुम यहां इतने लोग बैठे हो तो एक समाज, एक संगति बैठी है, मगर आखिर यह समाज है क्या? व्यक्तियों का जोड़ है। अगर हम समाज को खोजने जाएंगे तो कहीं भी मिलेगा नहीं, जब भी मिलेगा व्यक्ति मिलेगा।

व्यक्ति सत्य है, समाज तो केवल संज्ञा है। बूंद सत्य है, सागर तो केवल संज्ञा है। अगर ठीक से देखोगे तो भीखा के ये सीधे-सादे शब्द उपनिषदों जैसे गहरे हैं।

जहां तक समुंद दरियाव जल कूप है,
लहरि अरु बूंद एक पानी।

सीधी-सादी गांव की भाषा में कह दिया। दो और दो चार, ऐसे कह दिया। कि हो सागर, कि सरोवर, कि सरिता, कि कुआं, कि तुम्हारे घर की मटकी, कि चुल्लू

भर पानी कोई फर्क नहीं पड़ता; बड़ी-से-बड़ी लहर हो जिसमें जहाज डूब जाएं कि छोटी-सी बूंद हो, आंसू की बूंद हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि सबका स्वभाव एक है। परमात्मा इस अस्तित्व के स्वभाव का नाम है। परमात्मा इस अस्तित्व के रहस्य का नाम है। परमात्मा इस अस्तित्व का ही दूसरा नाम है।

लेकिन न तो हम वर्तमान में झांकते, न हम अपने में झांकते। हम अभी हारे नहीं, हम अभी आशा रखे हुए हैं, हम अभी हताश नहीं हुए हैं। बुद्ध ने कहा है : जब तक तुम पूर्ण हताश न हो जाओ तब तक मंदिर के द्वार तुम्हारे लिए नहीं खुलेंगे। हताश! हां, जब तक तुम पूरे निराश न हो जाओ, जब तक सारी आशा न टूट जाए संसार से तब तक तुम अटके ही रहोगे। तुम्हारे मन में कोई कहे ही जाता है कि थोड़ा और खोजो, थोड़ा और. . .कौन जाने मिल ही जाए! दो कदम और चल लो, कौन जाने मंजिल आती ही हो! जरा और, दिल्ली दूर नहीं है। जरा और कि अब पहुंचे तब पहुंचे। और लोगों की धक्कम-धुक्की है, सब जाना चाह रहे हैं। आशा लगती है, जब इतने लोग जा रहे हैं तो लोग पहुंच भी रहे होंगे। आखिर जो आगे हैं वे पहुंच गये होंगे। तो थोड़ी यात्रा और कर लूं और अभी तो जीवन शेष है, अभी तो मैं जवान हूं. . .।

जब तक तुम जगत से पूरी तरह निराश न हो जाओ, जब तक यह बात तुम्हारे सामने स्पष्ट न हो जाए कि तुम मृग-मरीचिकाओं के पीछे दौड़ रहे हो, तुम भ्रांतियों के पीछे दौड़ रहे हो, तुमने सपनों को खोजने की कोशिश की है, और तुम्हारे हाथ सदा खाली रहेंगे, तब तक तुम स्वयं में न मुड़ोगे, तब तक तुम क्षण में न डूबोगे। कल तुम्हें पकड़े रहेगा तो आज में तुम कैसे उतर सकोगे?

मेरी नाकामियां जब मेरे दिल को तोड़ देती हैं
मेरी दिल सोज उम्मीदें मुझे जब छोड़ देती हैं
मेरी बरबादियां जब आस मेरी तोड़ देती हैं
दिले-गमगीं को कुछ भूले फसाने याद आते हैं

बिसाते-आस्मां पर माहे-रोशन जब दमकता है
सितारों का मुनव्वर अक्स पानी पर चमकता है
तमन्नाओं का शुअला मेरे सीने में भड़कता है
दिले-गमगीं को कुछ भूले फसाने याद आते हैं

कभी महशर बपा करती हैं मौजें आबशारों में
कभी मेरा गुजर होता है ऊंचे कोहसारों में
कभी जब कूकती कोयल है दिलकश शाखसारों में
दिले-गमगीं को कुछ भूले फसाने याद आते हैं

सबा के छेड़ने से फूल जिस दम मुसकराते हैं
तयूरे-खुशनवा जब गुलसितां में गीत गाते हैं
खयालाते-परेशां मुझको अश्के-खूं रुलाते हैं
दिले-गमगीं को कुछ भूले फसाने याद आते हैं

गुजिस्त: राहतों की दास्तानें मुझसे मत पूछो
मेरी मुबहम खलिश की काविशों को मुझसे मत पूछो
तसव्वुर किसका है 'अख्तर' ! बस इसको मुझसे मत पूछो
दिले-गमगीं को कुछ भूले फसाने याद आते हैं

जब तुम हारोगे, जब तुम पूरी तरह हारोगे तब तुम्हें कुछ याद आनी शुरू होगी—आत्म स्मरण; तब तुम्हें अपने भूले घर की स्मृति पकड़नी शुरू होगी। उस भूले घर का ही दूसरा नाम परमात्मा है। परमात्मा को हम पीछे छोड़ आये हैं। वह हमारा मूलस्रोत है, गंगोत्री है; हमारी गंगा उसी से चली है। अब हम दौड़े जा रहे हैं भविष्य की तरफ, न तो लौटकर पीछे देखते अपने उद्गम को, न अपने भीतर देखते अपने अस्तित्व को, न वर्तमान के क्षण में जागते कि परमात्मा जो चारों तरफ मौजूद है, उससे हमारा कुछ संबंध जुड़ सके। भागे जाते हैं—कल्पनाओं में, आकांक्षाओं में, आशाओं में—इस भाग-दौड़ का नाम संसार है; इस भाग-दौड़ की व्यर्थता को जान लेने का नाम संन्यास है।

एक सुबर्न को भयो गहना बहुत,
देखु बीचारकै हेम खानी।

भीखा कहते हैं: जरा जाओ, सोने की खदान में देखो, सोना एक ही है लेकिन एक सोने से कितने गहने बन गये, कितने-कितने आकार, कितने-कितने रूप! मगर सोने की खदान में तो जरा झांककर देखो सोना एक है। जरा अपने प्राणों की खदान में तो झांककर देखो और पाओगे चेतना एक है। और चेतना ने कितने रूप लिए—कोई पुरुष है, कोई स्त्री है; कोई गोरा है, कोई काला है; कोई आदमी है, कोई जानवर है; कोई पशु है, कोई पक्षी है, कोई पौधा है; कोई पत्थर है। जरा अपने भीतर सोने की खदान में तो झांककर देखो, एक ही सोना है और बहुत गहने हो गये हैं। जो गहनों को ही देखता है, वह सोने से वंचित रह जाता है, जो सोने को देख लेता है, उसकी गहनों से आसक्ति छूट जाती है।

पिरथी आदि घट रच्यो रचना बहुत,
मितिका एक खुद भूमि जानी।

जरा जाओ, कुम्हार को देखो, कितने घड़े रच रहा है—घड़े और सुराहियां और प्यालियां और बर्तन और न मालूम क्या-क्या रच रहा है, कितने रंग भर रहा है, कितने ढंग दे रहा है। किसी में गंगा-जल भरा जाएगा, किसी में शराब भरी जाएगी, मगर पृथ्वी से तो पूछो—मितिका एक खुद भूमि जानी।

जमीन तो सिर्फ मिट्टी को जानती है। शराब भरी सुराही भी एक दिन फिर मिट्टी में मिल जाएगी और गंगा-जल भरा हुआ पात्र भी एक दिन मिट्टी में फिर मिल जाएगा। न गंगा-जल से मिट्टी में फर्क पड़ता है और न शराब से मिट्टी में फर्क पड़ता है। दोनों मिट्टी के ही बने हैं और दोनों मिट्टी में ही लीन हो जाएंगे।

ऐसा ही यह अस्तित्व है। परमात्मा बहुरंगों में प्रगट होता है। और शुभ है कि बहुरंगों में प्रगट होता है, इससे रौनक है, इससे जिंदगी रंगीन है, इससे जिंदगी में तरह-तरह के फूल हैं। जरा एक बगिया तो सोचो जिसमें सिर्फ गुलाब ही गुलाब हैं।

मेरे एक मित्र हैं, उनको गुलाब से प्रेम है। उन्होंने एक बड़ी जमीन खरीदी, बड़ी सुंदर जमीन खरीदी और गुलाब ही गुलाब लगा दिये। मुझे दिखाने ले गये। मैंने उनसे कहा: ठीक है लेकिन यह बगीचा न रहा, गुलाब की खेती हो गयी।

उन्होंने कहा: आप क्या कहते हैं, यही तो और लोग भी कहते हैं मुझसे कि क्या गुलाब की खेती कर रहे हो? कोई भी नहीं मानता कि यह बगीचा है, लोग इसको गुलाब की खेती ही मानते हैं।

मैंने कहा: गुलाब सुंदर हैं लेकिन इतने गुलाब! एकड़ों गुलाब ही गुलाब! बेरौनक है तुम्हारी बगिया। और चूंकि इतने गुलाब हैं इसलिए एक गुलाब भी अपनी शान में प्रगट नहीं हो पा रहा है।

मैंने उनसे एक कहानी कही। जापान में एक सम्राट हुआ। जापान में फूलों का बड़ा आदर है, फूलों को प्रेम करने वाली कौम है। सम्राट को किसी ने खबर दी कि गांव का जो झेन फकीर है, उसकी बगिया में नरगिस के इतने बड़े फूल लगे हैं... नरगिस ही नरगिस, ऐसा कभी देखा नहीं गया है, ऐसी सुगंध, ऐसी महक। रात गुजर जाओ आधा मील फासले से तो भी घेर लेती है, बरस जाती है सुगंध।

सम्राट भी फूलों का प्रेमी था। उसने खबर भेजी फकीर को कि कल सुबह मैं आ रहा हूं; मुझे भी तुम्हारी बगिया देखनी है। फकीर को खबर मिली। उसने अपने सारे शिष्यों से कहा कि सिर्फ एक फूल को छोड़कर सारे पौधे उखाड़ डालो। नरगिस का बस एक फूल छोड़ा और सारे पौधे उखाड़ डाले। जब बादशाह पहुंचा वह तो बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा: 'मैंने तो सुना था कि हजारों पौधे हैं नरगिस के।' फकीर ने कहा: 'थे लेकिन तुम्हें कोई खेती थोड़े ही दिखानी थी। जो शानदार था, वह बचा लिया है और अब तुम देखो इसकी रौनक। इस पूरे बगीचे में जहां और फूल हैं, और हरियालियां हैं, यह एक नरगिस का फूल किस शान से खड़ा है! इसे देखने के लिए उन सबका हट जाना जरूरी था। अगर वे सारे फूल यहां होते

तो यह अद्भुत फूल तुम्हें दिखाई ही न पड़ता, यह खो जाता भीड़ में, बाजार में। यह फूल मैं तुम्हें दिखाना चाहता था इसलिए सारे फूल हटा दिये।'

अगर तुम गुलाब ही गुलाब की खेती करोगे—बेरौनक होगी, उदास होगी। नहीं, और भी फूल हैं—चम्पा भी है, चमेली भी है और रजनीगंधा भी है। हजार-हजार फूल हैं, हजार-हजार पक्षी हैं, हजार-हजार गीत हैं!... परमात्मा पुनरुक्ति नहीं करता—नये-नये को निर्माण करता है और इसीलिए जगत इतना समृद्ध है, इतनी महिमा है। जीवन ऊब जाए, उदास हो जाए...।

बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि मैं मरकर... मुझे तो पक्का भरोसा है कि जब मैं मरूंगा तो बिलकुल मर जाऊंगा। उसे आत्मा पर श्रद्धा नहीं थी और न परमात्मा पर श्रद्धा थी, न वह स्वर्ग-नर्क को मानता था। उसने लिखा है कि मुझे तो पक्का भरोसा है कि जब मैं मरूंगा तो बिलकुल मर जाऊंगा, मगर अगर भूल-चूक से हो सकता है मेरी धारणा सही न हो और मुझे बचना ही पड़े, तो मैं कम-से-कम भारतीयों के मोक्ष नहीं जाना चाहता। और कहीं भी चला जाऊं। क्यों?

उसने जो कारण दिया है वह मुझे भी पसंद है। उसके जीवन-चिंतन से मैं राजी नहीं हूं मगर उसका कारण तो सुन्दर है। उसने कहा: भारतीयों का मोक्ष तो बड़ा ऊब पैदा करने वाला होगा—लोग बैठे अपनी-अपनी सिद्ध-शिला पर नंग-धड़ंग...। क्योंकि वहां कोई वस्त्र वगैरह तो मिलेंगे नहीं और चरखा वगैरह भी नहीं ले जा सकते साथ में कि बैठे कम-से-कम चरखा ही चला रहे हैं, खादी ही बुन रहे हैं। बैठे नंग-धड़ंग। न कुछ काम करने को क्योंकि काम का वहां कोई सवाल ही नहीं है, कर्म के तो पार हो गये। कोई चर्चा-मशवरा भी नहीं क्योंकि लोग शून्य समाधि को उपलब्ध हो गये, तभी तो पहुंचेंगे मोक्ष, निर्विकल्प समाधि में पहुंचकर। न कोई अखबार, न कोई अफवाहें, न कोई नाटकगृह, न कोई सिनेमागृह, न कोई होटल, न कोई रेस्तरां...! चाय-काफी तक के लाले पड़ जाएंगे। एक कप-प्याली के लिए तरसोगे।

मोक्ष में कुछ काम ही नहीं है। जरा सोचो मोक्ष को, जरा विचारो अपने को खुद बैठे सिद्ध-शिला पर। बस बैठे ही हैं और अनंत काल तक! एकाध दिन हो तो आदमी किसी तरह काबू रख ले, घड़ी-दो-घड़ी की बात हो तो किसी तरह पी जाए जहर के घूंट की तरह और कहे कि अब थोड़ी देर की बात है, गुजरा जाता है, घड़ी देख-देखकर गुजार दे। मगर अनंत काल तक! बर्ट्रेंड रसल की बात अर्थपूर्ण मालूम पड़ती है।

नहीं, लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं, यह जो मोक्ष की कल्पना की है लोगों ने, परमात्मा को बिना समझे की है। जरा उसकी दुनिया तो देखो, इससे कुछ हिसाब लगाओ। जब उसकी इस दुनिया में, इस न-कुछ दुनिया में इतने फूल हैं, इस न-

कुछ दुनिया में इतनी रंगीनी है, इतनी होली, इतनी दीवाली...इस न-कुछ दुनिया में, इस झूठी दुनिया में इतनी समृद्धि है तो सत्य के उस लोक में तो महा-समृद्धि होगी।

मेरे मोक्ष की धारणा बिलकुल अलग है। जैनों के, हिन्दुओं के मोक्ष से मैं राजी नहीं। उनका मोक्ष अगर है तो मैं बर्ट्रेंड रसल से राजी हूं। रसल ठीक कहता है। तो मैं भी बर्ट्रेंड रसल के साथ नरक जाना पसंद करूंगा, कम-से-कम कुछ रौनक तो रहेगी।

लेकिन मेरी मान्यता है कि हमने जो मोक्ष की कल्पना की है, वह कल्पना संसार के विपरीत कर ली है। हम संसार से इतने घबड़ा गये हैं कि जो-जो संसार में है उसके विपरीत हमने मोक्ष बना लिया है। यहां रंग हैं, यहां गीत हैं, यहां रंग बस्ती है, यहां बीन है, यहां वाद्य हैं, यहां नृत्य होता है, यहां प्रेम है, यहां उल्लास है, उमंग है—सब काट दिया हमने; जो-जो संसार में है, वह मोक्ष में तो होना ही नहीं चाहिए। और संसार में सब है—जो होने योग्य है—वह सब काट दिया, तो मोक्ष हमारा नकार हो गया, एक शून्य हो गया, आकर्षक न रही धारणा।

मेरा मोक्ष संसार के विपरीत नहीं है। संसार में परमात्मा आंशिक रूप से प्रगट है, मोक्ष में पूर्ण रूप से प्रगट है; संसार में बूंद की तरह प्रगट है, मोक्ष में सागर की तरह प्रगट है; संसार में जरा-जरा उसकी किरण उतरी है, मोक्ष में वह पूरे सूरज की तरह निकला है; संसार में उसका एक दीया जला है, मोक्ष में दीप-मालिका है, दीये ही दीये हैं।

नहीं, हमें मोक्ष की धारणा बदलनी चाहिए। हमारे मोक्ष की धारणा आकर्षक नहीं है। हमारे मोक्ष की धारणा को जो ठीक से समझेगा, वह तो कहेगा: हे प्रभु! मुझे संसार में ही रहने दो। रवीन्द्रनाथ ने मरते वक्त यही कहा, परमात्मा से कहा कि हे प्रभु! मुझे तो संसार में बार-बार वापिस भेज देना, मैं प्रार्थना नहीं करता कि मुझे आवागमन से छुटकारा दो। तेरी दुनिया बड़ी प्यारी थी, मैं फिर-फिर यहां आना चाहूंगा। अगर मोक्ष की तुम्हारी धारणा ऐसी है तो रवींद्रनाथ जैसा सुधी व्यक्ति भी वापिस लौट आना चाहता है।

लेकिन मैं रवीन्द्रनाथ को भरोसा दिलाता हूं कि कोई चिंता न करो। मोक्ष की हमारी धारणा गलत है, मोक्ष और भी रंगीन है। यहां तो सात ही रंग हैं, वहां अनंत रंग हैं। यहां तो सात ही स्वर हैं, वहां अनंत स्वर हैं। यहां तो प्रेम क्षण-भंगुर है, वहां शाश्वत है। यहां तो वसंत कभी-कभी आता है, वहां वसंत सदा है, वहां सदाबहार है।

देखु बीचारकै हेम खानी।
पिरथी आदि घट रच्यो रचना बहुत,

मिर्तिका एक खुद भूमि जानी ।
भीखा इक आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी ।
यह सूत्र तो बहुत अद्‌भुत है—
भीखा इक आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी ।

तुम कृष्ण को भज सकते हो, राम को भज सकते हो, बुद्ध को, महावीर को, लेकिन जब महावीर जिंदा थे तो तुमने पत्थर मारे और जब बुद्ध जिंदा थे तो तुमने उनकी हत्या की कोशिश की ! अब तुम मीरा के गुणगान गाते हो और जब मीरा जिंदा थी तो जहर के प्याले भेजे ! तुम बड़े अजीब लोग हो । तुम्हारा हिसाब कैसा है ? अब जितने मंदिर जीसस के लिए सर्मापित हैं, उतने किसी के लिए भी नहीं।

और जब जीसस जिंदा थे तो तुमने क्या व्यवहार किया ? जरा सोचो! जीसस को सूली खुद अपने कंधों पर ढोनी पड़ी । जैसे जीसस कोई चोर हों, हत्यारे हों । जीसस गिर पड़े रास्ते में क्योंकि सूली वजनी थी और चढ़ाई पहाड़ की तो कोड़े मारे गये कि उठो और उठाओ अपनी सूली ! लहूलुहान जीसस को अपनी सूली पहाड़ के ऊपर तक ले जानी पड़ी । और जब जीसस को सूली पर लटकाया गया और उनके हाथों में खीले ठोंक दिये गये. . .।

वह बड़ा बेहूदा ढंग था । गर्दन नहीं, जैसे फांसी दी जाती है, वह फांसी नहीं थी । यहूदियों का बड़ा अपना ढंग था सूली देने का—वे गले को तो कुछ नहीं करते थे, हाथ में ठोंक देते खीले, पैर में ठोंक देते खीले और फिर आदमी को छोड़ देते मरने को, खून बहता. . . इसमें कम-से-कम छः घंटे, कम-से-कम छः घंटे लगते मरने में और ज्यादा-से-ज्यादा तीन दिन लगते । एक आदमी की गर्दन काट दो, चलो झंझट मिटे, एक क्षण में बात निपट जाए । लेकिन घंटों, दिनों आदमी लटका रहेगा, चीलें उसका मांस नोचेंगी, गिद्ध उसके सिर पर बैठेंगे, खून उसके हाथ-पैर से बहेगा, कुत्ते उसका खून चाटेंगे, कुत्ते उसका चमड़ा खींचेंगे, उसको नोचेंगे ।

यह बहुत बेहूदा ढंग था सूली देने का मगर जीसस को ऐसे सूली दी । और जब जीसस को प्यास लगी—पहाड़ पर चढ़ना, सूली को ढोना, भरी दोपहरी और फिर सूली पर लटकाया जाना—उन्हें प्यास लगी और उन्होंने कहा : मुझे प्यास लगी है ।

तो पता है तुमने क्या किया ? मैं कहता हूं तुमने क्या किया क्योंकि तुम्हीं हो, जो भी थे वहां तुम्हीं जैसे थे, तुम्हीं हो । तो लोगों ने गंदे तेल में एक मशाल को डुबाकर—ऐसे तेल में कि जिनकी दुर्गंध से आदमी के प्राण कंप जाएं, और ऐसे तेल में कि जिसे कोई मुंह में ले ले तो चक्कर खा जाए—ऐसा तेल मशाल में लगाकर

जीसस की तरफ ऊपर किया और कहा कि लो इसे चूस लो ।

यह व्यवहार एक मरते हुए प्यासे आदमी के साथ ! शायद इसीलिए फिर तुमने इतने चर्च बनाये अपराध-भाव के कारण । शायद फिर इसीलिए जीसस की इतनी-इतनी पूजा चली । आज दुनिया में जितने ईसाई हैं उतने कोई और धर्म के मानने वाले नहीं । और कारण?—तुमने जीसस के साथ जो दुष्टता की थी उसकी ग्लानि अब भी तुम्हारे हृदय में घाव की तरह, तीर की तरह चुभ रही है । तुम उस ग्लानि को पोंछने का उपाय कर रहे हो तो तुम जीसस की पूजा कर रहे हो । मगर जिंदा जीसस के साथ तुमने क्या किया ?

बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी ।

भीखा कहते हैं कि जिंदा सद्‌गुरु को जो पहचान ले वही ज्ञानी है, बाकी तो मुर्दों को तो अज्ञानी पूजते रहते हैं । मगर जिंदा ब्रह्म को पहचानना बहुत मुश्किल है । क्या अड़चन है ? कृष्ण को पूजना बहुत आसान है क्योंकि कृष्ण से तुम्हारा अब लेना-देना क्या, एक कहानी मात्र, फिर कृष्ण को तुम जैसा चाहो वैसा मान लो—कोई रोकने वाला नहीं, कोई टोकने वाला नहीं । कृष्ण तुम्हारी मुट्ठी में हैं । जिंदा कृष्ण तुम्हारी मुट्ठी में नहीं हो सकते थे । जिंदा कृष्ण की पूजा करना बहुत मुश्किल बात थी । जिंदा कृष्ण में तुम्हें हजार भूलें दिखाई पड़तीं और अगर कृष्ण में न दिखाई पड़तीं तो किसमें दिखाई पड़तीं ?

कृष्ण की सोलह हजार रानियां थीं । न रही हों सोलह हजार, सोलह भी रही हों तो भी काफी हैं । मगर सोलह हजार ही थीं, यह ऐतिहासिक है बात । इसमें कुछ चिंता करने जैसी बात नहीं है । अभी-अभी, इस सदी के प्रारम्भ में, निजाम हैदराबाद की पांच सौ पत्नियां थीं । अगर पांच हजार साल बाद एक आदमी की पांच सौ पत्नियां हो सकती हैं तो सोलह हजार में क्या अड़चन है—बत्तीस गुना, कोई बहुत ज्यादा नहीं ।

और निजाम हैदराबाद की हैसियत क्या थी ? एक छोटा-मोटा राजा । कृष्ण की हैसियत तो बड़ी थी । उन दिनों तो राजा की हैसियत इसी से समझी जाती थी कि उसकी रानियां कितनी हैं । स्त्रियां एक तरह के सिक्के थीं जिनसे आदमी की कीमत तौली जाती थी । गरीब आदमी वह जो एक स्त्री से ही. . . एक स्त्री को भी न पाल सके, एक स्त्री को भी न सम्हाल सके—वह गरीब आदमी । सोलह हजार होनी ही चाहिए । इनमें कई दूसरों की पत्नियां थीं जिनको कृष्ण. . .कहना तो नहीं चाहिए लेकिन भगा लाये थे, कहना ही पड़ेगा । वचन दिया था युद्ध में कि नहीं उठाएंगे शस्त्र और फिर उठा लिया शस्त्र—वचन तोड़ दिया । बड़े बहादुर थे, बड़े वीर थे लेकिन उनका एक नाम तुमने सुना—रणछोड़ दास ! एक दफा भाग खड़े हुए, पीठ दिखा दी । अब तो रणछोड़ दास जी के मंदिर भी हैं । रणछोड़ दास जी

का मतलब समझे तुम——रणछोड़ भागे।

तुम्हें हजार भूलें मिल जातीं कृष्ण में——तुम्हें भूलें ही भूलें मिलतीं। ये कोई ढंग हैं कि बजा रहे हैं बांसुरी, स्त्रियां नाच रही हैं! अब तुम रासलीला कहते हो मगर उस समय? उस समय तुम पुलिस में रिपोर्ट करवाते। और फिर आज दूसरों की स्त्रियां नाच रही हैं, कल तुम्हारी नाचने लगतीं तो इस झंझट को बर्दाश्त कौन करता!

कृष्ण को तुम पूज नहीं सकते जीवित, हां, मर जाने पर कोई अड़चन नहीं है। मर जाने पर हम लीपा-पोती कर देते हैं। हम हर चीज की लीपा-पोती कर देते हैं। सोलह हजार रानियां, रानियां नहीं रह जातीं, हमारे बुद्धिमान पंडित कहते हैं कि ये सोलह हजार नाड़ियां हैं मनुष्य के भीतर——नारियां नहीं, नाड़ियां। बड़े होशियार लोग। कि ये कृष्ण जो वस्त्र लेकर बैठ गये थे वृक्ष पर गंगा में नहाती स्त्रियों को नग्न छोड़कर, यह प्रतीक है——स्त्रियां तो इन्द्रियां हैं और कृष्ण इन्द्रियों के वस्त्र उतार लिए हैं ताकि इन्द्रियों का सत्य-साक्षात हो सके। अब तुम... प्रतीक तुम्हारे हाथ में हैं, अब कृष्ण बीच में बोल भी नहीं सकते कि भाई, कुछ मेरी भी सुनो। अब कृष्ण तो बाहर हैं, अब तुम्हारे हाथ में है तुम जो चाहो, जैसा चाहो व्याख्या करो।

मुर्दा गुरु को पूजना सदा आसान है क्योंकि मुर्दा गुरु तुम्हारा कल्पित गुरु होता है। बुद्ध को पूजना कठिन है क्योंकि बुद्ध को पूजने के लिए भी हिम्मत चाहिए थी। बुद्ध विरोध में थे सारे पाखंड के, सारे पांडित्य के, सारे ब्राह्मणवाद के। वुद्ध विरोध में थे यज्ञ, हवन, पूजन, क्रियाकांड के। और वही तो सारे देश पर छाया हुआ था——अभी भी ढाई हजार साल बीत गये हैं, अभी भी कहां मिट गया है। अभी भी छाया हुआ है तो उस समय की तो तुम कल्पना करो। जब बुद्ध ने विरोध किया इन सारी चीजों का तो कौन बुद्ध को ब्रह्म माने?

इनकार किया, हर तरह से इनकार किया, बुद्ध को हर तरह से सताया। और महावीर तो और भी अड़चन करने वाले थे, वस्त्र छोड़कर नग्न खड़े हो गये थे। उनको तो गांव-गांव से भगाया गया। उनके पीछे कुत्ते लगाये गये, जंगली कुत्ते कि उनको टिकने ही न दें कहीं। उनके कानों में सीखचे ठोंक दिये क्योंकि वे बोलते नहीं थे, मौन थे, उनको बुलवाने की कोशिश में कि यह सब पाखंड है——बोलना, नहीं बोलना, हम बुलवाकर देखेंगे। कानों में सीखचे ठोंक दिये, कान फोड़ दिये उनके।

अब? अब पूजा चलती है। अब मंदिर बने हैं। यह सदा से होता रहा है। तुमने मुहम्मद के साथ क्या किया? पूरी जिंदगी मुहम्मद को एक गांव में न टिकने दिया, जहां गये वहां से हटाया। और अब? अब कितने मुसलमान हैं दुनिया में,

कितना मुहम्मद का गुणगान चल रहा है।

भीखा ठीक कहते हैं: बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी।...अज्ञानी पूजते मुर्दा सद्गुरुओं को, ज्ञानी खोजते हैं जीवित सद्गुरुओं को। मुर्दा गुरु को पूजने में सबसे बड़ी सुविधा है——तुम्हारे अहंकार को कोई चोट नहीं लगती। जिंदा गुरु को पूजने में सबसे बड़ी असुविधा है——तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है। अपने ही जैसे आदमी के समक्ष झुकना? हां, पत्थर की मूर्ति के सामने झुकना आसान है लेकिन जिंदा आदमी के सामने झुकना? अपने ही जैसे आदमी के सामने——जो बीमार भी पड़ता है, जिसे भूख भी लगती है, जिसे पसीना भी आता है, जो थक भी जाता है, जो रात सोता भी है, जो जवान है, बूढ़ा भी होगा, जो मरेगा भी——तुम्हीं जैसा जो है, उसको भगवान की तरह पूजना? असम्भव! हां, जब वह मर जाएगा तब हम ऐसी कहानियां गढ़ लेंगे जिनसे पूजना सम्भव हो जाएगा।

जैन कहते हैं: महावीर को पसीना नहीं निकलता था। देह थी कि प्लास्टिक था? पसीना न निकले, आदमी मर जाए——तुम्हें पता है? कुछ वैज्ञानिकों से भी पूछो, कुछ शरीर-शास्त्रियों से भी पूछो। और अगर न मानता हो दिल किसी की बात मानने का, तो खुद ही छोटा-सा प्रयोग करके देखो। तुम सोचते हो कि सांस से ही तुम जिंदा हो तो तुम गलती में हो——तुम्हारा रोआं-रोआं सांस ले रहा है।

एक छोटा-सा प्रयोग करो——ले आओ बाजार से कोलतार और सारे शरीर पर पोत लो, सब रोयें बंद कर दो और सांस भर खुली रहने दो, नाक खुली रहने दो। जितना दिल हो नाक से सांस लेना लेकिन बाकी सारे शरीर को कोलतार से पोत दो——तीन घंटे में मर जाओगे। फिर मुझसे मत कहना कि पहले मैंने बता नहीं दिया था। तीन घंटे से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकोगे क्योंकि रोआं-रोआं सांस ले रहा है।

ये रोयें श्वास लेने के लिए हैं। ये छोटे-छोटे छिद्र, छोटे-छोटे श्वास लेने के द्वार हैं। और पसीना इन छिद्रों से निकलता है एक उपयोगिता के लिए, उपयोगिता बड़ी है उसकी। शरीर का तापमान समतुल बना रहे यह उपयोगिता है पसीने की। तुम तो पसीने से इतना ही समझते हो——अरे बास आयी, पसीना निकला, कपड़े भीग गये मगर तुम उसका गणित नहीं समझते कि पसीना तुम्हारी जिंदगी को बचा रहा है, नहीं तो तुम मर जाओगे।

शरीर का तापमान तुम देखते हो, गर्मी हो कि सर्दी, बराबर एक-सा रहता है। अठानबे डिग्री समझ लो तो अठानबे डिग्री रहता——सर्दी हो तो भी और गर्मी हो तो भी। यह कैसे होता है? जब गर्मी होती है तो पसीना बाहर निकलता है। पसीना बाहर निकलता है, पसीना शरीर की गर्मी को लेकर भाप बनकर उड़ जाता है——शरीर को ठंडा रखता है, शरीर को ठीक अनुपात में रहने देता है। यह शरीर के

तापक्रम को समतुल रखने का उपाय है। इसलिए जब तुम्हें ठंड लगती है तो तुम्हारे दांत किड़किड़ाते हैं, हाथ-पैर हिलते हैं, कंपते हैं। तुम क्या सोचते हो कि ठंड के कारण कंप रहे हैं? ये कंप रहे हैं इसलिए ताकि कंपने के कारण गर्मी पैदा हो नहीं तो तुम मर जाओगे।

जब ठंड होती है तो शरीर कंपता है, दांत किड़किड़ाते हैं, हाथ-पैर हिलते हैं; इस कम्पन से गर्मी पैदा होती है, तापमान बराबर बना रहता है। गर्मी हो पसीना निकलता है, पसीना शरीर की गर्मी को लेकर भाप बनकर उड़ जाता है, शरीर का एक ही तापमान बना रहता है। एयर कंडिशनिंग तो अब खोजी गयी है लेकिन शरीर सदा से एयर कंडिशनिंग के ढंग से जी रहा है। असल में एयर कंडिशनिंग खोजी ही इसीलिए जा सकी--शरीर को समझने के कारण--शरीर की व्यवस्था को समझकर यह बात ख्याल में आ गयी कि तापमान को समान रखा जा सकता है।

अब जैन कहते हैं कि महावीर को पसीना ही न निकलता था। उनकी भी अड़चन मैं समझता हूं क्योंकि पसीना निकले तो वे तुम्हारे जैसे ही आदमी हो गये, तो कुछ तो तरकीब करनी पड़ेगी जिससे तुम जैसे न मालूम पड़ें। पसीना नहीं निकलता, मल-मूत्र भी नहीं क्योंकि मल-मूत्र और महावीर से... जरा बात जंचती नहीं। जरा सोचो कि महावीर स्वामी बैठे हैं और जीवन-जल निकाल रहे हैं--जंचता नहीं। जरा कल्पना ही करो तो ऐसा लगेगा--अरे, कैसे पाप की बात विचार कर रहे हैं। भगवान महावीर और मल-त्याग कर रहे हैं! कभी नहीं, कभी नहीं। चित्त ग्लानि से भर जाएगा, ये साधारण कृत्य कहीं महावीर करते हैं!

लेकिन जब भोजन लेंगे तो मल-त्याग भी करना होगा। यद्यपि भोजन कम लेते थे इसलिए कम मल-त्याग करते होंगे। मगर बिलकुल मल-त्याग नहीं, तो तो हालत खराब हो जाती।

मैं दुनिया के अलग-अलग कामों में जिन लोगों ने रिकार्ड तोड़ दिये हैं, उनकी किताब देख रहा था। उसमें एक आदमी ने, एक अमरीकन ने कब्जियत का रिकार्ड तोड़ दिया है--एक सौ बाईस दिन। दिल तो मेरा हुआ कि उसको लिखूं कि तू क्या है रे, किस खेत की मूली, भगवान महावीर की याद कर। चालीस साल--कहां एक सौ बाईस दिन की गिनती! रिकार्ड तोड़ा तो महावीर ने तोड़ा, तू क्या रिकार्ड तोड़ेगा!

इस आदमी ने भी रिकार्ड तोड़ा इसलिए कि बिलकुल थोड़ा-थोड़ा भोजन लिया। भोजन नहीं लिया, लिक्विड लिया तो मल इकट्ठा नहीं हो पाया। मगर पश्चिम में इस तरह की दीवानगी चलती है कि रिकार्ड तोड़ने है, किसी भी चीज में रिकार्ड तोड़ने हैं। अब कब्जियत में ही रिकार्ड तोड़ना है। इसका कोई मूल्य है? मगर इसका भी तोड़ दो तो तुम प्रसिद्ध हो जाते हो कि इसने कब्जियत में रिकार्ड तोड़

दिया। नालायकी की भी कोई सीमा होती है।

फिर हम ऐसी कहानियां गढ़ते हैं और इस तरह की कहानियां गढ़ कर हम पूजा के योग्य बना लेते हैं। हम अपने से इतना दूर कर देते हैं, हम उनको अमानवीय कर देते हैं। बस अमानवीय वे हो गये कि फिर हमें पूजा करने में अड़चन नहीं होती। मनुष्य जब तक वे हैं तब तक हमारे भीतर अहंकार को चोट लगती है। अपने ही जैसे मनुष्य के सामने झुकना? अपने ही जैसे मनुष्य के सामने समर्पण करना?

लेकिन जो वसा कर सके वही ज्ञानी है। भीखा ठीक कहते हैं। भीखा का सूत्र बहुत मूल्यवान है--बोलता ब्रह्म चीन्हे सो ज्ञानी...! जब सद्गुरु बोल रहा हो, जीवित हो, श्वास ले रहा हो, चल रहा हो, उठ रह हो-- तब पहचान लेना। लेकिन तब तो तुम गालियां दोगे, तब तो तुम हर तरह से निंदा करोगे, तब तो तुम हर तरह से आलोचना करोगे। ये भी तुम्हारे बचाव के उपाय हैं। इस तरकीब से तुम अपने को सद्गुरु के पास जाने से रोक रहे हो। निंदा, गाली, विरोध, इतना कर लोगे कि अब कैसे जाएं और ऐसे बुरे आदमी के पास जाने से फायदा क्या है? तुम अपने को भरोसा दिला रहे हो, तुम्हें डर है कि तुम कहीं आकर्षित न हो जाओ।

मुझसे लोग पूछते हैं कि सद्गुरुओं को इतनी गालियां क्यों पड़ती हैं? उसका कारण है। लोग डरते हैं कि अगर गालियां न देंगे तो पास जाना पड़ेगा क्योंकि फिर आकर्षण...। गालियां दे-देकर आकर्षण से बचाव कर सकते हैं--ये सुरक्षा के उपाय हैं, यह कवच है। लोग गालियां देंगे ही। वही उन्होंने अतीत में किया है, वही आज कर रहे हैं, वही कल भी करेंगे।

मगर यही उपाय तुम्हें अज्ञानी का अज्ञानी रखता है। तुम किसी जले हुए दीये के पास जाओगे तो ही जल सकते हो। जो दीये बुझ चुके हैं, अब जो जा चुके, उड़ चुके हैं, जो पिंजड़े ही पड़े रह गये हैं अब शब्दों के--उनमें बोलता हुआ प्राण तो कभी का उड़ गया, तुम उन्हीं की पूजा करते रहना। और लोग करते रहते हैं।

लंका में कैंडी के मंदिर में बुद्ध का एक दांत रखा है, उसकी पूजा चलती है। और मजा यह है कि वह बुद्ध का दांत है ही नहीं। बुद्ध की तो तुम बात ही छोड़ दो, वह आदमी का दांत भी नहीं है। वैज्ञानिकों ने खोजबीन की तो पाया कि वह किसी जानवर का दांत है। मगर इस खोजबीन को दबाया गया क्योंकि यह खोजबीन ठीक नहीं है, उसी कैंडी के मंदिर के दांत पर तो प्रतिष्ठा है श्रीलंका की। सारे बौद्ध देशों से हजारों-लाखों यात्री कैंडी के मंदिर जाते हैं। सबको दिखाई पड़ता है कि दांत इतना बड़ा है कि बुद्ध का नहीं हो सकता। और अगर बुद्ध का था तो बुद्ध का चहेरा देखने में बड़ा भयंकर रहा होगा--दांत बाहर निकला रहा होगा,

इतना बड़ा है। और अगर इतने बड़े-बड़े दांत थे तो बुद्ध राक्षस मालूम होते होंगे, आदमी नहीं। मगर उसकी पूजा चलती है।

कश्मीर में हजरत बाल मस्जिद है, मुहम्मद का एक बाल रखा हुआ है। अब कौन पक्का करे कि यह मुहम्मद का बाल है? कैसे तय हो कि यह मुहम्मद का बाल है? मगर बाल भी हजरत हो गया—हजरत बाल, साधारण बाल तो नहीं है कोई। तुम्हें पता है कुछ सालों पहले दंगा-फसाद हो गया था क्योंकि कोई हजरत बाल को चुराकर ले गया, और फिर हजरत बाल मिल भी गये! अब यह पक्का पता नहीं है, कि यह कैसे चुराया गया, किसने चुराया? फिर जो मिला वह वही है कि सिर्फ मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिए कोई दूसरा बाल—बाल तो बाल ही हैं—उसकी जगह रख दिया गया।

मगर लोग अजीब हैं। मुहम्मद को जीने न दिया शांति से, मुहम्मद जैसे आदमी को हाथ में तलवार लेनी पड़ी! बड़े कष्ट से ली होगी मुहम्मद ने तलवार हाथ में क्योंकि वे आदमी शांति के थे, शांतिप्रिय थे। बड़ी दुविधा में ली होगी तलवार। सबूत है इस बात का क्योंकि तलवार पर मुहम्मद ने लिख छोड़ा था कि मैं यह तलवार शांति के लिए उठा रहा हूं। 'शांति मेरा संदेश है' यह तलवार पर लिखा हुआ था। शांति के लिए तलवार उठानी पड़ी होगी! बड़े खूंखार लोगों के बीच मुहम्मद को जीना पड़ा, बिना तलवार के जीना असम्भव था। और जिंदगी-भर भागते रहे, जिंदगी-भर व्यर्थ के झगड़े में समय गंवाते रहे—गंवाना पड़ा, लोग व्यर्थ के झगड़ों में उलझाए रखे।

जो समय सत्संग में बीत सकता था, वह लड़ाइयों में बीता। जिस समय मुहम्मद के पास बैठकर पी लेते परमात्मा को, उस समय मुहम्मद को घोड़ों पर चढ़कर और युद्ध के मैदान में तलवारें चलानी पड़ीं, एक गांव से दूसरे गांव भागते रहना पड़ा। जो समय मुहम्मद के जले दीये से अपना बुझा दीया जलाने के काम आ सकता था, उसको गंवाया। और अब? अब हजरत बाल की पूजा हो रही है!

मनुष्य की इस मूढ़ता को पहचानो क्योंकि यह मूढ़ता तुम्हारे भीतर भी रोएं रोएं में, रग-रग में, रक्त के कण-कण में समायी हुई है। क्योंकि यही हमारा अतीत है, इसी अतीत से हम जन्मे हैं, और यही हम आज भी कर रहे हैं।

राखो मोहि आपनी छाया।

और मिल जाए अगर कोई बोलता ब्रह्म तो भीखा कहते हैं फिर यही प्रार्थना है—राखो मोहि अपनी छाया। आपनी छाया में मुझे रख लो, बस तुम्हारी छाया भी काफी रोशनी है। अपने पास मुझे बिठा लो, तुम्हारे पास बैठ जाऊं तो बस परमात्मा के पास बैठ गया।

लगै नहिं रावरी माया. . .तुम्हारी छाया में बैठ जाऊं, फिर संसार मुझे नहीं

छू सकता। फिर कितनी ही माया हो दुनिया में, रही आये; तुम्हारी छाया बचा लेगी, तुम्हारी आभा बचा लेगी, तुम्हारा सत्संग बचा लेगा।

कृपा अब कीजिये देवा। करौं तुम चरन की सेवा।।

और इतनी ही कृपा चाहता हूं कि तुम्हारे चरणों की सेवा करने दो। और कोई बात नहीं मांगी—धन नहीं मांगा, पद नहीं मांगा; स्वर्ग नहीं, मोक्ष नहीं; कुछ नहीं—इतना कि तुम्हारे चरणों की सेवा करने दो। शिष्यत्व यही है—इतना ही मांगना कि बस तुम्हारे चरणों की सेवा करने दो बस, काफी है। तुम्हारे चरणों में मिल जाएगा वैकुंठ, तुम्हारे चरणों में मिल जाएंगे सारे तीर्थ, तुम्हारे चरणों में छूट जाएगा सब कलुष-कल्मष।

कृपा अब कीजिये देवा। करौं तुम चरन की सेवा।।

आसिक तुझ खोजता हारे। मिलहु मासूक आ प्यारे।।

भीखा कहते हैं: आसिक तो हार गये खोज-खोज कर, हम भी बहुत खोज लिए और हार गये, खोजने से तुम नहीं मिलते, अब तो इतनी ही प्रार्थना है—तुम ही आ जाओ।

मिलहु मासूक आ प्यारे. . .अब तो तुम ही आओ, तुम आओ तो ही बात बने, तो ही बिगड़ी बने। मेरे खोजे से तो कुछ नहीं होता क्योंकि मैं गलत, मेरी खोज गलत; मैं गलत, मेरी दिशा गलत; मेरा सोच-समझ गलत; मेरी पकड़ गलत; मेरी धारणा गलत; मैं जहां जाता हूं, गलती ही कर लेता हूं। गलती आदमी के भीतर है तो वह जो भी करेगा वह भी गलत हो जाएगा, उससे तुम ठीक की आशा कर ही नहीं सकते।

लेकिन शिष्य अगर इतनी प्रार्थना भी कर सके तो सद्गुरु स्वयं आता है या कि सद्गुरु शिष्य को खींच लेता है। मिश्र की पुरानी कहावत है—जब शिष्य राजी होता है, सद्गुरु प्रगट होता है।

आसिक तुझ खोजता हारे। मिलहु मासूक आ प्यारे।।

कहौं का भाग मैं अपना। देहु जब अजप का जपना।।

बस उस घड़ी की प्रतीक्षा है, उस महा-घड़ी की, उस क्षण में मैं अपने भाग्य को नाप भी न सकूंगा, माप भी न सकूंगा, अमाप होगा मेरा भाग्य, असीम होगा मेरा भाग्य—देहु जब अजप का जपना—जब तुम मुझे ऐसा जप सिखा दोगे जिसे जपना नहीं पड़ता। 'अजपा जप' नानक ने कहा उसे—जिसे जपना नहीं पड़ता।

चार संभावनाएं हैं। एक तो जोर-जोर से—राम-राम, राम-राम, ओम्-ओम्—जपो, यह सबसे क्षुद्र मंत्रपाठ है। फिर दूसरी संभावना—ओंठ बंद रखो, भीतर राम-राम, ओम्-ओम् जपो, जबान से। यह पहले से बेहतर मगर बहुत बेहतर नहीं क्योंकि बात तो वही हो रही है, अब ओंठ से न होकर जबान से हो रही है। फिर

तीसरी संभावना है––जबान भी न हिले, कंठ में ही राम-राम, ओम्-ओम्. . . । यह बात और भी बेहतर है मगर आखिरी अब भी नहीं क्योंकि अभी भी कंठ में अटकी है । फिर चौथी है–– हृदय में भाव ही रह जाए, राम-राम, कोई जप नहीं, कोई उच्चारण नहीं, बस मात्र भाव, बोध, स्मरण, सुरति । उसको अजपा जाप कहा है; बस वही असली जाप है, बाकी तो उसकी तैयारियां हैं ।

अलख तुम्हरो न लख पाई...मेरे तो वश के बाहर है कि तुम्हें लख पाऊं कि तुम्हें देख पाऊं । मेरी आंखों की सामर्थ्य क्या, मेरे हाथों की सामर्थ्य क्या कि तुम्हें छू पाऊं !

दया करि देहु बतलाई ...वह तो तुम बतलाओ, कृपा करो, तुम्हारा प्रसाद हो तो अपूर्व घटना घटे ।

वारि वारि जावं प्रभु तेरी । खबरि कछु लीजिये मेरी ।।

बलिहारी हो जाऊंगा तुम पर । लुटा दूंगा अपने को, न्यौछावर कर दूंगा तुम्हारे चरणों में, बस एक बार मेरी खबर ले लो ।

सरन में आय मैं गीरा...मैं तो गिर गया तुम्हारी शरण में । जानो तुम सकल परपीरा...और तुम्हें तो सब पता है, कहूं क्या ? तुम्हें तो मेरे हृदय की पीड़ा पता है और मेरी प्यास पता है, मांगूं क्या ? बोलूं क्या ? चुपचाप पड़ा रहूंगा तुम्हारे चरण में । मौन पड़ा रहूंगा तुम्हारे चरण में । मौन ही होगी मेरी प्रार्थना, शून्य ही होगा मेरा निवेदन ।

अंतरजामी सकल डेरो...तुम्हारा डेरा तो सबके भीतर है सो मेरे भीतर भी है, तो तुम्हें पता ही है, कि मैं क्या चाहूं, कि मैं क्या होना चाहूं, कि क्या मेरे भाग्य की नियति है ।

छिपो नहिं कछु करम मेरो...अपने पापों का बखान भी क्या करूं, वे भी तो तुमसे छिपे नहीं हैं । जो तुमने करवाया है वह किया है । जहां तुमने भेजा है वहां गया हूं । सब तुम्हारा है––पाप भी तुम्हारे, पुण्य भी तुम्हारे, और कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है । इसलिए न तो पापों का वर्णन करूंगा कि मैंने क्या-क्या पाप किये, मुझे क्षमा करो । क्षमा भी नहीं मागूंगा । और न पुण्यों की चर्चा करूंगा और तुमसे पुण्यों का कोई फल भी नहीं मागूंगा । तुम सब जानते हो––यही समर्पण का भाव है ।

अजब साहब तेरी इच्छा । करो कछु प्रेम की सिच्छा ।।

और तुमने भी खूब अजब काम किया ! अजब साहब तेरी इच्छा. . . कि संसार में भेजा, कि अंधेरे में भटकाया, कि गड्ढों में गिराया । मगर होगा जरूर कोई राज, जब तेरी इच्छा है, जब साहब की इच्छा है । अगर पाप भी करवाये हैं तो उसके भीतर कुछ रहस्य होगा । अगर भटकाया है तो भटकाने में भी कुछ राज

होगा । शायद भटक कर ही कोई पहुंचता है इसलिए भटकाया है । शायद पाप करके ही पुण्य की आकांक्षा जगती है । शायद दूर किया मुझे अपने से ताकि पास आने की आकांक्षा, अभीप्सा, प्यास जगे ।

अजब साहब तेरी इच्छा ...मेरी समझ में तो नहीं आती है, भीखा कहते हैं; मेरी समझ ही कितनी ? बड़ी अजब है तेरी शिक्षा, बड़ी अजब है तेरी इच्छा, संसार में भटका रहा है, अंधेरे में भटका रहा है । मगर जरूर राज होगा । शायद अंधेरी रात के बाद ही सुबह होती है, इसलिए तूने अंधेरी रात दी कि सुबह हो सके । अज्ञान के बाद ही ज्ञान का उदय है, इसलिए अज्ञान दिया । और पाप में ही तो पुण्य का फूल खिलेगा । कीचड़ में ही तो कमल खिलेगा, इसलिए कीचड़ दी ।

अजब साहब तेरी इच्छा । करो कछु प्रेम की सिच्छा ।।

लेकिन अब बहुत हो गया । अब काफी हो गया । अब थोड़ी प्रेम की शिक्षा दो । अब थोड़े प्रेम के पाठ सिखाओ । बहुत हो गया, जनम-जनम से अंधेरे में भटकता-भटकता, अब प्रभात होने दो । प्रेम प्रभात है । प्रेम पुण्य है । प्रेम प्रार्थना है । अब प्रेम सिखाओ । घृणा बहुत की, ईर्ष्या बहुत की, वैमनस्य बहुत किया, क्रोध बहुत किया, हिंसा बहुत की––अब प्रेम सिखाओ ।

सकल घट एक ह्वै आपै...ऐसा प्रेम सिखाओ कि सब में एक ही दिखाई पड़ने लगे । दूसर जो कहै मुख कापै...दूसरा कह ही न सकूं––मुंह कंप जाए, जबान टूट जाए, सिर गिर जाए––बस एक ही, एक ही उद्‌घोष उठे ।

निरगुन तुम आप गुनधारी... मुझे पता है कि तुम ही छिपे हो इन गुणों में । इस द्वैत में भी तुम्हारा अद्वैत ही छिपा है । इस अनेक में भी तुम एक ही हो । अनेक फूलों के भीतर तुम एक धागे की तरह अनस्यूत हो ।

निरगुन तुम आप गुनधारी. . . मुझे पता है, ये सब गुण भी तुम्हारे हैं । यह सब लीला भी तुम्हारी है । यह सब खेल भी तुम्हारा है । यह अभिनय भी तुम्हारा है ।

अचर चर सकल नरनारी... यह भी मुझे मालूम है कि तुम चलते नहीं फिर भी चल रहे हो । सारे नर-नारियों में और कौन चल रहा है ? तुम्हीं चल रहे हो। मुझे पता है तुम हिलते भी नहीं लेकिन तुम्हीं चंचल हुए हो । मुझे पता है कि तुम अडिग हो लेकिन तुम्हीं कंपायमान हुए हो ।

सब विरोधाभास परमात्मा में समर्पित हैं । सब विरोधाभास परमात्मा में एक हो जाते हैं ।

जानो नहिं देव मैं दूजा...लेकिन मुझे दूसरे की कोई खबर नहीं है, न मैं दूसरे को जानता हूं, न दूसरा मुझे कोई दिखाई पड़ता है; बस एक तुम मिल गये ।

जानो नहिं देव मैं दूजा । भीखा इक आतमा पूजा ।।

और मेरे पास कोई और पूजा नहीं, अर्चन नहीं, पूजा का थाल नहीं, दीया नहीं, धूप नहीं, बस एक मेरी आत्मा है--- यही मेरी पूजा है ।

काश, तुम्हें अगर कहीं कोई बोलता ब्रह्म मिल जाए तो ऐसे अपने को समर्पित कर देना । बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी ।

और जो बोलते ब्रह्म के साथ जुड़ जाए वह पहुंच गया; बिना चले पहुंच गया; बिना एक कदम उठाये पहुंच गया । ऐसे तो दौड़-दौड़ कर भी कोई नहीं पहुंचता लेकिन सद्गुरु के साथ बिना कदम उठाये पहुंचना हो जाता है ।

आज इतना ही ।
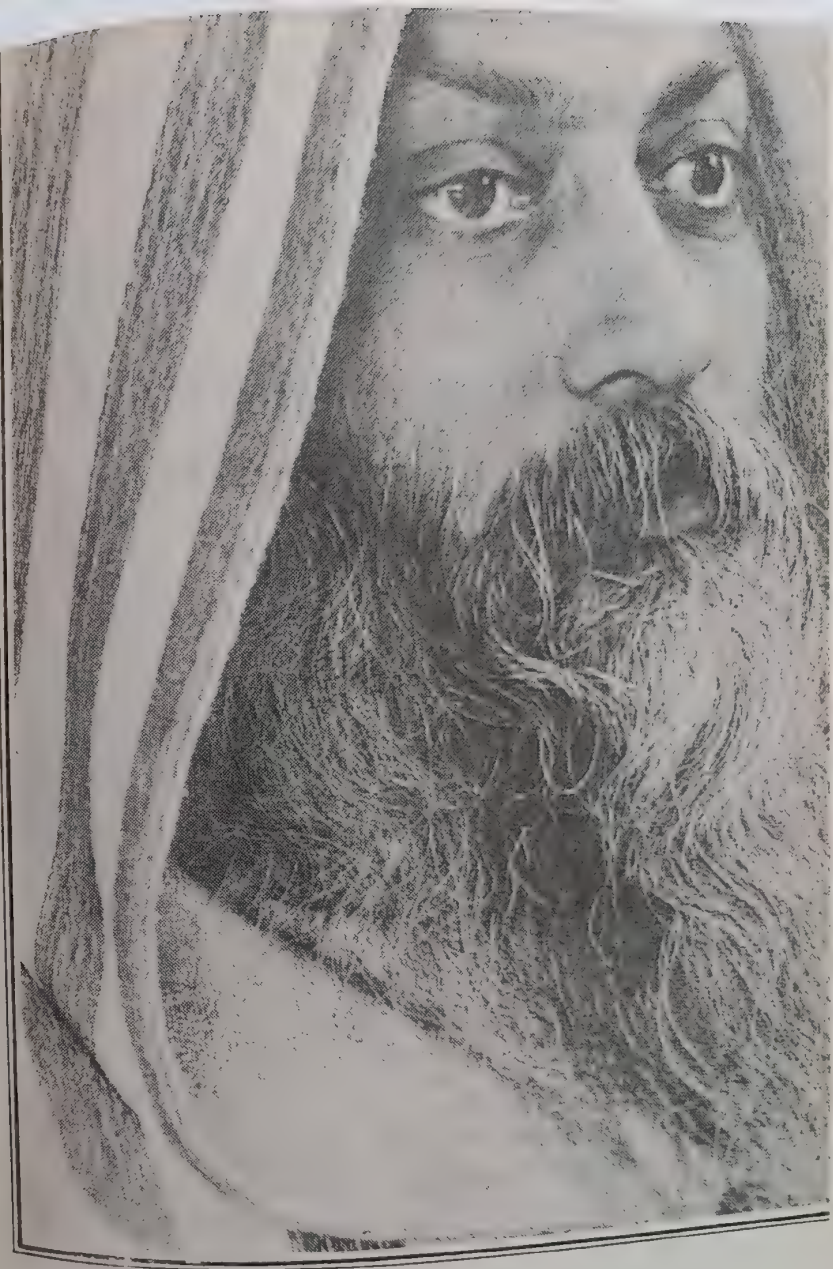
पुकार जागने की

छठवां प्रवचन; दिनांक २६ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

भगवान ! कहते हैं कि अस्तित्व हमेशा विकासमान है। क्या यह नियम बुद्धपुरुषों पर भी लागू है ? जैसा कि बुद्ध और महावीर ने चुपचाप लोगों के पत्थर और अन्यायों को सहा। मुहम्मद ने हाथ में तलवार लेकर उनका सामना किया। आप तो हाथ में ऐसा कोई अस्त्र नहीं लेते, परन्तु अन्यायों का सामना और भी ठीक ढंग से करने की व्यवस्था की है।

जैसे ही मैं आप में डूबता हूं वैसे ही प्रतीति होती है कि मनुष्य की चेतना को ऊपर उठाने के लिए जिस व्यापकता से आप प्रयत्नशील हैं, वैसा अतीत के किसी बुद्धपुरुष ने नहीं किया होगा !

भगवान ! क्या भाग्य को मानना हर स्थिति में बुरा है ?

भगवान ! जब भी यहां आती हूं, संन्यास के वस्त्र पहनकर आने का भाव होता है। कोशिश करती हूं लेकिन कोशिश निष्फल जाती है; घर के लोग राजी नहीं होते। इस बार भी घर में समझाया, तड़पी, किसी ने न सुना तो यहां चली आयी।

मैं जानती हूं, मैं निर्बल हूं, मुझमें साहस की कमी है। मगर हमेशा आपके पास आने की अभीप्सा दिल में रहती है। संन्यास तो ले लिया लेकिन संन्यास के वस्त्र परिवार के कारण नहीं पहन पाती हूं। मेरा पूरा संन्यास कब होगा ? किससे जानूं---जो कर रही हूं, वह ठीक है या नहीं ? क्या मैं आपको चूक जाऊंगी ? कृपया कुछ बताएं।

अगर मैं कुछ छिपाती हूं तो वह भी बताइये तो मैं अपने को जान सकूं।

भगवान ! लगता है कि मैं आपके प्रेम में पड़ गया हूं और बड़ी उलझन में भी। आपकी बातें ठीक लगती हैं; सुनते ही आनंद-अश्रु बहने लगते हैं। लेकिन वे मेरे सारे संस्कारों के विपरीत हैं, इसलिए मैं उन्हें रोक लेता हूं। अब आपकी मानूं तो मुश्किल, न मानूं तो मुश्किल !

भगवान ! क्या साधारणजन कभी आपको समझ पाएंगे ?

पहला प्रश्न : भगवान ! कहते हैं कि अस्तित्व हमेशा विकासमान है। क्या यह नियम बुद्धपुरुषों पर भी लागू है ? जैसा कि बुद्ध और महावीर ने चुपचाप लोगों के पत्थर और अन्यायों को सहा। मुहम्मद ने हाथ में तलवार लेकर उनका सामना किया। आप तो हाथ में ऐसा कोई अस्त्र नहीं लेते, परन्तु अन्यायों का सामना और भी ठीक ढंग से करने की व्यवस्था की है।

जैसे ही मैं आप में डूबता हूं वैसे ही प्रतीति होती है कि मनुष्य की चेतना को ऊपर उठाने के लिए जिस व्यापकता से आप प्रयत्नशील हैं, वैसा अतीत के किसी बुद्धपुरुष ने नहीं किया होगा !

★ सत्य निरंजन ! अस्तित्व विकास है लेकिन बुद्धत्व का कोई विकास नहीं होता। बुद्धत्व का तो अर्थ ही है कि विकास की चरम अवस्था; उसके पार फिर कुछ और शेष नहीं। बुद्धत्व अर्थात मंजिल; पहुंचना हो गया। महावीर, बुद्ध, कृष्ण मुहम्मद, जीसस, नानक, कबीर, भीखा इनमें कोई आगे-पीछे नहीं है, कोई छोटा-बड़ा नहीं है--ये सब समान रूप से बुद्धत्व को उपलब्ध हैं। बुद्धत्व घटता है तो खंडों में नहीं घटता, अंशों में नहीं घटता; जब भी घटता है तो परिपूर्ण होता है, पूरा होता है--आधा नहीं होता, कम-ज्यादा नहीं होता। लेकिन फिर भी कृष्ण के वचनों, महावीर के वचनों, मुहम्मद के वचनों और नानक के वचनों में भेद है। भेद अभिव्यक्ति का है, अनुभूति का नहीं। उनके आचरण, उनके व्यवहार में भेद है--उनकी आत्मा में नहीं। आचरण, व्यवहार, अभिव्यक्ति समाज पर निर्भर होते हैं, और समाज विकासमान है।

मुहम्मद को तलवार हाथ में लेनी पड़ी क्योंकि जिन लोगों के बीच मुहम्मद थे, वे लोग जंगली थे, खूंखार थे। उनके बीच बिना तलवार लिए मुहम्मद अपना

संदेश पहुंचा ही न सकते थे। बिना तलवार की छाया में कुरान के गीत गाये ही नहीं जा सकते थे। महावीर भी अरब में पैदा होते तो तलवार हाथ लेनी पड़ती। लेकिन अगर मुहम्मद महावीर के समय भारत में पैदा हुए होते तो उन्होंने भी पत्थर चुपचाप सह लिए होते—एक और समाज था, एक और ढंग का समाज था, और तरह के लोग थे, और तरह की संस्कृति थी।

कल ही मैं एक सूफी कहानी पढ़ रहा था। मुहम्मद के जमाने की कहानी है। मुहम्मद का एक भक्त, एक सूफी, कुरान की आयत पढ़ रहा है। कुरान में आयत आती है—खाओ, पियो, मौज करो। पास में ही खड़े हुए एक अरबी ने यह सुना—खाओ, पियो, मौज करो। उसने उठाकर एक डंडा उस सूफी के सिर पर मार दिया। लेकिन सूफी ने इसकी कोई चिंता न की, वह कुरान की आयत को आगे पढ़ता चला गया—खाओ, पियो, मौज करो और फिर नर्कों में सड़ोगे। डंडे मारने वाले अरब ने कहा : अब अकल आयी, अब समझ आयी, डंडा खाकर समझ आयी! उसे पता ही नहीं कि वह तो कुरान का ही आधा वचन था। वह तो सोच रहा है कि मेरे डंडा मारने के कारण अब इनको थोड़ी अकल आयी, तो कुछ मतलब की बात कही, नहीं तो कह रहा था—खाओ, पियो, मौज करो।

जिन लोगों के बीच मुहम्मद को शिक्षा देनी पड़ी, उनके बीच न तो पहले कृष्ण हुए थे, न राम हुए थे, न महावीर हुए थे, न बुद्ध हुए थे। मुहम्मद को पहली ही बार जमीन तोड़नी पड़ी थी। जैसे कोई नई-नई पहाड़ी की जमीन को खेत में बदलने की चेष्टा करे तो पत्थर निकाल कर फेंकने पड़ते हैं, कुदाली चलानी पड़ती है, जमीन को साफ करना पड़ता है—ऐसी ही जमीन में मुहम्मद को काम करना पड़ा। महावीर के पीछे कोई पांच हजार साल लंबा इतिहास था। उस पांच हजार साल में जमीन खूब तैयार की गयी थी। खेत तैयार था, जरा-सा पानी सींचने की बात थी, जरा-से बीज डालने की बात थी।

इसलिए अभिव्यक्ति में भेद पड़ेगा, और आचरण में भेद पड़ेगा, और व्यवहार भिन्न होगा। लेकिन इससे तुम यह मत समझ लेना कि महावीर मुहम्मद से बड़े बुद्ध-पुरुष हैं; बुद्धत्व में बड़ा-छोटा कुछ भी नहीं होता। इससे तुम यह मत समझ लेना कि बुद्ध जीसस से बड़े और आगे पहुंचे हुए हैं; बुद्धत्व में कोई आगे नहीं होता, कोई पीछे नहीं होता। बुद्धत्व का अर्थ है, आ गयी मंजिल, उपलब्धि हो गयी; उसके बाद कोई विकास नहीं है। पूर्णता का क्या विकास? लेकिन फिर भी जैसे समय बदलेगा, लोग बदलेंगे, भाषा बदलेगी, लोगों के सोचने के ढंग बदलेंगे—वैसे-वैसे बुद्धों की अभिव्यक्ति बदलती जाएगी।

जो मैं कह रहा हूं, वह आज ही कहा जा सकता है, इसके पहले नहीं कहा जा सकता था। आज यहां हिन्दू है, मुसलमान है, ईसाई है, पारसी है, सिक्ख है, जैन,

बौद्ध, यहूदी—आज दुनिया के सारे धर्मों के लोग यहां मेरे सामने मौजूद हैं। बुद्ध के सामने ऐसा नहीं था, सिर्फ हिन्दुओं से बोलना पड़ रहा था, इसलिए एक तरह की अभिव्यक्ति थी। महावीर इतने धर्मों के लोगों से नहीं बोल रहे थे, इसीलिए अभिव्यक्ति में एकस्वरता है। मैं इतने लोगों से बोल रहा हूं कि मुझे पूरा सरगम उठाना होगा, मुझे सातों स्वर उठाने पड़ेंगे।

बुद्ध छोटे-से क्षेत्र बिहार में घूमते रहे, उससे बाहर नहीं गये। मुहम्मद अरब में रहे। जीसस का क्षेत्र तो और भी छोटा था, समय भी बहुत कम मिला जीसस को, केवल तीन वर्ष काम करने के लिए। मेरे लिए सारी दुनिया क्षेत्र है, करीब तीस देशों से लोग यहां हैं। मुझे तीस देशों के लोगों की संस्कृति, सभ्यता, जीवन-पद्धति, जीवन-संस्कार इन सबको ध्यान में रखकर बोलना पड़ रहा है।

इसलिए जो बहुत उदार हैं वे ही केवल मेरी बात को समझ सकेंगे। जो उदार नहीं हैं, अनुदार हैं, मतान्ध हैं, एक संप्रदाय, एक धारणा से बंधे हैं वे तो मुझसे नाराज हो जाएंगे। मैं किसी को भी राजी नहीं कर सकता क्योंकि मुझे औरों को भी ध्यान में रखना है। हिन्दू चाहेंगे कि मैं सिर्फ वेद की, उपनिषद की, गीता की बात करूं; कुरान और बाइबिल को बीच में न लाऊं तो जरूर वे प्रसन्न होंगे। लेकिन यह समझौता मैं नहीं कर सकता। कुरान भी आएगी और बाइबिल भी आएगी और गुरु-ग्रंथ भी आएगा और धम्मपद भी आएगा। ईसाई भी चाहेंगे कि मैं सिर्फ ईसा पर ही बोलूं और किसी पर न बोलूं तो ईसाई राजी हो जाएंगे। लेकिन यह भी मैं नहीं कर सकता। जापान में हुए झेन फकीर मेरे लिए उतने ही अपने हैं जितने ईसा, और चीन में हुए लाओत्सु और च्वांगत्सु और लीहत्सु मेरे उतने ही निकट हैं जितने बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर।

यह प्रयोग अनूठा है। लेकिन यह आज ही हो सकता था, इसके पहले नहीं हो सकता था। विज्ञान ने, विज्ञान से उत्पन्न टेक्नालॉजी ने पृथ्वी को एक छोटा-सा गांव बना दिया है। पृथ्वी बहुत छोटी हो गयी है, लोग बहुत करीब आ गये। इतनी छोटी पृथ्वी, और लोगों का इतना करीब आना पहले नहीं हुआ था। पता ही नहीं था और लोगों का, और लोग भी हैं इससे कोई संबंध न था—अपना-अपना कुआं था, अपनी-अपनी भाषा थी।

इसलिए मुझसे हिन्दू भी नाराज हो जाएगा, ईसाई भी नाराज हो जाएगा, जैन भी नाराज हो जाएगा—अगर नासमझ हुआ तो; अगर समझदार हुए तो तीनों मुझसे राजी होंगे, तीनों मुझसे प्रसन्न होंगे। इस बगिया में तो सारे फूल खिलेंगे। इस बगिया में किसी का तिरस्कार नहीं है। लेकिन जहां सारे फूल खिलेंगे वहां एक बात ख्याल रखनी जरूरी है कि किसी एक ही फूल की मानकर नहीं चला जा सकता। सारे फूलों के ढंग अलग हैं—चंपा का अपना रंग है अपना ढंग है और गुलाब

का अपना रंग अपना ढंग। गुलाब को आरोपित नहीं किया जा सकता चंपा पर और चंपा को आरोपित नहीं किया जा सकता गुलाब पर। यहां किसी पर किसी का आरोपण नहीं होगा। यहां प्रत्येक को सुविधा मिलेगी उसके आत्मविकास की। इसलिए मैं सारी पद्धतियों पर बोल रहा हूं।

निश्चित ही सत्य निरंजन, ऐसा प्रयोग पहले कभी नहीं हुआ था लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि बुद्धों ने पहले ऐसा प्रयोग न करना चाहा होगा; करना भी चाहा हो तो भी करने का उपाय नहीं था। प्रत्येक चीज की शृंखला होती है। जैसे समझो, क्या तुम सोचते हो हवाई जहाज बन सकता है ऐसे देश में जहां बैलगाड़ी भी न बनी हो? असंभव। बैलगाड़ी हो, मोटरगाड़ी हो, रेलगाड़ी हो, तभी हवाई जहाज बन सकता है। क्या तुम सोचते हो जिस देश में हवाई जहाज भी न हों उसमें अंतरिक्ष-यान बन सकते हैं? यह असंभव है। हवाई जहाज का तकनीक जब अपनी परिपूर्णता पर पहुंचेगा तो अंतरिक्ष-यान बनेगा। जिस देश में रेलगाड़ियां न हों उस देश के लोग चांद पर नहीं पहुंच सकते। हालांकि रेलगाड़ियों से चांद पर नहीं जाया जाता लेकिन रेलगाड़ी उस शृंखला की कड़ी है जिसमें आगे चलकर हवाई जहाज बनेगा, अंतरिक्ष-यान बनेगा और आदमी चांद पर पहुंच सकेगा।

चांद पर तो आदमी हमेशा से पहुंचना चाहता था। शायद ही कोई समय ऐसा रहा हो जब आदमी चांद में उत्सुक नहीं था। चांद इतना प्यारा लगा है। चांद का आकर्षण गहरा है। सदियों से कवि उसके गीत गाये हैं। और छोटे-छोटे बच्चों ने भी चांद को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाये हैं। लेकिन चांद पर पहुंचना आज संभव हो सका, इसके पहले संभव नहीं हो सका था। अब चांद पर पहुंचना संभव हुआ है तो मंगल पर पहुंचना भी संभव हो जाएगा। और मंगल पर पहुंचना संभव हुआ है तो आज नहीं कल हम दूसरे सौर परिवारों में भी प्रवेश कर जाएंगे। आज नहीं कल हम तारों पर भी पहुंच जाएंगे।

मगर यह एक क्रम है, सीढ़ी के सोपान होते हैं। बुद्ध भी चाहते कि सारी दुनिया उनकी बात समझ ले। जो वे कर सकते थे उन्होंने किया—गांव-गांव घूमे, बयालीस वर्ष सतत श्रम किया। मगर गांव-गांव घूमकर कितने गांव घूम सकते हो? गांव-गांव घूमकर कितने लोगों तक खबर पहुंचा सकते हो? रेडियो नहीं था, टेलीविजन नहीं था, अखबार नहीं थे, छापेखाने नहीं थे, तो गांव-गांव घूमना पड़ा।

लोग मुझसे पूछते हैं कि आप गांव-गांव क्यों नहीं घूमते? अगर मैं गांव-गांव घूमूं तो मैं पागल हूं। बुद्ध को घूमना पड़ा क्योंकि और कोई उपाय न था। मैं तो यहां एक जगह बैठकर सारी दुनिया से लोगों को बुला ले सकता हूं, जरूरत

नहीं है गांव-गांव घूमने की। और गांव-गांव मैं घूमूं तो जो काम मैं एक जगह बैठकर कर सकता हूं, वह नहीं हो सकेगा।

लोग मुझसे पूछते हैं कि प्रचार की क्या आवश्यकता है? बुद्ध ने तो नहीं किया। तो बुद्ध बयालीस साल क्या करते रहे, मक्खियां मारते रहे? हां, अखबार में नहीं प्रचार किया क्योंकि अखबार नहीं थे। रेडियो और टेलीविजन और फिल्म नहीं बनायी क्योंकि नहीं बन सकती थी। बन सकती होती तो तुम जैसे बुद्धू नहीं थे कि नहीं बनाते। जो भी साधन उपलब्ध हो सकते थे सत्य को पहुंचाने के लिए, उन्होंने उनका उपयोग किया। अपने शिष्यों को भेजा दूर-दूर तक।

आज विज्ञान ने बहुत साधन उपलब्ध कर दिये हैं। उन सारे साधनों का उपयोग किया जाना जरूरी है। और मनुष्य को एक बहुत बड़ी संपदा आज मिली है जो कभी नहीं मिल सकती थी पहले। यहूदी और ईसाई और जैन और बौद्ध इन सबने अलग-अलग, अपने-अपने देशों में, अपनी-अपनी धाराओं में, अपने-अपने ढंग से, जीवन-सत्य को पाने के लिए विधियां खोजी थीं। आज हम सारी विधियों को साथ अनुभव कर सकते हैं, साथ समझ सकते हैं। आज सारी विधियों का निचोड़ निकाल सकते हैं। वही महत् कार्य यहां हो रहा है। यहां सूफियों का नृत्य हो रहा है, बौद्ध भिक्षु आता है तो वह हैरान होता है क्योंकि बौद्ध भिक्षु तो सिर्फ बैठकर ही ध्यान करना जानता है। उसे यह पता ही नहीं है कि ध्यान नृत्य करके भी हो सकता है। और जब सूफी फकीर आता है तो वह भी हैरान होता है क्योंकि वह सोचता है सिर्फ नाचकर ही ध्यान हो सकता है। लेकिन यहां विपस्सना का प्रयोग भी हो रहा है, लोग आंख बंद किये घंटों बैठे हुए हैं।

सूफी समझ नहीं पाता विपस्सना को, बौद्ध समझ नहीं पाता सूफी के दरवेश नृत्य को। उदारता चाहिए, बड़ा दिल चाहिए, बड़ी छाती चाहिए। इस प्रयोग को समझने के लिए बड़ी गहरी समझ, बड़ी शुद्ध समझ चाहिए। इसलिए यह प्रयोग बहुत थोड़े-से लोग ही कर पाएंगे, लेकिन वे धन्यभागी होंगे जो इस प्रयोग को कर पाएंगे। क्योंकि यही प्रयोग भविष्य की आधारशिला बनेगा, यही प्रयोग भविष्य के मंदिर की पहली ईंट है। जब मंदिर की आधारशिला रखी जाती है तो तुम्हें मंदिर के शिखर तो दिखाई नहीं पड़ते; अभी तो शिखर आये ही नहीं, दिखाई भी कैसे पड़ेंगे। यह तो बहुत स्वप्नद्रष्टा जो होते हैं, भविष्यद्रष्टा जो होते हैं—कवि और मनीषी, वे केवल देख पाएंगे कि जो आज ईंट रखी जा रही है बुनियाद की वह केवल ईंट नहीं है, जल्दी ही उस पर स्वर्ण-शिखर चढ़ेंगे। लेकिन स्वर्ण-शिखरों की बुनियाद में ईंट होती हैं।

और ध्यान रखें कि मंदिर सिर्फ ईंट ही नहीं होता. ईंटों के जोड़ से कुछ ज्यादा होता है। कोई काव्य सिर्फ शब्दों का ही जोड़ नहीं होता, शब्दों के जोड़ से ज्यादा

होता है। कोई संगीत सिर्फ स्वरों का जोड़ नहीं होता, स्वरों का अतिक्रमण होता है? जो लोग बाहर-बाहर से देखेंगे उनको तो दिखाई पड़ेगा कि क्या हो रहा है? सिर्फ ईंटें रखी जा रही हैं। अभी तो ईंटें रखी जा रही हैं लेकिन जल्दी यह मंदिर बनेगा, इस पर स्वर्ण-शिखर चढ़ेंगे। और तब जिन लोगों ने ईंटें रखी हैं उनके आनंद का पारावार न रहेगा; उनके भी हाथ उपयोग में आये इस महत् मंदिर के बनने की प्रक्रिया में।

बुद्ध भी यही चाहते थे, महावीर भी यही चाहते थे, कृष्ण भी यही चाहते थे; लेकिन जो उस समय हो सकता था उन्होंने किया, जो आज हो सकता है वह आज किया जाएगा। लेकिन इतने पर ही अंत नहीं हो जाता, मनुष्य तो विकासमान है, रोज विकसित होता रहेगा; भविष्य में बुद्ध आते रहेंगे और इस मंदिर के नये-नये रूप प्रगट होते रहेंगे। इस मंदिर पर ही कोई यात्रा समाप्त नहीं हो जाने वाली है। इसलिए सच्चा धार्मिक आदमी नये मंदिरों को अंगीकार करने की क्षमता रखता है। ये तो झूठे धार्मिक आदमी हैं जो नये मंदिर को इनकार करते हैं, जो पुराने की ही पूजा करते हैं, जो मुर्दा की ही पूजा करते हैं।

स्मरण है, कल भीखा ने कहा : वह धन्यभागी है जो जीवित ब्रह्म की वाणी को समझ ले। बहुत आसान है सदियों के बाद सद्गुरुओं को समझना क्योंकि तब तक उनके पीछे परंपरा, इतिहास, पुराण की लंबी धारा खड़ी हो जाती है। लेकिन जब कोई सद्गुरु पहली बार खड़ा होता है तो उसके पीछे कोई परंपरा नहीं होती, वह अपरिभाष्य होता है। उसे किस कोटि में रखें, किस गणना में रखें यह भी समझ में नहीं आता। उसे क्या कहें यह भी समझ में नहीं आता। उसके लिए अभी भाषा भी नहीं है, शब्द भी नहीं है; परिभाषा भी नहीं है, व्याख्या भी नहीं है। धीरे-धीरे व्याख्या खोजी जाएगी, परिभाषा खोजी जाएगी। लेकिन समय लगेगा। और तब तक सद्गुरु विदा हो जाता है। जब तक तुम समझ पाते हो तब तक दीया उड़ जाता है। तब तक पींजड़ा पड़ा रह जाता है, हंसा उड़ जाता है।

जिनके पास आंखें हैं वे इन छोटी बातों में नहीं पड़ते कि व्याख्या, परिभाषा, कोटि। वे तो सीधे आंख में आंख डालकर देखने की चेष्टा करते हैं, वे तो सीधे प्रयोग में सम्मिलित हो जाते हैं। वैसा प्रयोग ही संन्यास है। संन्यास का अर्थ है : तुम बिना चिंता किये मेरे साथ अज्ञात में उतरने को तैयार हो। तुम जोखम उठा रहे हो, तुम मेरे साथ एक नाव में उतर रहे हो जो अज्ञात सागर में जाएगी। दूसरे किनारे का कोई पता नहीं है और दूसरे किनारे का कोई आश्वासन भी नहीं दिया जा सकता। यह यात्रा ऐसी है कि इसमें आश्वासन होते ही नहीं। इसमें आश्वासन दिये कि यात्रा खराब हुई क्योंकि आश्वासन से अपेक्षा पैदा होती है। और जहां अपेक्षा है वहां वासना है। और जहां वासना है वहां प्रार्थना नहीं।

सत्य निरंजन, एक अनूठा यज्ञ हो रहा है यह, इसमें जितने भागीदार बन सको बनो, जितनों को भागीदार बना सको बनाओ--प्रीति से पुकारो, प्रार्थना से निमंत्रण दो। पीछे तो लोग बहुत पछताते हैं मगर पीछे पछताने से कुछ भी नहीं होता--जब फूल खिला हो तब उसके साथ नाच लो, और जब दीया जला हो तब अपना दीया भी जला लो। तुमने तो जोड़ दिया है स्वयं को मुझसे, इतने से ही तृप्त नहीं हो जाना है--और भी हैं प्यासे बहुत, और भी हैं अभीप्सु बहुत, मुमुक्षु बहुत, उन तक भी खबर पहुंचानी है।

दूसरा प्रश्न : भगवान ! क्या भाग्य को मानना हर स्थिति में बुरा है ?

★ हर स्थिति में न तो कोई चीज अच्छी होती है और न कोई चीज बुरी होती है। स्थितियां होती हैं जब जहर भी अच्छा होता है क्योंकि ऐसी बीमारियां हैं जिनमें जहर औषधि है। और स्थितियां हैं जब शायद अमृत भी घातक हो क्योंकि ऐसी बीमारियां हो सकती हैं जब कुछ भी शरीर में ले जाना मंहगा सौदा हो जाए--अमृत भी। ऐसी बीमारियां हैं जब कि उपवास ही स्वास्थ्य का द्वार बनेगा, उस समय अमृत भी मत पीना।

जीवन में कोई चीज इस तरह जड़ रूप से थिर नहीं है और हम अक्सर यही करते हैं। हम चाहते हैं लेबल--फलां चीज बुरी है, जैसे भाग्य। मुझसे लोग पूछते हैं, ठीक-ठीक कह दें, भाग्य को मानना ठीक है या गलत ?

भाग्य को ठीक ढंग से भी माना जा सकता है तब उसका बड़ा उपयोग है, और भाग्य को गलत ढंग से भी माना जा सकता है तब उसका बड़ा दुरुपयोग है। सौ में से निन्यानबे गलत ढंग से ही मानते हैं क्योंकि सौ में से निन्यानबे जो भी करते हैं वे गलत करते हैं। भाग्य का ही सवाल नहीं है। सौ में से निन्यानबे की भाग्य की धारणा क्या है ? उनकी धारणा यह है कि सब टालो परमात्मा पर। इस टालने के पीछे आलस्य है, सुस्ती है, अकर्मण्यता है--हम क्या करें, भाग्य में ही नहीं है। इसलिए बैठे रहेंगे।

इस धारणा ने ही पूरब के देशों को दरिद्र बनाया, दीन बनाया, भिखमंगा बनाया। हम क्या करें, भगवान ने जो लिखा है माथे पर वही होकर रहेगा। उसके बिना इशारे के पत्ता नहीं हिलता तो हमारे किये क्या होना है ? और उसने तो हर दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिख दिया है, तो हम कुछ करें या न करें, जिस दाने पर हमारा नाम है वह तो मिलेगा ही। यह तो बड़ी गलत धारणा है।

पश्चिम के देश समृद्ध होते चले गये क्योंकि उन्होंने भाग्य की ऐसी धारणा नहीं मानी--उन्होंने धन भी पैदा किया, भोजन भी पैदा किया, सुविधाएं भी पैदा कीं। आज पश्चिम उन सारी सुविधाओं को उत्पन्न कर लिया है जिनकी हमने

स्वर्ग में कल्पना की है। हम सिर्फ स्वर्ग में ही कल्पना कर सकते हैं। यहां तो हम किसी तरह सह रहे हैं। यह तो थोड़ा समय है जो व्यतीत कर देना है। यह जगत तो धर्मशाला है, रात-भर रुकना है, कौन फिक्र करे, कौन चिंता ले! यह तो रेल्वे स्टेशन का प्लेटफार्म है, यहां केले के छिलके भी फेंको, मूंगफली के छिलके भी फेंको, पान को भी यहीं थूक दो। अपना लेना-देना क्या है? अपनी गाड़ी आयी, हम तो गये फिर जो पीछे आएंगे वे जानें, वे समझें। जो पीछे आते हैं उनको भी क्या पड़ी है।

देश गंदा होता चला गया, दीन होता गया, दुर्बल होता गया, गुलाम होता गया। हमने गुलामी को स्वीकार कर लिया भाग्य के कारण। दुनिया का कोई देश इतने लंबे समय तक गुलाम नहीं रहा, इतना बड़ा देश! क्यों छोटी-छोटी कौमें आयीं और इसे गुलाम बना सकीं? बड़ी छोटी कौमें——हूण, मुगल, तातार——छोटी-छोटी कौमें जिनकी कोई हैसियत न थी, जिनको यह देश मुट्ठी में ले सकता था; इस बड़े देश को ये छोटी-छोटी कौमें आती रहीं और इस पर कब्जा करती रहीं। मगर हमारी एक धारणा थी कि यही इरादा होगा भगवान का, यही हमारे भाग्य में लिखा होगा। गुलामी बदी है तो गुलामी भोगेंगे।

यह तो भाग्य की गलत धारणा है। लेकिन भाग्य की एक ठीक धारणा भी है। जिन्होंने दी थी, ज्ञानियों ने, उन्होंने ठीक धारणा दी थी। मगर मुश्किल यही है कि ज्ञानी कुछ देते हैं, अज्ञानी कुछ समझते हैं। ज्ञानी की भाग्य की धारणा क्या है? अकर्मण्यता नहीं——परिपूर्ण कर्मण्यता लेकिन फलाकांक्षा से मुक्ति।

जरा भेद समझ लो, अज्ञानी की भाग्य की धारणा है कर्म से मुक्ति, ज्ञानी की भाग्य की धारणा है फलाकांक्षा से मुक्ति। कर्म तो करेंगे लेकिन फल उस पर...! अज्ञानी कहता है: कर्म ही क्यों करें? जब फल ही उस पर है तो कर्म भी उस पर। बोयें ही क्यों बीज? जब फल ही उस पर है तो वृक्ष भी उसी पर, बीज भी उसी पर, खेती-बाड़ी भी उसी पर। ज्ञानी कहता है: बीज तो बोओ, खेती-बाड़ी भी करो, वृक्ष को बड़ा करो, हरा-भरा करो, खाद दो, रक्षा करो, फिर भी इतना ध्यान रखो अगर फल न आएं तो विषादग्रस्त मत होना। फल आ जाएं तो अहंकार-ग्रस्त मत होना। फल आ जाएं तो चिल्लाते मत फिरना कि मैंने देखो कैसे फल उगाये।

तुम उगाने वाले नहीं हो, उगाने वाला तो वही है। अगर तुम उगाने वाले होते तो तो फिर नीम में भी तुम आम लगा लेते। तुम उगाने वाले नहीं हो, उगाने वाला तो वही है। और अगर फल न आएं तो रोते मत फिरना। तुमने अपना श्रम पूरा किया, तुमने कोई कोर-कसर न रखी, फिर अगर फल न आये, उसकी मर्जी। तो शायद इस फल के न आने में भी तुम्हारे लिए कोई शिक्षण है। इस फल के न आने

में भी शायद संतोष की कोई शिक्षा है।

अगर कर्म तो बचे और फलाकांक्षा चली जाए तो यही संन्यास है। कृष्ण ने अर्जुन से इतनी ही बात कही कि कर्म तो तू कर लेकिन फलाकांक्षा न कर, फल उस पर छोड़। तू फल की चिंता मत कर——जीतेगा या हारेगा, यह वह जाने; मगर लड़ेगा, यह तू जान। उठा गाण्डीव, युद्ध में जूझ। तू क्षत्रिय है, तेरा स्वभाव क्षत्रिय का है, तू अपने स्वभाव को अभिव्यक्त कर, फिर जो परिणाम हो। परिणाम हमारे हाथ में नहीं है।

क्यों परिणाम हमारे हाथ में नहीं है? क्योंकि परिणाम विराट के हाथ में है। यह अस्तित्व बहुत विराट है। यहां सब चीजें संयुक्त हैं। तुमने बीज बोये यह ठीक, तुमने खेती-बाड़ी की यह ठीक, मगर हो सकता है बाढ़ आ जाए, खेत बह जाए; हो सकता है वर्षा ही न हो, पौधे आये सूख जाएं; हो सकता है कीड़े लग जाएं, हजार-हजार संभावनाएं हैं। और यह विराट जगत है, इस विराट जगत की सारी संभावनाओं से हम अपने को बचा नहीं सकते। हम सारी बचाने की चेष्टा करें तो भी बहुत-सी संभावनाएं शेष रह जाती हैं जिनका हमें अंदाज भी नहीं होगा, जिनका हमें ख्याल भी नहीं होगा।

जैसे पश्चिम में बड़ी कर्मठता है मगर फलाकांक्षा की पकड़ भी है उतनी ही। तो अगर कोई आदमी हार जाता है तो तीसवीं मंजिल से कूदकर आत्महत्या कर लेता है। अगर धंधे में नुकसान लग गया, गोली मार ली। सब अपने सिर ले लिया है। अगर किसी स्त्री से प्रेम हुआ और उसने विवाह न किया, फांसी लगा ली, जहर खा लिया। फलाकांक्षा पर पकड़ है। पश्चिम में कर्मठता तो अच्छी है लेकिन फला-कांक्षा पर जो पकड़ है उसके कारण बहुत विषाद, बहुत विक्षिप्तता, बहुत चिंता... पूरब में फलाकांक्षा भी उस पर हमने छोड़ दी है, कर्म भी उस पर छोड़ दिया है। कर्म छोड़ देने के कारण बड़ी दीनता, बड़ी दरिद्रता, बड़ी गरीबी, बड़ी बीमारी। पूरब भी सड़ रहा है, पश्चिम भी सड़ रहा है। क्योंकि दोनों ने आधा-आधा चुना है। दोनों ने ही एक अर्थ में गलत व्याख्या कर ली है।

मैं चाहता हूं कि तुम कर्म के संबंध में तो पश्चिम की बात को ठीक से समझो और पकड़ो; और फल के संबंध में पूरब की बात को ठीक से समझो और पकड़ो, तो तुम्हारे भीतर एक नये मनुष्य का जन्म होगा, जो न तो पूरब का होगा, न पश्चिम का होगा, जो सिर्फ बोध से भरा होगा। जो पूरब का भी लाभ ले लेगा और पश्चिम का भी लाभ ले लेगा।

यदि धर्म निज निभते चलें,
यदि कर्म निज निभते चलें,

यदि मर्म निज निभते चलें,
फल के लिये फिर भाग्य पर, संतोष बहुत बुरा नहीं !
यह दोष बहुत बुरा नहीं !

अन्याय जग का देखकर,
वर्षों रहे गुमसुम अधर,
हो जाये कंपित स्वर-प्रखर,
जो क्रांति कर दे विश्व में, वह रोष बहुत बुरा नहीं !
यह दोष बहुत बुरा नहीं !

मिटता मिटाता जो बढ़े,
जग से लड़े, मन से लड़े,
आदर्श पर दृढ़ हो अड़े,
सच पर पतिंगे सा जले, मदहोश बहुत बुरा नहीं !
यह दोष बहुत बुरा नहीं !

जो समझदार हैं वे दोषों से भी अलंकृत हो जाते हैं। जैसे जीसस ने मंदिर मे कोड़ा उठा लिया और मंदिर के भीतर जो ब्याजखोरों ने दुकानें खोल रखी थीं उनके तख्ते उलट दिये; और ऐसा कोड़ा चलाया कि ब्याजखोर मंदिर से भागकर बाहर हो गये। एक अकेले आदमी ने बहुत से ब्याजखोरों को मंदिर के बाहर कर दिया। इस तरह की प्रज्ज्वलित चेतना. . . चाहो तो तुम यह भी कह सकते हो : यह तो क्रोध है, यह तो रोष है, यह तो बुद्धपुरुष को शोभा नहीं देता। लेकिन तुम कौन हो बुद्धपुरुष की परिभाषा करने वाले ? बुद्धपुरुष को क्या शोभा देगा और क्या शोभा नहीं देगा, यह तो प्रतिपल निर्णीत होता है, इसकी कोई पूर्व-धारणा नहीं होती।

अन्याय जग का देखकर,
वर्षों रहे गुमसुम अधर,
हो जाये कंपित स्वर-प्रखर,
जो क्रांति कर दे विश्व में, वह रोष बहुत बुरा नहीं !
यह दोष बहुत बुरा नहीं !

जीसस जैसा व्यक्ति अगर रोष में आ जाए तो यह बुरी बात नहीं; अगर जीसस जैसा व्यक्ति प्रज्ज्वलित हो जाए तो यह बात बुरी नहीं——यह बात भली है, यह शुभ है। सब तुम्हारे चैतन्य पर निर्भर है।

तुम पूछते हो, क्या भाग्य को मानना हर स्थिति में बुरा है ? ज्ञान चैतन्य,

हर स्थिति में कोई चीज बुरी नहीं है, कोई चीज भली नहीं है। स्थिति-स्थिति में निर्णय होता है।

कल ही किसी ने पूछा था, सिक्ख गुरुओं ने तलवार उठायी, क्या यह उचित है ? उस स्थिति में उचित था, बिलकुल उचित था। और हमारी तकलीफ यह है कि हम स्थिति तो भूल जाते हैं, सिर्फ घटना याद रह जाती है। और हम घटना को ही सीधी सोचने लगते हैं, स्थिति की पृष्ठभूमि को छोड़कर। मुहम्मद ने तलवार उठायी, यह बिलकुल ठीक था। और बुद्ध ने तलवार नहीं उठायी, यह भी बिलकुल ठीक था। और महावीर पत्थरों को चुपचाप खा गये, पी गये, यह भी बिलकुल ठीक था। उन सब की स्थितियां अलग थीं। और स्थितियां रोज बदल जाती हैं और बुद्धपुरुष स्थिति के अनुकूल, स्थिति की चुनौती को देखकर व्यवहार करता है।

जरूर बुद्धों ने कहा है : सब उसके हाथ में छोड़ दो। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने कहा, तुम कुछ भी न करो। उन्होंने कहा है : तुम जो कुछ कर सकते हो करो, फिर भी सब उसके हाथ में छोड़ दो। करो तो जरूर लेकिन कर्ता न बनो——यह भाग्य की मौलिक धारणा है। कर्ता न बनो, कर्ता बनोगे तो चिंता पकड़ेगी——हारोगे तो मुश्किल, जीतोगे तो मुश्किल। जीतोगे तो अहंकार बढ़ेगा। और अहंकार भयंकर बोझ है, रोग है, उपाधि है। और अगर हारे तो हीनता बढ़ेगी, मन में ग्लानि पैदा होगी। पराजित चित्त बहुत तरह की परेशानियों से भर जाएगा, टूट जाएगा, फूट जाएगा, खंडित हो जाएगा, बस मरने का ही उपाय सूझेगा, आत्महत्या सूझेगी।

पश्चिम में लोग बहुत आत्महत्याएं करते हैं। पश्चिम में बहुत लोग विक्षिप्त होते हैं। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि कम-से-कम चार आदमियों में तीन आदमियों के मस्तिष्क डांवांडोल हैं। यह तो छोटी संख्या न हुई। चार आदमियों में तीन आदमियों के मस्तिष्क अगर संदिग्ध हैं तो चौथे का भी बहुत ज्यादा भरोसा नहीं। कितनी देर भरोसा रखोगे चौथे का ? ये तीन मिल कर चौथे को भी पगला देंगे। ये तीन काफी हैं चौथे को भी पागल करने के लिए। पश्चिम में क्यों विक्षिप्तता है ? इसीलिए कि कर्ता का भाव और फलाकांक्षा। और पूरब में कैसी भी स्थिति हो——सड़ते रहो नालियों में, तो भी आदमी जी रहा है; गलते रहो, तो भी जी रहा है। क्या कर सकते हैं, भाग्य में जो लिखा है !

पूरब में एक तरह की मृत्यु छा गयी है और पश्चिम में एक तरह की विक्षिप्तता। दोनों ही रुग्ण अवस्थाएं हैं। दोनों के पार उठना है। कोई संतुलित मार्ग खोजना है, कोई मज्झिम निकाय, कोई मध्य का मार्ग। जैसे कि रस्सी पर नट चलता है, कभी बायें झुकता थोड़ा, कभी दायें झुकता; मगर बायें-दायें झुकने के लिए नहीं झुकता, बायें-दायें झुकता है ताकि बीच में बना रहे।

ठीक नट की तरह जीवन की कला है। कर्म को तो तुम पूरा करो और कर्म के फल को तुम परमात्मा पर छोड़ दो। फिर देखो तुम्हारे जीवन में कैसे आनन्द के फूल खिलते हैं। फिर तुम देखोगे कि तुम्हारे जीवन में एक विनम्रता है, एक अहोभाव है। जो भी मिलता है, वह प्रसाद है; तुम्हारे अहंकार की पुष्टि नहीं, परमात्मा की भेंट है। और जो भी नहीं मिलता, वह भी प्रसाद है क्योंकि जरूरत हो सकती है इस समय, यही जरूरत हो सकती है तुम्हारी कि तुम्हें न मिले।

एक सूफी फकीर रोज संध्या परमात्मा को धन्यवाद देता था कि हे प्रभु! तेरी कृपा का कोई पारावार नहीं, तेरी अनुकम्पा अपार है! मेरी जो भी जरूरत होती है तू सदा पूरी कर देता है। उसके शिष्यों को यह बात कई बार जंचती नहीं थी क्योंकि कई बार जरूरतें दिन-भर पूरी नहीं होती थीं और फिर भी धन्यवाद वह यही देता था। मगर एक बार तो बात बहुत बढ़ गयी, शिष्यों से रहा न गया। वे हज-यात्रा को गये थे गुरु के साथ। तीन दिन तक रास्तों में ऐसे गांव मिले जिन्होंने न तो उन्हें भीतर घुसने दिया, न ठहरने दिया।

सूफी फकीरों को मुसलमान बर्दाश्त नहीं करते, असल में सच्चे फकीर कहीं भी बर्दाश्त नहीं किये जाते। क्योंकि सच्चे फकीरों की सच्चाई लोगों को काटती है। उनकी सच्चाई से लोगों के झूठ नंगे हो जाते हैं। उनकी सच्चाई से लोगों के मुखौटे गिर जाते हैं। तो तीन गांव, तीन दिन तक रास्ते में पड़े, उन्होंने ठहरने नहीं दिया, रात रुकने नहीं दिया। भोजन-पानी तो दूर गांव के भीतर प्रवेश भी नहीं दिया। और रेगिस्तान की यात्रा, तीन दिन न भोजन मिला, न पानी, हालत बड़ी खराब। और रोज संध्या वह धन्यवाद जारी रहा।

तीसरे दिन शिष्यों ने कहा कि अब बहुत हो गया। जैसे ही फकीर ने कहा: 'हे प्रभु! तेरी कृपा अपार है, तेरी अनुकम्पा महान है; तू मेरी जरूरतें हमेशा पूरी कर देता है।' तो शिष्यों ने कहा: 'अब जरा जरूरत से ज्यादा बात हो गयी। हम दो दिन से तो बर्दाश्त कर रहे हैं लेकिन अब हम बर्दाश्त नहीं कर सकते। न पानी, न रोटी, न सोने को जगह--क्या खाक धन्यवाद दे रहे हो! कौन-सी जरूरत पूरी की? हमने तो नहीं देखी, कोई जरूरत पूरी हुई हो।'

उस फकीर ने आंखें खोलीं, उसकी आंखों से आनन्द के अश्रु बह रहे हैं, वह हंसने लगा। उसने कहा: तुम समझे नहीं। तीन दिन हमारी यही जरूरत थी कि न हमको भोजन मिले, न पानी मिले, न ठहरने को स्थान मिले। क्योंकि वह जो करता है, वह निश्चित ही हमारी जरूरत होगी, कसौटी ले रहा है, परीक्षा ले रहा है। धन्यवाद में कमी नहीं पड़ सकती। उस फकीर ने कहा: वह धन्यवाद क्या--जिस दिन रोटी मिली उस दिन धन्यवाद दिया और जिस दिन नहीं मिली रोटी उस दिन धन्यवाद न दिया--वह धन्यवाद क्या? जिसके हाथों से हमने प्यारे फल

खाये, उसके हाथों से कड़वे फल भी स्वीकार होने चाहिये। अगर कड़वे फल दे रहा है तो जरूर कुछ इरादा होगा।

जो व्यक्ति परमात्मा पर सारे फल छोड़ देता है उसके जीवन में चिंता नहीं हो सकती। यह सूफी फकीर कभी पागल नहीं हो सकता। असंभव, इसे कैसे पागल करोगे? यह चिंतित नहीं हो सकता, इसे कैसे चिंतित करोगे? इसे कोई स्थिति उद्विग्न नहीं कर सकती, इसे तुम कैसे उद्विग्न करोगे? इसके भीतर तो सदा ही गहन शांति बनी रहेगी, अखंड ज्योति जलती रहेगी। लेकिन उपक्रम जारी है। दूसरे दिन सुबह फिर दूसरे द्वार पर गांव के दस्तक दी... उपक्रम जारी है--फिर शरण मांगी जाएगी, फिर भोजन मांगा जाएगा, फिर पानी मांगा जाएगा। उपक्रम जारी है। क्रम जारी रहे, श्रम जारी रहे और फलाकांक्षा परमात्मा के हाथ में हो; तो तुम्हारे जीवन में अद्‌भुत समन्वय पैदा हो जाता है।

यदि धर्म निज निभते चलें,
यदि कर्म निज निभते चलें,
यदि मर्म निज निभते चलें,
फल के लिये फिर भाग्य पर, संतोष बहुत बुरा नहीं!
यह दोष बहुत बुरा नहीं!

मिटता मिटाता जो बढ़े,
जग से लड़े, मन से लड़े,
आदर्श पर दृढ़ हो अड़े,
सच पर पतिंगे सा जले, मदहोश बहुत बुरा नहीं!
यह दोष बहुत बुरा नहीं!

अगर तुम सत्य के लिए पतंगे की तरह भी जल जाओ तो यह मदहोशी भी बुरी नहीं, यह बेहोशी भी बुरी नहीं, यह पागलपन भी बुरा नहीं। अगर तुम पतंगे की तरह दीवाने हो जाओ और सत्य की ज्योति पर अपने को न्यौछावर कर दो तो यह न्यौछावर हो जाना भी बुरा नहीं, यह सौदा भी बुरा नहीं। परिस्थिति और उस परिस्थिति में जागरूकता पूर्वक व्यवहार, फिर सब ठीक है। और यह तय करके कभी न चलना कि क्या ठीक है और क्या गलत है। अगर तुमने पहले से ही तय कर लिया तो तुम कभी भी परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार न कर सकोगे। और जब भी तुम परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार न करोगे, तभी तुम्हारी जिन्दगी में विकास अवरुद्ध हो जाएगा। और यही हो रहा है। लोगों के पास बंधे-बंधाये, रेडीमेड उत्तर हैं। जिंदगी रोज नयी है और उनके उत्तर पुराने हैं। इसलिए न उनके उत्तरों से जिंदगी का मेल होता, न जिंदगी से उनके उत्तरों का मेल होता। वे हमेशा

ट्रेन चूकते ही चले जाते--वे जब तक भागे-भागे पहुंचते हैं प्लेटफार्म पर, ट्रेन छूट जाती है। उन्हें जिंदगी में कभी कुछ नहीं मिलता। मिल ही नहीं सकता।

झेन कहानी है। दो मंदिर एक गांव में। दोनों मंदिरों में विरोध है जैसा कि मंदिरों में आमतौर से होता है। झगड़ा है पुराना। झगड़ा ऐसा है कि दोनों मंदिरों के पंडित-पुरोहित एक-दूसरे से बोलते भी नहीं; बोलना तो दूर एक-दूसरे की छाया से भी दूर रहते हैं। रास्ते पर एक-दूसरे को काटते भी नहीं, बचकर खड़े हो जाते हैं। दोनों पुरोहितों के पास दो छोटे-छोटे लड़के हैं जो उनका छोटा-मोटा काम करते हैं—बाजार से सब्जी ले आना, कि कुएं से पानी ले आना, कि बुहारी लगा देना। बच्चे तो आखिर बच्चे हैं, अभी इतने बूढ़े नहीं हुए हैं कि झगड़े-झांसे में पड़ें। कभी-कभी रास्ते पर मिल जाते हैं तो गपशप भी हो जाती है। लेकिन उनके पुरोहितों को यह पसंद नहीं। तो पहले मंदिर के पुरोहित ने अपने बच्चे को कहा कि देख, ख्याल रख, अगर दूसरे मंदिर का बच्चा रास्ते पर मिले तो आंख बचाकर निकल आना, मुंह मोड़ लेना। उनसे हमारी पुश्तैनी दुश्मनी है, सदियों से दुश्मनी चल रही है।

दूसरे ने भी कह दिया था कि दूसरे मंदिर के बच्चे से बातचीत मत करना। लेकिन बच्चे आखिर बच्चे हैं! एक सुबह दोनों रास्ते पर मिल गये। पहले मंदिर के बच्चे ने दूसरे मंदिर के बच्चे से पूछा : कहां जा रहे हो?

ज्ञान की बातें सुनता था, मंदिर में बड़ी-बड़ी बातें होती थीं, बड़ी ऊंची। उसने कहा : कहां जा रहा हूं! जहां हवाएं ले जाएं; आदमी के वश में क्या है? सुनी होगी ज्ञान की चर्चा कोई, याद आ गयी कि आदमी के वश में क्या है, जहां हवाएं ले जाएं। अरे, आदमी तो सूखा पत्ता है, जहां हवाएं ले जाएं।

पहला बच्चा तो सकते में आ गया। उसने यह आशा नहीं की थी कि इतने ऊंचे ज्ञान की बात कही जाएगी। उसकी कुछ समझ में ही नहीं आया कि अब क्या कहे। सोचा कि मैंने भी कहां सवाल पूछ लिया। मेरे गुरु ने ठीक ही कहा था कि उस बच्चे से बात मत करना। ये हैं दुष्ट, ये हैं ही बुरे आदमी। बोलो मैं पूछ रहा हूं कहां जा रहे हो, और यह दर्शन झाड़ रहा है!

लौटकर उसने अपने गुरु को कहा कि क्षमा करना, आपने मना किया फिर भी मैंने भूल की और उससे पूछ लिया। मगर उसको जवाब देकर ठीक करना जरूरी है। विवाद में मैं हार जाऊं यह ठीक भी नहीं, मंदिर की प्रतिष्ठा का सवाल है। मैंने तो सीधा-सा सवाल पूछा था—कहां जा रहे हो? वह एकदम दर्शनशास्त्र झाड़ने लगा। वह कहने लगा कि आदमी तो सूखा पत्ता है, हवाएं जहां ले जाएं। मेरी कुछ समझ में न आया कि मैं क्या उत्तर दूं।

उसके गुरु ने कहा : कल फिर उसी जगह जाकर खड़े हो जाना। फिर उससे

पूछना कि कहां जा रहे हो और जब वह कहे कि सूखा पत्ता है मनुष्य, हवाएं जहां ले जाएं। तो कहना, और अगर हवाएं बंद हों, अभी न चल रही हों फिर क्या होगा? बस उसकी जबान बंद हो जाएगी।

तैयार होकर बिलकुल याद करके, कई बार दोहराकर कि अगर हवाएं न चल रही हों फिर बच्चू, फिर क्या करोगे? फिर सूखा पत्ता क्या करेगा? फिर कह जाओगे? जाकर खड़ा हो गया झाड़ के नीचे, दोहराता रहा, दोहराता रहा जब तक दूसरा न आ जाए। पास आता दिखा तो उसने फिर दोहराकर अपने को ताजा कर लिया। जैसा कि पंडित आमतौर से करते हैं। बच्चा पास आया, उसने अकड़ से पूछा कि कहां जा रहे हो?

उस बच्चे ने कहा : जहां पैर ले जाएं। अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी। अब यह उत्तर देना कि अगर हवाएं न चल रही हों फिर क्या करोगे? अब बिलकुल बेकार हो गया। उसने कहा : ये तो बेईमान पक्के हैं, ये मंदिर के लोग सच में बेईमान हैं। इतने जल्दी बदल गया! कोई निष्ठा होनी चाहिए, कोई श्रद्धा, कोई आस्था। अरे जब एक दफा कह दिया तो कह दिया, फिर उस पर दृढ़ रहना चाहिए।

लौटकर अपने गुरु से कहा कि आप ठीक कहते हैं, उस मंदिर के लोगों से बात करना ठीक नहीं लेकिन एक दफा तो जवाब उसे देना जरूरी है। आज वह तो बदल ही गया। वह कहने लगा जहां पैर ले जाएं।

गुरु ने कहा कि तू उससे कहना कल खड़े होकर कि कई लोग लंगड़े भी होते हैं। और भगवान न करे कि कभी तू लंगड़ा हो जाए। अगर लंगड़ा हो गया फिर क्या करेगा? अगर पैर न चले फिर कहां जाएगा?

लड़के ने कहा : हां, यह बात ठीक। मुझे वक्त पर सूझी नहीं। फिर तैयार होकर खड़ा हो गया। फिर पूछा : कहां जा रहे हो?

उस लड़के ने कहा : बाजार सब्जी लेने जा रहा हूं।

बंधे-बंधाये उत्तर काम नहीं आते; जिंदगी रोज बदल जाती है। और तुम सब बंधे-बंधाये उत्तर लिए बैठे हो। तुम्हारे उत्तर इतने ज्यादा जड़ हो गये हैं कि तुम देखते ही नहीं कि जीवन रोज बदला जा रहा है और तुम अपने बंधे-बंधाये उत्तर दोहराये जा रहे हो। तुमसे कुछ जिन्दगी पूछ रही है, तुम कुछ उत्तर दे रहे हो।

नहीं, कोई चीज न तो सही है सदा, न कोई चीज गलत है सदा। महावीर ने इसे स्याद्वाद कहा था, और अल्बर्ट आइंस्टीन से इसे सापेक्षवाद कहा है। महावीर ने ध्यान से स्याद्वाद को उपलब्ध किया था और अल्बर्ट आइंस्टीन ने वैज्ञानिक प्रयोगों से सापेक्षवाद को उपलब्ध किया है। लेकिन यह मनुष्यजाति की बड़ी संपदा है। कोई चीज तय नहीं है। हर परिस्थिति में संदर्भ, अर्थ बदल जाते हैं। हर संदर्भ में नयी चुनौती होती है और तुम्हें तैयार होना चाहिए। तुम्हें दर्पण की

भांति होना चाहिए, कैमरे के भीतर भरी हुई फिल्म की तरह नहीं, कि एक बार रोशनी पड़ गयी, एक चित्र पकड़ लिया, बात खतम हो गयी। यह बुद्धू, मूढ़ आदमी का लक्षण है, उसकी खोपड़ी फिल्म की तरह काम करती है--जो पकड़ लिया सो पकड़ लिया, फिर जिन्दगी बदलती जाती है, मगर तस्वीर पकड़ी रहती है। बुद्धिमान व्यक्ति दर्पण की भांति होता है--कुछ पकड़ता नहीं, किसी से जकड़ता नहीं, कोई जंजीरें पैर में नहीं डालता, कोई फांसी गले में नहीं लगाता। दर्पण की तरह खाली—जो सामने आ जाए उसको प्रतिबिंबित कर देता है और जो विदा हो गया उसको विदा कर देता है, फिर खाली हो जाता है।

दर्पण की ताजगी चाहिए। उस ताजगी को ही मैं ध्यान कहता हूं, उस ताजगी की परिपूर्णता का नाम समाधि है। न तो भाग्य, न कर्म इत्यादि की बातों में पड़ो, जालों में पड़ो, एक बात साधो--दर्पण बनो, ध्यान बनो, समाधि बनो। फिर समाधि तुम्हें बताएगी कि क्या ठीक है और क्या गलत है। और तब तुम चकित होओगे, बहुत-बहुत चकित होओगे कि जो कल ठीक था, आज ठीक नहीं; जो आज ठीक नहीं है कल ठीक हो जाए। क्षण-भर पहले जो बात बिलकुल ठीक थी, क्षण-भर बाद ठीक न हो।

प्रतिपल जगत प्रवाहमान है; तुम्हारी चैतन्य की धारा भी प्रवाहमान होनी चाहिए, तब तुम्हारे और जगत के बीच एक तालमेल होगा। उस तालमेल में ही जो रस बहता है, उसे आनंद कहते हैं। जब तुम जगत के साथ तालमेल में नहीं होते तब जो विरस अवस्था पैदा हो जाती है, वही दुख है। और जब तालमेल में होते हो तो जो सरस अवस्था पैदा हो जाती है, उसी का नाम रस, आनंद, रसौ वै सः, सच्चिदानंद। जब तुम जगत के साथ पूर्ण तालमेल में होते हो तो मुक्ति, निर्वाण। सिद्धांतों की चिंता न करो, सिद्धावस्था की चिंता करो। सिद्धांतों में जो उलझा, सिद्ध नहीं हो पाता; और जो सिद्ध हो गया, उसे सिद्धांतों से क्या लेना-देना है!

तीसरा प्रश्न : भगवान ! जब भी यहां आती हूं, संन्यास के वस्त्र पहनकर आने का भाव होता है। कोशिश करती हूं लेकिन कोशिश निष्फल जाती है; घर के लोग राजी नहीं होते। इस बार भी घर में समझाया, तड़पी, किसी ने न सुना तो यहां चली आयी।

मैं जानती हूं, मैं निर्बल हूं, मुझमें साहस की कमी है। मगर हमेशा आपके पास आने की अभीप्सा दिल में रहती है। संन्यास तो ले लिया लेकिन संन्यास के वस्त्र परिवार के कारण नहीं पहन पाती हूं। मेरा पूरा संन्यास कब होगा? किससे जानूं—जो कर रही हूं, वह ठीक है या नहीं? क्या मैं आपको चूक जाऊंगी? कृपया

कुछ बताएं।

अगर मैं कुछ छिपाती हूं तो वह भी बताइये तो मैं अपने को जान सकूं।

* दुलारी! वस्त्रों की चिंता न करो, भाव की बात है। यदि घर के लोग राजी नहीं हैं, अगर घर के लोग समझदार नहीं हैं, अगर घर के लोग जिद्दी हैं, अगर घर के लोग किसी खास धारणा में बंधे हैं, तो सिर्फ वस्त्रों के कारण उन्हें भी दुख न दो, स्वयं भी दुख न लो। वस्त्रों का उपयोग है निश्चित, मगर इतना नहीं। और फिर मैं तेरे हृदय को जानता हूं। तेरा हृदय रंगा है इसलिए वस्त्र न भी रंगे तो चलेगा। तेरा हृदय गैरिक है, इसका प्रमाणपत्र मैं तुझे देता हूं, तू फिक्र छोड़।

घर के लोगों को नाहक कष्ट मत दो। उनकी भी क्या गलती--न मुझे सुनते हैं, न मुझे समझते हैं। न उसका साहस है यहां आने का। डरते होंगे समाज से और भयभीत होते होंगे कि तू अगर संन्यासिनी की तरह घूमे-फिरे तो लोग उनसे पूछते होंगे, लोग उनको परेशान करते होंगे। उनकी भी तकलीफ समझ। व्यर्थ तड़पने से भी कुछ सार नहीं है। रोने-धोने का भी कोई प्रयोजन नहीं है। तू जैसी है, भली है। ध्यान में डूब, वही संन्यास है। वस्त्र भी एक-न-एक दिन रंग जाएंगे। घबड़ा मत, वह घड़ी भी जल्दी आ जाएगी।

और ऐसा भी मत सोच कि तू निर्बल है। निर्बल होती तो तेरे घर के लोगों ने तुझे कभी का मुझसे तोड़ लिया होता, नहीं तोड़ पाये, वर्षों से उनकी कोशिश चल रही है तोड़ने की। अगर कपड़े नहीं पहनने देते हैं तो इससे कुछ तोड़ना थोड़े ही हो जाएगा। सच तो यह है कि जितने उन्होंने कपड़े पहनने में तुझे बाधा दी है, उतनी ही तू ज्यादा मुझसे जुड़ गयी है। जितना उन्होंने चाहा है कि बीच में दीवार खड़ी हो जाए, उतने ही तू करीब आ गयी है, उतना ही तेरा प्रेम और प्रगाढ़ हुआ है। तेरी जो जरूरत है, वही तेरे घर के लोग कर रहे हैं, घबड़ा मत--तेरे प्रेम को बढ़ा रहे हैं, तेरी प्रार्थना को बढ़ा रहे हैं, तेरी अभीप्सा को बढ़ा रहे हैं।

निर्बल तू नहीं है, साहस की भी तुझमें कमी नहीं है। यह भी मैं जानता हूं कि जिस दिन तुझे कह दूंगा, तू घर-द्वार सब छोड़कर चली आएगी, इसीलिए तुझसे कह भी नहीं रहा हूं। चूंकि मुझे पक्का भरोसा है कि मैंने कहा, फिर तू एक क्षण न रुक सकेगी, फिर कोई शक्ति तुझे न रोक सकेगी। और मैं नहीं चाहता कि तेरे परिवार में कष्ट हो। मैं किसी के परिवार में कष्ट नहीं चाहता—तेरे बच्चे मुसीबत में पड़ें, कि तेरे पति, कि तेरे परिवार के और लोग...।

मेरा संन्यास किसी के भी परिवार में दुख के बीज बोये, यह मैं न चाहूंगा। मेरा संन्यास तुम्हारे जीवन में तो आनंद लाये ही लाये; तुम्हारे पास जो हैं, तुम्हारे प्रियजन जो हैं, उनके जीवन में भी आनंद की सुवास लाये। तू ध्यान में लग। तू

चिंता छोड़। शेष जब जरूरत होगी मैं कर लूंगा। जिस दिन मुझे ऐसा लगेगा कि अब तुझे छोड़ ही देना चाहिए, उस दिन तुझे कह दूंगा। अभी छोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। अभी तेरे रहने से तेरे घर के लोग भी कम-से-कम मेरी याद तो करते हैं। चलो मुझे गाली ही देने के लिए सही, मगर इस बहाने भी याद आ जाती है, इस बहाने भी मेरी चिंता, मेरा विचार करते हैं। इस बहाने ही सही, कौन जाने, वे भी आज नहीं कल करीब आ जाएं।

और उन्हें करीब लाने का सबसे सुगम उपाय एक होगा कि तू न तो रो, न तू तड़प; तू आनंदित हो, नाच, तू गीत गा, तू सितार बजा, तू भजन कर, तू मस्त हो, तू मीरा बन। घर के लोगों को तेरी मस्ती बदलेगी। तू तड़पेगी और रोयेगी, तू दीन-हीन होकर उनसे भीख मांगेगी कि मुझे कपड़े बदल लेने दो, कि मुझे ऐसा करने दो, मुझे वैसा करने दो--तू उन्हें ताकत दे रही है, तू उन्हें शक्तिशाली बना रही है। तू जितना गिड़गिड़ाएगी उतना ही वे तुझे सताएंगे। तू फिक्र छोड़ उनकी। इतनी ताकत नाचने में लगा, गाने में लगा। तेरा नाच और तेरा गीत उन्हें जीतेगा।

इस दुनिया को अगर जीतना हो तो गाकर जीतना चाहिए, नाचकर जीतना चाहिए--रोकर नहीं। तेरी मस्ती ऐसी हो जाए कि उन्हें मानना ही पड़े कि तेरे जीवन में कुछ हुआ है, जो उनके जीवन में नहीं हुआ। तेरी मस्ती ऐसी हो जाए कि एक दिन उन्हें कहना ही पड़े कि हमें क्षमा कर दो। तेरी मस्ती से ही वे झुकेंगे।

और जल्दी ही मैं तुझे अलग न करूंगा। जब तक मैं उनको भी न खींच लूं तब तक अकेला तुझे क्या खींचना। तू तो खिंची ही है। तू तो मेरे साथ जुड़ी ही है। लेकिन उनको भी ले आना है--तेरे बच्चों को भी ले आना है, तेरे पति को भी ले आना है। मगर लाने का एक ही उपाय है कि तेरे पति को तेरे आनंद से ईर्ष्या होने लगे। वही सबूत होगा कि मैं जो कह रहा हूं, वह ठीक है। इसके अतिरिक्त और क्या प्रमाण हो सकता है ठीक का? सत्य के लिए कोई तर्क नहीं दिये जाते, सत्य के लिए कोई तर्क से सिद्ध नहीं कर सकता लेकिन नृत्य से जरूर सिद्ध कर सकता है। तो न तो तू निर्बल है, न तुझमें साहस की कमी है; सिर्फ मैंने तुझे आज्ञा नहीं दी है।

तू कहती है: मगर हमेशा आपके पास आने की अभीप्सा दिल में रहती है। वही मूल्यवान बात है। मेरे पास आ पाये कि न आ पाये, उसका उतना मूल्य नहीं है--आने की अभीप्सा बनी रहती है, उसका मूल्य है। अनेक हैं जो आते हैं और फिर भी नहीं आ पाते। यहां आ जाने से ही क्या होगा? यहां आकर बैठ भी गये तो क्या होगा? उल्टे घड़े की तरह बैठे रहे तो वर्षा भी होती रहेगी और तुम भरोगे भी नहीं। कोई तो यहां ऐसे ही आ जाता है देखने, द्रष्टा की तरह, एक दर्शक की तरह, पर्यटक की तरह--उनका कोई मूल्य नहीं है, दो कौड़ी मूल्य नहीं है।

लेकिन तू अगर घर में ही है, दूर है और तेरे आने में हजार-हजार बाधाएं हैं मगर तेरे प्राण तड़पते हैं--उसी तड़पन का नाम प्रार्थना है, वही अभीप्सा तेरी प्रार्थना बनती जा रही है। तू सौभाग्यशाली है। मेरे हिसाब में तेरा कोई नुकसान नहीं हो रहा है। तेरे घर के लोग तुझे मेरे पास भेजने के लिए आधार बन रहे हैं, कारण बन रहे हैं। जिंदगी को जब ऐसे देखेगी तो इस देखने को ही मैं आस्तिकता कहता हूं। तब हम कांटों में भी फूलों को छिपा देखते हैं।

तू पूछती है: पूरा संन्यास कब होगा?

पागल, पूरा संन्यास हो चुका। कपड़े ही बदलने को बचे हैं, कपड़े बदलने में क्या दिक्कत है, वे तो कभी भी रंगे जा सकते हैं। असली कठिनाई तो हृदय को रंगने की होती है और वह तेरा रंगा हुआ है।

और तू पूछती है: किससे जानूं--जो कर रही हूं, वह ठीक है या नहीं?

तू वहीं से, अपने घर बैठे-बैठे मुझसे पूछ लिया कर। रहा आश्वासन कि मैं उत्तर दूंगा। नाचे, गाये, गुनगुनाये, शांत होकर बैठ गये, पूछ लिया। ऐसे मैं तुझसे कहे देता हूं कि तू जो कर रही है, ठीक कर रही है। तेरा विकास ठीक दिशा में चल रहा है। तेरी चेतना उठ रही है, जग रही है। तेरी अभीप्सा प्रबल हो रही है। तेरी प्रार्थना गहरी हो रही है।

और तूने पूछा दुलारी, क्या मैं आपको चूक जाऊंगी?

असंभव, कोई उपाय नहीं चूकने का। तू चाहे तो भी नहीं चूक सकती। मुझसे जो जुड़े हैं उनके चूकने का उपाय नहीं है। असली सवाल जुड़ना है और जुड़ना आंतरिक घटना है। बहुत हैं ऐसे जो संन्यास नहीं ले पाये मगर मुझसे जुड़े हैं। बहुत हैं ऐसे जो यहां नहीं आ पाते लेकिन मुझसे जुड़े हैं। बहुत हैं ऐसे जो शायद कभी यहां नहीं आ पाएंगे लेकिन मुझसे जुड़े हैं। वे चूकेंगे नहीं। जोड़ आंतरिक होते हैं, जोड़ों का संबंध स्थानों से नहीं होता, न समय से होता है; आत्मा के जोड़ समय और काल, स्थान और क्षेत्र सबके पार होते हैं।

और तूने पूछा कि अगर मैं कुछ छिपाती हूं तो वह भी बताइए तो मैं अपने-आप को जान सकूं।

नहीं, तू कुछ भी नहीं छिपा रही है। मेरे सामने तेरा हृदय खुली किताब है। तू निश्चिंत मन मगन होकर, मस्त होकर, मदमस्त होकर, जीती चल। जिस दिन मुझे लगेगा कि अब जरूरत है कि तुझे आज्ञा दे दूं कि सब छोड़-छाड़ दे, उस दिन आज्ञा दे दूंगा, उस दिन की प्रतीक्षा कर। और तू निर्बल नहीं है, तुझमें साहस की कमी नहीं है। तू कर पाएगी, तू पतंगे-सी दीपशिखा पर जल पाएगी, इतना मुझे भरोसा है।

चौथा प्रश्न : भगवान ! लगता है कि मैं आपके प्रेम में पड़ गया हूं और बड़ी उलझन में भी। आपकी बातें ठीक लगती हैं; सुनते ही आनंद-अश्रु बहने लगते हैं। लेकिन वे मेरे सारे संस्कारों के विपरीत हैं, इसलिए मैं उन्हें रोक लेता हूं। अब आपकी मानूं तो मुश्किल, न मानूं तो मुश्किल !

★ रहीम ! प्रेम में पड़ गये तो अब तुम्हारा कोई वश न चलेगा। प्रेम में पड़ जाने का अर्थ ही होता है : अवश हो जाना। प्रेम कोई कृत्य नहीं है कि तुम चाहो तो करो और चाहो तो न करो। प्रेम तो प्रसाद है जो ऊपर से उतरता है और तुम्हें अभिभूत कर लेता है और तुम्हारे हृदय को डुबा लेता है। यह तुम्हारे हाथ के बाहर की बात है, अब तुम कुछ कर न सकोगे। अब तो इस प्रेम में गहरे जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। हां, इतना ही कर सकते हो कि जोर से किनारे को पकड़ लो और वह जो प्रेम की धारा आ रही है, उसमें न बहो, तो व्यर्थ ही कष्ट पाओगे, दुख पाओगे, पीड़ा पाओगे। क्योंकि धारा का निमंत्रण आ गया; पुकार आ गयी; किनारे को छोड़ने का क्षण आ गया।

जिनको तुम अपने संस्कार कहते हो, उनका मूल्य ही क्या है ? कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई, कोई जैन---सब सीखे हुए हैं, सिखाये हुए हैं; सब दूसरों ने दिये हैं। और जो दूसरों से मिला है, वह सत्य नहीं होता। सत्य तो स्वयं के अनुभव से ही प्रगट होता है। सत्य स्वानुभव है। संस्कारों का क्या मूल्य ? राम तुम्हारा नाम हो तो हिन्दू संस्कार, रहीम हो तो मुसलमान संस्कार।

लेकिन संस्कार का अर्थ क्या होता है ? संस्कार का अर्थ होता है : दूसरों ने छाप डाली तुम पर; दूसरों ने ज्यादती की तुम पर; दूसरों ने सम्मोहित किया तुम्हें। तुम बालक थे, छोटे थे, कच्चे थे, कोमल थे—तुम पर किसी भी चीज की छाप डाल दी गयी। बचपन में ही तुम्हें उठाकर अगर हिन्दू घर में रख दिया गया होता, तो तुम रहीम न होते, राम होते। और तुम्हें कभी भूलकर याद भी न आती कि तुम जन्मे मुसलमान थे। क्योंकि खून मुसलमान नहीं होता और न हिन्दू होता है। हड्डी मुसलमान नहीं होती, न हिन्दू होती है।

तुम जब डॉक्टर के पास जाते हो और डॉक्टर कहता है कि तुम्हें टी. बी. की बीमारी है, तो तुम यह नहीं पूछते कि हिन्दू कि मुसलमान, कौन-सी टी. बी. ? टी. बी. बस टी. बी. है।

तुम जब पैदा होते हो तो सिर्फ मनुष्य की तरह पैदा होते हो और जल्दी ही तुम्हारे ऊपर जाल कस दिए जाते हैं। उन जालों को ही फिर जीवन-भर ढोते हो और बड़े गौरव से ढोते हो। क्योंकि तुम सोचते हो वे जाल नहीं हैं, शायद मोर-मुकुट; जाल नहीं हैं, शायद आभूषण ! कारागृह को अपने चारों तरफ ढोए फिरते हो और सोचते हो वह तुम्हारी स्वतंत्रता है, तुम्हारा धर्म है।

धर्म इतना सस्ता नहीं मिलता। धर्म मां-बाप से नहीं मिलता; न पंडित-मौलवियों से मिलता है, न वेद-कुरान से मिलता है---धर्म तो मिलता है भीतर डुबकी लगाने से। और अगर मेरा प्रेम कुछ भी करवा सकता है तो इतना ही कि तुम्हें भीतर डुबकी लगाने का साहस दे। मैं तुम्हें धक्का दूंगा तुम्हारे ही भीतर। मेरी और कोई शिक्षा नहीं है। मैं यहां कोई सिद्धांत नहीं सिखा रहा हूं। मैं यहां कोई बंधी हुई विचार की शृंखला तुम्हें नहीं दे रहा हूं। उल्टा ही काम है--- सारे विचार तुमसे छीन लेना हैं। तुम हिन्दू-विचार लाये तो हिन्दू-विचार छीन लेना है और तुम जैन-विचार लाये तो जैन-विचार छीन लेना है, क्योंकि विचार छीन लेना है। तुम्हें निर्विचार में छोड़ देना है। फिर निर्विचार में जो घटेगा, वही सत्य है। फिर निर्विचार में जिसके दर्शन होंगे, वही परमात्मा है। फिर निर्विचार में तुम जो अनुभव करोगे, वही आनंद, वही मोक्ष।

तुम कहते हो कि लगता है 'कि मैं आपके प्रेम में पड़ गया हूं।' लगता नहीं है रहीम, पड़ ही गये। अब अपने को समझाओ मत कि लगता है, अपने को सांत्वना मत दो। और तुम कहते हो : 'मैं बड़ी उलझन में भी हूं।' उलझन में तो होओगे ही क्योंकि प्रेम का अर्थ क्रांति होता है। प्रेम का अर्थ होता है : एक स्थान से दूसरे स्थान पर रूपान्तरण; एक तल से दूसरे तल पर रूपान्तरण; एक दिशा से दूसरी दिशा में यात्रा। जाते थे पूरब, अब जाना होगा पश्चिम। कल तक कुछ माना था, आज उससे बिलकुल भिन्न जानना होगा।

उलझन तो होगी बहुत। उलझन अच्छा लक्षण है। सिर्फ बुद्धुओं को उलझन नहीं होती, बुद्धिमानों को तो बहुत उलझन होती है। जो जितना सोचेगा, उतनी ही उलझन में पड़ता है। सिर्फ जड़बुद्धि कभी उलझन में नहीं पड़ते; उलझन का कोई सवाल ही नहीं। इतना सोच-विचार ही नहीं है। जो पकड़ा दिया है लोगों ने पकड़े रखते हैं। कभी उस पर विचार ही नहीं करते कि जो हाथ में है, वह मूल्य का भी है या नहीं; हीरा है या पत्थर ? आज तुम्हारे मन में विचार उठा है कि जो मैं हाथ में पकड़े हूं, वह हीरा है या पत्थर ? और मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वह यह कि तुम जो हाथ में पकड़े हो वह पत्थर है, हीरा नहीं है। लेकिन इतने दिन से पकड़े रहे हो, पकड़ने की आदत, छोड़ने में मन कंपता है। और अब दिखाई भी पड़ने लगा है कि पत्थर है, उलझन होगी।

उलझन हो गयी है, तो मेरा काम शुरू हो गया। उलझन हो गयी है, तो अब बच न सकोगे, अब भाग न सकोगे। अब जहां भी भाग जाओगे, उलझन पीछा करेगी। एक बार शक आ जाए कि जो हाथ में है वह पत्थर है, तो फिर तुम्हें असली हीरे को तलाशना ही होगा।

कहते हो : 'आपकी बातें ठीक लगती हैं।' इसीलिए तो उलझन पैदा हो रही

है क्योंकि अगर मेरी बातें ठीक लगती हैं तो तुमने जो अब तक बातें मान रखी थीं, उनका क्या होगा ? और उनके साथ तुमने बहुत से स्वार्थ बांध रखे थे, उनके साथ तुमने जिंदगी बितायी है, वे तुम्हारी आदतें बन गयी हैं। और ध्यान रखना, बुरी आदतें तो छूटती ही नहीं, अच्छी आदतें भी नहीं छूटतीं। आदत के साथ झंझट वही है, अच्छी हो कि बुरी हो। किसी को सिगरेट पीने की आदत है, नहीं छूटती; और किसी को माला जपने की आदत है, वह नहीं छूटती ! दोनों आदतें एक-सी हैं। हालांकि माला जपने वाला अपने को समझा सकता है कि यह तो अच्छी आदत है, नहीं छूटती तो कोई हर्ज नहीं।

मगर आदत गुलामी है। आदत कोई भी नहीं होनी चाहिए। आदमी बोध से जीना चाहिए, आदत से नहीं। फिर चाहे तुम धुएं को भीतर ले जाओ और बाहर निकालो; वह भी एक तरह की माला जपना है—धूम्रपान एक तरह का माला-जाप है। और उसको भी अगर तुम्हें धार्मिक बनाना हो तो जब धुआं भीतर ले जाओ तो कहना राम और जब धुआं बाहर ले जाओ तो कहना राम, राम, राम, राम, राम... मन्त्र बन जाएगा ! धूम्रपान में भी मन्त्र बनाया जा सकता है। आखिर योगी करते यही हैं। श्वास बाहर ले गये—मन्त्र का एक हिस्सा; श्वास भीतर ले गये—मन्त्र का दूसरा हिस्सा। तुम्हारी श्वास जरा धुआं भरी है कोई खास, ऐसा और तो कुछ बड़ा भारी पाप नहीं कर ले रहे हो।

मगर कोई आदमी धूम्रपान से नहीं छूटता; वह उसकी आदत है। और कोई आदमी माला जपने से नहीं छूटता। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं : हम तीस साल से माला जप रहे हैं। अब आपकी बात सुनते हैं तो बड़ी अड़चन होती है कि माला जपने से कुछ सार नहीं है, नियम, व्रत, उपवास कुछ सार नहीं, और हमें तीस साल हो गये करते। अब कैसे छोड़ें ? अब छोड़ने में डर लगता है, भय लगता है कि कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही है छोड़ने में ? तीस साल जो किया है। और फिर यह भी विचार उठता है मन में कि तीस साल जो किया, वह गलत था, तो मैं तीस साल मूढ़ रहा ! वह भी अहंकार को चोट लगती है।

मगर अगर मेरी बातें तुम्हें ठीक लगने लगीं, तो जितनी जल्दी छोड़ दो उतना अच्छा है, नहीं तो उतने ही पशोपेश में पड़ोगे। और कहते हो : 'सुनते ही आनंद-अश्रु बहने लगते हैं।' अच्छे लक्षण हैं। वसंत के लक्षण हैं।

जी बहुत चाहता है रोने को
है कोई बात आज होने को

अगर जी ऐसा चाहे आनंद से भरकर रोने को तो रोकना मत; कुछ बात होने को है, कुछ गहरी बात होने को है। और प्रेम में अगर आनंद के अश्रु न बहेंगे

तो फिर कहां बहेंगे ?

हम से पहले भी मुहब्बत का यही अन्जाम था
क़ैस भी नाशाद था, फ़रहाद भी नाकाम था

मुहब्बत बहुत अंधेरी रातें भी लाती है लेकिन अंधेरी रातों के बाद ही प्रकाशित सुबह का जन्म होता है। प्रेम में आंसू भी आएंगे और आंसुओं में ही छिपी मुस्कराहट भी आएगी। प्रेम उदासी भी लाएगा और उल्लास भी लाएगा। प्रेम बहुत-से रंग दिखाएगा। मगर अगर तुम आंसू ही रोक लिए... । तुम कहते हो : 'अश्रु तो बहने लगते हैं, लेकिन मेरे सारे संस्कारों के विपरीत हैं, इसलिए मैं उन्हें रोक लेता हूं।' अगर आंसुओं को तुम रोक लोगे तो तुम होने वाली क्रांति को रोक रहे हो; तुम होने वाले महान परिवर्तन को रोक रहे हो। और अब यह रोकने से रुकने वाली बात नहीं है। ये आंसू भीतर-भीतर तड़फेंगे, ये हृदय की धड़कनों में समा जाएंगे।

'जिगर' मैंने छुपाया लाख अपना दर्दे-ग़म लेकिन
ब्यां कर दीं मेरी सूरत ने सब कैफ़ियतें दिल की

और तुम्हारी सूरत बताने लगेगी, तुम्हारी आंखें बताने लगेंगी; तुम्हारा चलना, बैठना, उठना बताने लगेगा। प्रेम में जब कोई पड़ जाता है तो उसकी हर बात बताने लगती है कि प्रेम में पड़ गया।

कठिनाई तो निश्चित है रहीम। मुझे सहानुभूति है तुम्हारी कठिनाई से। मगर अब कोई उपाय नहीं है, देर हो गयी। अब बीमारी हाथ के बाहर है।

ऐ 'दाग़' क्या बताएं मुहब्बत में क्या हुआ।
बैठे बिठाए जान को आज़ार हो गया।।

बड़ी मुसीबत हो जाती है, बैठे-बिठाए झंझट हो जाती है। तुम आये होओगे यहां कि चार बातें चुन लोगे ज्ञान की और अपनी ज्ञान की संपदा को थोड़ा बढ़ा लोगे। तुम यह सोचकर न आये होओगे कि यहां उलझन हो जाएगी। तुम सोचकर आये होओगे कि सुलझाकर लौटेंगे। लेकिन ध्यान रखो, सुलझ सकते हो तभी जब उलझने की तैयारी हो। तुम्हारे पुराने समाधान तो सब अस्त-व्यस्त होंगे और तब बीच में एक घड़ी तो ऐसी आयेगी जब सब उलझ जायेगा। मगर उतना साहस हो, तो ही सुलझने की घड़ी भी आ सकती है।

जो पूछता है कोई, सुर्ख क्यों हैं आज आंखें ?
तो आंखें मल के मैं कहता हूं, रात सो न सका
हजार चाहूं मगर यह न कह सकूंगा कभी

कि रात रोने की ख्वाहिश थी और रो न सका

ऐसा न करो। आंसुओं को रोको मत, बह जाने दो; वे हल्का करेंगे। आसुओं को बह जाने दो, उनके साथ आंखों की बहुत धूल बह जाएगी। आंसुओं को बह जाने दो, उनकी बाढ़ में हृदय का बहुत-सा कचरा बह जायेगा। आंसुओं को बह जाने दो निःसंकोच। उन्हें सहयोग दो। उनके साथ ही तुम्हारा मुसलमान होना, हिन्दू होना, ईसाई होना, बह जाएगा। आंसू तुम्हें नहला देंगे। और मैं तुमसे कहूं, आंसुओं में नहा लेना असली गंगा में नहा लेना है। गंगा में नहाने वाले पवित्र नहीं होते लेकिन आंसुओं में नहाने वाले लोग जरूर पवित्र हो जाते हैं।

क्या बुरी चीज है मुहब्बत भी
बात करने में आंख भर आई

और प्रेम का रास्ता तो पतंगे का रास्ता है। अभी से घबड़ाओगे? अभी तो शुरुआत है--आगे-आगे देखिए, होता है क्या-क्या! अभी से घबड़ाओगे तो आगे क्या करोगे?

उलफत का नशा जब कोई मर जाए तो जाए।
ये दर्दे-सर ऐसा है कि सर जाए तो जाए॥

यह तो एक बड़ी दीवानगी है, मदहोशी है। उलफत का नशा जब कोई मर जाए तो जाए। यह नशा चढ़ता तो है, मगर फिर उतरता नहीं। मौत पहले आती है फिर नशा उतरता है। ये दर्दे-सर ऐसा है कि सर जाए तो जाए। अभी तुम आंसू रोक रहे हो। फिर सर कटाने की बात आयेगी तब क्या करोगे? अभी तो उलझन बौद्धिक है; अभी तो उलझन बढ़ेगी--हार्दिक होगी, आत्मिक होगी। फिर क्या करोगे?

और मैं तुम्हारी कठिनाई समझता हूं। कुछ मुसलमान मित्रों ने संन्यास लिया है, उनकी मुसीवतें बहुत बढ़ गयी हैं; लौटकर अपने गांव गये हैं तो बड़ी झंझट में पड़े हैं। मगर उतना ही लाभ भी है। जितनी झंझट, उतना लाभ। जितनी चुनौती, उतनी कसौटी। जितना लोग उनके लिए झंझटें खड़ी कर रहे हैं और जितना वे उन झंझटों का सामना कर रहे हैं, उतना ही उनके भीतर कुछ सघन होता जा रहा है, मजबूत होता जा रहा है; आत्मा का जन्म हो रहा है।

खमोशी से मुसीबत और भी संगीन होती है।
तड़प ऐ दिल, तड़पने से जरा तिस्कीन होती है।

तो पियो मत आंसू, रोको मत आंसू। डरो मत। यह तो दीवानों की महफिल है। यह तो पियक्कड़ों का स्थान है। यहां तुम रोओगे, तो कोई ऐसा नहीं

सोचेगा कि तुम कुछ गलत कर रहे हो। यहां तुम रोओगे तो लोग समझेंगे। कोई तुम्हारे प्रति ऐसा नहीं समझेगा कि तुम कोई पागल हो; रो क्यों रहे हो? यहां तो सभी रोये हैं--कोई आज, कोई कल, कोई परसों; कोई रो चुका है, कोई रोयेगा, कोई रो रहा है।

और फिर रोओगे तो राहत, हल्कापन आ जाएगा। और उस हल्केपन में समझ की संभावना है। उस हल्केपन में पंख लग जाते हैं। उस हल्केपन में तुम उड़ सकोगे आकाश की तरफ, चांद-तारों की तरफ।

इतना मैं तुमसे जरूर कह दूं कि मेरी बात अगर ठीक से समझी, तो तुम मुहम्मद के उतने करीब हो जाओगे, जितने तुम कभी भी न थे। और कुरान तुम्हें पहली दफा समझ में आएगी, जैसी कि तुम्हें कभी समझ में न आयी थी। और यही गीता के संबंध में सही है, यही बाइबिल के संबंध में सही है।

मेरा संदेश किसी एक शास्त्र में आबद्ध नहीं है और किसी एक संप्रदाय में सीमित नहीं है। मेरा संदेश किसी फूल कि भांति नहीं है; हजारों फूल का निचोड़ है, इत्र है।

पांचवां प्रश्न : भगवान! क्या साधारणजन कभी आपको समझ पाएंगे?

★ नरोत्तम! कोई साधारण नहीं है, सभी असाधारण हैं। साधारण बने बैठे हैं, यह बात और। क्योंकि सभी के भीतर परमात्मा है, साधारण कोई हो कैसे सकता है! सभी के भीतर परमात्मा है, सोया हो भला, मगर सोया परमात्मा भी साधारण तो नहीं होता, रहेगा तो असाधारण ही। प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है।

नहीं, ऐसे शब्दों का उपयोग न करो। साधारणजन कहने में अवमानना है, अपमान है। कोई साधारण नहीं है, सभी असाधारण हैं। सभी के भीतर एक ही परमात्मा विराजमान है--जैसा मेरे भीतर, वैसा तुम्हारे भीतर, वैसा औरों के भीतर। और मनुष्यों में ही नहीं--पशु-पक्षियों में, पौधों में, वृक्षों में, पत्थरों में--सबमें वही विराजमान है।

यह भाव छोड़ दो। कोई साधारणजन नहीं है। हां, मुझे समझने में कठिनाइयां हैं। कठिनाई का कारण यह नहीं है कि लोग साधारण हैं, कठिनाई का कारण यह है कि लोग सोये हैं। कठिनाई का कारण यह है कि लोगों ने पहले से ही बहुत-सी बातें समझ रखी हैं, बिना समझे समझ रखी हैं। उनकी अंतसचेतना तो परमात्मा से भरी है, लेकिन अंतसचेतना के चारों तरफ समाज के द्वारा दिये गये संस्कारों का बड़ा गहन जाल है--चीन की दीवल है! मुझे सुनते हैं, मैं कुछ कहता हूं, वे कुछ समझते हैं। क्योंकि मुझे सुन ही नहीं पाते। वह बीच की जो दीवाल है, वह ऐसी प्रतिध्वनियां पैदा करती है, वह ऐसी विकृतियां पैदा करती है कि मैं

कहता हूं अ, उन तक पहुंचते-पहुंचते ब हो जाता है।

पार्टी में आयी हुई एक औरत ने अपनी लंबाई छोटी होने के कारण सिर के बालों का जूड़ा बहुत ऊंचा बांध रखा था और पांव में भी ऊंची से ऊंची एड़ी की सैंडिल पहन रखी थीं। मुल्ला नसरुद्दीन ने उसे देखकर कहा : बहन जी, अपने कद के लिए तो आपने एड़ी-चोटी का जोर लगा रखा है!

'एड़ी-चोटी का जोर' इस कहावत का ऐसा कभी प्रयोग सुना था? मगर बड़ा सार्थक प्रयोग!

तलाक की अर्जी का फैसला हो रहा था कि जज ने पूछा : आपके तीन बच्चे हैं, इनका बंटवारा आसानी से होना संभव नहीं है। समझ में नहीं आता कि क्या करूं?

इस पर पत्नी ने पति को दरवाजे की ओर ढकेलते हुए कहा : चलो जी, अगले साल तलाक लेंगे।

लोगों की अपनी समझ है।

> कविवर के पुत्र ने कहा :
> पापा! हमें, निरीह और निर्दय के
> दो-दो पर्यायवाची
> बता दीजिए।
> कविवर ने कहा :
> लिख लीजिए,
> निरीह के
> पति और दास,
> और निर्दय के
> पत्नी और सास।

शब्द भी अपने-आप में तो कोई अर्थ रखते नहीं। मैं जब बोलूंगा एक शब्द तो मेरा अर्थ होता है उसमें; तुम तक पहुंचते-पहुंचते तुम्हारा अर्थ उसे मिल जाता है।

दो पड़ोसिनें गप-शप कर रही थीं। पहली ने कहा : क्यों, पप्पू की मम्मी, मुझे लगता है कि अपने हाथ से अपना खाना बनाने में काफी बचत होती है।

दूसरी ने तपाक से जवाब दिया : बेशक! क्योंकि पप्पू के पापा पहले जितना खाते थे, अब उसका आधा भी नहीं खाते।

यह स्वाभाविक है जब साधारण जीवन की बातें भी एक-दूसरे तक पहुंचानी कठिन हो जाती हैं, तो मैं तो जिन सत्यों की बात कर रहा हूं, वे बहुत पार-

लौकिक हैं।

'क्यों भाई साहब, सुना है आपका मकान किराये के लिए खाली है'--एक व्यक्ति ने मकान-मालिक से पूछा।

'जी हां, है तो, पर मकान फैमिली के साथ ही मिल सकता है आपको'--शर्त रखते हुए मकान-मालिक ने अपनी सहमति व्यक्त की।

'क्षमा कीजिए भाई साहब, मुझे तो केवल मकान ही किराये पर चाहिए, फैमिली तो मेरी अपनी ही है'--उसने अपनी विवशता रखी।

शब्दों के कारण बड़ी भ्रांतियां खड़ी होती हैं। और शब्दों के अतिरिक्त संवाद का कोई उपाय नहीं है और शब्द विवाद खड़ा करवा देते हैं, संवाद होने नहीं देते। जिनको तुम साधारणजन कहते हो, वे साधारण नहीं हैं; असाधारण ज्योति उनके भीतर है; जिस दिन जागेगी, उनके भीतर भी बुद्धत्व प्रगट होगा; हजार-हजार सूरज उगेंगे और हजार-हजार कमल खिलेंगे। मगर सोये हैं। और अगर तुम उन्हें हिलाओ भी तो भी वे इतनी नींद में हैं, कि तुम्हारे हिलाने का अर्थ नहीं समझ पाते। कोई बड़बड़ाएगा और गाली देगा कि कौन जगा रहा है? कौन वक्त खराब कर रहा है सुबह-सुबह? कोई करवट लेकर, कंबल खींच कर फिर सो जाएगा।

तुमने कभी देखा? तुम्हारा अनुभव भी होगा। सुबह जल्दी उठना है; पांच बजे की गाड़ी पकड़नी है तो चार बजे का तुमने अलार्म भर दिया। चार बजे घड़ी का अलार्म बजता है और तुम एक सपना देखते हो भीतर कि मंदिर की घंटियां बज रही हैं। मंदिर की घंटियां बज रही हैं, ऐसा तुम सपना देखकर घड़ी के अलार्म को झुठला देते हो। मजे से सो गये। मंदिर की घंटियों से कोई जगने का कारण है? बाहर अलार्म बज रहा है, तुमने भीतर अपनी नींद के कारण एक सपना पैदा कर लिया, एक नया अर्थ दे दिया घंटियों को कि मंदिर की घंटियां बज रही हैं। बस, छुटकारा हो गया अलार्म से।

मैं तुम्हें जगाने के लिए पुकार दे रहा हूं, लेकिन तुम्हारी नींद में पहुंचते-पहुंचते पुकार का क्या अर्थ होगा, यह तुम पर निर्भर है, तुम्हारी नींद पर निर्भर है। जो जागना चाहते हैं, वे ही केवल पुकार सुन पाएंगे। जो नहीं जागना चाहते, वे पुकार नहीं सुन पाएंगे। जिन्होंने तय ही कर रखा है कि सोना ही उनकी नियति है, जिन्होंने तय ही कर रखा है कि सोने के पार और कोई चैतन्य की अवस्था होती ही नहीं है, उनको तो मेरी बात कैसे समझ में आ सकती है? यद्यपि फिर भी मैं नहीं कहूंगा कि वे साधारणजन हैं, उनकी असाधारणता तो असाधारण ही रहेगी। और उनके भीतर के परमात्मा के प्रति मेरा सम्मान उतना का उतना रहेगा। कोई मेरी समझे या न समझे; कोई ठीक समझे कि गलत समझे; मगर प्रत्येक के भीतर बैठे हुए परमात्मा को मेरा समादर जरा भी क्षीण नहीं होने वाला है।

मैं किसी को भी साधारणजन नहीं कह सकता हूं। सभी असाधारण हैं। सभी उस प्रभु के मंदिर हैं। कोई आज जागा है, कोई कल जागेगा, कोई परसों जागेगा, कोई इस जन्म में, कोई अगले जन्म में। हर्ज भी क्या है, अनंत काल है। लोग जागते रहेंगे, जगाने वाले पुकारते रहेंगे, कोई-न-कोई सोते में से उठता रहेगा। जो उठ आया वह सौभाग्यशाली है; जितने जल्दी उठ आया, उतना ज्यादा सौभाग्यशाली है।

मगर जो सोया है, उसके प्रति किसी तरह का अपमान मन में न हो। इस तरह के अपमान के कारण अतीत में बहुत उपद्रव हुआ है। ईसाई समझते हैं कि जो ईसाई है वही स्वर्ग पहुंचेगा। इसलिए बनाओ लोगों को ईसाई; चाहे जबर्दस्ती बनाना पड़े तो जबर्दस्ती बनाओ। मुसलमान सोचते हैं कि जो मुसलमान है वही पहुंचेगा। तो चाहे तलवार के बल बनाना पड़े तो भी कोई फिक्र नहीं, दयावश तलवार के बल ही बनाओ, गर्दन पर रख दो तलवार कि होना पड़ेगा मुसलमान। तुम्हारे हित में ही है, नहीं तो तुम पहुंचोगे नहीं; भटक जाओगे; दोजख में पड़ोगे। और यही सारे धर्मों की धारणा है कि जो हमारी मानकर चलेगा वही पहुंचेगा, और जो हमारी नहीं मानता––अज्ञानी है, पापी है, शैतान का शिष्य है। ऐसी धारणा तुम अपने मन में मत लाना।

जो हमारी मानता है, वह भी परमात्मा है; जो हमारी नहीं मानता, वह भी परमात्मा है। जो साथ हो लिया है, वह भी परमात्मा है; जो विरोध में है, वह भी परमात्मा है। यह स्मरण एक क्षण को भी न भूले, तो ही तुम सच्चे संन्यासी हो तो ही तुमने मुझे समझा है।

आज इतना ही।
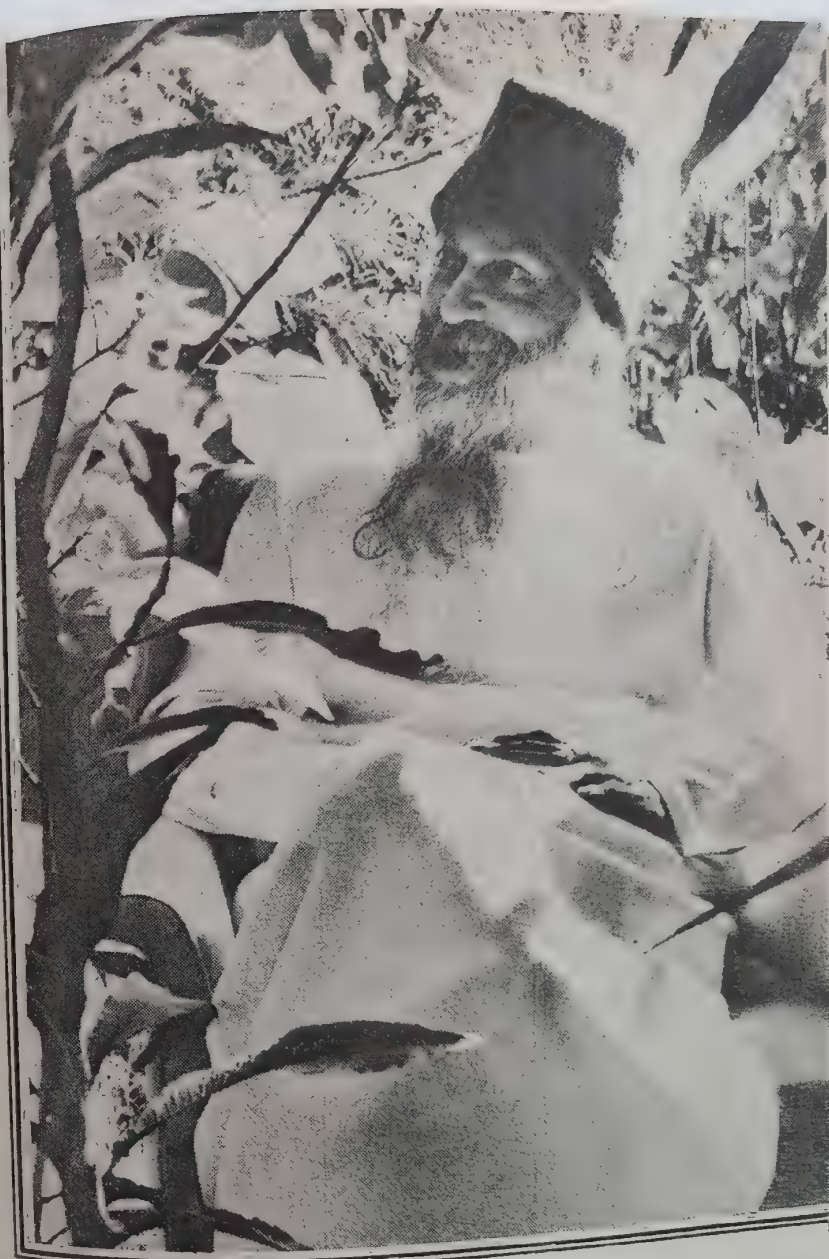
राम भजै सो धन्य

सातवां प्रवचन; दिनांक २७ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन ।।
सो जन परम प्रबीन, लोक अरु बेद बखानै ।।
सतसंगति में भाव-भक्ति परमानंद जानै ।।
सकल विषय को त्याग बहुरि परबेस न पावै ।।
केवल आपै आपु आपु में आपु छिपावै ।।
भीखा सब तें छोट होइ, रहै चरन-लवलीन ।।
रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन ।।

मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य ।।
राम भजै सो धन्य, धन्य वपु मंगलकारी ।।
रामचरन-अनुराग परमपद को अधिकारी ।।
काम क्रोध मद लोभ मोह की लहरि न आवै ।।
परमातम चैतन्यरूप महं दृष्टि समावै ।।
व्यापक पूरनब्रह्म है भीखा रहनि अनन्य ।।
मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य ।।

धनि सो भाग जो हरि भजै, ता सम तुलै न कोई ।।
ता सम तुलै न कोइ, होइ निज हरि को दासा ।
रहै चरन-लौलीन राम को सेवक खासा ।।
सेवक सेवकाई लहै भाव-भक्ति परवान ।
सेवा को फल जोग है भक्तबस्य भगवान ।।
केवल पूरन ब्रह्म हैं, भीखा एक न दोइ ।
धन्य सो भाग जो हरि भजै, ता सम तुलै न कोई ।।

गुरु-परताप साध की संगति !

सत्य को पाना एक उलटबांसी है, एक विरोधाभास है। सत्य को पाना तर्कातीत है, सारे गणित, सारे हिसाब-किताब से उल्टा है। और सबसे आधारभूत जो उलटबांसी है, वह यह——सत्य प्रयास से नहीं मिलता और बिना प्रयास भी नहीं मिलता। जो प्रयास करते ही नहीं, उन्हें तो मिलेगा ही नहीं और जो प्रयासमात्र ही करते हैं उन्हें भी नहीं मिलेगा।

साधारण तर्क का नियम ऐसा नहीं है। साधारण गणित की व्यवस्था ऐसी नहीं है। साधारण तर्क सोचता है, विचारता है——या तो प्रयास से मिलेगा या अप्रयास से मिलेगा। लेकिन सत्य एक उलटबांसी है——प्रयास से नहीं मिलता, बिना प्रयास से भी नहीं मिलता।

फिर सत्य कैसे मिलता है ? प्रयास तो चाहिए ही चाहिए——अथक प्रयास चाहिए; समग्र प्रयास चाहिए। लेकिन उतने से काम न होगा, प्रयास के साथ-साथ प्रार्थना भी चाहिए—— तब काम होगा, तब सोने में सुगंध आ जाएगी। प्रयास हो पूरा, तो तर्क कहेगा अब प्रार्थना की क्या जरूरत ? जब हम सौ प्रतिशत प्रयास कर रहे हैं, तो प्रयास का फल मिलना चाहिए। लेकिन प्रयास अकेला हो तो अहंकार से छुटकारा नहीं होता। प्रयास अकेला हो तो अहंकार और मजबूत होता है, अस्मिता और सघन होती है, कर्ता और भी जड़ जमा लेता है।

और जब तक अहंकार है, तब तक सत्य की उपलब्धि नहीं। जब तक अहंकार है, तब तक परमात्मा की प्रतीति नहीं। जब तक अहंकार है, तब तक स्वयं का साक्षात्कार नहीं। और प्रयास से अहंकार नहीं जाएगा, प्रयास से तो अहंकार और बढ़ेगा। कोई भी प्रयास करो——धन कमाओगे, तो धनी का अहंकार हो जाएगा

और त्याग करोगे, तो त्यागी का अहंकार हो जाएगा; ज्ञान अर्जित करोगे तो ज्ञानी का अहंकार और ध्यान में उतरोगे, तो ध्यानी का अहंकार।

कृत्य से अहंकार का छुटकारा नहीं है। अहंकार पीछा करेगा ही, तुम जो भी करोगे उसी में से निकल-निकल आएगा। नये-नये रूप लेगा, नयी अभिव्यक्तियां लेगा, नये-नये ढंग कि पहचान में भी न आये। तुम चेष्टा करके विनीत हो जाओगे तो तुम्हारी विनम्रता में अहंकार खड़ा होगा। तुम्हारे भीतर उद्घोषणा होने लगेगी--मुझसे विनम्र और कोई भी नहीं। देखो मुझसे विनम्र और कोई भी नहीं! तुम्हारी विनम्रता भी अहंकार का ही आभूषण बन कर रह जाएगी, उसकी ही दासी। इसलिए प्रयास पूरा हो तो भी उपलब्धि नहीं होगी।

अहंकार से कैसे छुटकारा होगा? अहंकार प्रार्थना में गलता है। जैसे सूरज के उगते ही बर्फ गलने लगती है; जैसे सूरज के उगते ही ओस की बूंदें उड़ने लगती हैं--ऐसे ही प्रार्थना के जगते ही अहंकार शून्य होने लगता है। प्रार्थना प्रसाद है। प्रयास तुम्हारा तुमसे ऊपर कैसे ले जाएगा? तुम्हारा प्रयास तुम्हें ही तुमसे ऊपर कैसे ले जाएगा? यह तो अपने ही जूतों के बंदों को पकड़कर अपने को उठाने की कोशिश होगी। नहीं, सहारा मांगना होगा। पार का सहारा मांगना होगा। परमात्मा को पुकारना होगा। उसका हाथ तलाशना होगा। वह उठाएगा तो उठना हो पाएगा। वह जगाएगा तो जगना हो पाएगा।

लेकिन उस तक पुकार उसकी ही पहुंचती है जिसने अपनी तरफ से जो भी किया जा सकता था कर लिया। काहिलों की, सुस्तों की, अकर्मण्यों की प्रार्थना उस तक नहीं पहुंचती। अकर्मण्य की प्रार्थना में प्राण नहीं होते। अकर्मण्य की प्रार्थना तो लाश है, उसमें से बदबू उठती है, सुगंध नहीं। आलसी की प्रार्थना का क्या अर्थ; सिर्फ आलस्य को छिपाने के लिए उपाय है। आलसी की प्रार्थना तो अपने आलस्य को ढांकने का ढंग है। प्रार्थना तो उसी की है जिसने अपने को पूरा दांव पर लगाया। प्रार्थना तो उसी की है जिसने जो भी किया जा सकता था किया, कुछ भी अनकिया न छोड़ा। वह प्रार्थना का अधिकारी है। उसकी प्रार्थना में प्राण होंगे, उसकी प्रार्थना में पंख होंगे, उसकी प्रार्थना उड़ेगी अनंत तक।

प्रार्थना का क्या अर्थ होता है? प्रार्थना का अर्थ होता है कि मैं जो कर सकता था कर चुका, अब असहाय हूं। मैं जो कर सकता था कर चुका, अब विवश हूं। अब तुम्हें पुकारता हूं, अब तुम कुछ करो। प्रार्थना का अर्थ है: मेरे किये से किनारे तक आ गया लेकिन तुम हाथ बढ़ाओ तो किनारे से उठूं। अन्यथा मझधार में ही लोग नहीं डूबते, किनारों पर भी लोग डूब जाते हैं। अक्सर किनारों पर डूब जाते हैं, मझधारों से तो बच जाते हैं, क्योंकि मझधारों में तो सावधान रहते हैं, सचेत रहते हैं, होश भरे रहते हैं। किनारे पर आते-आते बेहोश

हो जाते हैं, सोचते हैं: अब तो आ ही गये, अब तो आ ही गये, अब क्या चिन्ता? निश्चित होने लगते हैं। उसी निश्चिंतता में खतरा है। किनारे पर आते-आते भरोसा आने लगता है कि अब तो पहुंच ही गये, अब क्या पुकारना है!

मैंने सुना है एक नाव डूबी-डूबी हो रही थी। लोग घुटने टेक कर प्रार्थना कर रहे थे परमात्मा से। सिवाय उसके कोई उपाय सूझता नहीं था। तूफान जोर का था। आंधी भयंकर थी। लहरें आकाश छूने की चेष्टा कर रही थीं। नाव छोटी थी, डांवांडोल थी। पानी भीतर आ रहा था, उलीच रहे थे लेकिन कोई आशा न थी। किनारा बहुत दूर... किनारे का कोई पता न चलता था।

सारे लोग तो प्रार्थना कर रहे थे, लेकिन एक मुसलमान फकीर चुपचाप बैठा था। लोगों को उस पर बहुत नाराजगी आयी। लोगों ने कहा कि तुम फकीर हो, तुम्हें तो हमसे पहले प्रार्थना करनी चाहिए और तुम चुप बैठे हो! हम सबका जीवन संकट में है, तुम से इतना भी नहीं होता कि प्रार्थना करो। और हो सकता है हमारी प्रार्थना न पहुंचे क्योंकि हमने तो कभी प्रार्थना की ही नहीं पहले। तुम्हारी पहुंचे, तुम जिंदगी-भर प्रार्थना में डूबे रहे हो। और आज तुम्हें क्या हुआ है? रोज हम तुम्हें देखते थे प्रार्थना करते--सुबह, दोपहर, सांझ। मुसलमान फकीर पांच दफा नमाज पढ़ता था। आज तुम्हें क्या हुआ है? आज तुम क्यों किंकर्तव्यविमूढ़ मालूम होते हो?

लेकिन फकीर हंसता रहा। नहीं की प्रार्थना और तभी जोर से चिल्लाया कि रुको, क्योंकि लोग प्रार्थना कर रहे थे--कोई कह रहा था कि जाकर मैं हजार रुपये दान करूंगा; कोई कहता था कि मंदिर को दे दूंगा; कोई कहता था कि मस्जिद को दे दूंगा; कोई कहता था चर्च को दान कर दूंगा; कोई कह रहा था कि संन्यास ले लूंगा सब छोड़कर। बीच में फकीर एकदम से चिल्लाया कि सम्हलो, इस तरह की बातें न करो, किनारा दिखाई पड़ रहा है।

किनारा करीब आ गया था। तूफान की लहरें नाव को तेजी से किनारे की तरफ ले आयी थीं। बस सारी प्रार्थनाएं वहीं समाप्त हो गयीं। अधूरी प्रार्थनाओं में लोग उठ गये, अपना सामान बांधने लगे, भूल ही गये प्रार्थना और परमात्मा को। तब फकीर प्रार्थना करने बैठा। लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा: तुम भी एक पागल मालूम होते हो। अब क्या प्रार्थना कर रहे हो? अब तो किनारा करीब आ गया।

उस फकीर ने कहा कि मैंने सद्गुरुओं से सुना है नावें मझधार में नहीं डूबतीं, किनारों पर डूबती हैं। मैंने सद्गुरुओं से सुना है कि मझधार में तो लोग सचेष्ट होते हैं, सावधान होते हैं; किनारों पर आकर बेहोश हो जाते हैं। मैंने सद्गुरुओं से सुना है कि मझधार में तो लोग प्रार्थनाएं करते हैं, परमात्मा को पुकारते हैं; किनारा करीब देखते ही परमात्मा को भूल जाते हैं। फिर कौन फिक्र करता है!

जब किनारा ही करीब आ गया तो कौन परमात्मा की फिक्र करता है। चालबाज तो ऐसे हैं, बेईमान तो ऐसे हैं कि जिनका हिसाब नहीं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बहुत धन कमाकर लौटता था और नाव डूबने लगी। हालत ऐसी आ गयी, आखिरी हालत आ गयी--अब डूबी, तब डूबी... अब ज्यादा देर नहीं। जब तक भरोसा था तब तक उसने हिम्मत रखी। जब देखा कि अब डूबी ही तो उसने कहा कि सुनो, परमात्मा से कह रहा है, कि मेरी जो सात लाख की कोठी है वह दान कर दूंगा। उस कोठी से उसे बड़ा मोह था। वैसी कोठी नहीं थी दूर-दूर तक। दूर-दूर तक उसकी कोठी की ख्याति थी। बहुत बार लोगों ने दाम देने चाहे थे। सम्राटों ने कोठी मांगी थी, उसने नहीं दी थी। वही उसका एकमात्र लगाव था जिंदगी में। उसने कहा : कोठी भी दे दूंगा। अब जब जिंदगी ही खतरे में है तो तू कोठी ले लेना। दान कर दूंगा कोठी को गरीबों में। कोठी बेचकर बांट दूंगा सारा पैसा।

संयोग की बात नाव बच गयी। अब तुम मुल्ला का संकट समझ सकते हो। और लोगों ने भी सुन ली थी प्रार्थना। वे कहने लगे : मुल्ला, अब?

मुल्ला ने कहा : घबड़ाओ मत। जिस बुद्धि से प्रार्थना निकली है, उसी बुद्धि से कोई तरकीब भी निकलेगी। परमात्मा इतनी आसानी से मुझे लूट नहीं सकता। अब किनारा आ गया है, अब देख लेंगे।

और दूसरे दिन उसने जाकर गांव में डुंडी पिटवा दी कि कोठी नीलाम हो रही है। दूर-दूर से लोग खरीददार आये। बड़ी भीड़ लग गयी। राजे आये, महाराजे आये। उसकी कोठी वैसी थी। और सब चकित हुए, उसने कोठी के सामने ही संगमरमर के खंभे से एक बिल्ली बांध रखी थी।

लोगों ने पूछा : यह बिल्ली कैसी बांधी, किसलिए बांधी?

उसने कहा : ठहरो, पहले सुनो। बिल्ली के दाम सात लाख रुपया, कोठी का दाम एक रुपया। मगर दोनों साथ बिकेंगे।

लोगों ने कहा : पागल हो गये हो, बिल्ली के दाम सात लाख! आवारा बिल्ली, यहीं मुहल्ले की बिल्ली पकड़ ली है, तुम्हारी भी नहीं है, तुम्हारे बाप की भी नहीं है, इसी मुहल्ले में आवारा घूमती रही है--इसके दाम सात लाख और कोठी का दाम एक रुपया!

मुल्ला ने कहा : तुम इस चिंता में न पड़ो, ये दोनों साथ बिकेंगी।

लोगों ने कहा : हमें क्या प्रयोजन है! कोठी के दाम तो सात क्या अगर नौ भी मांगे तो हम देने को राजी हैं।

बिक गयी कोठी एक रुपये में और सात लाख में बिल्ली। सात लाख मुल्ला ने तिजोड़ी में रखे, एक रुपया गरीबों में बांट दिया।

वह जो मझधार में बच भी जाएगा किनारे पर आकर फिर बेईमान हो जाएगा। क्योंकि प्रार्थना उसका हिसाब थी, गणित थी। प्रार्थना उसका प्राण नहीं था! प्रार्थना सिर्फ बचाव का एक उपाय था; एक शस्त्र था, एक साधना नहीं थी; एक सुरक्षा थी, समर्पण नहीं थी।

तुम्हारा प्रयास हो सकता है तुम्हें किनारे तक ले आये, लेकिन किनारे के ऊपर कौन तुम्हें खींचेगा? वे हाथ तो सिर्फ प्रार्थना के द्वारा ही तुम तक आ सकते हैं। प्रार्थना सेतु है मनुष्य और परमात्मा के बीच। प्रार्थना ही मनुष्य को परमात्मा से जोड़ती है, प्रयास नहीं। और प्रार्थना क्यों जोड़ती है? क्योंकि प्रार्थनापूर्ण हृदय खुल जाता है। जैसे कमल खिलता है सुबह और सूरज की किरणें उसमें नाचती हुई उसके अंतस्तल तक चली जाती हैं, ऐसे ही प्रार्थना में प्राण खुलते हैं, प्राण का कमल खुलता है और परमात्मा नाचता हुआ प्रवेश कर जाता है। प्रार्थना में प्रसाद की वर्षा होती है।

मगर प्रार्थना कहां सीखोगे? प्रयास तो तुम जानते हो। यही प्रयास जो तुमने जिन्दगी में धन कमाने लिए किया है, यही प्रयास काम आ जाएगा। यही दौड़-धूप, यही चिंता-विचार, यही श्रम काम आ जाएगा। सिर्फ दिशा बदलेगी--जो धन की तरफ लगी थी चेष्टा, ध्यान की तरफ लग जाएगी; जो पद की तरफ लगा था प्रयत्न, वह परमात्मा की तरफ लग जाएगा; जो हठ संसार को जीतने के लिए था, वही आत्म-विजय के लिए संलग्न हो जाएगा।

तुम प्रयास तो जानते हो क्योंकि प्रयास का अभ्यास संसार में सभी कर रहे हैं। थोड़ा या ज्यादा, कम या ज्यादा, मात्रा के भेद होंगे लेकिन प्रयास से तो सभी परिचित हैं। प्रार्थना कहां सीखोगे? प्रार्थना तो संक्रामक होती है। प्रार्थना तो केवल उनके पास बैठकर ही हो सकती है जिन्होंने प्रार्थना जानी हो। प्रार्थना तो एक अपूर्व शब्दातीत तरंग है। मस्तों के पास बैठोगे तो मस्त हो जाओगे; उदास लोगों के पास बैठोगे तो उदास हो जाओगे; रोतों के पास बैठोगे तो रोने लगोगे। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कब तक अपने को बचाओगे?

प्रार्थना भी ऐसे ही सीखी जाती है--गुरु-परताप साध की संगति। गुरु का अर्थ है : जिसने पा लिया, जिसने अंधकार तोड़ दिया अपना, जिसके भीतर रोशनी उतर आयी है, जिसकी वीणा बज उठी। उसके पास बैठोगे तो उसकी बजती वीणा तुम्हारी सोयी वीणा के तारों को भी झंकृत करेगी। संगीतज्ञ कहते हैं कि अगर एक ही कक्ष में वीणावादक वीणा बजाये और दूसरी वीणा को कोने में रख दिया जाए तो वीणावादक जब अपनी वीणा को समग्रता से छेड़ेगा तो कोने में रखी वीणा के तार भी कंपने लगते हैं, उनसे भी स्वर उठने लगता है क्योंकि तरंगें पूरे कक्ष को भर देती हैं। और जब एक वीणा जग उठती है तो दूसरी वीणा भी कैसे सोयी रह

सकती है ?

सोये हुए आदमी को कोई दूसरा सोया हुआ आदमी नहीं जगा सकता या कि तुम सोचते हो जगा सकता है ? सोये हुए आदमी को कोई जागा हुआ ही जगा सकता है, क्योंकि जागा हुआ हिला सकता है, क्योंकि जागा हुआ पुकार दे सकता है, क्योंकि जागा हुआ लाकर ठंडा पानी तुम्हारी आंखों पर डाल सकता है, क्योंकि जागा हुआ कोई-न-कोई इंतजाम कर सकता है--बिस्तर से खींचकर तुमको बाहर कर सकता है, तुम्हारा कंबल छीन सकता है। जागा हुआ कुछ कर सकता है। लेकिन जो खुद ही सोया है वह क्या करेगा ? शायद सोये हुए आदमी की मनोदशा, सोये हुए आदमी के आसपास की तरंग, तुम अपने-आप जग रहे होते तो भी न जगने दे। क्योंकि सोया हुआ आदमी भी अपने पास एक विद्युत-क्षेत्र निर्मित करता है। तुमने कभी ख्याल किया, तुम्हारे पड़ोस में बैठा हुआ एक आदमी जम्हाई लेने लगे, तुम्हें जम्हाई आने लगती है। तुमने शायद ध्यान नहीं दिया होगा, पास में बैठा एक आदमी सोने लगे, बस तुम्हें नींद आने लगती है।

हर व्यक्ति अपने आसपास एक ऊर्जा-क्षेत्र निर्मित करता है। जो उसके भीतर होता है वह उसके बाहर तरंगित होता है।

एक दुकानदार, फलों का बेचने वाला, एक लोमड़ी को पाल रखा था। लोमड़ी बड़ी चालबाज, होशियार जानवर है--जानवरों में राजनीतिज्ञ जानवर है। उसने लोमड़ी पाल रखी थी दुकान की देख-रेख के लिए। और लोमड़ी बड़ी होशियार हो गयी थी। अगर कभी दुकानदार भोजन के लिए जाता, लोमड़ी से कह जाता कि बैठ और गौर रखना, ध्यान रखना--कोई कोई चीज न चुरा ले, कोई अन्दर न आये। शोरगुल मचा देना, मैं आ जाऊंगा।

मुल्ला रास्ते से गुजर रहा था। उसने सुना, दुकानदार लोमड़ी से कह रहा है कि बैठ यहां मेरी जगह और देख और सावधान रहना। कोई भी व्यक्ति किसी तरह की कारगुजारी करे, तुझे शक हो तो आवाज कर देना। किसी भी तरह का कृत्य कोई आदमी यहां दुकान के आसपास करे तो तू सावधान रहना। मुल्ला ने सुना। दुकानदार तो भीतर भोजन करने चला गया। मुल्ला ने देखे अंगूरों के गुच्छे, अनार, नाशपातियां, सेव ...उसकी लार टपकने लगी। लेकिन वह लोमड़ी सामने बैठी थी बिलकुल सजग, बिलकुल योगस्थ, ध्यानस्थ। वह बिलकुल देख रही थी, वह मुल्ला को भी बहुत गौर से देखने लगी।

मुल्ला ने मालूम क्या किया ? मुल्ला उस लोमड़ी के सामने ही बैठ गया, सड़क पर, आंखें बंद कर लीं और झपकी खाने लगा। थोड़ी देर में लोमड़ी सो गयी। तब उसने अंगूर फटकार दिये।

जब दुकानदार आया, उसने देखा अंगूर नदारद हैं। उसने लोमड़ी से पूछा: अंगूर कहां गये ?

उसने कहा कि मेरे देखे तो यहां कोई आया नहीं।

दुकानदार ने कहा : लेकिन कोई जरूर आया होगा। तूने किसी को यहां देखा था ?

उसने कहा : हां, एक आदमी को मैंने चलते देखा था।

उसने कुछ किया था ?

लोमड़ी ने कहा : उसने कुछ भी नहीं किया, करता तो मैं आवाज कर देती। उस आदमी ने तो कुछ नहीं किया, वह तो बैठकर सो गया। हां, उसके सोने से एक झंझट हुई उसको सोते देखकर--वह घर्राने लगा, मुझे भी नींद आ गयी।

उस दुकानदार ने कहा : आगे से ख्याल रख, सोना भी एक कृत्य है, एक क्रिया है। आगे से अगर इस तरह कोई आदमी हरकत करे सोने की यहां तेरे सामने तो बिलकुल सावधान हो जाना। तब तो समझ ही लेना कि कोई बहुत चालबाज आदमी. . . .तेरे से भी ज्यादा चालबाज आदमी है।

सोये हुए आदमियों को देखकर तुम्हें नींद आने लगे यह स्वाभाविक है, क्योंकि सोया हुआ आदमी अपने आसपास एक विद्युत-मंडल पैदा करता है जिसमें नींद आती है। जम्हाई लेते आदमी के पास बैठा हुआ एक दूसरा आदमी जम्हाई लेने लगता है। ठीक ऐसा ही जागरण के तल पर भी होता है। अगर कोई जागा हुआ आदमी सोये हुए आदमी के पास बैठ जाए, कुछ भी न करे, आवाज भी न दे. . .। कभी तुम एक कोशिश करना, एक छोटा-सा प्रयोग करना, तुम चकित होओगे। तुम्हारी पत्नी सोयी हो, पति सोया हो, बेटा सोया हो, उसके पास सिर्फ बैठ जाना बहुत जागरूक होकर, जितने जागरूक हो सको, जितनी सजगता ला सको, प्राणपण से, सारी शक्ति लगाकर सिर्फ जागे हुए उसके पास बैठ जाना। तुम चकित हो जाओगे कि क्षण भी नहीं बीतेंगे कि वह आंख खोल देगा। ये जाने-माने प्रयोग हैं। उसके भीतर कुछ हो जाएगा। तुम्हारा जागरण उस पर संघात करेगा, उस पर चोट करेगा, वह करवट लेने लगेगा, उसकी नींद टूटने लगेगी। गुरु-परताप. . .! ऐसे ही परम रूप से जो जाग्रत हैं उनके पास बैठने से, प्रसाद की वर्षा होती है। उनके प्रताप से, उनके आभामंडल से, उनसे विकीर्ण होती हुई किरणों से, तुम्हारी नींद टूटने लगती है।

गुरु-परताप साध की संगति ! और दीवानों के साथ उठना-बैठना, साधुओं के साथ उठना-बैठना। क्योंकि हम जिन्दगी में वही करते हैं, हम जिंदगी में वही हो जाते हैं, जिन तरंगों को हम अपने भीतर आत्मसात करते हैं।

तुमने कहावत सुनी होगी, आदमी वही हो जाता है जो भोजन करता है। लेकिन तुम कहावत का अर्थ शायद ही समझे होओ। कहावत का अर्थ तो साफ

मालूम होता है, लेकिन ऐसी कहावतें कई अर्थ रखती हैं। ऊपरी अर्थ तुम्हारी समझ में आता है--आदमी वही हो जाता है जैसा भोजन करता है। तुम सोचते हो, तो फिर शाकाहार करना चाहिए; मांसाहार करोगे, जंगली जानवरों को खाओगे, तो जंगली जानवर हो जाओगे। तुमने फिर दूसरी बात सोची है--शाकाहार करोगे तो साग-सब्जी हो जाओगे। वह शाकाहारी कभी नहीं कहते। शाकाहारी जैन मुनि लोगों को समझाते हैं: कभी मांसाहार नहीं करना, नहीं तो जंगली जानवरों जैसे हो जाओगे। समझ गये, ठीक। और शाकाहार करोगे फिर? और बदतर हालत हो जाएगी। झाड़-झंखाड़ हो गये, पत्ते इत्यादि निकलने लगे, फूल-फल लगने लगे। और एक झंझट हो जाएगी। जानवर तो कम-से-कम विकसित अवस्था है, पौधों से तो विकसित अवस्था है।

भोजन तुम जो करोगे वैसे ही हो जाओगे--इसका ऐसा अर्थ नहीं है जैसा लोग करते हैं, नहीं तो आदमी दूध पिये तो दूध हो जाए। और फिर मोरारजी देसाई का क्या हो? जीवन-जल पियो, जीवन-जल हो गये।

नहीं, यह ऊपरी अर्थ काम नहीं आएगा; भोजन का बहुत गहरा अर्थ है। भोजन का, आहार का अर्थ होता है: हम जिन तरंगों को अपने भीतर आत्मसात करते हैं, हम वैसे ही हो जाते हैं। आहार से मतलब है: सूक्ष्म आहार। जो संगीत को पिएगा, उसके भीतर कुछ संगीतपूर्ण होने ही वाला है, हो ही जाएगा। अगर जो संगीत को पीता है बहुत, संगीत में जीता है बहुत, वीणा बजाता है, बांसुरी सुनता है, सितार में डूबता है--इसकी जिंदगी में फर्क होने शुरू हो जाएंगे, इसकी जिंदगी में संगीत की छाप आनी शुरू हो जाएगी, इसके व्यवहार में संगीत आने लगेगा, उसके उठने-बैठने में संगीत छाने लगेगा, यह बोलेगा तो संगीत होगा, यह चुप रहेगा तो संगीत होगा। जो पूजा में, प्रार्थना में, अर्चना में लीन होगा, स्वभावतः उसके भीतर कुछ पूजा की धूप जैसी सुगंध उठने लगेगी, उसके भीतर मंदिर का दीया जलने लगेगा।

आहार से मतलब इतना ही नहीं है कि तुम जो मुंह से लेते हो, आहार से अर्थ है कि तुम जो आत्मा से ग्रहण करते हो। जो गालियां सुनेगा, उन लोगों के पास बैठेगा जहां गाली-गलौज दिये जा रहे हैं... क्या तुम सोचते हो उसके जीवन में संगीत और काव्य पैदा हो जाएगा, गालियां ही पैदा होंगी। बबूलों से दोस्ती करोगे, बबूल हो जाओगे। दोस्ती ही करनी हो तो कमलों से करना क्योंकि हम जिनके साथ होते हैं वैसे हो जाते हैं। और आहार बड़ी चीज है, भोजन तो बहुत क्षुद्र है बात।

रात पूरे चांद के नीचे बैठकर देखा, कभी टकटकी लगाकर आकाश में पूर्णिमा के चांद को देखा, कुछ तुम्हारे भीतर भी आंदोलित होने लगता है। वैज्ञानिक कहते

हैं कि मनुष्य सबसे पहले समुद्र में ही पैदा हुआ। पहला रूप जीवन का मछली है। हिंदुओं की बात ठीक मालूम होती है कि परमात्मा का पहला अवतार मत्स्य अवतार, मछली का अवतार। वैज्ञानिक विकासवाद भी इसे स्वीकार करता है। और उसके आधार हैं। अब भी मनुष्य के शरीर में जल का अनुपात अस्सी प्रतिशत है। अस्सी प्रतिशत तो तुम जल हो। और तुम्हारे भीतर जो अस्सी प्रतिशत जल है उसमें वे ही रासायनिक द्रव्य हैं जो सागर के जल में हैं--उतना ही नमक, उतने ही रासायनिक द्रव्य, ठीक उतने ही।

तुम्हारे भीतर साधारण जल नहीं है, ठीक समुद्र का जल है। मां के पेट में भी, बच्चा जब पैदा होता है तो मां के पेट में समुद्र के जल जैसी अवस्था होती है। छोटा-सा कुण्ड बन जाता है समुद्र के जल का, उसी में बच्चा तैरता है। फिर से यात्रा शुरू होती है, पहले मछली की तरह...। अगर बच्चे का तुम विकास देखो नौ महीने का तो तुम मछली से बन्दर तक का विकास देखोगे। इसलिए जब स्त्रियां गर्भवती होती हैं तो नमक ज्यादा खाने लगती हैं। नमकीन चीजें उन्हें अच्छी लगने लगती हैं, क्योंकि पेट में नमक की बहुत जरूरत पड़ जाती है; वह जो बच्चा है, उसके लिए नमक से भरा हुआ कुण्ड चाहिए--उसमें ही तैरेगा, उसमें ही बड़ा होगा।

पूर्णिमा का चांद जब होता है तो तुमने सागर में उत्तुंग लहरें उठती देखीं, और तुम भी तो अस्सी प्रतिशत सागर का जल हो--पूरे चांद को देखकर तुम्हारे भीतर भी तरंगें उठती होंगी, उठती हैं। यह जानकर तुम हैरान होओगे कि सर्वाधिक लोग पागल पूर्णिमा की रात्रि को होते हैं। सर्वाधिक लोग बुद्धत्व को भी उपलब्ध पूर्णिमा की रात्रि को होते हैं। गिरना भी पूर्णिमा की रात्रि, चढ़ना भी पूर्णिमा की रात्रि। बुद्ध के जीवन में तो बड़ा प्यारा उल्लेख है कि वे पूर्णिमा के दिन ही पैदा हुए, पूर्णिमा के दिन ही बुद्धत्व को उपलब्ध हुए, पूर्णिमा के दिन ही उनकी मृत्यु हुई।

इस दुनिया में बुद्धत्व को जितने लोग उपलब्ध हुए हैं उनमें से अधिक लोग पूर्णिमा के दिन हुए हैं। पूर्णिमा की रात बड़ी अद्भुत है! और पागल भी लोग पूर्णिमा की रात्रि ही होते हैं। दुनिया में हत्याएं भी पूर्णिमा की रात सबसे ज्यादा होती हैं और आत्महत्याएं भी सबसे ज्यादा होती हैं। सारी दुनिया की भाषाओं में पागलों के लिए कोई-न-कोई शब्द हैं जिनका चांद से संबंध है। हिन्दी में भी हम पागल को चांदमारा कहते हैं, अंग्रेजी में लूनाटिक कहते हैं। लूनाटिक का मतलब भी चांदमारा।

अगर चांद का इतना प्रभाव होता है, इतने दूर चांद का इतना प्रभाव होता है कि किसी को पागल कर दे, कि किसी को बुद्धत्व को पहुंचा दे, कि किसी की

आत्महत्या हो जाए, कि कोई हत्या कर दे। और ऐसा आदमी तो बहुत मुश्किल है खोजना जो चांद से बिलकुल प्रभावित न होता हो—असंभव है! किसी-न-किसी रूप में चांद प्रभावित करता है।

तो क्या उन लोगों की हम बात करें जिनके भीतर का चांद प्रगट हो गया हो, जिनके भीतर की बदलियां कट गयी हों, जिनके भीतर पूर्णिमा हो गयी हो; जो भीतर पूर्ण हो गये हों, जिन्होंने चैतन्य की पूर्णता को पा लिया हो। वे ही सद्गुरु हैं, उनके प्रताप से प्रार्थना का जन्म होता है। और उनके आसपास जो जमात इकट्ठी हो जाती है—दीवानों की, पियक्कड़ों की, मस्तों की, उनको ही साधु कहा है। साधुओं की संगति हो और गुरु का प्रताप हो, तो तुम्हारे सारे प्रयास सार्थक हो जाएंगे। क्योंकि फिर प्रयास + प्रार्थना... । तुम्हारे भीतर प्रार्थना की धुन बजने लगेगी। और जब प्रयास+प्रार्थना, तो फिर कोई बाधा न रही। प्रयास + प्रार्थना = परमात्मा—ऐसा समीकरण है। गुरु-परताप साध की संगति!

संगीत की ध्वनि वायु में जैसे मचलती!
या पिछले पहर रात अमृत में ढलती!
यों ध्यान में यौवन के थिरकता है रूप:
ज्यों स्वप्न की परछाईं नयन में चलती!
ज्यों सोम सरोवर में हृदय-हंस का स्नान!
ज्यों चांदनी लहरों में बांसुरी की तान!
मुग्धा के मृदुल अधर पै यों साध की बात:
ज्यों ओस-धुले फूल की पावन मुसकान!

सद्गुरुओं के पास क्या घटता है शब्दों में कहना कठिन है। संगीत की ध्वनि वायु में जैसे मचलती! लेकिन कुछ इशारे किये जा सकते हैं। सद्गुरु की संगति में कुछ घटता है, कुछ संगीत... संगीत की ध्वनि वायु में जैसे मचलती! अब संगीत की कोई परिभाषा नहीं हो पायी अभी तक; कभी हो भी नहीं पाएगी। संगीत को भाषा में अनुवादित करने का भी कोई उपाय नहीं है। और संगीत में कोई अर्थ होता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं। संगीत में कुछ अर्थ नहीं होता। अभिप्राय तो बहुत होता है, अर्थ बिलकुल नहीं होता। आनंद तो बहुत फलित होता है। लेकिन कोई तुमसे पूछे कि क्या. ठीक-ठीक बोलो, शब्दों में बांधो तो बस, तुम एकदम मूक हो जाओगे, गूंगे हो जाओगे। गूंगे का गुड़ हो जाता है। संगीत से ज्यादा गूंगे का गुड़ और क्या है!

सद्गुरु के पास क्या घटता है, वह तो महा-संगीत है। साधारण संगीत तो सुना जाता है कानों से, सद्गुरु के पास जो घटता है, वह तो ग्रहण किया जाता है

केवल अन्तरात्मा से। कान भी उसे नहीं सुनते, आंख भी उसे नहीं देखती, हाथ उसे छू नहीं सकते; उसके लिए तो केवल हृदय ही देखता है, हृदय ही सुनता है, हृदय ही छूता है; वह तो प्रेम की अत्यंत पावन घटना है।

संगीत की ध्वनि वायु में जैसे मचलती!
या पिछले पहर रात अमृत में ढलती!

या कभी-कभी तुम जल्दी उठ आये हो...अब तो लोगों ने उठना बंद कर दिया, लोग देर से सोते और देर से उठते हैं, और चौबीस घंटों का जो सबसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहर है—जब अमृत ढलता है—उससे चूक जाते हैं। उस अमृत ढलने के पहर को ही हमने ब्रह्ममुहूर्त कहा था। अभी जब सूरज उगा नहीं, रात जाती-जाती मालूम हो रही है; रात का आखिरी विदाई का क्षण आ गया और सूरज अभी उगा नहीं, बस उगेगा, वह जो मध्य का काल है, वह जो संध्या है, वह जो बीच का क्षण है, वह जो अंतराल है, वह ब्रह्ममुहूर्त है। उस क्षण अमृत ढलता है। क्यों? क्योंकि जब भी इतना बड़ा रूपांतरण होता है कि रात दिन में बदलती है तो थोड़ी-सी देर को न रात रह जाती है, न दिन रह जाता है, मध्य की अवस्था आ जाती है। और मध्य की अवस्था संतुलन की अवस्था है, सम्यकत्व की अवस्था है।

इसलिए दो पहर प्रार्थना के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं—एक तो सुबह, जब रात जा चुकी और दिन अभी आया नहीं; और एक सांझ, जब दिन जा चुका और रात अभी आयी-आयी है, अभी आयी नहीं। ये दो क्षण प्रार्थना के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इन दो क्षणों में तुम पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से सर्वाधिक मुक्त होते हो; इन दो क्षणों में तुम अपने सर्वाधिक निकट होते हो; इन दो क्षणों में परमात्मा तुम्हारे बहुत पास होता है, अगर जरा हाथ बढ़ाओ तो हाथ में हाथ आ जाए।

इसलिए भारत में तो.... क्योंकि इस देश ने प्रार्थना पर जितने प्रयोग किये दुनिया में किसी और देश ने नहीं किये। दुनिया के और देशों में और बहुत काम हुए हैं, उस संबंध में हम कुछ दावा नहीं कर सकते अपना—विज्ञान है, गणित है, भौतिकशास्त्र है, रसायनशास्त्र है, इन्जीनियरिंग है, सारी दुनिया में बड़े काम हुए हैं। हम तो दावा सिर्फ एक कर सकते हैं कि हमने प्रार्थना का विज्ञान खोजा है। चूंकि भारत ने प्रार्थना पर बहुत प्रयोग किये, यह बात समझ में आ गयी कि चौबीस घंटे में दो क्षण ऐसे होते हैं जो सर्वाधिक परमात्मा के निकट ले जाते हैं। इसलिए भारत में संध्या प्रार्थना का एक नाम ही हो गया। लोग कहते हैं: संध्या कर रहे हैं। संध्या कर रहे हैं अर्थात् प्रार्थना कर रहे हैं। प्रार्थना और संध्या पर्यायवाची हो गये।

संगीत की ध्वनि वायु में जैसे मचलती !
या पिछले पहर रात अमृत में ढलती !

कुछ ऐसी ही घटना घटती है गुरु के पास—सुबह-सुबह की ताजी हवा, सुबह-सुबह की ताजी किरण, सुबह-सुबह की ताजी ओस, सुबह का वह नहाया हुआ क्वांरा रूप...! यों ध्यान में यौवन के थिरकता है रूप ... जैसा युवावस्था में सौन्दर्य आकर्षित करता है, ऐसा ही सत्य के खोजी को सद्‌गुरु आकर्षित करता है ।

ज्यों स्वप्न की परछाईं नयन में चलती ! और बात इतनी बारीक है कि स्वप्न की भी अगर परछाईं बने तो तुलना हो सकती है । स्वप्न तो स्वयं ही परछाईं है, परछाईं की परछाईं नहीं बनती। लेकिन अगर स्वप्न की भी परछाईं बन सके तो सद्‌गुरु के पास जो घटता है, वह इतना बारीक है, इतना नाजुक है, इतना सूक्ष्म...।

ज्यों सोम सरोवर में हृदय-हंस का स्नान ! जैसे चांद का सागर हो, चांदनी का सागर हो...या सोम का हम दूसरा अर्थ ले सकते हैं, वेद में सोमरस की चर्चा है, सोमरस अमृत का पर्यायवाची है; अगर सोमरस का ही कोई सागर हो, अमृत का ही कोई सागर हो... ज्यों सोम सरोवर में हृदय हंस का स्नान ! और हृदय हंस बन जाए, और सोम के सागर में स्नान करे, ऐसा ही शिष्य का स्नान हो जाता है गुरु के पास। गुरु बन जाता है सोम सरोवर, शिष्य बन जाता है हंस !

ज्यों चांदनी लहरों में बांसुरी की तान !
मुग्धा के मृदुल अधर पै यों साध की बात :
ज्यों ओस-धुले फूल की पावन मुसकान !

जैसे सुबह-सुबह ओस में धुले हुए फूल की पावन मुसकान है, ऐसी ही कुछ अभूतपूर्व घटना सद्‌गुरु और शिष्य के बीच घटती है। किसी और को तो कानों-कान पता भी नहीं चलता। घटना घट जाती है, क्रांति हो जाती है, सोये जग जाते हैं, मगर दूसरों को पता भी नहीं चलता । यह तो गुरु और शिष्य को ही पता चलता है कि लेन-देन कब हो गया, कि कब दो हृदय मिल गये और एक हो गये, कि कब दो आत्माओं ने अपनी दूरी खो दी। कोई तीसरा पास भी बैठा रहे दर्शक की भांति, उसे कुछ भी पता न चलेगा ।

यह सत्य की खोज तो केवल उनकी ही है जो डूबने को तैयार हैं। दर्शक की भांति यह खोज नहीं हो सकती; इस खोज के लिए तो समर्पित होना अनिवार्य है।

भीखा के सूत्र :

रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन ।

वे कहते हैं : मैं तो उसे ही कहूंगा बुद्धिमान, उसे ही कहूंगा कुशल, उसे ही कहूंगा प्रवीण, जो राम के रूप को देख ले, बाकी सब बुद्धिमान तो बस बुद्धू हैं। कहने के बुद्धिमान हैं । गणित उन्हें आता होगा और धन कमाने की कला आती

होगी; और इतिहास के बड़े पंडित होंगे और बड़ी शोध की होगी; और भूगोल के बड़े ज्ञाता होंगे और बड़ी यात्राएं की होंगी; बड़े पदों पर होंगे; बड़ी प्रतिष्ठा होगी, यश होगा, उपाधियां होंगी—मगर सब व्यर्थ है, क्योंकि मौत सब छीन लेगी ! इस तरह के लोग धोखे में जी रहे हैं ।

भीखा ठीक कहते हैं : रामरूप को जो लखै...मैं तो सिर्फ एक को ही बुद्धिमान कहता हूं, वे कहते हैं, जो राम के रूप को लख ले, जो राम को देख ले, जो राम का दर्शन कर ले, जो सत्य को पहचान ले, जो इस जगत में व्याप्त ब्रह्म के साथ सगाई कर ले । रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन... बस वही कुशल है, वही बुद्धिमान है, वही प्रज्ञावान है ।

सो जन परम प्रबीन, लोक अरु बेद बखानै ।।

और भीखा कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, मैं ही नहीं कह रहा हूं, वेद भी यही कहते हैं और सदा-सदा से लोगों का अनुभव भी यही है । मौत जिसे छीन ले उसे कमाने में समय गंवाया, वह कमाई नहीं है, गंवाई है । मौत जिसे न छीने उसने चाहे सब गंवाया हो तो भी कुछ कमाया। जीसस का वचन है: अगर जिन्दगी को बचाओगे, सब गंवा बैठोगे और अगर जिन्दगी को गंवाने की तैयारी हो, तो सब कमाने का राज मैं तुम्हें दे सकता हूं ।

सतसंगति में भाव-भक्ति परमानंद जानै ।।

बस एक ही चीज बचेगी मौत के पार कि जिसने सत-संगति में, भाव-भक्ति में डुबकी ली हो और परमानंद को जाना हो । शेष सब खो जाएगा । शेष सब पानी पर खींची गयी लकीरें हैं, तुम बना भी न पाओगे और मिट जाएंगी । तुम्हारी यश-प्रतिष्ठा की बातें, तुम्हारी आकांक्षाएं, सब कागज की नावें हैं, चला भी नहीं पाओगे कि डूब जाएंगी । रेत के महल हैं, अब गिरे तब गिरे, हवा का जरा-सा झोंका और सब महल मिट्टी में मिल जाएंगे ।

सतसंगति में भाव-भक्ति परमानंद जानै ।।
रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन ।।
सकल विषय को त्याग बहुरि परबेस न पावै ।।

और जिसने राम के रस को पी लिया, उससे सारे विषयों का त्याग हो जाता है । सकल विषय को त्याग बहुरि परबेस न पावै ... ऐसे व्यक्ति को फिर दोबारा लौटकर संसार में नहीं आना पड़ता । कोई जरूरत ही नहीं रह जाती । उत्तीर्ण हो गया; संसार की परीक्षा से पार हो गया; संसार की कसौटी पर कस लिया गया ।

केवल आपै आपु आपु में आपु छिपावै ।।

तब उसे पता चलता है कि यह भी खूब रहस्यपूर्ण खेल था—अपने में ही छिपा था, अपने ही द्वारा छिपा था, अपने को ही खोज रहा था, अपने में

ही खोजना था। सब अपने में है। सारा संसार, सारा विश्व स्वयं के भीतर है। लेकिन भीतर तो हम जाते नहीं, हम बाहर भागे-भागे फिर रहे हैं। हम तो भीतर से बचते फिरते हैं कि कहीं भीतर जाना न हो जाए। हम तो भीतर से डरते हैं। जरा देर को अकेले बैठना पड़े तो मुश्किल हो जाती है। थोड़ी-सी देर को अकेले रह जाओ कि बेचैनी होने लगती है कि क्या करूं, क्या न करूं!

खालीपन अखरता है। सदियों-सदियों बुद्धिमानों ने एकांत खोजा। और बुद्धिहीन? समय काटते रहे। लोग ताश खेल रहे हैं। उनसे पूछो क्या कर रहे हो? वे कहते हैं : समय काट रहे हैं! कोई शतरंज खेल रहा है, लकड़ी के हाथी-घोड़े चला रहा है। उससे पूछो, क्या कर रहे हो? वह कहता है : समय काट रहे हैं! कोई रेडियो ही खोले बैठा है। लोग टेलीविजन के सामने घंटों बैठे हैं, तीन-तीन घंटे फिल्में देख रहे हैं! कुछ काम-धाम नहीं है। होटलों में बैठे बातचीत कर रहे हैं, क्लब-घरों में बैठे बकवास कर रहे हैं, वही बकवास जो हजार बार कर चुके हैं, वे ही बातें, जो वे भी कह चुके हैं और दूसरों से भी सुन चुके हैं।

मगर अकेले में बैठने को कोई राजी नहीं है। क्या हो गया है आदमी को? सदियों में तो हमने उल्टा किया था। हम एकान्त खोजते थे। घड़ी-भर को समय मिल जाए तो आंख बंद करके बैठते थे। अब तो कोई आंख बंद करके बैठता नहीं। अब तो कोई थोड़ी देर को द्वार-दरवाजे बंद करके नहीं बैठता। अब तो कोई थोड़ी देर के लिए कभी जंगल नहीं जाता कि दो-चार-दस दिन के लिए पहाड़ चला जाए, चुप वहां बैठ जाए। पहाड़ भी जाता है तो ले चला ट्रांजिस्टर-रेडियो साथ। तो काहे के लिए जा रहे हो वहां? ये ट्रांजिस्टर-रेडियो तो तुम यहीं सुन लेते, इसको पहाड़ पर सुनोगे तो फायदा क्या है? पहाड़ भी जाते हैं लोग तो कैमरा लटकाये हुए चले।

मैं एक मित्र के साथ हिमालय गया। कितनी ही सुंदर स्थिति हो, कितना ही सुंदर समय हो, बस वे खट-खट अपने कैमर की ही करते रहें। मैंने उनसे कहा कि तुम देखोगे कब? इतना सुंदर सूरज उग रहा है मगर तुम अपने कैमर में लगे हो! इतनी सुंदर छटा है बादलों की, और तुम कैमरे में लगे हो!

उन्होंने कहा : आप फिक्र न करें, घर लौटकर अलबम बनाकर मजे से देखेंगे।

तो मैंने कहा : फिर यहां आने की जरूरत क्या थी? अलबम तो तैयार बाजारों में बिकते हैं। हिमालय की सुंदरतम तसवीरें बाजारों में मिलती हैं। तुम उतनी सुंदर तसवीर ले भी न पाओगे, वे ज्यादा प्रोफेसनल, ज्यादा व्यावसायिक लोगों के द्वारा ली गयी तसवीरें हैं। तुम काहे के लिए यहां परेशान हुए? तसवीरों को देखोगे, और सामने सौन्दर्य खड़ा है!

मगर लोग, बस ऐसे हैं। पहाड़ पर भी जाएंगे तो वही आदतें... । पहाड़ पर गये हैं, स्वच्छ वायु लेने और वहीं बैठे सिगरेट पी रहे हैं! आदमी की बुद्धि-हीनता की कोई सीमा है! अगर सिगरेट ही पीनी थी तो बम्बई बेहतर। वहां बिना पिये ही हवा में इतना धुआं है कि पियो सिगरेट कि न पियो, धूम्रपान चल रहा है। तुम हिमालय किस लिए आये हो? थोड़ी देर पहाड़ से दोस्ती करो, पहाड़ों के पास कुछ राज छिपे हैं—ये अब भी ध्यानमग्न हैं, ये पहाड़ अभी भी सभ्य नहीं हुए हैं, ये अभी भी तुम्हारे विश्वविद्यालयों से उत्तीर्ण नहीं हुए हैं, इन पहाड़ों को अभी भी दिल्ली जाने का पागलपन सवार नहीं हुआ है, ये पहाड़ अभी भी निर्दोष हैं—जरा इनसे दोस्ती बनाओ, जरा इनके पास बैठो। जरा छोड़ो दुनिया को, भूलो दुनिया को—थोड़े अपने में डूबो।

केवल आपैं आपु आपु में आपु छिपावै॥

तब तुम्हें पता चलेगा, कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं, जिसे हम तलाशते थे वह भीतर है। जिसे हम बाहर तलाशते थे वह भीतर है, इसलिए बाहर मिलता नहीं था। मिलता कैसे, बाहर था ही नहीं। संपत्तियों की संपत्ति भीतर, राज्यों का राज्य भीतर है। तुम सम्राट हो मगर भिखमंगे बने बैठे हो। और तुम भिखमंगे रहोगे जब तक तुम बाहर हाथ फैलाये रहोगे। द्वार-द्वार से कहा जाएगा—आगे बढ़ो। और जो तुम्हें आगे बढ़ा रहे हैं उनकी भी हालत तुमसे कुछ बहुत बेहतर नहीं है, वे भी तुम जैसे ही भिखमंगे हैं।

मैंने सुना है एक भिखमंगे ने एक मारवाड़ी के घर के सामने आवाज दी : 'कुछ मिल जाए'। भिखमंगे को पता नहीं होगा कि घर मारवाड़ी का है, नहीं तो वह आवाज देता ही नहीं। भिखमंगे मारवाड़ियों के घर के सामने आवाज देते ही नहीं। भिखमंगों के शास्त्रों में लिखा है कि मारवाड़ी से बचना, अकेला मिल जाए तो भाग खड़े होना, क्योंकि देना तो दूर कुछ छीन न ले! पता नहीं होगा, नया-नया भिखमंगा होगा। गांव के जो पुराने भिखमंगे थे, वे तो कभी उस द्वार पर आवाज देते ही नहीं थे, क्योंकि उस द्वार से कभी किसी को कुछ मिला नहीं। असल में भिखमंगे पहचान लेते थे, जब भी उस द्वार के सामने कोई आवाज देता था कि कोई नया भिखमंगा गांव में आ गया; एक नया प्रतियोगी गांव में आ गया।

इस भिखमंगे ने आवाज दी कि मिल जाए कुछ; तीन दिन का भूखा हूं।

मारवाड़ी ने कहा कि पत्नी घर पर नहीं है।

मगर भिखमंगा भी एक ही था! रहा होगा पिछले जन्म में मारवाड़ी। उसने कहा : मैं पत्नी को मांग भी नहीं रहा हूं। अरे, रोटी मिल जाए। पत्नी को मैं क्या करूंगा? खुद के खाने के लाले पड़ रहे हैं और तुम पत्नी पकड़ाने चले। पत्नी अपनी तुम रखो, मुझे तो दो रोटी मिल जाएं बस काफी है।

मगर मारवाड़ी भी कुछ ऐसे, इतनी आसानी से हल नहीं हो सकता। उसने कहा : घर में कोई भी नहीं है, रोटी तुम्हें दे कौन ?

उस भिखमंगे ने कहा : तुम्हारे हाथ-पैर नहीं हैं ? सामने बैठे हो भले-चंगे। अरे, जरा उठो, व्यायाम भी हो जाएगा।

दो मारवाड़ियों में टक्कर हो गयी । वे एक-दूसरे से कुछ हारने वाले लोग नहीं थे। मारवाड़ी ने कहा : अरे, चल-चल, आगे बढ़। घर में कुछ है ही नहीं देने को तो मेरे उठने और व्यायाम करने से भी फायदा क्या ?

तो उस भिखमंगे ने कहा कि फिर ऐसा करो, तुम भी मेरे साथ आ जाओ। जब घर में कुछ है ही नहीं तो यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हो, भूखे मर जाओगे ! दोनों मांगेंगे-खाएंगे और दोनों मजा मरेंगे। आओ, निकल आओ।

तुम जिनके सामने हाथ फैला रहे हो वे खुद भी भिखमंगे हैं, उनके पास भी कुछ नहीं है देने को। तुम किससे मांग रहे हो ? इस संसार में कोई भी तुम्हें कुछ दे नहीं सकता। और जो तुम्हें चाहिए वह परमात्मा ने तुम्हें पहले से ही दिया हुआ है। तुम्हें उसने मालिक बनाकर ही भेजा है, तुम उस मालिक के ही अंश हो। याद करो, स्मरण करो। उपनिषद् बार-बार कहते हैं : स्मरण करो, स्मरण करो कि तुम उस मालिक के हिस्से हो।

भीखा सब तें छोट होइ, रहै चरन-लवलीन ।।

और अगर चाहते हो कि दुनिया के सम्राट से तुम्हारा मिलना हो जाए और तुम भी सम्राट हो जाओ; मालिकों के मालिक से मिलना हो जाए और तुम भी मालिक हो जाओ, तो कला छोटी है—भीखा सब तें छोट होइ . . . बिलकुल छोटे हो जाओ, नाकुछ हो जाओ, शून्यवत हो जाओ । रहै चरन-लवलीन. . . और प्रभु के चरणों के अतिरिक्त तुम्हारे मन में कोई और आकांक्षा, अपेक्षा, अभीप्सा न बचे। रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन ! और ऐसा जो बिलकुल छोटा हो जाता है, ऐसा जो नाकुछ हो जाता है—शून्यवत—उसको ही उपलब्धि होती है परमात्मा के चरणों की। और भीखा कहते हैं बस, मैं तो उसी को बुद्धिमान कहता, किसी और को नहीं।

खुदा जाने तिरे रिंदों पे क्या गुजरी कि महफिल में,
न साजो-मीना है साक़ी, न रक्से जाम है साक़ी।

आज तो हालत बड़ी बुरी हो गयी है । न मालूम क्या हुआ, परमात्मा के दीवानों पर क्या गुजरी है; मधुशाला खाली पड़ी है, सुराहियां खाली पड़ी हैं, प्यालियां खाली पड़ी हैं; अब मधु के दौर नहीं चलते—न रंग है, न रस है, न मस्ती है; आदमी उदास है।

खुदा जाने तिरे रिंदों पे क्या गुजरी कि महफिल में,
न साजो-मीना है साक़ी, न रक्से जाम है साक़ी।

सब नृत्य बंद हो गया, सब गीत बंद हो गया। हे परमात्मा ! तेरे पियक्कड़ों पर क्या गुजरी ? यह हुआ क्या ?

खुदा जाने तिरे रिंदों पे क्या गुज़री कि महफिल में,
न साजो-मीना है साक़ी, न रक्से जाम है साक़ी।
जुनूं में और खिरद में दरहक़ीक़त फर्क इतना है,
ये ज़ेर-दार है साक़ी, वे ज़ेरे-दाम है साक़ी।
अभी तो चंद क़तरे ही मिले हैं तशनाकामों को,
मगर पीरे-मुगां की बज्म में कोहराम है साक़ी।
सुए-मंजिल बढ़ा जाता हूं मैखाना ब मैखाना,
मजाके-जुस्तुजू तशनालबी का नाम है साक़ी।
निज़ामे-तशनाकामी अब ज्यादा चल नहीं सकता,
कि जो मैखाना परवर है उसी का जाम है साक़ी।
अभी सूदो-जियां का कुछ-न-कुछ एहसास बाक़ी है,
जुनूं के हाथ में अब तक खिरद का जाम है साक़ी।
कभी दो चार क़तरे भी सलीक़े से न पी पाये,
वो रिंदे-खाम हैं साक़ी वो नंगे-जाम हैं साक़ी।

कभी दो घूंट भी नहीं पी पाये जिन्दगी में जीवन के रस की; प्याली खाली ही रह गयी, ओंठ प्यासे ही रह गये। क्या हो गया आदमी को ? आदमी पीने की कला ही भूल गया, आदमी जीने की कला ही भूल गया। आदमी अपने से परिचित होने का विज्ञान भूल गया है।

मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य ।।

सीखो फिर से वह कला, फिर से सीखने होंगे पाठ—भूले पाठ।

मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य. . . मन से, कर्म से, वचन से होशपूर्वक जो राम को भजता है, वह धन्य हो जाता है। ख्याल रखना, राम को भजने वाले बहुत हैं, राम-चदरिया ओढ़े हुए लोग बहुत हैं—काशी में मिल जाएंगे, हरिद्वार में मिल जाएंगे। भज ही रहे हैं राम-राम...। मगर बस तोतों जैसा रट रहे हैं। उसका कोई भी मूल्य नहीं है, दो कौड़ी मूल्य नहीं है। क्योंकि न तो उनके मन में राम है, न उनके कर्म में राम है, न उनके वचन में राम है, न उनके होश में राम है। यंत्रवत कोई माला फेर रहा है...। लोग दुकानों पर बैठे माला फेरते रहते हैं ! दुकान भी चलाते रहते हैं, माला भी फेरते रहते हैं। थैलियां

बना ली हैं लोगों ने, थैलियों में माला छिपाये हुए हैं और चला रहे हैं।

ये मालाएं काम नहीं आएंगी। यह राम-राम जपना काम नहीं आएगा। हृदय से उठना चाहिए भाव। ये जबानों पर अटके रह जाते हैं शब्द, इससे गहरे नहीं जाते। न तो रोटी-रोटी जपने से भूख मिटती है और न पानी-पानी जपने से प्यास मिटती है, तो राम-राम जपने से क्या होगा? राम-राम जपने से तुम सिर्फ अपनी विक्षिप्तता प्रगट कर रहे हो, और कुछ भी नहीं। यह बात जपने की नहीं है, यह बात तो हृदय में उतारने की है, भाव की है। तुम्हारे हृदय में राम का आवास हो, फिर तुम राम जपो कि न जपो, चलेगा।

राम भजै सो धन्य, धन्य बपु मंगलकारी।

जो राम को जप ले हृदयपूर्वक, आत्मापूर्वक, वह धन्य है। वह धन्य है, इतना ही नहीं; उसका शरीर भी धन्य है। क्योंकि जिस देह में राम से भरा हृदय हो, वह देह मंदिर हो गयी; वह देह साधारण देह न रही, तीर्थ हो गयी। ऐसे पैर जहां पड़ेंगे वहां तीर्थ बनेंगे। ऐसा व्यक्ति जहां उठेगा-बैठेगा वहां तीर्थ बनेंगे। ऐसे ही तो मक्का बना, ऐसे ही तो काशी बनी, ऐसे ही तो गिरनार बनी। आखिर तीर्थ बने कैसे? किसी के भीतर ऐसा राम प्रगट हुआ, किसी के भाव में ऐसा राम सघन हुआ, कि उसके आसपास की मिट्टी भी पवित्र हो गयी।

रामचरन-अनुराग परमपद को अधिकारी।।

और जिसे पाना हो परमपद, उसका अधिकार सिर्फ इतना ही चाहिए कि राम के चरणों में झुकने की कला। झुकने की कला आदमी भूल गया है। झुकना हम जानते ही नहीं। हम कभी-कभी जाकर मंदिर में सिर झुका लेते हैं, मगर अहंकार तो खड़ा ही रहता है। तुमने कभी देखा, तुम मंदिर में जाकर नमस्कार कर रहे हो, सिर झुका रहे हो, अगर मंदिर में भीड़-भाड़ हो और ज्यादा लोग हों तो तुम बड़ी कुशलता से सिर झुकाते हो, बड़े ढंग से, बड़े लहजे से, बड़ी लज्जत से, क्योंकि चार लोग देख रहे हैं, गांव में खबर हो जाएगी, कि है यह आदमी धार्मिक। और कोई न हो मंदिर में तो पटका सिर और भागे, एक काम था निपटा दिया।

टालस्टॉय ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं एक दिन सुबह-सुबह चर्च गया। गांव का जो सबसे बड़ा धनपति था, वह मंदिर में, चर्च में, परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था। अभी अंधेरा था तो टालस्टॉय को वह देख नहीं पाया। और जैसा ईसाइयों की प्रार्थना में पश्चात्ताप करना होता है और कन्फेशन और अपने पापों का उद्घाटन...। तो वह अपने पापों का उद्घाटन कर रहा था, वह परमात्मा से कह रहा था, मैं बड़ा पापी हूं। मुझसे बुरा आदमी इस संसार में दूसरा नहीं। धन भी मैंने छीना है गरीबों का। परायी स्त्रियों पर भी मेरी नजर बुरी रही... वह तरह-तरह की बातें कह रहा था, जो भी कहनी चाहिए।

टालस्टॉय सुनते रहे। उन्हें तो भरोसा ही नहीं आया क्योंकि इस आदमी की बड़ी प्रतिष्ठा थी, यह तो गांव में साधु समझा जाता था। तभी धीरे-धीरे सुबह होने लगी, रोशनी थोड़ी हुई। उस आदमी ने लौटकर देखा, टालस्टॉय को देखा तो वह टालस्टॉय के पास आया! उसने कहा कि ख्याल रखना, ये बातें बाहर न जा पाएं, किसी को इन बातों का पता न चले, नहीं तो अदालत में मानहानि का मुकदमा चलाऊंगा।

तो टालस्टॉय ने कहा: लेकिन तुम्हीं तो कह रहे थे।

उसने कहा: हां, मैं ही कह रहा था लेकिन तुमसे नहीं कह रहा था, परमात्मा से कह रहा था। और जनता से नहीं कह रहा था। दुनिया में कोई बदनामी करवानी है! मैं तुम्हें जताये देता हूं कि अगर इसमें से एक भी बात कहीं बाहर गयी तो तुम्हीं जिम्मेवार रहोगे क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त यहां कोई और नहीं है।

टालस्टॉय ने कहा: यह कैसी प्रार्थना? अगर तुम सच ही अपने पापों का पश्चात्ताप कर रहे हो तो जानने दो सबको, पहचानने दो सबको।

मगर उससे अहंकार को चोट लगेगी, वह नहीं हो सकता। परमात्मा को बताने से तो अहंकार को मजा आ रहा है, चोट नहीं लग रही। मनोवैज्ञानिक कहते हैं और मैं उनसे राजी हूं कि जिन लोगों ने अपनी आत्मकथाओं में पापों का उल्लेख किया है, वह बढ़ा-चढ़ाकर किया है। क्योंकि जब बता ही रहे हैं तो... आदमी के साथ यही तो बड़ी खूबी है, जब पाप ही बता रहे हैं तो फिर बढ़ा-चढ़ा कर ही बताना ठीक है। अतिशयोक्ति मनुष्य की आदतों में एक है।

अगस्तीन ने अपने संस्मरण लिखे हैं। उनमें ऐसा लगता है कि बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बात कही गयी है। इतने पाप एक आदमी कर सके, यह भी संभव नहीं है। महात्मा गांधी ने भी अपनी आत्मकथा में जो बातें लिखी हैं उनमें अतिशयोक्ति है, वे सच नहीं हैं, सब सच नहीं हैं। बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है।

पाप को भी बढ़ा-चढ़ाकर कहने का एक मजा है। क्या मजा है? कि मैं कोई छोटा पापी नहीं हूं। कि मैं हर कोई आम पापी नहीं हूं कि तुम जैसा हर किसी का... साधारण पापी... असाधारण पापी हूं। और फिर जब पाप को खूब बढ़ा-चढ़ाकर बताओ तो उसकी पृष्ठभूमि में तुम्हारा महात्मापन भी बड़ा हो जाता है। स्वभावतः जिसने इतने बड़े पाप किये और फिर महात्मा हो गया है, सब पाप छोड़ दिये, उसकी महिमा भी ज्यादा है। जिन्होंने कुछ पाप किये ही नहीं थे...अब तुम यही समझो कि तुमने दो पैसे की चोरी की थी, और घूमने लगे, चिल्लाने लगे कि मैंने दो पैसे की चोरी की थी, अब मैंने चोरी करने का त्याग कर दिया। लोग कहेंगे बकवास बंद करो। चोरी भी कोई बड़ी नहीं थी तो त्याग ही कैसे बड़ा हो सकता है? लेकिन तुम कहो कि मैंने दो करोड़ की चोरी की थी और त्याग कर

दिया। तो बात में कोई दम मालूम पड़ती है। तो जिसने दो पैसे चुराये हैं वह भी दो करोड़ की चोरी की बात करेगा।

अतिशयोक्ति आदमी पाप की भी कर सकता है अगर अहंकार को तृप्ति मिलती हो। और अगर पाप के कारण महात्मापन बड़ा होता हो तब तो फिर कहना ही क्या!

एक महिला हर रविवार को जाती थी अपने पादरी के पास, अपने पापों की स्वीकृति के लिए। पादरी जरा परेशान था। क्योंकि पाप उसने एक ही किया था--एक आदमी को एक दफे प्रेम किया था। और वही पाप वह कम-से-कम सात दफे आकर कन्फेस कर चुकी थी। जब आठवीं दफे आयी तो पादरी ने कहा कि बाई कब तक तेरा वही पाप मैं बार-बार सुनूं और तुझे क्षमा करवाऊं? तेरी क्षमा हो चुकी। एक ही बार किया है पाप, अब कितनी बार उसकी तू क्षमा मांगती है?

लेकिन उस स्त्री ने कहा: उस पाप की बात ही करने में बड़ा मजा आता है। और बार-बार क्षमा पाने में भी बड़ा मजा आता है, बड़ा रस आता है।

आदमी पाप की अभिव्यक्ति में भी रस ले सकता है। शायद टालस्टॉय ने जिस धनपति को सुना, वह भी बढ़ा-चढ़ा कर कह रहा हो। जब परमात्मा से ही कह रहे हैं तो फिर क्या कमी करनी? दिल खोलकर ही कह दिया हो। खूब बढ़ा-चढ़ाकर कह दिया हो। अगर पापों का प्रायश्चित करना ही महात्मापन है तो फिर बड़े ही बड़े पापों का प्रायश्चित करना ठीक है। छोटे-मोटे पाप का क्या हिसाब? छोटे-मोटे पापियों की वहां भी कोई गिनती नहीं होगी, ख्याल रखना। जब कयामत के दिन निर्णय का दिन आएगा, तो तुम जरा सोचो तो कि कहां खड़े होओगे क्यू में? सारी दुनिया के लोग इकट्ठे होंगे।

एक यहूदी अपने रबाई से पूछ रहा था कि मैं यह जानना चाहता हूं कि एक ही दिन में निर्णय हो जाएगा? कहा तो यही जाता है कि एक दिन कयामत का और उस दिन सबका निर्णय हो जाएगा। वह यहूदी जरा बेचैन था, सिर खुजलाने लगा। उसने कहा कि मैं फिर से पूछता हूं आपसे कि जितने लोग आज तक पैदा हुए दुनिया में, और जितने लोग आगे पैदा होंगे, और जितने अभी हैं, ये सब लोग रहेंगे, और एक ही दिन में फैसला हो जाएगा?

रबाई ने कहा कि हां भाई।

तो उस आदमी ने कहा: एक बार और पूछना है, स्त्रियां भी रहेंगी?

तो उसने कहा: तू बार-बार वही बात क्यों पूछता है! पुरुष भी रहेंगे, स्त्रियां भी रहेंगी।

तो उसने कहा: फिर मुझे फिक्र ही छोड़ देनी चाहिए। इतना शोरगुल मचने वाला है कि हम गरीबों की तो पूछ ही कहां होगी। हम तो कहीं क्यू में पीछे खड़े

रह जाएंगे, हमारा नंबर भी नहीं लगने वाला है। तुम भी जरा सोचना, कोई तम्बाकू खा रहा है, वह सोच रहा है: हमारा नंबर लगेगा। तुम पागल हो गये हो! तम्बाकू खाकर ही नंबर लगवा लोगे? कोई हुक्का गुड़गुड़ा लेता है, वह कहता है: हमारा नंबर लगेगा। वहां हिटलरों की, चंगेजखान, नादिरशाह, माओत्से तुंग, स्टैलिन, इन लोगों की पूछ होगी। इनकी भी बड़ी भीड़ होगी। साधारण आदमी की क्या बिसात!

तो अपने अहंकार को बढ़ाने के लिए आदमी पापों को भी बढ़ा-चढ़ाकर बोल सकता है, लोग बोलते हैं। और फिर उनकी पृष्ठभूमि में महात्मापन भी बड़ा हो जाता है। छोटा करो अपने को। अपने पाप भी बड़े नहीं हैं, अपने पुण्य भी बड़े नहीं हैं। अपना होना ही बड़ा नहीं है। अपना होना ही नहीं है।

रामचरन-अनुराग परमपद को अधिकारी ।।

ऐसे जो झुक जाएगा उसके चरणों में, वह परमपद का अधिकारी हो जाता है। लेकिन एक बात तुम्हें याद दिला दूं, परमपद के अधिकारी होने के लिए मत झुकना, नहीं तो फिर भूल हो जाएगी। ये ही जटिलताएं हैं धर्म के मार्ग पर। तीर्थयात्रा के ये ही उलझाव हैं। पढ़ा वचन: रामचरन-अनुराग परमपद को अधिकारी। दिल ने कहा: यार, यह बात जंचती है। परमपद के अधिकारी तो होना है। तो अब ठीक है चलो, परमपद के अधिकारी होना है, यह भी कर लेंगे, चरणों में भी झुक लेंगे। चलो एक बार चरणों में भी झुक लें। अगर खुशामद ही करने से होना है, अगर स्तुति करने से होना है, चलो यह भी कर लें। मगर होना है परमपद का अधिकारी।

अगर परमपद का अधिकारी होने की वासना है तो तुम झुकोगे कैसे? यह अहंकार झुकने ही नहीं देगा। नहीं, तो इस वचन का अर्थ दूसरा है, तुम ऐसा अर्थ मत लेना। परमपद का अधिकार तुम्हारा लक्ष्य नहीं होना चाहिए, लक्ष्य तो है झुकना। लक्ष्य तो है झुकना अपने-आप में। आनंद तो है झुकने में, फिर यह उसका परिणाम है। इसकी न चिन्ता है, न इसकी अपेक्षा। झुककर ऐसा देखना मत फिर आंख के कोर से कि अभी तक परमपद नहीं मिला। जरा आंख खोलकर देख लें अभी तक मिला कि नहीं मिला। ऐसी भूल करोगे तो... और ऐसी भूल की जाती रही है, की जा रही है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं: ध्यान नहीं लगता।

मैं उनसे कहता हूं: ध्यान लगेगा लेकिन अपेक्षा छोड़ दो। कोई भी भीतर अपेक्षा मत रखो कि शांति मिलनी चाहिए, स्वास्थ्य मिलना चाहिए, आनंद मिलना चाहिए--सब अपेक्षा छोड़ दो। ध्यान को ध्यान की मस्ती के लिए करो।

तो वे कहते हैं: फिर मिलेगा? फिर पक्का है?

चूक गये। नहीं बात समझ में उनके आयी।

ध्यान ध्यान का ही लक्ष्य है। प्रेम प्रेम का ही लक्ष्य है। प्रार्थना प्रार्थना का ही लक्ष्य है। हां, परिणाम में बहुत फूल खिलते हैं, बहुत सुगंध लुटती है, बहुत दीये जलते हैं। मगर वह परिणाम में। वे तुम्हारी आकांक्षा के हिस्से नहीं होने चाहिए।

काम क्रोध मद लोभ मोह की लहरि न आवै।।

ध्यान रखना, झुको तो उस झुकने में——काम क्रोध मद लोभ मोह की लहरि न आवै! अगर जरा-सी लहर भी आ गयी उस झुकने में तो झुकना व्यर्थ हो गया। अगर तुमने मांगा कि स्वर्ग मिल जाए; कहीं दिल में, कोने में छिपी एक आवाज रही कि हे प्रभु! इस संसार में तो बहुत कष्ट पाये, अब बैकुण्ठ बुला ले; कि यहां तो बहुत तकलीफ उठायीं; यहां लुच्चे-लफंगे तो पदों पर बैठे हैं, सीधे-सादों की कोई पूछ नहीं है; यहां सच्चरित्रों का तो कोई सम्मान नहीं है, दुश्चरित्र राजनेता हो गये हैं। अब तो बैकुण्ठ बुला ले। तो दिल में यह इच्छा है कि वहां तो सच्चरित्रों की पूछ होगी; वहां तो सीधे-सादों की पूछ होगी; वहां तो सीधे-सादे सिंहासन पर बैठेंगे। और यहां जिनकी प्रतिष्ठा है, वहां मुश्किल में पड़ेंगे। वहां उनको काम इत्यादि मिलेंगे ऐसे कि झाड़ू-बुहारी लगाओ, शूद्र इत्यादि के काम करो, और हम बैठेंगे ब्राह्मण होकर, द्विज होकर।

अगर ऐसी आकांक्षा कहीं जरा-सी भी छिपी है तो चूक हो जाएगी। स्वर्ग में अप्सराएं मिल जाएं, और बहिश्त में शराब के झरने मिल जाएं; और कल्पवृक्ष मिलें और उनके नीचे बैठे हैं और जो-जो इच्छाएं हैं सब पूरी हो जाएं, जो यहां नहीं पूरी हुई, जो यहां पूरा करना चाहते थे लेकिन नहीं हो सकीं, क्योंकि दूसरे लोग ज्यादा दुष्ट और ज्यादा गलाघोंट प्रतियोगिता करने में समर्थ, छीना-झपटी वड़ी है, यहां तो कुछ नहीं हो पाया अब वहां देख लेंगे। अगर ऐसी कहीं जरा-सी भी लहर... लहर शब्द पर ध्यान देना। काम क्रोध मद लोभ मोह की लहरि न आवै... झुकने में लहर भी आ गयी तो सब व्यर्थ हो गया, झुकना व्यर्थ हो गया; तुम झुके ही नहीं।

परमातम चैतन्यरूप महं दृष्टि समावै।

झुको ऐसे कि एक लहर न उठे वासना की। और परमातम चैतन्यरूप महं दृष्टि समावै...बस एक ही दृष्टि रह जाए, परमात्मा की तरफ लगी हुई; और कोई मांग नहीं, और कोई शर्त नहीं, सारी दृष्टि उसी में लीन हो जाए। जैसे सरिताएं सागर में डूब जाती हैं और एक हो जाती हैं; ऐसे तुम्हारी सारी दृष्टि उसी में लीन हो जाए, उसी एक में समाहित हो जाए।

व्यापक पूरनब्रह्म है भीखा रहनि अनन्य।

जिसने ऐसा कर लिया कि जिसकी आंख परमात्मा में डूब गयी, जिसका

देखना परमात्मा में डूब गया, और कोई वासना न रही, और कोई लहर न रही— उसने जाना है कि परमात्मा सब तरफ व्याप्त है। व्यापक पूरनब्रह्म है भीखा रहनि अनन्य...और तब फिर परमात्मा को याद भी नहीं करना होता, क्योंकि हमारे भीतर भी वही है। सबके भीतर वही है। अनन्य, हम उससे अन्य नहीं हैं, हम उसके साथ एक हैं। फिर तो उठना-बैठना प्रार्थना है; खाना-पीना पूजा है; चलना-फिरना अर्चना है; जीना साधना है; श्वास का भीतर आना बाहर जाना, पर्याप्त है।

...भीखा रहनि अनन्य।।

मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य।।

धनि सो भाग जो हरि भजै, ता सम तुलै न कोइ।।

और धन्यभागी हैं वे जिन्होंने इस तरह हरि को भजा और पाया क्योंकि फिर उनसे किसी की तुलना नहीं हो सकती; वे अतुलनीय हैं, वे अद्वितीय हैं।

ता सम तुलै न कोइ, होइ निज हरि का दासा।।

जो परमात्मा का सेवक हो गया है, दास हो गया है, जिसने अपने को पूरा-का-पूरा चरणों में लुटा दिया है; उसके साथ किसी की तुलना नहीं हो सकती। कितना ही धन हो तुम्हारे पास, तुम निर्धन हो उस आदमी के समक्ष। और कितना ही बड़ा पद हो तुम्हारे पास, तुम पदहीन हो उस आदमी के समक्ष।

बुद्ध का एक गांव में आगमन हुआ। उस गांव के सम्राट को उसके बूढ़े वजीर ने कहा: बुद्ध आ रहे हैं, भगवान आ रहे हैं, तथागत का आगमन हो रहा है, आप स्वागत को चलें। नगर के द्वार पर आपकी मौजूदगी जरूरी है।

वह सम्राट जरा हेंकड़ ढंग का आदमी था। उसने कहा: मैं उस भिखमंगे के स्वागत को क्यों जाऊं? मेरे पास क्या कमी है? उसके पास ऐसा क्या है? उसे आना होगा मिलने तो खुद आ जाएगा।

उस बूढ़े वजीर की आंखों से आंसू टप-टप गिरे। सम्राट तो बहुत हैरान हुआ। उसने वजीर को कभी रोते नहीं देखा था। उसने पूछा: तुम क्यों रोते हो?

उसने कहा: मैं इसलिए रोता हूं कि आज आपकी सेवा से मैं मुक्त हो रहा हूं, मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लें।

वह वजीर तो कीमती था। उसके बिना तो राज्य को सम्हालना भी मुश्किल था। वह सम्राट तो शराब पीने में और वेश्याओं को नचाने में ही समय बिताता था। सारा काम तो वजीर करता था। उसकी बुद्धिमत्ता ही थी कि राज्य बड़ा था, सुसंगठित था, सुव्यवस्थित था। उसका छोड़ना तो सब गड़बड़ हो जाएगा। उसने कहा कि नहीं-नहीं, क्या इतनी सी बात से त्यागपत्र। लेकिन मेरी बात में गलती तो नहीं है, सम्राट ने फिर भी कहा।

उस बूढ़े वजीर ने कहा : गलती बहुत है। त्यागपत्र देकर गलती बताने वाला हूं, क्योंकि जब तक त्यागपत्र न दिया आपका नौकर हूं, आपकी गलती कैसे बताऊं? पहले त्यागपत्र फिर आपकी गलती बता दूंगा।

सम्राट ने कहा : गलती तुम पहले बताओ, मैं नाराज नहीं होऊंगा। मैं पहले क्षमा कर देता हूं। मेरी गलती क्या है?

उस बूढ़े वजीर ने कहा : तुम्हारी गलती यह है कि तुम्हारे पास जो है, वह बुद्ध के पास भी था, उसको वे लात मार आये, तुम अभी लात नहीं मार सके हो। और बुद्ध के पास जो है, वह पाने में तुम्हें अभी कई जन्म लग जाएंगे। पाना तो दूर, बुद्ध के पास जो है अभी उसे तुम देखने की भी क्षमता नहीं रखते हो। तुम्हारे पास आंख भी नहीं है जो देख सके कि बुद्ध के पास क्या है! इसलिए तुम समझ रहे हो कि बुद्ध भिखारी हैं। मैं तुमसे कहता हूं तुम भिखारी हो और बुद्ध सम्राट हैं। या तो चलो मेरे साथ बुद्ध के स्वागत को, उनके चरणों में सिर रखो, या मेरा त्यागपत्र स्वीकार करो। क्योंकि मैं ऐसे आदमी के नीचे काम नहीं कर सकता जो इतना अंधा है।

इस वजीर की बात मूल्यवान है। धन कितना ही हो तो भी जिसके पास रामधन है उसके सामने तुम गरीब हो। और पद कितना ही तुम्हारा हो लेकिन जिसको रामपद मिल गया उसके सामने तुम्हारी क्या हैसियत है!

ता सम तुलै न कोइ, होइ निज हरि को दासा।

लेकिन इसमें एक शब्द बड़ा कीमती है--होइ निज हरि को दासा... जो स्वयं स्वेच्छा से हरि का दास हो गया है, किसी के दबाव से नहीं। नहीं तो अकसर ऐसा हो जाता है, मां-बाप अपने बच्चों को ले आते हैं मेरे पास, वह बच्चा झुक ही नहीं रहा है और मां उसका सिर झुका रही है चरणों में, दबा रही है उसको।

मैं कहता हूं : यह तू क्या कर रही है? उस बच्चे को झुकना नहीं है। तेरे झुकाने से कुछ सार भी नहीं है। और इस तरह जबर्दस्ती झुका-झुका कर तू उसकी आदत खराब कर देगी, उसको भी झुकने की आदत पड़ जाएगी। वह फिर झुकता रहेगा जिंदगी-भर झूठा। मंदिरों में लोग ले जाते हैं बच्चों को पकड़कर गर्दन झुका देते हैं।

इसी तरह तुम्हारी गर्दन पकड़कर तुम्हें झुकाया गया है। तुम मंदिरों में स्वेच्छा से झुक रहे हो या तुम सिर्फ भूल गये कि बचपन में झुकाया गया था और झुकने की आदत हो गयी है? यह गुलामी है। इसलिए हिन्दू हिन्दू मंदिर में झुकता है, जैन मंदिर में नहीं झुकता क्योंकि जैन मंदिर में उसे कभी झुकाया नहीं गया, उसका अभ्यास नहीं करवाया गया। जैन जैन मंदिर में झुकता है, हिन्दू मंदिर में नहीं झुकता।

औरों की तो बात छोड़ दो, जैनों के दो संप्रदाय हैं--श्वेताम्बर और दिगम्बर। श्वेताम्बर जैन श्वेताम्बर जैन मंदिर में झुकता है, वह दिगम्बर जैन मंदिर में नहीं झुकता, हालांकि वहां भी महावीर की प्रतिमा है! दोनों के मंदिर में महावीर की प्रतिमा है लेकिन थोड़ा-सा फर्क अपनी प्रतिमाओं में कर लिया है, करना ही पड़ा। जब अलग-अलग दुकान करनी हो तो थोड़े मार्के बदलने पड़ते हैं, थोड़े नाम बदलने पड़ते हैं। दिगम्बर की जो मूर्ति है उसकी आंखें बंद हैं, श्वेताम्बर की जो मूर्ति है उनकी आंखें खुली हैं, अधखुली हैं। इतना-सा फर्क है--मार्के का फर्क!

मैं एक यात्रा पर था, एक महिला मेरे साथ यात्रा पर थी। जैन महिला, उसने कसम खा रखी थी, जब तक वह मंदिर में जाकर पूजा न कर ले, तब तक भोजन न करे। एक दिन ऐसा हुआ कि गांव में कोई जैन-मंदिर नहीं था तो पूजा नहीं हो सकी। तो मैंने कहा : तू किसी भी मंदिर में पूजा कर ले। तुझे पूजा ही ही करनी है न?

उसने कहा : किसी मंदिर में कैसे कर लूं? कुदेव की पूजा करूं! ये गणेशजी की पूजा करूं कि शिवजी की पूजा करूं? कृष्ण का मंदिर है, इनकी पूजा करूं? मेरे शास्त्र में लिखा है, कृष्ण नर्क में पड़े हैं। और गणेशजी को देखकर मुझे सिर्फ हंसी आती है, पूजा का भाव पैदा नहीं होता। और शिवजी... ये गांजा, भांग, अफीम...बम भोले...इनकी पूजा करूं? ये हिप्पियों के हिप्पी, इनकी पूजा करूं? भूखी रह जाऊंगी मगर पूजा नहीं हो सकती।

वह भूखी ही रही। दिन-भर मैं भी परेशान रहा, वह भूखी बैठी थी। भूखी बैठी, तो थी तो क्रुद्ध, थी तो नाराज। दूसरे गांव हम गये तो मैंने पहले ही पता लगाया कि जैन मंदिर है? तो उन्होंने कहा : हां, जैन मंदिर है। तो मैं निश्चित हुआ। मैंने उससे कहा : आज बेफिक्री से स्नान करके तू पूजा कर आ और लौट आ।

वह लौटकर बड़ी नाराज आयी और उसने कहा कि वह श्वेताम्बर जैन मंदिर है। मैं दिगम्बर हूं।

तो मैंने उससे पूछा : फर्क क्या है?

मैं तो महावीर की आंख बंद की हुई मूर्ति की पूजा करती हू, ध्यानस्थ, और वहां तो आधी खुली आंख है।

मैंने कहा : तू इतना तो सोच, कभी-कभी महावीर आंख भी खोलते होंगे कि नहीं! कि आंख बंद ही रखते थे? महावीर तो दोनों काम करते होंगे--कभी आंख खोलते होंगे, कभी बंद करते होंगे; कभी आधी भी खोलते होंगे, कभी पूरी भी खोलते होंगे। कि जिंदगी-भर आंख बंद ही रखी उन्होंने? चलते-फिरते कैसे थे?

उसने कहा : वह कुछ भी हो, लेकिन मैं तो दिगम्बर मूर्ति की ही पूजा करूंगी।

जिन मंदिरों में तुम्हें झुकाया गया है जबर्दस्ती, वे तुम्हारी आदतें हो गये हैं। यह कोई झुकना नहीं है। यह कोई असली झुकना नहीं है। इसलिए भीखा ठीक कहते हैं : होइ निज हरि को दासा। अपने से झुको—न संस्कारों से, न समाज से, न मां-बाप के कारण, न शिक्षा के कारण, न किसी भय से, न किसी लोभ से; अपने बोध से झुको, झुकने के मजे से झुको। फिर क्या फिक्र... फिर मस्जिद में भी झुक सकते हो, गुरुद्वारे में भी झुक सकते हो, मंदिर में भी झुक सकते हो। क्या लेना-देना है? फिर मंदिर न भी हो तो वृक्षों के पास झुक सकते हो, आकाश के नीचे झुक सकते हो, पृथ्वी पर झुक सकते हो। कहीं भी झुक सकते हो; झुकने वाले को क्या अड़चन? जो कहता है झुकने में शर्त है हमारी, हम यहीं झुकेंगे। वह झुकना नहीं चाहता। उसने झुकने पर भी अर्थ जोड़ दिया है। उसने झुकने में भी शर्त लगा दी। उसने झुकने में भी अहंकार को नियोजित कर दिया है।

रहै चरन-लौलीन राम को सेवक खासा।।

जो उसके चरणों में ही लीन रहता है, डूबा रहता है, जिसे उसके चरण सब जगह दिखाई पड़ते हैं, सबके चरणों में उसके चरण दिखाई पड़ते हैं।

सेवक सेवकाई लहै भाव-भक्ति परवान।

एक ही प्रमाण है तुम्हारे भाव का, तुम्हारी भक्ति का कि तुम इस परमात्मा से भरे जगत की सेवा में लवलीन हो जाओ। तुम अगर एक वृक्ष को भी पानी डाल रहे हो तो इसी तरह डालना कि राम के ही चरण पखार रहे हो। तुम अगर एक कुत्ते को भी रोटी खिला रहे हो तो इसी तरह खिलाना कि राम को ही रोटी खिला रहे हो। तुम अपने बच्चे में भी राम को देखना, अपने पति में भी, अपनी पत्नी में भी। तुम धीरे-धीरे इस भाव को विस्तीर्ण करते जाना कि सारे चरण उसके हैं, सारे हृदय उसके हैं, वही है और कुछ भी नहीं है, उसके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है।

सेवा को फल जोग है भक्तबस्य भगवान।।

और जो ऐसी सेवा करने में समर्थ हो जाएगा उसका फल योग है, परमात्मा से मिलन है। उसका फल है सुहागरात। उसका फल है परमात्मा से सगाई। उसका फल है परमात्मा से एक हो जाना। और जो इस तरह परमात्मा से एक हो गया, परमात्मा उसके वश में है, उसके इशारे पर है, उसके इशारे पर चलेगा। ऐसा नहीं है कि भक्त उसे इशारे पर चलवाता है, कि भक्त उसे इशारे पर चलवाना चाहता है, लेकिन वह भक्त के इशारे पर चलेगा।

मैंने सुना है, पुरानी कथा है। कृष्ण भोजन करने बैठे हैं। आधा ही भोजन किया है। एक कौर मुंह तक ले जाते थे कि थाली में पटक कर भागे दरवाजे की तरफ। तो रुक्मिणी ने पूछा : कहां जाते हैं? मगर जवाब भी न दिया। फिर दरवाजे

पर ठिठक गये। एक क्षण उदास खड़े रहे फिर लौट आये। गये तो बड़ी तेजी से थ, लौटे बहुत आहिस्ता। वापिस थाली पर बैठ गये। छोड़ गये थे जिस कौर को उसे फिर उठा लिया। रुक्मिणी ने पूछा : अब तो कहो, भागकर कहां गये थे? फिर दरवाजे से लौट क्यों आये?

तो कृष्ण ने कहा : मेरा एक भक्त एक रास्ते से गुजर रहा है, लोग उसे पत्थर मार रहे हैं, लेकिन जो उसे पत्थर मार रहा है वह उसमें भी मुझे ही देख रहा है। खून बह रहा है उसके सिर से, लहूलुहान हो गया है। लेकिन मस्त है मस्ती में। वह हरे कृष्ण हरे राम की ही धुन लगाये हुए है। तो मुझे भागना पड़ा। उसकी रक्षा की जरूरत है।

रुक्मिणी ने कहा : यह मेरी समझ में आया; फिर लौट क्यों आये?

कृष्ण ने कहा : लौटना पड़ा क्योंकि जब तक मैं दरवाजे पर पहुंचा तब तक उसने खुद ही पत्थर उठा लिया और उसने कहा कि ऐसी की तैसी तुम्हारी! वह भूल-भाल गया मुझे तो। अब तो वह खुद ही पत्थर का जवाब पत्थर से दे रहा है। लोगों को भगाये दे रहा है खुद ही। अब तो उसने अपना जीवन अपने हाथ में ले लिया। अब मेरी कोई जरूरत न रही। अब तो उसका अहंकार वापिस लौट आया है।

बारीक है मामला। जरा में अहंकार वापिस लौट सकता है, जाते-जाते लौट सकता है। लगता हो कि दूर निकला गया, फिर भी लौट सकता है।

सेवा को फल जोग है भक्तबस्य भगवान।

केवल पूरन ब्रह्म है, भीखा एक न दोइ।

भीखा कहते हैं : केवल एक परमात्मा है, न तो कोई दूसरा है, न कोई दूसरा हो सकता है। और चूंकि दूसरा भी नहीं है इसलिए एक और महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं : भीखा एक न दोइ। जब दूसरा नहीं है तो एक भी कैसे कहें? एक कहने से दो की शुरुआत होती है। एक कहो तो फिर संख्या की यात्रा शुरू हो गयी। बस भगवान है। न तो एक कह सकते हैं न दो।

इसीलिए भारत ने एक नया शब्द खोजा—अद्वैत। अद्वैत का मतलब समझे? अद्वैत का मतलब यह नहीं कि एक है, अद्वैत का मतलब इतना कि दो नहीं है। इतना ही कह सकते हैं ज्यादा-से-ज्यादा कि दो नहीं है। एक कहने में भूल हो जाएगी। एक कहने में दो की गिनती समाविष्ट हो जाती है। एक में कोई अर्थ ही न होगा अगर दो न हो। इसलिए दो नहीं है इतना ही कह सकते हैं। पर भीखा और भी मीठी बात कह रहे हैं, वे कह रहे हैं : भीखा एक न दोइ... न तो एक है, न दो है—बस है। गिनती में नहीं आता। गिनती में नहीं आ सकता। गणना के पार है। विचारातीत है।

धन्य सो भाग जो हरि भजै, ता सम तुलै न कोइ।।

ऐसे परमात्मा को जो न एक है न दो, जिसने जान लिया, वह धन्यभागी है, बड़भागी है। उसकी तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती। सम्राट उसके सामने भिखारी हैं, धनी उसके सामने दरिद्र हैं। उसे मिल गया राज्यों का राज्य, पदों का पद। उसने पा लिया परमात्मा को तो पा लिया सब। अब पाने को कुछ भी शेष नहीं रहा। परमात्मा को पाते ही सब पा लिया जाता है। जिन्होंने परमात्मा को नहीं पाया, उन्होंने कुछ भी नहीं पाया और जिन्होंने परमात्मा को पाया, उन्होंने सब पा लिया है।

गुरु-परताप साध की संगति !

आज इतना ही।
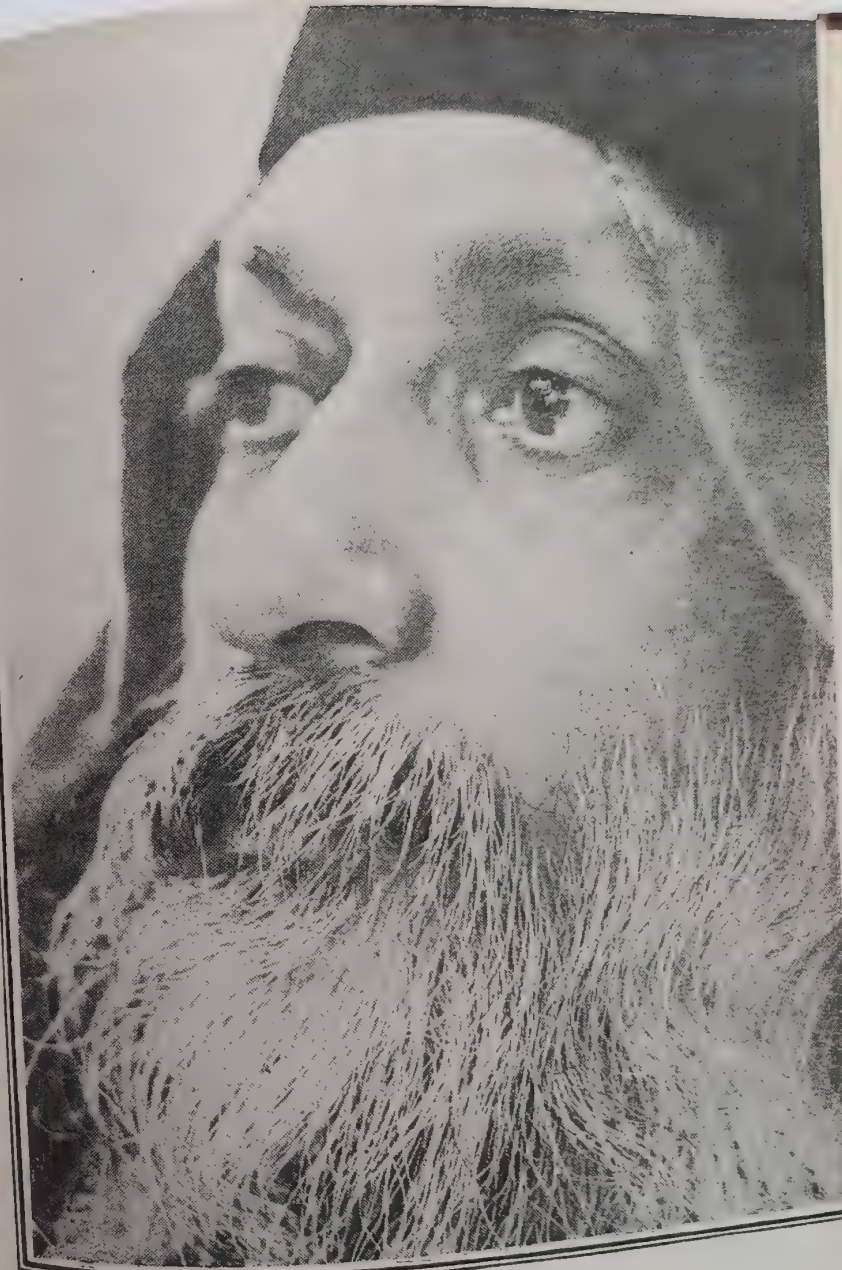
तिमिर में सूर्य का मुखड़ा

आठवां प्रवचन; दिनांक २८ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

भगवान ! सुबह कब होगी ?

भगवान ! आपको याद होगा, आपने द्वारका शिविर में कहा था : 'जीवन बार-बार नहीं मिलता । मैं तुझे मोक्ष दूंगा । जैसा कहूं वैसा करना।'

प्रभु ! मोक्ष तो दूर, अब तक बम्बई और पूना के चक्कर काट रही हूं । और आज आपने स्वर्ग और नर्क की बात की, वह भी मेरे से अनजान है । पर यह जो अहर्निश सुमरन हो रहा है, इस पर तो मेरा वश नहीं है।

अपन दोनों पूना में ही भले हैं । जीवन मजाक और हंसी से ज्यादा कहां है !

भगवान ! इस देश के राजनेता देश को कहां लिए जा रहे हैं ? समाजवाद का क्या हुआ ?

पहला प्रश्न : भगवान ! सुबह कब होगी ?

★ सत्यानंद ! सुबह हो गयी है । सुबह ही है । रात थी कब ? आंखें बंद रखीं तो अंधेरा है, आंखें खोलीं तो उजेला है । परमात्मा का सूरज तो निकला ही हुआ है। उस लोक में कभी रात्रि नहीं होती; वहां सतत आलोक है, अविच्छिन्न आलोक की धारा है। लेकिन हम आंखें बंद रखें तो अमावस रहेगी और हम आंखें खोल लें तो पूर्णिमा है । पूर्णिमा थी ही, सिर्फ हम आंख बंद किये थे ।

सूफी फकीर राबिया एक मस्जिद के सामने से गुजरती थी और सालिक नाम का फकीर मस्जिद के द्वार पर दुआ में हाथ फैलाये परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था । सालिक कह रहा था : हे प्रभु ! अब द्वार खोलो । कब तक पुकारूं ? सुनो मेरी, बहुत देर हो गयी, अब द्वार खोलो । मैं सिर पटक-पटक कर पुकार रहा हूं कि द्वार खोलो ।...

राबिया ठिठकी, सालिक के पास गयी, कंधा पकड़ कर हिलाया और कहा : क्या बकवास कर रहे हो सालिक, द्वार खुले हैं । द्वार बंद कब थे ? आंखें खोलो।

लेकिन मनुष्य की एक बुनियादी भ्रांति है--वह दोष अपने पर नहीं लेता, दोष दूसरों पर टाल देता है । जो दोष दूसरों पर टाल देता है, उसकी जिंदगी में कभी सबेरा नहीं होगा । जो दोष अपने पर ले लेता है, उसकी जिंदगी में सबेरा होने लगा, पहली किरण फूट ही गयी ।

और यह मन की तरकीब इतनी प्राचीन है और इतनी गहरी और इतनी सूक्ष्म कि एकदम से पकड़ में नहीं आती । मन कहता है : रात है, हम क्या करें ? मन यह मानने को राजी नहीं कि हमने आंख बंद कर रखी हैं इसलिए रात है । मन कहता है : भाग्य है, हम क्या करें ? मन यह मानने को राजी नहीं कि हमारे चुनाव

गलत हैं, हमारे निर्णय भ्रांत हैं, हमारा बोध सोया हुआ है, इसलिए जीवन में दुख है, भाग्य के कारण नहीं।

जीवन में दुख हो तो भी कारण तुम हो और जीवन में सुख हो तो भी कारण तुम हो—जीवन में कुछ भी हो कारण तुम हो। सत्यानंद, यह बात तीर की तरह हृदय में चुभ जाने दो—मैं कारण हूं। और जिस व्यक्ति को यह स्मरण आने लगा कि मैं कारण हूं, उसके जीवन में धर्म की शुरुआत हो गयी। दूसरे कारण हैं—यह राजनीति; मैं कारण हूं—यह धर्म। दूसरों पर टाल देना फिर वह ईश्वर हो, भाग्य हो, प्रकृति हो, समाज हो, राज्य हो—दूसरों पर टाल देना राजनीति है। और मन बड़ा कुशल राजनीतिज्ञ है। मन चाणक्य है। मन मेक्यावेली है। मन बहुत सूक्ष्म चालबाजियां करता है—दूसरे तो पहचान ही न पाएंगे, तुम ही न पहचान पाओगे।

मत पूछो कि सुबह कब होगी। पूछो कि मैं आंख कैसे खोलूं, तो तुमने ठीक प्रश्न पूछा। सुबह कब होगी, तुमने प्रश्न टाल दिया; अब तुम क्या करोगे जब होगी सुबह तब होगी। मगर बुद्ध को पच्चीस सौ साल पहले हो गयी और तुम्हें अब तक नहीं हुई! और नानक को पांच सौ साल पहले हो गयी, तुम्हें अब तक नहीं हुई! और मुहम्मद को चौदह सौ साल पहले हो गयी, तुम्हें अब तक नहीं हुई! जब बुद्ध को सुबह हुई तो और करोड़ों लोग थे बुद्ध के आसपास, उनको सुबह नहीं हुई!

जरूर मामला सुबह का नहीं है, मामला आंख का है। और करोड़-करोड़ लोग थे—आंख बंद रखी तो रात ही रही, बुद्ध ने आंख खोली तो सुबह हुई। जब आंख खोलो तब सुबह।

कहानी मैंने सुनी है। एक गांव में एक नास्तिक था। बड़ा तार्किक, बड़ा बौद्धिक। गांव के आस्तिक उससे हार चुके थे। गांव के महात्मा, पंडित, पुरोहित, सब उससे हाथ जोड़ लिए थे। आखिर एक परिव्राजक संन्यासी गांव में आया। उस नास्तिक ने उससे भी विवाद किया। उस संन्यासी ने कहा कि मुझसे न करो विवाद, मुझसे समय न गंवाओ; मुझे खुद ही पता नहीं है, खोज रहा हूं, कह नहीं सकता कि ईश्वर है, इसलिए यह तो कैसे कहूं कि तुम गलत हो। मुझे सत्य का खुद को ही पता नहीं है। लेकिन एक आदमी है जो जानता है। तुम वहां चले जाओ। व्यर्थ यहां समय खराब न करो—अपना और दूसरों का। उस आदमी से तुम्हें मिल जाएगा। अगर जवाब मिल सकता है तो उस आदमी से मिल सकता है। और मैं सारा देश घूम चुका हूं, बस वह एक आदमी है जो तुम्हें तृप्ति दे दे तो दे दे, न दे तो समझना कि तृप्ति तुम्हारे भाग्य में ही नहीं है।

'कौन वह आदमी है?' पूछा उस नास्तिक ने।

तो उसने एक फकीर का नाम लिया। चल पड़ा नास्तिक उस फकीर की तलाश में। वह फकीर एक मंदिर में ठहरा हुआ था। सुबह हुए तो देर हो चुकी

थी, अब तो नौ बज रहे थे। सारी दुनिया जाग गयी थी। आलसी से आलसी भी जाग गये थे और फकीर अभी मस्त नींद में सोया हुआ था। इतना ही नहीं, शंकरजी की पिंडी पर पैर रखे हुए था।

नास्तिक की तो छाती दहल गयी। उसने कहा: यह तो कोई महा-नास्तिक है। मैं विवाद करता हूं जरूर, ईश्वर नहीं है, ऐसे तर्क भी देता हूं लेकिन शंकरजी की पिंडी पर पैर रखकर लेटने की हिम्मत मेरी भी नहीं, पता नहीं, कौन जाने, ईश्वर हो ही, फिर पीछे झंझट आये। तर्क और विवाद तो ठीक है मगर कृत्य... ऐसा नास्तिक कृत्य तो मैं भी नहीं कर सकता। इस आदमी ने भी किसके पास भेज दिया! यह तो महागुरु है, हमसे भी बहुत आगे गया हुआ है। और यह कोई समय है संन्यासी के सोने का? सारी दुनिया जग गयी। आलसी से आलसी आदमी भी जग गया। जो रात आधी रात तक जागा था, वह भी जग गया। और ये महापुरुष अभी सो रहे हैं! और शास्त्र कहते हैं कि जाग जाना चाहिए साधक को ब्रह्ममहूर्त में। और इनके संबंध में मुझे बताया गया कि ये साधक नहीं सिद्ध हैं।

झकझोर कर फकीर को जगाया। फकीर ने आंख खोली। उस नास्तिक ने पूछा कि पूछने तो बहुत प्रश्न हैं लेकिन पहले दो प्रश्न जो अभी-अभी उठे हैं और ताजे हैं। पहला तो यह कि साधु-संन्यासियों को ब्रह्ममहूर्त में उठना चाहिए, आप अब तक क्यों सो रहे हैं?

वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा: मैंने एक राज समझ लिया है कि जब आंख खोलो तब ब्रह्ममहूर्त। और तो कोई ब्रह्ममहूर्त है ही नहीं। जब तक आंख बंद तब तक रात। हम ब्रह्ममहूर्त में नहीं उठते, हम जब उठते हैं तब ब्रह्ममहूर्त होता है।

यह बात बड़ी गहरी है। ऊपर से तो लगे कि जैसे फकीर मजाक कर रहा है, हल्की-फुल्की बात कह रहा है। लेकिन उसने सारे शास्त्रों का सार कह दिया। सारे सद्गुरुओं का निचोड़ इतना ही है कि आंख खोलो तो सुबह और आंख बंद रही तो रात।

नास्तिक ने कहा कि मेरा मुंह बंद कर दिया। मेरा मुंह आज तक कोई बंद नहीं कर सका। मगर मैं अब तुमसे क्या कहूं! तुम भी ठीक ही कह रहे हो। और दूसरा प्रश्न—शंकरजी की पिंडी पर पैर क्यों रखे हो?

तो उस फकीर ने कहा: और कहां पैर रखूं? जहां है वहीं है। जहां पैर रखूं उसी के सिर पर पड़ते हैं। यह पृथ्वी भी उसी का पिंड है। यह छोटी-सी पिंडी है, यह जरा बड़ा पिंड है। और बड़े पिंड हैं, महापिंड हैं—सूरज है, महासूर्य है। कहां पैर रखूं? आखिर कहीं तो रखूं? पैर दिये हैं तो कहीं तो रखूंगा? और तू कौन है पूछने वाला? जब मुलाकात मेरी होगी तो आमने-सामने बात हो लेगी कि पैर क्यों

दिये थे ? पैर दिये थे तो कहीं तो रखूंगा ! और फिर पिंडी में शंकर हैं, और मेरे पैरों में नहीं ? पत्थर में शंकर हैं, और मुझ जीवित देह में नहीं ? जब से जागा हूं तब से वही बाहर है, वही भीतर है--बस वही है।

मत पूछो सत्यानंद कि सुबह कब होगी। पूछो कि आंख कैसे खोलूं ! टालो मत। कारण तुम हो। समझा तुम्हारे प्रश्न को और तुम्हारी पीड़ा को भी समझा। क्योंकि ऐसे प्रश्न पीड़ा से उठते हैं, जिज्ञासा से नहीं। तुम पूछते हो : भगवान, सुबह कब होगी ? ऐसे प्रश्नों में आंसू हैं। ऐसे प्रश्नों में पीड़ा है, प्रार्थना है। ऐसे प्रश्नों में इस बात का बोध है कि घना अंधेरा है। और कब तक, और कब तक ? कब तब जिये चलें अंधेरे में और टकराये चलें और गिरते चलें ? कब तक टटोलते रहें ? कब होगा अनुभव ? कब होगी प्रतीति ? कब वे क्षण आएंगे जब हम भी सम्हल जाएंगे ? यह सब छिपा है तुम्हारे प्रश्न में।

मगर घबड़ाओ मत; रात जितनी अंधेरी होती है, उतना ही सुबह करीब होता है। सद्गुरुओं के पास जाओगे, पहले तो रात अंधेरी होनी शुरू हो जाएगी। क्योंकि रात का अंधेरा होना ही सुबह होने को करीब लाता है। रात के गर्भ में ही तो सुबह पकती है।

अगर पंडित-पुरोहितों के पास जाओगे तो सांत्वना मिलेगी। अगर सद्गुरुओं के पास जाओगे तो थोड़ी-बहुत जो सांत्वना थी वह भी छिन जाएगी; थोड़ा-बहुत जो संतोष था वह भी लुट जाएगा। हमने तो भगवान को भी हरि कहा है। हरि यानी चोर। हरि यानी हरण कर लेने वाला। हरि यानी लूट ले जो। तो सद्गुरु तो उसी के प्रतिनिधि हैं; वे भी खूब लूटते हैं--तुम्हारी सांत्वना लूट लेंगे, तुम्हारा संतोष लूट लेंगे, तुम्हारी मान्यता, तुम्हारी आस्था, तुम्हारी श्रद्धा, तुम्हारा सब थोथा जिसे तुमने अब तक जीवन समझा है और जिसे तुमने अब तक सम्पदा समझा है—सब लूट लिया जाएगा। लूटने की तैयारी हो तो ही सद्गुरुओं से सत्संग हो सकता है। और जब ये सब झूठा लुट जाएगा तो तुम्हारे भीतर सत्य की अभिव्यक्ति होगी।

तो पहले तो जाकर पता चलेगा कि हम जो मानते थे सब गलत है। मानते थे तो थोड़ा भरोसा था। सब गलत है, तो हाथ एकदम खाली हो गये, अंधेरा और घना हो गया। मानते थे सब गलत है—सुना हुआ सब गलत है; पढ़ा हुआ सब गलत है; शास्त्रों को रट लेना तोतों जैसी रटंत है—सद्गुरुओं के पास जब यह पता चलेगा तो तुम्हारी जमीन खिसकने लगी; तुम्हारे पैर के नीचे से जमीन हटने लगी; तुम गिरने लगे अतल में। और अंधेरा घना होता मालूम पड़ेगा, पर घबड़ाना मत। इसके पहले कि तुम्हें सांत्वना मिले, झूठी सांत्वना छूट जानी जरूरी है। इसके पहले कि तुम्हें सत्य मिले, मिथ्या भरोसे, विश्वास छूट जाने जरूरी हैं। इसके पहले कि

श्रद्धा का फूल खिले, विश्वासों के पत्थर हट जाने जरूरी हैं। विश्वास तो होता है उधार; श्रद्धा होती है स्वयं की। विश्वास होता है किसी का दिया हुआ; श्रद्धा होती है अपने अनुभव की

इसके पहले कि तुम जाग सको, बहुत कुछ छीना जाएगा। और जैसे-जैसे तुम्हारा पुराना घर गिरेगा तुम घबड़ाओगे; तुम आये थे घर को सजाने, घर को बड़ा करने; तुम आये थे घर को और सुरक्षित बनाने—टूटने लगा, एक-एक ईंट गुरु खींचता जाएगा। लेकिन पुराना घर गिराना ही होगा, तभी नया घर बनाया जा सकता है। पुराना जब तक छूट न जाए तब तक नये के होने की कोई संभावना नहीं।

एक चर्च बहुत पुराना हो गया था--जराजीर्ण, गिरने के करीब, अब गिरा तब गिरा। हवा के झोंके आते थे तो चर्च कंपता था। चर्च के भीतर कोई जाकर उपासना करने को राजी नहीं था--कब गिर जाए ! इतनी जोखिम चर्च जाने वाले लोग नहीं लेते। चर्च जाने वाला जोखिम लेने नहीं जाता, सुरक्षा खोजने जाता है। आखिर चर्च के पंचों को बैठक बुलानी पड़ी कि अब कुछ करना ही होगा। और चर्च बहुत पुराना था। और पुराने से मोह होता है। जितना पुराना हो उतना मोह होता है। बड़ा मोह था उसे बचाने का लेकिन अब बचने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता था। अब उपासक आने ही बंद हो गये थे। अब तो चर्च का पादरी भी भीतर जाते डरता था, कंपता था; जाता भी था तो जल्दी बाहर निकल आता था। आकाश में बादल गड़गड़ाते, मेघ घुमड़ते तो लोग घर के बाहर निकलकर देखते कि चर्च बचा कि गिर गया !

पंचायत बैठी लेकिन पंच भी चर्च के भीतर बैठक नहीं बुलाये, वे भी चर्च से काफी दूर एक झाड़ के नीचे मिले। बड़ा विरोध था। अनेकों ने विरोध किया कि पुराना चर्च, इतना प्राचीन, बाप-दादों की धरोहर, सदियों-सदियों का अनुभव, सदियों-सदियों की प्रीति, ऐसे गिराया नहीं जा सकता। मगर फिर उपासक कोई आते भी नहीं तो चर्च का प्रयोजन क्या, गिराना तो होगा ही। तो फिर उन्होंने कुछ प्रस्ताव पास किये। पहला प्रस्ताव था कि हम बहुत दुखी हैं, मजबूरी है, हे प्रभु हमें क्षमा करना, इस पुराने चर्च को गिराने का हम प्रस्ताव करते हैं। लेकिन तत्क्षण अपराध-भाव से पीड़ित वे थे, दूसरा प्रस्ताव उन्होंने किया कि नया चर्च बनाएंगे और बिलकुल पुराने जैसा बनाएंगे, ठीक हूबहू यही होगा, ऐसा ही होगा। लेकिन अपराध-भाव बड़ा था, इतनी पुरानी चीज को तोड़ने जा रहे थे, तो तीसरा प्रस्ताव किया कि नया चर्च बनाएंगे तो पुराने चर्च की ही ईंट, द्वार, दरवाजे, खिड़कियां, कांच, सब पुराने चर्च के ही लगाएंगे, नयी एक चीज जरा भी न लगाएंगे। लेकिन अपराध-भाव बहुत गहरा था, तो चौथा प्रस्ताव उन्होंने पास किया कि जब

तक नया न बन जाएगा, तब तक पुराने को गिराएंगे नहीं।

हमारे मोह शब्दों से, सिद्धांतों से, शास्त्रों से, मंदिर-मस्जिदों से, ऐसे सघन हैं कि तुम जब पंडित-पुरोहितों के पास जाते तो वे तुम्हारे मोह को ही मजबूत करते हैं; तुम्हारे संतोषों को ही और पानी सींच देते हैं, और थोड़ी टेक लगा देते हैं कि गिर न जाएं—पुराने मंदिरों में ही टेक लगा देते हैं। मेरे पास तो पुराना गिरेगा, और नया बन जाए तब पुराना गिरेगा, इतनी देर हम रुक सकते नहीं; पुराने को गिराना ही नये को बनाने का पहला कदम है। और नया नयी ईंटों से बनेगा, पुरानी ईंटों से नहीं। नया बिलकुल नया होगा जिसकी तुम्हें कल्पना भी नहीं है।

तुम्हारे भीतर सच्ची सांत्वना जब पैदा होगी तब तुम चकित होओगे कि जिसको तुमने अब तक सांत्वना समझा था वह सांत्वना नहीं थी, केवल अपने मन को समझा लिया था, अपने अज्ञान को ढांक लिया था, अपने घाव पर फूल रख लिया था गुलाब का। लेकिन गुलाब के फूल रखने से घाव मिटता नहीं और न मवाद समाप्त होती है। फूल रखने से और बढ़ेगा, मवाद और बढ़ेगी क्योंकि घाव छिप जाएगा, आंख से ओझल हो जाएगा। भूलकर भी घावों पर फूल मत रखना।

मेरे पास आये हो तो रात तो अंधेरी होगी, रोज-रोज अंधेरी होगी। जैसे-जैसे मैं तुमसे छीनूंगा—तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारे विश्वास, तुम्हारी मान्यताएं—वैसे-वैसे तुम लगोगे कि और अंधेरे में भटकने लगे; कुछ थोड़ी-सी रोशनी दिखाई पड़ती थी वह भी हाथ से छूटी जा रही है। परायी रोशनी रोशनी नहीं है, उसका छूट जाना शुभ है। और जिस दिन कोई रोशनी न रह जाएगी तुम्हारे हाथ में परायी, उस दिन तुम्हें पीड़ा में आंखें खोलनी ही पड़ेंगी।

जब किसी को हम सोते से जगाते हैं तो उसे पीड़ा होती है, पीछे चाहे धन्यवाद दे कि धन्यवाद, आभारी हूं कि मुझे जगा दिया। लेकिन जब हम जगाते हैं तो उसे पीड़ा होती है क्योंकि वह मीठे सपने देख रहा है। पता नहीं सपने में सम्राट हो। पता नहीं सपने में सुंदर रानियां हों। पता नहीं सपने में सोने के महल हों। पता नहीं सपनों में स्वर्ग पहुंच गया हो, कल्पवृक्षों के नीचे बैठा हो। पता नहीं सपनों में कहां की यात्राएं कर रहा हो।...

सपने प्रीतिकर हो सकते हैं। और नींद सुखद हो सकती है। और सुबह-सुबह की नींद तो बड़ी सुखद होती है। और एक करवट लेकर आदमी सो जाना चाहता है। एक झपकी और। और जब तुम किसी को जगाते हो सुबह-सुबह तो उसे नाराजगी पैदा होती है। यह भी हो सकता है कि सांझ तुमसे कहा हो कि सुबह मुझे उठा देना, लेकिन सुबह जब तुम उठाओगे तो वह कुछ प्रसन्न नहीं होने वाला है, नाराज ही होगा।

जर्मनी का प्रसिद्ध विचारक हुआ इमेनुअल कांट। वह बड़ा नियमबद्ध आदमी

था, घड़ी के कांटे की तरह चलता था। कहते हैं लोग उसे जब विश्वविद्यालय जाते देखते थे—विश्वविद्यालय में शिक्षक था—तो लोग अपनी घड़ियां ठीक कर लेते थे। तीस साल तक निरंतर उसका विश्वविद्यालय जाना ठीक एक-एक क्षण के हिसाब से बंधा हुआ था, लोग उसे देखते और घड़ी मिला लेते। उसने कभी देर की ही नहीं। वह कभी एक गांव को छोड़कर दूसरे गांव नहीं गया। एक बार तो विश्वविद्यालय जाते हुए—कीचड़ थी रास्ते में—एक जूता उसका कीचड़ में फंस गया तो उसने उसे निकाला नहीं क्योंकि निकाले तो मिनट आधा मिनट देर हो जाए; उसे वहीं छोड़ दिया, एक ही जूता पहने हुए विश्वविद्यालय पहुंचा।

पूछा उससे कि दूसरे जूते का क्या हुआ?

तो उसने कहा: वह कीचड़ में उलझ गया; वह लौटते वक्त अगर बचा रहा, कोई न ले गया तो कोशिश करूंगा, लेकिन अभी देर हो जाती। आधा मिनट की शायद देर हो जाती।

वह बिलकुल लकीर का फकीर आदमी था। दस बजे सोना तो दस बजे सोता था। फिर दस बजे अगर मेहमान भी बैठे हों तो उनसे यह भी नहीं कहता था कि भाई, अब मैं सोता हूं। इतनी देर भी नहीं कर सकता था। मेहमान बैठे रहें वह जल्दी से उचककर अपने बिस्तर में होकर कम्बल ओढ़ ले। लोग जानते थे उसकी आदतें। नौकर आकर कहता था कि अब आप जाइए; वे तो सो गये।

सुबह चार बजे उठता था। एक तो जर्मनी और सुबह चार बजे उठना—भारत हो तो चले—बड़ा मुश्किल काम था। लेकिन नौकर से उसने कह दिया था चाहे मार-पीट भला हो जाए, मैं चाहे गाली दूं, चाहे मारूं, मगर उठाना है चार बजे सो चार बजे उठाना है। उसके पास नौकर नहीं टिकते थे। सिर्फ एक ही नौकर था मजबूत जो उसके पास टिका। वह उसके ऊपर निर्भर हो गया था, बिलकुल निर्भर हो गया था। क्योंकि दूसरा नौकर कौन टिके! एक तो चार बजे नौकर को उठाना तो उसको साढ़े तीन बजे, तीन बजे उठना पड़े, तैयार होना पड़े, फिर इसको उठाना। और उठना बड़ी जद्दोजहद की बात क्योंकि वह मारे और चिल्लाये और उपद्रव करे। और उसी ने कहा है कि उठाना और यह भी कह दिया है कि मारूंगा भी, चिल्लाऊंगा भी। और अगर तुम्हें भी मुझे मारना पड़े तो मारना मगर छोड़ना मत, उठाना तो है चार बजे तो चार बजे।

लोग इतनी बड़ी मात्रा में तो लकीर के फकीर नहीं हैं मगर छोटी मात्राओं में सब लकीर के फकीर हैं। आदतें बना ली हैं। परमात्मा को स्मरण करना भी तुम्हारी आदत हो सकती है। सत्य के संबंध में प्रश्न पूछना भी आदत हो सकती है। शास्त्र को पढ़ लेना भी आदत हो सकती है। पूजा, प्रार्थना, ध्यान कर लेना भी आदत हो सकती है।

और आदत से कोई सत्य तक नहीं पहुंचता। आदत तो यांत्रिकता है। फिर किसी को शराब पीने की तलब लगती है, और किसी को सिगरेट पीने की तलब लगती है, और किसी को भजन करने की तलब लगती है, मगर तलब तो तलब है, अच्छी और बुरी से कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम अगर रोज सुबह उठकर भजन कर लेते हो और एक दिन न करोगे तो दिन-भर कुछ खाली-खाली लगेगा। उस खाली-खाली लगने को तुम यह मत समझना कि तुम्हारे जीवन में भजन फलित हो गया है इसलिए खाली-खाली लग रहा है। वह तो किसी को भी लगता है। तुम कोई भी उपद्रव पकड़ लो—सुबह उठकर कुर्सी को सात दफे बायें से दायें रखना, दायें से बायें रखना, यह भी अगर तुम रोज करो और एक दिन न करो तो दिन-भर याद आएगी कि आज कुर्सी को सात दफे उठाया नहीं, रखा नहीं। फिर चाहे माला फेरो, चाहे मंत्र पढ़ो, कोई अंतर नहीं है।

सवाल तुम क्या करते हो, इसका नहीं है; सवाल तुम कितने होश से भरे हो, इसका है। इसलिए सुबह कैसे होगी, आंख कैसे खुलेगी—इसका पहला चरण तो यह होगा कि तुम से तुम्हारी सारी आदतें छीन ली जाएं। तुम्हारी सारी टेकें जिनके सहारे तुम खड़े हो हटा ली जाएं। तुम्हारी बैसाखियां छीन ली जाएं। निश्चित ही, बैसाखियां छिनेंगी तो तुम एकदम से गिर पड़ोगे। मगर वह गिरना अच्छा है क्योंकि वह अपने पैर पर खड़े होने की पहली शुरुआत है। रात तो अंधेरी होगी। सद्गुरु के पास आओगे तो पहले तो अमावस हो जाएगी। लेकिन अगर हिम्मत रखी और साहस रखा और अमावस को भी स्वीकार कर लेने के लिए छाती तुम्हारी बड़ी हुई तो पूर्णिमा के होने में देर नहीं लगेगी। पूर्णिमा होने के पहले अमावस होनी जरूरी है।

> रात डूबी, चांद ऊबा, पश्चिमा के अंक
> नीलिमा के निपट दलदल में फंसा आकंठ
> दिवस ऊगा है न पूरा, छा रहा आतंक;
> चार पंछी चहचहाते भर रहे हैं पंख।
>
> फट रही चादर पुरानी है अंधेरे की
> मर गयी नीली गुलामी के लहू सी दूब,
> यह घड़ी ऐसी अजब हम हार जाते ऊब;
> बज रहे ताले खुली जंजीर घेरे की।
>
> चांद डूबा है, उजेला भी टहलता है,
> बीत जाएगा उमस उकताहटों का क्या?
> रंग वर्षा में पुराने पाश तोड़े आ।

> देख तो खामोश नजरों में तहलका है।
>
> दुख कीचड़ में धंसे का रो नहीं दुखड़ा
> तैर आवेगा तिमिर में सूर्य का मुखड़ा।

आज तो कीचड़ है, घबड़ाओ मत, दुख की कीचड़ है, दुख का अंधेरा है—

> दुख कीचड़ में धंसे का रो नहीं दुखड़ा,
> तैर आवेगा तिमिर में सूर्य का मुखड़ा।

घबड़ाओ मत; अंधेरा जितना सघन हो रहा है, सूरज आता ही होगा, द्वार पर दस्तक देने ही वाला है।

> दुख कीचड़ में धंसे का रो नहीं दुखड़ा,
> तैर आवेगा तिमिर में सूर्य का मुखड़ा।

जल्दी ही सूर्य के दर्शन होंगे। लेकिन जब मैं कहता हूं जल्दी ही सूर्य के दर्शन होंगे, तो तुम मेरी बात को गलत मत समझ लेना; मेरी बात को गलत समझने की बहुत सुविधा है। जब मैं कहता हूं जल्दी ही सूर्य के दर्शन होंगे, तो तुम कहीं जल्द-बाजी में न लग जाना; कहीं तुम आतुरता से न भर जाना; कहीं तुम अशांत न हो जाना, अधैर्यवान न हो जाना। जल्दी ही सूरज निकलेगा लेकिन जल्दी उनका निकलता है—शर्त समझ लो—जो धैर्य रखते हैं। और जो जितना अधैर्य रखते हैं उतनी देर हो जाती है। धैर्य अनिवार्य गुण है साधक का, आधारभूत गुण है।

जल्दी नहीं करनी है। ध्यान करो! होश को जगाओ! व्यर्थ के कूड़े-करकट से अपने को मुक्त करो! सुबह होगी, जल्दी ही होगी मगर तुम जल्दी मत करना, नहीं तो देर हो जाएगी। तुम्हें भी अनुभव है इस बात का—जब भी तुम जल्दी करते हो तब देर हो जाती है। तुमने देखा—ट्रेन पकड़नी है और तुम जल्दी में हो, तो कोट का बटन ऊपर का नीचे लग जाता है, फिर से खोलो, फिर से लगाओ, और देर हो गयी। इतनी जल्दी है कि सूटकेस में कुछ का कुछ रख लेते हो, फिर खोलो, निकालो, जो रखना था वह बाहर रह गया, जो नहीं रखना था वह भीतर चला गया। इतनी जल्दी है कि सामान लेकर नीचे भागते हो, कुछ सामान घर ही छूट गया। वह स्टेशन पर जाकर पता चलता है कि टिकट तो घर ही भूल आये। जितनी जल्दी करोगे... जल्दी का मतलब होता है तुम बेचैन हो गये और बेचैनी में भूलचूक हो जानी बिलकुल स्वाभाविक है।

जितना धैर्य रखोगे, जितने शांत, उतनी ही जल्दी होगी। और जितनी जल्दी करोगे, उतनी ही जल्दी की संभावना कम है। फिर जीवन अनंत है, क्या जल्दी? आज जागे, कल जागे। कब जागे कोई फर्क नहीं पड़ता, अनंत काल है। जिस दिन

जागोगे उस दिन ऐसा थोड़े ही लगेगा कि बुद्ध पच्चीस सौ साल पहले जागे और तुम पच्चीस सौ साल बाद जागे। पच्चीस सौ साल की क्या गणना है, इस अंतहीन समय की यात्रा में! पृथ्वी को बने वैज्ञानिक कहते हैं चार अरब वर्ष हो गये। चार अरब वर्षों में पच्चीस सौ साल की क्या गणना है! और पृथ्वी बहुत नया-नया ग्रह है। सूरज को बने कोई हजार अरब वर्ष हो गये। और सूरज कोई बहुत पुराना सूरज नहीं है, उससे भी पुराने सूर्य हैं। ऐसे भी सूर्य हैं जिनकी अब तक गणना नहीं बिठायी जा सकी कि वे कितने पुराने हैं! इस अंतहीन विस्तार में पच्चीस सौ साल का क्या हिसाब--पलक मारते बीत गये ऐसा लगेगा। जब तुम जागोगे तब तुम्हें ऐसा लगेगा कि बुद्ध जागे और मैं जागा, बीच में पलक शायद झपकी।

तुमने फिल्मों में देखा न समय की गति को बताने के लिए केलेन्डर की तारीखें एकदम बदलती जाती हैं, महीने बदलते जाते हैं, घड़ी का कांटा तेजी से घूमता जाता है--समय की गति बताने के लिए। मगर अगर अनंत को हम ख्याल में रखें तो पच्चीस सौ साल ऐसे बीत जाते हैं जैसे पल बीता। हजारों साल का कोई हिसाब नहीं।

इस विस्तीर्ण जगत में तुम्हारी जल्दबाजी सिर्फ नासमझी है। और तुम अपनी जल्दबाजी में सब खराब कर लोगे; कुछ का कुछ हो जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन बाथरूम से जोर से आवाज दी अपनी पत्नी को कि दौड़, जल्दी आ; जिसका डर था वह बात हो गयी। पत्नी आयी तो मुल्ला बिलकुल झुका खड़ा है, कमर झुकी हुई है। किसी तरह सम्हाल कर मुल्ला को ले जाकर बिस्तर पर लिटाया। पूछा कि हुआ क्या?

मुल्ला ने कहा कि डॉक्टर ने कहा था कभी-न-कभी यह होने वाला है, लकवा लग जाएगा, लकवा लग गया।

डॉक्टर को फोन किया। डॉक्टर भागा हुआ आया। जांच-पड़ताल की। सब ठीक मालूम पड़े। नाड़ी देखी! सब ठीक है। ब्लड-प्रेशर ठीक है। फिर जरा गौर से देखा, फिर हंसने लगा। उसने कहा कि बड़े मियां, कोई और मामला नहीं है, तुमने कोट की बटन पेंट की बटन से लगा ली है इसलिए तुम उठ नहीं पा रहे, घबड़ाओ मत।

मुल्ला की तो कहानी है लेकिन बड़े साहित्यकार अंग्रेजी के, डॉक्टर जान्सन के जीवन में वस्तुतः उल्लेख है। एक भोज में सम्मिलित हैं। उनके ही सम्मान में भोज दिया गया है। लोग भोजन में लगे हैं। और अचानक डॉक्टर जान्सन ने कहा कि भई क्षमा करो, डॉक्टर को बुलाओ; लगता है कि जिस बात का डर था, वह हो गयी बात। डॉक्टरों ने कहा है मुझे कि लकवा लग सकता है। मेरा बायां पैर बिलकुल सुन्न हो गया है। मैं च्यूंटी भी ले रहा हूं तो भी पता नहीं चल रहा है।

तभी बगल की महिला बोली: क्षमा करिए, आप मेरे पैर में च्यूंटी ले रहे हैं, तो पता कैसे चलेगा आपको!

जान्सन जरा पी गया होगा, जरा ज्यादा पी गया होगा। ज्यादा पी जाने पर कहां पता चलता है--कौन अपना पैर और कौन किसका पैर! मगर इतनी याद रह गयी होगी कि डॉक्टरों ने कहा है कभी बुढ़ापे में लकवा लग सकता है।

जल्दी न करना; कोई जल्दी नहीं है--आहिस्ता चलो, हौले-हौले चलो, शनैः-शनैः।

प्राण बहुत जीते हैं,
गीतों के मरने का दर्द बहुत पीते हैं।
प्राण बहुत जीते हैं।
गीतों की लड़ियों से,
तारों के झरने का एक तार टूट गया;
चंदा से, चांदी से,
अंतर की धरती का नाता-सा टूट गया।
सांसों का चरखा है, गरमी है, बरखा है;
इस पर भी तानों में, मुर्दा मुसकानों में,
गान बहुत जीते हैं, प्राण बहुत जीते हैं।

जीतों की लड़ियों से
हारों के झरने का एक तार टूट गया;
हिरनी के छौने-सा,
किसी एक बच्चे के लाड़ले खिलौने-सा,
छूट गिरा हाथों से, सहसा ही फूट गया!
ऐसे में यादें क्या? ढहती बुनियादें क्या?
इस पर भी राहों में, साधों में, चाहों में
दान बहुत जीते हैं, प्राण बहुत जीते हैं।

प्यासों की लड़ियों से
अधरों के झरने का एक तार टूट गया;
लहरों के अंदर की
धानी परछाईं को कोई ज्यों लूट गया।
करती-अनकरती को, वाजिब को, भरती को,
पाला-सा मार गया;
अपनी ही हिम्मत से कोई ज्यों हार गया।

लेकिन, यह पूरब है, नई सांस लेता है;
लेकिन, यह सूरज है, बहुत आग देता है।
ऐसे में ऊबो क्यों ? आहों में डूबो क्यों ?
तुमने क्या देखा है ? लम्बी-सी रेखा है—
बहुत-बहुत प्यारी है, आशा-सी क्वांरी है;
कई मोड़ खाती है, जीवन तक जाती है;
हावों में, भावों में, इसके फैलावों में,
बस्ती तो बस्ती है—
बियावान-निर्जन-बीरान बहुत जीते हैं।

प्राण बहुत जीते हैं।
गीतों के मरने का दर्द बहुत पीते हैं;
प्राण बहुत जीते हैं।

जल्दी नहीं है कोई। यह देह भी जाएगी तो भी तुम नहीं जाने वाले हो। ऐसे तो बहुत देहें आयीं और गयीं, तुमने बहुत रूप धरे। यहां प्रत्येक व्यक्ति बहुरूपिया है। तुमने बहुत वस्त्र, परिधान पहने और छोड़े। तुम न मालूम कितनी बार जनमें और मरे; अंतहीन शृंखला है। इस अंतहीन शृंखला को जो याद रखता है उसकी बेचैनी, उसका तनाव, उसकी अशांति, सब समाप्त हो जाते हैं।

क्या तुमने इस बात का ख्याल किया—पश्चिम में लोग बहुत अशांत हैं, पूरब की बजाय ! होना तो उल्टा चाहिए, पूरब के लोग ज्यादा अशांत होने चाहिए—गरीब हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं; पश्चिम के लोग ज्यादा शांत होने चाहिए—समृद्ध हैं, संपन्न हैं, सुविधाशाली हैं, विज्ञान ने सम्पदा के नये-नये द्वार खोल दिये हैं। पश्चिम के लोग ज्यादा शांत और आनंदित होने चाहिए। पूरब भिखमंगा है, दीन है, दरिद्र है, दुखी है, बीमार है—लेकिन अजीब-सी बात है, पूरब के लोग थोड़े ज्यादा शांत मालूम होते हैं पश्चिम की बजाय। पूरब में कम लोग पागल होते हैं, पश्चिम में ज्यादा लोग पागल होते हैं। पूरब में कम लोग आत्महत्याएं करते हैं, पश्चिम में ज्यादा लोग आत्महत्याएं करते हैं।

कारण क्या होगा ? कारण समझने जैसा है। पूरब में धारणा है अनंत जीवन की, जीवन के बाद जीवन। पूरब जीता है अनंत-काल की छाया में। इसलिए जल्दी क्या, बेचैनी क्या ! आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, इस जन्म नहीं तो अगले जन्म—खूब समय है, अतिशय समय है, जितना चाहो उससे ज्यादा समय है। पश्चिम में समय बहुत कम है इसलिए आपाधापी है। क्योंकि पश्चिम में जो धर्म पैदा हुए—यहूदी, ईसाई, और उन्हीं से जुड़ा हुआ धर्म इस्लाम; उन

तीनों की मान्यता है; एक ही जन्म है।

जिंदगी बड़ी छोटी हो गयी। सत्तर साल की जिंदगी समझो। सत्तर साल में तो पहले पच्चीस साल पढ़ने-लिखने में बीत गये। सत्तर साल में बीस-पच्चीस साल तो सोने में बीत जाएंगे। एक तिहाई तो सोओगे न ! सत्तर साल में बीस-पच्चीस साल तो मजदूरी, रोटी कमाने में लग जाएंगे। बचता क्या है ? हाथ क्या बचता है ? जिंदगी बहुत छोटी है। एक हिस्सा सोने में चला गया, एक हिस्सा रोटी-रोजी कमाने में चला गया, बड़ा हिस्सा पढ़ने-लिखने में चला गया। कुछ थोड़ा-बहुत जो बचा वह पूना से बम्बई की ट्रेन पकड़ो, बम्बई से पूना की ट्रेन पकड़ो, उसमें निकल गया। कुछ थोड़ा-बहुत और बचा तो पत्नी से लड़ो-झगड़ो कि मोहल्ला-पड़ोस के लोगों से बकवास करो। कुछ और बचा थोड़ा-बहुत तो ताश खेलो, शतरंज बिछाओ। मगर बचता क्या है ?

तो एक घबड़ाहट है। जिंदगी भागी जा रही है, हाथ से निकली जा रही है और अभी कुछ हुआ नहीं, और अभी कुछ हुआ नहीं। और अब तक न परमात्मा का दर्शन है, न सुबह हुई, न आनंद के द्वार खुले। अभी तक मंदिर का ही पता नहीं, किन सीढ़ियों को चढ़ें, किन मंदिरों में प्रवेश करें !

इसलिए बहुत घबड़ाहट है। उसी घबड़ाहट का परिणाम है—पश्चिम में बड़ा संताप है। सुख की सारी सुविधा होने पर भी सुखी होने योग्य धीरज नहीं है; लोग भागे जा रहे हैं। गति का अपने-आप में मूल्य हो गया है ! गति का अपने आप में कोई मूल्य नहीं होता, गति का मूल्य होता है अगर कहीं पहुंचो तो। गति का अपने-आप में क्या मूल्य है ? अगर कहीं पहुंचो ही न और कोल्हू के बैल की तरह दौड़ते रहो तो गति का मूल्य है ?

मैंने सुना है एक हवाई जहाज के पाइलट ने यात्रियों को कहा कि क्षमा करें, रास्ता भटक गया है और रास्ता खोजने का यंत्र खराब हो गया है लेकिन घबड़ाएं न। इतना तो बुरा समाचार है कि रास्ता खोजने का यंत्र खराब हो गया है, अब हमें पता नहीं हम कहां हैं और कहां जा रहे हैं—इतना बुरा समाचार है। लेकिन एक अच्छी बात भी है, एक सुसमाचार भी है। सुसमाचार यह है कि हम जहां भी जा रहे हैं, गति से जा रहे हैं, पूरी गति से जा रहे हैं।

लेकिन अगर यही पता न हो कि कहां जा रहे हो, तो कितनी ही गति से जा रहे होओ, क्या फर्क पड़ता है ? गति का क्या मूल्य है ? लेकिन पश्चिम में गति का मूल्य बहुत बढ़ गया है; समय बचता है। और फिर समय बचाकर लोग क्या करते हैं ? पहले समय बचा लेते हैं तो कारों की गति बढ़ती जाती है, ट्रेनों की गति बढ़ती जाती है, हवाई जहाजों की गति बढ़ती जाती है। पहले समय बचाना है, फिर समय बचाकर क्या करना है ? फिर समय काटो क्योंकि समय काटे नहीं कटता।

यह खूब मजा रहा। पहले समय बचाओ, इसके लिए बड़े उपद्रव मोल लो। और फिर इसके बाद जब समय बच जाए तो सिर से हाथ लगाकर सोचो कि अब करना क्या! अब शराब पियो, जुआ खेलो, सिनेमा जाओ, टेलिविजन देखो, ताश खेलो, शतरंज बिछाओ--करो क्या, अब समय बच गया!

लेकिन यह समय बचाने की दौड़ और यह इतना अधैर्य, उस धारणा का परिणाम है जो कहती है बस एक जिंदगी सब कुछ है, एक जिंदगी के बाद फिर कोई जिंदगी नहीं है। पूरब के पास बड़ा विस्तीर्ण समय है। और पूरब की धारणा ज्यादा अस्तित्व के अनुकूल है। एक जिंदगी का क्या मूल्य हो सकता है? और एक जिंदगी आकस्मिक दुर्घटना जैसी आएगी और चली जाएगी।

नहीं, अनंत काल तक आदमी सीखता है, पकता है, प्रौढ़ होता है। यह आदमी की चेतना का बीज कोई छोटा-मोटा बीज नहीं है, इस बीज में परमात्मा छिपा है। मौसमी फूल नहीं है यह, बड़े-बड़े दरख्त जो आकाश छूते हैं, समय लेते हैं बढ़ने में। और यह चेतना का दरख्त तो सबसे बड़ा दरख्त है, यह तो बदलियों के पार जाता है, यह तो आसमानों के पार जाता है, यह तो सात आसमानों को पार करता है और परमात्मा के चरण छूता है। इसलिए जल्दी नहीं।

मत पूछो कि सुबह कब होगी। सुबह होगी। सुबह हो ही गयी है, मेरे हिसाब से सुबह ही है। तुम्हारे हिसाब से नहीं हुई तो तुम्हें आंख खोलने का रास्ता सिखाएंगे। और वही मैं कर रहा हूं कि आंख कैसे खोली जाए। सुबह की चिंता ही नहीं है।

आंख खोलने में दो बातें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। एक--विचारों की भीड़ रहे तो आंख बंद रहती है, विचारों की भीड़ छंट जाए तो आंख खुलने लगती है। पतंजलि कहते हैं: 'निर्विचार हो जाओ तो आंख खुल गयी।' और दूसरी बात--विचार से भी गहरी भाव की दशा है; अगर विचार भी चले जाएं और भावों की तरंगें बनी रहें तो आंख अधखुली ही रहेगी, बस जरा-जरा खुली, एक कोर खुला, थोड़ी-सी सुबह दिखाई पड़ेगी। लेकिन अगर भाव की तरंगें बनी रहीं तो तुम पूरे सूर्य के दर्शन न कर पाओगे। भरोसा आ जाएगा कि सुबह है लेकिन भरोसे के साथ-साथ संदेह भी खड़ा रहेगा क्योंकि आंख जरा-सी खुली है। जितनी खुली है, उतना भरोसा प्रकाश पर; और जितनी नहीं खुली है, उतना भरोसा अंधकार पर। तुम दुविधा में रहोगे, द्वंद्व में रहोगे। आंख पूरी खुलनी चाहिए तो निर्द्वंद्व होता है आदमी।

तो दूसरा सूत्र--निर्भाव हो जाओ। न तो विचार रहे, न भाव रहे। शुद्ध चैतन्य रह जाए दर्पण की भांति, साक्षीमात्र। बस, खुल गयी आंख, हो गयी सुबह।

दूसरा प्रश्न : भगवान! आपको याद होगा, आपने द्वारका शिविर में कहा

था: 'जीवन बार-बार नहीं मिलता। मैं तुझे मोक्ष दूंगा। मैं जैसा कहूं, वैसा करना।'

प्रभु! मोक्ष तो दूर, अब तक बम्बई और पूना के चक्कर काट रही हूं। और आज आपने स्वर्ग और नर्क की बात की, वह भी मेरे से अनजान है। पर यह जो अहर्निश सुमरन हो रहा है, इस पर तो मेरा वश नहीं है।

अपन दोनों पूना में ही भले हैं। जीवन मजाक और हंसी से ज्यादा कहां है!

★ तरु! जीवन तो बार-बार मिलता है, लेकिन परम जीवन बार-बार नहीं मिलता। यह जीवन तो बार-बार मिला है, बार-बार मिलेगा, लेकिन एक और जीवन है, परमात्म-जीवन कहो उसे, परम-जीवन कहो उसे, दिव्य-जीवन कहो उसे, वह बार-बार नहीं मिलता।

मैंने द्वारका में तुझसे उसी जीवन की बात कही थी। वह तो एक ही बार मिलता है। क्यों एक ही बार मिलता है? क्योंकि एक बार मिला कि मिला; फिर छूटता नहीं। यह जीवन तो मिला और छूटा, इसलिए बार-बार मिलता है। यह जीवन क्षणभंगुर है, बबूले की तरह है--बना और फूटा। इधर जन्में, उधर मरे; देर कितनी है! बीच में थोड़ी आपाधापी है, थोड़ी भाग-दौड़ है लेकिन झूले में और कब्र में बहुत ज्यादा फासला नहीं है। जो अभी झूले में है, बहुत जल्दी कब्र में होगा; और जो अभी कब्र में डाला है, देर नहीं लगेगी कि झूले में पहुंच जाएगा। तुम इधर डालकर लौटे भी नहीं कि हो सकता है वे झूले में पहुंच गये हों। और जो झूले में आया है, वह मरने को ही आया है।

यहां जन्म मरण की शुरुआत है और मृत्यु जन्म का द्वार है। यहां जन्म और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

तो यह जीवन तो बहुत बार मिला और बहुत बार छीना गया; बहुत बार मिला और बहुत बार टूटा। इसके मिलने और छीनने में एक राज है। वह राज यह है कि धीरे-धीरे उस परम जीवन की आकांक्षा जगे जो एक बार मिले और फिर न छीना जाए--जो मिले सो मिले; जिसमें बसे तो बसे; जो असली वस्ती हो; जहां से फिर उजड़ना न पड़े; जो असली घर है। फिर वहां से छूटना नहीं होगा, हटना नहीं होगा, कोई निकाल न सकेगा।

इस जगत में तो हम परदेसी हैं। और यह जगत तो एक धर्मशाला है--रात रुके, सुबह चलना है। ज्यादा देर यहां टिकने नहीं दिया जाता। ज्यादा देर यहां रुकने नहीं दिया जाता। यह स्थान रुकने को नहीं है--यह पड़ाव है, यह मार्ग के बीच का पड़ाव है, मंजिल नहीं है। मील के पत्थर के पास थोड़ी देर सो लो लेकिन फिर चलना होगा, फिर आगे बढ़ना होगा।

मैंने तुझसे उस परम जीवन की ही बात कही थी। वह बार-बार नहीं मिलता; वह एक ही बार मिलता है। उस परम जीवन का नाम ही मोक्ष है। क्यों उसे हम

मोक्ष कहते हैं ? उसे मोक्ष कहते हैं क्योंकि जनम-मरण के बंधन से छुटकारा हो जाता है; देह में उतरना नहीं पड़ता। देह में उतरना बड़ा कष्टपूर्ण है। क्यों देह में उतरना कष्टपूर्ण है ? क्योंकि आत्मा है बहुत विराट और देह है बहुत छोटी। इस छोटी देह में उस विराट आत्मा का समाना पीड़ादायी है।

एक पिता अपने बच्चे को नेपोलियन का जीवन पढ़ा रहा था और नेपोलियन के प्रसिद्ध वचन पर आया जहां नेपोलियन कहता है : 'इस जगत में असंभव कुछ भी नहीं।' वह छोटा-सा बेटा हंसने लगा।

बाप ने कहा : तू क्यों हंसता है ? नेपोलियन ठीक कहता है--इस जगत में असंभव कुछ भी नहीं है।

उसने कहा कि मैं एक चीज जानता हूं जो असंभव है।

बाप ने बहुत सिर मारा और सोचा कि कौन-सी चीज होगी जो यह जानता है जो असंभव है। उसने कहा कि नहीं, कोई चीज असंभव नहीं है।

तो उसने कहा कि फिर मैं अभी बताये देता हूं। वह भागा हुआ बाथरूम में गया और वहां से टुथपेस्ट ले आया।

बाप ने कहा : इससे क्या होगा ?

उसने कहा : मैं बताता हूं क्योंकि मैं प्रयोग करके देख चुका हूं। टुथपेस्ट बाहर निकालो फिर इसको भीतर करो--तब समझें, तब तुम्हारा नेपोलियन सही। यह देखो निकाला मैंने टुथपेस्ट बाहर। उसने निकाल दी टुथपेस्ट को बाहर और कहा कि अब इसको भीतर करके दिखा दो।

बाप ने हाथ सिर से मार लिया। उसने कहा : यह नहीं होगा।

तो बेटे ने कहा कि फिर कुछ चीजें असंभव हैं।

लेकिन टुथपेस्ट तो शायद वापिस भेजा जा सकता है; कोई उपाय किये जा जा सकते हैं। बड़ी-से-बड़ी असंभव बात जो घटती है वह है—आत्मा की विराट क्षमता देह की सीमा में आबद्ध हो जाती है। आत्मा का आकाश देह के आंगन में समा जाता है। आत्मा का सागर देह की गागर में भर जाता है। यह पीड़ादायी है।

जन्म दुख है और मृत्यु तो दुख है ही। इसलिए बुद्ध ने कहा : 'जन्म भी दुख, मृत्यु भी दुख। यहां दुख ही दुख हैं।' वे इसी बात को ध्यान में रखकर कह रहे हैं कि यहां हमें सीमाओं में आबद्ध होना पड़ता है; सीमाओं में आबद्ध होना दुख है। हम मूलतः असीम हैं। हम स्वरूपतः असीम हैं। असीम होने में ही हमारा आनंद है। और असीम ही परमात्मा का स्वरूप है। लेकिन एक बार जब तक हम जान न लें असीम के स्वाद को, जब तक हम छलांग न लगा लें असीम में, तब तक हम सोचते हैं यही देह हमारा एकमात्र सत्य है।

मैंने उसी जीवन की बात कही जो असीम है, देहातीत है, कालातीत है, क्षेत्रातीत है, जो सारी सीमाओं के पार है, सारी सीमाओं का अतिक्रमण करता है। मैंने तुझसे निश्चित कहा था : जीवन बार-बार नहीं मिलता। मैं तुझे मोक्ष दूंगा। मैं जैसा कहूं, वैसा करना। मोक्ष दिया नहीं जा सकता। जो मैंने कहा वह तो एक व्यवहारिक ढंग है--एक पारमार्थिक सत्य को कहने का। मोक्ष दिया नहीं जा सकता क्योंकि मोक्ष तो तुम्हारा स्वभाव है। सिर्फ तुम्हें जगाया जा सकता है तुम्हारे स्वभाव के प्रति। मोक्ष तो तुम्हारी अंतर सम्पदा है। सिर्फ तुम्हें झकझोरा जा सकता है ताकि तुम्हें याद आ जाए। तुम्हें स्मरण दिलाया जा सकता है।

मैं तुम्हें मोक्ष दूंगा, इसका इतना ही अर्थ होता है कि मैं तुम्हें याद दिला दूंगा कि तुम कौन हो। लेकिन निश्चित ही वह याद तभी हो सकती है जब मैं जैसा कहूं वैसा करना।

एक बहुत पुराना सूत्र है--गुरु जैसा कहे वैसा करना, गुरु जैसा करे वैसा मत करना। यह सूत्र अटपटा मालूम होता है क्योंकि आमतौर से हमसे कहा जाता है : गुरु जैसा करे वैसा करो। गुरु का आचरण, गुरु का व्यवहार, उसका अनुसरण करो। लेकिन पुराना सूत्र कहता है कि गुरु जैसा कहे वैसा करो, जैसा करे वैसा नहीं; क्योंकि गुरु की चेतना की एक स्थिति है, उसका कृत्य उसकी स्थिति से निकलता है। और जब वह कुछ कहता है तो तुम्हारी स्थिति को देखकर कहता है। डॉक्टर जैसा करे, वैसा मत करना; डॉक्टर जैसा कहे, वैसा करना क्योंकि वह तुम्हारी बीमारी को देखकर कह रहा है। अब यह भी हो सकता है कि डॉक्टर तो मजे से मिठाई खा रहा हो और तुमसे कह रहा हो कि मिठाई खाना बंद कर दो क्योंकि तुम डायबिटीज से परेशान हो। और तुम यह कहो कि हम तो आपका ही अनुसरण करेंगे। अब जब आपको डॉक्टर मान लिया तो आपका आचरण ही हमारा आदर्श है। आप जैसा करेंगे, हम तो वैसा ही करेंगे, तो अड़चन हो जाएगी।

गुरु जीता है अपने चैतन्य से और बोलता है विद्यार्थी, शिष्य, वह जो सीखने आया है, उसकी अवस्था को ध्यान में रखकर। और इसलिए गुरु के वचनों में सदा ही विरोधाभास होगा क्योंकि वह एक शिष्य से एक बात कहेगा, दूसरे शिष्य से दूसरी बात कहेगा। कहना ही पड़ेगा क्योंकि शिष्य शिष्य की बीमारी अलग हैं। डॉक्टर एक ही प्रिस्क्रिपशन सबको नहीं दिये चला जाता। बीमारी अलग है तो निदान अलग होगा; निदान अलग होगा तो उपचार अलग होगा।

इसलिए मैंने तुझसे कहा : मैं जैसा कहूं वैसा करना। और तूने भरसक चेष्टा की है। मैं खुश हूं। और तेरी चेष्टा से फल आने शुरू हो गये हैं। और वह घड़ी दूर नहीं है जब परम जीवन का भी अनुभव होगा, रोज-रोज वह घड़ी करीब आ रही है। यह संभव है कि यह जीवन अंतिम सिद्ध हो। संभव इसलिए कह रहा हूं कि कहीं

मैं कहूं कि निश्चित है तो तू शिथिल न हो जाए ! मैं कहूं कि निश्चित है तो तू फिर तान चादर, ओढ़कर, चादर तान कर सो न जाए कि अब जब निश्चित ही है तो अब क्या फिक्र। इसलिए कह रहा हूं बहुत संभव है कि यह जीवन आखिरी सिद्ध हो। जागरूकता को बनाये चल, बढ़ाये चल, होश को सम्हाले चलो।

तूने पूछा : 'प्रभु ! मोक्ष तो दूर, अब तक बम्बई और पूना के चक्कर काट रही हूं।' बम्बई और पूना के चक्करों को ही तो शास्त्रों में आवागमन कहा है। अभी तो आवागमन थोड़ा चलेगा। जब तक सांस है तब तक थोड़ा आवागमन रहेगा। सांस यानी आना-जाना। फिक्र न कर। साक्षीभाव से आवागमन कर--पूना से बम्बई, बम्बई से पूना, मगर साक्षीभाव बना रहे। तो साक्षीभाव तो पूना में भी वही है, बम्बई में भी वही है; बाजार में भी वही है, हिमालय पर भी वही है। साक्षीभाव तो किसी स्थान में आबद्ध नहीं होता। विषय बदल जाते हैं लेकिन साक्षी तो नहीं बदलता। जैसे दर्पण को लेकर कोई चले तो बाजार में खड़ा हो जाए तो दर्पण में बाजार झलकता है और नदी के किनारे खड़ा हो जाए तो नदी झलकती है और चांद-तारों की तरफ दर्पण कर दे तो चांद-तारे झलकते हैं मगर दर्पण नहीं बदलता। बाजार झलके कि नदी कि चांद-तारे, दर्पण तो दर्पण है।

दर्पण झलकन से रूपान्तरित नहीं होता और वही तो मेरी शिक्षा है कि दर्पण बनो, साक्षी बनो; जहां भी रहो होश सम्हाले रहो। इतना ही स्मरण रहे कि मैं देखने वाला हूं, द्रष्टा हूं। बस पर्याप्त है, यही स्मरण सघन होता जाए। और तरु, यह स्मरण सघन हो रहा है। इसलिए तो तू कहती है : 'पर यह जो अहर्निश सुमरन हो रहा है, इस पर तो मेरा वश नहीं है।' निश्चित ही एक घड़ी आ जाती है साधते-साधते, होते-होते बात हो जाती है। और जब हो जाती है तो फिर साधना नहीं पड़ती; फिर स्वाभाविक सुमरन होगा, स्वाभाविक साक्षीभाव बना रहेगा। उसके लिए कोई अलग से आयोजन न करना पड़ेगा।

शुरू-शुरू में बीज बोते हैं तो चिंता करनी पड़ती है--पानी भी डालो, पौधा ऊगता है तो बागुड़ भी लगाओ, नहीं तो जानवर चर जाएं या पड़ोसियों के छोकरे उखाड़कर ले जाएं। फिर जब वृक्ष बड़ा हो जाता है तो बागुड़ भी हटा ली जाती है, फिर पानी भी नहीं देना पड़ता, फिर वृक्ष अपनी चिंता स्वयं करने लगता है। उसकी जड़ें इतनी गहरी चली गयीं भूमि में कि वह अपना रस खुद खोज लेता है। और वह इतना मजबूत हो गया है कि अब अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ है।

बस ऐसे ही साधक के भीतर साक्षी की भी गति होती है। धीरे-धीरे जड़ें मजबूत होती हैं; वृक्ष की शाखाएं आकाश में उठती हैं; फूल आते हैं, फल आते हैं। फिर रक्षा की जरूरत नहीं रह जाती। फिर प्रतिपल स्मरण रखने की चेष्टा नहीं करनी पड़ती। और जब अप्रयास, निष्प्रयत्न साक्षी बना रहे तभी जानना कि

साक्षी घटा। उसके पहले तो केवल तैयारी थी। उसके पहले तो केवल अभ्यास था। उसके पहले तो हम स्वभाव को खोज रहे थे, टटोल रहे थे, अंधेरे में टटोल रहे थे, अब द्वार खुल गया।

ठीक हो रहा है तरु ! और जीवन निश्चित ही मजाक और हंसी से ज्यादा नहीं है, ऐसा जान लेना ही मोक्ष है। जन्म और मृत्यु का मूल्य खो जाए, जन्म और मृत्यु का कुछ अर्थ न रह जाए, सुख और दुख बराबर मालूम होने लगें, सम-तुल हो जाएं, बस यही मोक्ष है। और जिस दिन यह घड़ी हो गयी, उस दिन व्यक्ति वर्षान्त का बादल हो जाता है।

देखे वर्षान्त के बादल ? झर चुके, दे चुके, बरस चुके, रिक्त और शून्य, खाली और हल्के, धीरे-धीरे खो जाते शून्य में। फिर घने होंगे वर्षा के पहले। लेकिन जैसे ही कोई रिक्त हो जाता है, वैसे ही शून्य में विलीन होने लगता है। तुमने कभी सोचा कि वर्षा में इतने बादल आ जाते हैं, फिर कहां चले जाते हैं? फिर आकाश में उनका कोई पता भी नहीं चलता। चुक गये, निर्भार हो गये।

साक्षी होना इस जगत में निर्भार होकर जीने का नाम है--वर्षान्त के बादल की भांति।

जा रहे वर्षान्त के बादल
हैं बिछुड़ते वर्ष भर को नील जलनिधि से
स्निग्ध कज्जलिनी निशा की ऊर्मियों से
स्नेह गीतों की कड़ी-सी राग रंजित ऊर्म्मियों से
गगन की शृंगार-सज्जित अप्सराओं से
जा रहे वर्षान्त के बादल

किस महावन को चले
अब न रुकते अब न रुकते ये गगनचारी
नींद आंखों में बसी गति में शिथिलता
किस गुफा में लीन होंगे
सांध्य-विहगों से थके डैने लिए भारी
साथ इनके जा रहा अगणित विरहिणी-विरहियों का दाह
दे रही अनिमेष नयनों से हरित वसुधा बिदाई
किस सुदूर निभृत कुटी में पूजिता सुधि की इन्हें फिर याद आई
भर गई आ रिक्त कानों में
किस कमल-वन में अनिद्रित शारदीया की करुण, चंचल रुलाई
जा रहे आलोक-पथ से मंद गति

वर्षान्त के बादल
हैं सलिल-प्लावित नदी-नद-ताल-पोखर
वेग-विह्वल झर रहे गिरि-स्रोत निर्झर
दे रहे मन से विदा, कर कुसुम-किरणों से नमन
छोड़कर अंकुरित नूतन फुल्ल-खेत
छोड़ उत्सुक बंधुओं के नेत्रों का प्यार
छोड़ लघु पौधे व्यथातुर शस्य-शालि अपार
जा रहे वर्षान्त के बादल

खोह अंजन की कहां वह गुरु गहन
आगार वह विश्राम मुग्ध विराम की
जा रहे जिसमें चले ये थके वन-पशु से
प्यास होठों पर लिए किससे मिलन की
भर जगत में नव्य जीवन
जा रहे किस प्रिया की सुधि से घिरे
नई आकांक्षा भरे वर्षान्त के बादल
जा रहे वर्षान्त के बादल !

जब व्यक्ति अपने जीवन को सब विचारों, सब भावों, सब कर्मों से निर्भार कर लेता है—और निर्भार करने की कला याद दिला दूं साक्षी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—तो उसकी नयी यात्रा शुरू हुई। गंगा बही गंगोत्री की तरफ। लौट चले अपने घर, अपने मूल उद्‌गम की ओर। वह मूल उद्‌गम ही मोक्ष है। हमें वहीं जाना है, जहां से हम आये हैं। हमें वही होना है जो हम प्रथमतः थे। हमें अपने उस मूल मुखड़े को खोज लेना है जो देह का नहीं है, जो आत्मा का है: जो जन्म के पहले भी हमारा था और मृत्यु के बाद भी हमारा होगा। स्वरूप को अनुभव कर लेना ही सच्चिदानंद को अनुभव कर लेना है।

तीसरा प्रश्न : भगवान ! इस देश के राजनेता देश को कहां लिए जा रहे हैं ? समाजवाद का क्या हुआ ?

* भोलेराम ! भोले हीं रहे। राजनेताओं से, और अपेक्षा ! और उनके आश्वासनों पर भरोसा ! मगर तुम ही भोले नहीं हो, सारी जनता भोली है। इस देश में तो भोलेराम, भोलेराम, भोलेराम ही हैं। इसीलिए तो आयाराम-गयाराम उनको धोखा देते रहते हैं। तुम किसी के भी आश्वासनों पर भरोसा कर लेते हो।

यह देश सरल है। लोग सीधे-सादे हैं। राजनेता कुटिल हैं। राजनेता लोगों को उलझाये रखते हैं। बड़े-बड़े भरोसे, बड़े-बड़े नारे और लोग नारों और शब्दों के प्रभाव में आ जाते हैं। इस देश को थोड़ा सीखना पड़ेगा, इस देश को थोड़ा राजनीतिक चालबाजियों के प्रति सजग होना पड़ेगा। नहीं तो इस देश का भाग्योदय होने वाला नहीं है।

तीस साल से ऊपर हो चुके देश को आजाद हुए, बस कोल्हू की तरह हम चक्कर लगा रहे हैं। देश की तकलीफें रोज बढ़ती ही चली गयी हैं, कम नहीं हुई हैं। और देश की तकलीफें रोज बढ़ती जा रही हैं। राजनेता को देश की तकलीफों से चिंता भी नहीं; उसकी अपनी तकलीफें हैं। वह अपनी फिक्र करे कि तुम्हारी ? जब तक वह पद पर नहीं होता तब तक उसकी फिक्र है कि पद पर कैसे हो ? सो तुम जो भी कहो वह आश्वासन देता है। वह बात ही तुम्हारी तोड़ नहीं सकता। तुम जो कहो वह हां भरता है। उसे 'मत' चाहिए। जब तक वह सत्ता में नहीं पहुंचता तब तक उसकी चिंता एक है कि सत्ता में कैसे पहुंचे ? और जब वह सत्ता में पहुंच जाता है तब दूसरी चिंता, और बड़ी चिंता पैदा होती है कि अब सत्ता में बना कैसे रहे ? क्योंकि चारों तरफ उसकी टांगें लोग खींच रहे हैं; कोई हाथ खींच रहा है, कोई कुर्सी का एक पैर ही ले भागा। कुर्सी को कैसे जोर से पकड़े रहे; क्योंकि कोई अकेला ही नहीं है, और भी बहुत हैं जो जद्दोजहद कर रहे हैं। धक्कम-धुक्की कुर्सियों पर इतनी ज्यादा है कि किस तरह राजनेता थोड़े दिन भी कुर्सियों पर बने रहते हैं, यह भी आश्चर्य की बात है।

एक ही तरकीब जानता है राजनेता कुर्सी पर बने रहने की, कि जो उसकी कुर्सी को छीनना चाह रहे हैं, उनको लड़ाता रहे। वे आपस में लड़ते रहें, उतनी देर वह कुर्सी पर बैठा रहता है। वे अगर आपस में लड़ना बंद कर दें, उसकी मुसीबत हुई। जब तक पद पर नहीं है, कैसे पद पर पहुंचे ? और पहुंचना कोई आसान नहीं है; बड़ा संघर्ष है, बड़ी प्रतियोगिता है। और पद पर पहुंचते समय तुम जो कहो वह कहता है, हां; तुम्हें ना तो कह ही नहीं सकता। ना कर के क्या नाराज करेगा ? उसकी भाषा में ना होता ही नहीं जब तक पद पर नहीं पहुंचा। और जब पद पर पहुंच जाता है तब उसकी मुसीबतें हैं—पद पर कैसे बना रहे ? और फिर तुम उसे याद दिलाओ अपने आश्वासनों की, उसने न तो कभी सुने थे। उसने तो हां भर दी थी; तुमने क्या कहा था इसकी चिंता ही नहीं की थी। अब तुम उसे याद दिलाओ अपने आश्वासनों की, उसे याद ही नहीं आएगा। उसे तुम्हारा चेहरा भी याद नहीं आएगा। तुमसे उसे लेना-देना क्या है ? जो लेना था, तुम्हारा वोट, तुम्हारा मत, वह तो ले चुका, बात खत्म हो गयी। तुमसे उतना नाता था। पांच साल के लिए अब वह सत्ता में है और तुम कुछ भी नहीं हो। पांच साल के बाद फिर तुम्हारे द्वार आएगा और वह जानता है कि तुम भोलेराम हो।

पांच साल के बाद फिर तुम्हारे आश्वासनों को, नारों को फिर पुनरुज्जीवित करेगा। फिर ऊंची बातें करेगा। फिर भविष्य के सपने तुम्हें दिखाएगा। फिर रामराज्य लाने का आश्वासन देगा। और मजा तो ऐसा है कि फिर तुम धोखा खाओगे। सदियों-सदियों से आदमी ऐसा धोखा खा रहा है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं : मनुष्य की स्मृति बहुत कमजोर है। पांच साल में भूल-भाल जाता है। और अगर बहुत याद भी रखा तो हर देश में दो पार्टियां हो जाती हैं। वे सब चचेरे-मौसरे भाई उनमें कुछ भेद नहीं। वे सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। मगर दो पार्टियां हो जाती हैं। दो पार्टियां जनता पर राज करने की कला है, तरकीब है। पांच साल में एक पार्टी की प्रतिष्ठा गिर जाती है। जो भी सत्ता में होगा उसकी प्रतिष्ठा गिरेगी; क्योंकि वचन पूरे नहीं होंगे, लोगों की तकलीफ बढ़ती रहेगी, उसकी प्रतिष्ठा गिर जाएगी। लेकिन पांच साल में दूसरे जो सत्ता में नहीं हैं वे अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा लेंगे; क्योंकि पांच साल पहले उन्होंने जो किया था वह तो जनता भूल-भाल चुकी। पांच साल बाद जनता बदल देगी, एक पार्टी को हटाकर दूसरे को बिठा देगी।

तुम सोचते हो ये पार्टियां दुश्मन हैं तो तुम गलती में हो। ये पार्टियां दोस्त हैं, ये दुश्मन नहीं हैं। ये एक-दूसरे के सहारे राज्य करते हैं। एक राज्य करता है, तब तक दूसरा जनता में प्रतिष्ठा कमाता है। फिर दूसरा राज्य करता है, फिर पहला जनता में प्रतिष्ठा कमाता है। इन दोनों में जरा भी भेद नहीं है। ये एक ही सौदे में, एक ही धंधे में साझीदार हैं।

मैंने सुना है, एक गांव में एक आदमी आया और रात जब गांव के लोग सोये थे तो उनकी खिड़कियों पर, दरवाजों पर कोलतार पोत गया। सुबह लोग बड़े हैरान हुए कि यह किस मूढ़ ने मजाक किया! यह कोई मजाक का वक्त है! अभी तो कोई होली भी नहीं, हुड़दंग भी नहीं। यह कौन हरकत कर गया? लेकिन कोई कर गया। बड़ा मुश्किल कोलतार को साफ करना। लेकिन दूसरे दिन ही सुबह एक आदमी झोला लटकाये आवाज लगाता हुआ गांव में आया—'कोलतार साफ करवाना हो तो मैं कोलतार साफ करता हूं।' 'अरे'—लोगों ने कहा—'बड़े मौके पर आये! पहले तुम्हारे कभी दर्शन भी नहीं हुए। अच्छे मौके पर आये। संयोग की बात, सौभाग्य की बात। हम परेशान ही थे, कि कोई दुष्ट हमारी खिड़कियों पर कोलतार पोत गया है।'

उसने कोलतार सफा किया। महीना-पन्द्रह दिन काफी कमाई की। तब तक उसका साथी दूसरे गांवों में जाकर कोलतार पोतता रहा। वे दोनों एक ही धंधे में साझीदार थे। एक का काम था कोलतार पोतना, दूसरे का काम था कोलतार साफ करना। हालत वहीं के वहीं रही। कुछ फर्क होता नहीं।

भोलेराम, तुम भी क्या पूछते हो—इस देश के राजनेता देश को कहां लिए जा रहे हैं?

कहीं नहीं लिए जा रहे हैं, यहीं-यहीं घुमा रहे हैं। उनको फुर्सत भी कहां इस इस देश को कहीं ले जाने की!

> उत्तर दो आखिर कब तक तुम
> अपने ही वचनों से फिर कर
> लोकतंत्र की पुनः प्रतिष्ठा का
> यों जय-जयकार करोगे।
>
> कौन उलट चश्मा पहने जो
> दिखती नहीं तुम्हें बदहाली
> नव-निर्माण नजर आती है
> चौतरफा फैली पामाली।
> खुले मंच से केवल भाषण
> नारों का व्यापार करोगे।
>
> कानों की लौ तक को क्यों छू
> पाती नहीं करुण चीत्कारें
> प्रतिध्वनियां बन लौट-लौट
> आती हैं सब की सब मनुहारें।
> जनजीवन का बस आकर्षण
> वादों से सत्कार करोगे।
>
> क्या होगी खामोश न कुर्सी
> पद, सत्ता की घृणित लड़ाई
> मानव को बौना कर बढ़ती
> जाएगी यों ही परछाईं।
> देश व्यथा पर अखबारों में
> झूठा हाहाकार करोगे!

भोलेराम! अब अपने नेताओं से कहो : कब तक यह बकवास? अब जब तुम्हारे द्वार पर कोई 'मत' मांगने आये तो आसानी से हां मत भर देना। बहुत हो चुका। अब पूछना उससे कि यह कब तक चलेगा?

लोक-मानस थोड़ा सजग होना चाहिए। लोक-मानस थोड़ा जागरूक होना चाहिए। और यह मत सोचना कि एक से तुम थक गये तो दूसरे को पकड़ लोगे तो हल हो जाएगा। कुछ हल होने वाला नहीं।

राम कसम
सरकार दुहाई
पांव बड़े हैं जूते छोटे।

सोना स्थिर, गल्ला मंदा
और उछाला तिलहन में
सिर जुलूस में फूटा था
आंखें फूटीं गरहन में
हम भी
किस मुहूर्त में जन्मे
सारे-के-सारे ग्रह खोटे।

चूल्हे में
आ गये तवे से
किस्मत हो तो ऐसी
किसे कहें
किरकिरी आंख की
किसको कहें हितैषी
छत्तीस तिरसठ, तिरसठ छत्तीस
सब हैं बेपेंदी के लोटे

तुम चाहे छत्तीस तिरसठ, चाहे तिरसठ छत्तीस...कोई फर्क नहीं पड़ता। सब हैं बेपेंदी के लोटे...और तकलीफ यह है: पांव बड़े हैं जूते छोटे...देश की समस्याएं बड़ी हैं। बड़ी समस्याएं हैं! और जिनको तुम नेता चुनते हो उनकी बुद्धि बड़ी छोटी है। पांव बड़े हैं जूते छोटे...।

अब दुनिया राजनीतिज्ञों के हाथ के बाहर होने के करीब है। अब दुनिया को विशेषज्ञ चाहिए, राजनीतिज्ञ नहीं; क्योंकि समस्याएं इतनी बड़ी हैं कि केवल विशेषज्ञ ही हल कर सकते हैं, राजनीतिज्ञ नहीं। राजनीतिज्ञ की समझ के बाहर है, राजनीतिज्ञ की कोई योग्यता ही नहीं है। योग्यताएं भी अगर कुछ हैं तो जिनका कोई मूल्य नहीं है। किसी की योग्यता है कि वह छह दफा जेल गया। छह दफा नहीं, तुम छह हजार दफे जेल गये, इससे देश की समस्याएं हल करने की योग्यता थोड़े ही आ जाती है। इससे तुम शिक्षा-शास्त्री हो जाओगे, कि अर्थ-शास्त्री हो जाओगे? तुम छह दफा जेल गये तो तुमको जेल जाने की कला आ गयी, यह समझ में आया। तो तुम फिर से जेल चले जाओ, तुम वहीं रहने लगो। तुम उसे ही अपना घर बना लो। तुम निकल क्यों आये? तुम्हें कहना चाहिए: मैं छह

दफा हो आया हूं, मुझे बाहर क्यों करते हो? तुम अपना अधिकार जमाओ, तुम जेल में ही रहो।

मगर नहीं, जो छह दफे जेल हो आया है वह कहता है कि उसको हक है प्रधानमंत्री होने का। मगर जेल जाने से और प्रधानमंत्री होने का क्या नाता-रिश्ता है? कोई कहता है कि वह चरखा कातता है रोज तीन घंटे। तीन घंटे नहीं, तीस घंटे कातो! मगर चरखा कातने से तुम देश के शिक्षामंत्री होने के योग्य नहीं हो जाओगे। और न चरखा कातने से तुम देश के स्वास्थ्य-मंत्री हो सकते हो। चरखा कातने से तुम चरखा कातने में कुशल होओगे, यह बिलकुल समझ में आयी बात। तो तुम तीन ही घंटे क्यों कातते हो? तुम कतिया हो जाओ, तुम चौबीस घंटे कातो। चलो कुछ कपड़े बनेंगे, कुछ बुनाई होगी, कुछ लाभ होगा।

मगर अजीब-अजीब लोग हैं! उनकी अजीब-अजीब योग्यताएं हैं। और हम उन योग्यताओं को स्वीकार करते हैं। हम कहते हैं देखो, फलां आदमी सादगी से रहता है। तो रहता होगा सादगी से, तो रहे मजे से सादगी से। मगर सादगी से रहने से देश की समस्याएं कहां हल होती हैं? अगर सादगी से रहने से देश की समस्याएं हल होतीं होतीं तो बड़ा आसान मामला था। सादगी से रहने से कुछ देश की समस्याएं हल नहीं होंगी। तुम चाहे थर्ड-क्लास डब्बे में चलते रहो, तुम चाहे पैदल यात्रा करते रहो, तुम चाहे दो ही कपड़े रखो अपने पास—इनसे कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला है। इससे तुम्हारी बुद्धिमत्ता नहीं बढ़ती। इससे तुम्हारी तेजस्विता नहीं बढ़ती। इससे तुम्हारी प्रतिभा का निखार नहीं होता। इससे तुम्हारे जीवन में धार नहीं आ जाती।

और इस जिंदगी की समस्याएं हल करने के लिए प्रतिभा चाहिए, बड़ी प्रतिभा चाहिए! हल हो सकती हैं सारी समस्याएं, ऐसी कोई भी समस्या नहीं है आज जो हल न हो सके। अगर जमीन छोटी पड़ रही है तो आदमी जमीन के नीचे घर बना सकता है। अब जमीन पर ही रहना जरूरी नहीं है। पुरानी आदत को ही जिद क्यों किये जाना? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जमीन के नीचे रहा जा सकता है। क्योंकि वातानुकूलित किया जा सकता है, पूरे-पूरे नगरों को। जमीन के नीचे पूरे नगर बसाये जा सकते हैं। और पूरी जमीन पर खेती-बाड़ी हो सकती है। इतनी खेती-बाड़ी हो सकती है जितनी कभी नहीं हुई।

लेकिन कोई सज्जन सादगी से रहते हैं, कोई जेल हो आये, कोई योगासन करते हैं, कोई जीवन-जल पीते हैं! ये योग्यताएं हैं!

तुम्हारी कार बिगड़ जाए तो तुम उस आदमी के पास थोड़े ही ले जाओगे जो सादगी से रहता है। तुम गैरिज जाओगे। तुम कहोगे कोई टेक्नीशियन खोजना पड़ेगा। एक आदमी रास्ते में मिल जाए, कहे कि रुको, कहां जा रहे हो? मैं खादी

भी पहनता हूं, चरखा भी कातता हूं, जेल भी हो आया हूं—मैं सुधारूंगा तुम्हारी कार ! और मैं सादगी से भी रहता हूं। कार में तो कभी बैठा ही नहीं, कार तो कभी छुई ही नहीं, बैलगाड़ी से ही काम चलाया है । मैं तुम्हारी कार ठीक कर दूंगा । कहां जा रहे हो, मुझ जैसे सीधे-सादे महात्मा को छोड़कर ?

तो तुम सुनोगे उसकी ? तुम कहोगे : भैया, और न बिगाड़ देना। तुम बैलगाड़ी ही सुधारो, तुम कारों के चक्कर में न पड़ो।

लेकिन नहीं, राजनीति में तुम इस तरह के लोगों को प्रतिष्ठा देते हो। इनको सिर पर बिठाते हो। देश समझदार हो थोड़ा तो विशेषज्ञ को चुनेगा । तो उसको चुनेगा जो देश की समस्याएं हल करने की क्षमता रखता हो। इस तरह की क्षुद्र बातें नहीं पूछोगे तुम कि 'आप धूम्रपान करते हैं कि नहीं ?' करो या न करो। 'कि आप शराब पीते हैं कि नहीं ?' पियो या न पियो । ये क्षुद्र बातें, व्यर्थ की बातें, इनकी पूछताछ करके हम लोगों को वोट दे रहे हैं।

इस देश की अजीब हालत है, एक आदमी शराब पीता है, उसको वोट नहीं मिलेगी । या उसको छिपकर शराब पीना पड़ेगी । और जो आदमी शराब नहीं पीता वह चाहे महाबुद्धू हो, उसको वोट मिलेगी !

सारे पश्चिम के प्रतिभाशाली व्यक्ति, सारे शराब पीते हैं। और उन्होंने जिंदगी की बहुत समस्याएं हल कर ली हैं। शराब पीने से कुछ समस्याओं को हल करने में बाधा नहीं आती, शायद सहयोग भला मिलता हो। क्योंकि दिन-भर जो चिंता में और दिन-भर जो बेचैनी में, और दिन-भर जो विचार में पड़ा रहा है, रात शराब पी लेता होगा तो सुबह फिर ताजा होकर लौट आता है । मगर तुम्हारे भगतजी शराब तो नहीं पीते। मगर इससे क्या होगा ?

हमारी धारणाएं हमें बदलनी होंगी। हमें विशेषज्ञ पर ध्यान देना होगा। हमें फिक्र करनी होगी उनके हाथ में सत्ता जानी चाहिए जो जीवन की समस्याओं के संबंध में कुछ जानते हैं, हल कर सकते हैं।

अब कैसा मजा चल रहा है। चौधरी चरण सिंह जैसे व्यक्ति जिनको अर्थशास्त्र का अ ब स भी नहीं आता, वे तुम्हारे देश के अर्थशास्त्री हैं ! वे बरबाद कर देंगे। उन्होंने सारे देश की अर्थशास्त्र की व्यवस्था को गांव की तरफ मोड़ दिया। सारी दुनिया गांव से शहर की तरफ जा रही है और जाना ही पड़ेगा; शहर का भविष्य है, गांव का कोई भविष्य नहीं है।

लेकिन तुम राजनारायण जैसे व्यक्ति को स्वास्थ्य-मंत्री बना देते हो। पता नहीं कौन से हिसाब से ? ये डंड-बैठक लगाते हैं इसलिए, कि ये मालिश करना जानते हैं, इसलिए ? राजनारायण कहते हैं कि वे मालिश करना जानते हैं। तो मालिश करो। तो चौपाटी पर बहुत मालिश करने वालों की जरूरत है। लेकिन स्वास्थ्य

मंत्री ! किसी बड़े चिकित्सक को खोजो जो इस देश की परेशानियां समझे, इस देश के स्वास्थ्य के नियम समझे।

यह देश स्वस्थ भी हो सकता है, समृद्ध भी हो सकता है, संपन्न भी हो सकता है। इसके पास सब है । और मनुष्यों की इतनी संपदा है, इतनी प्रतिभा है। मगर हमारी धारणाएं गलत हैं। और फिर तुम रोते हो, और फिर तुम परेशान होते हो। फिर तुम पूछते हो : इस देश के राजनेता देश को कहां लिए जा रहे हैं ? तुमने राजनेता किसको चुना है ? तुमने जिसको चुना है, समझ लो उससे कि वह तुम्हें कहां ले जायेगा।

राजनीति युवकों के हाथ में होनी चाहिए, ताजे मस्तिष्कों के हाथ में होनी चाहिए—जिनके पास अभी प्रयोग करने का साहस है, क्षमता है, जो अभी भूलचूक करने की भी हिम्मत कर सकते हैं। लेकिन तुम राजनीति में लोगों को ले जाते हो—पचहत्तर साल हैं कोई, कोई अस्सी साल, कोई चौरासी साल।

और सब जगह रिटायरमेंट के नियम लागू होते हैं—कहीं पचपन साल में, कहीं अठ्ठावन साल में, कहीं साठ साल में आदमी को हम रिटायर कर देते हैं। क्यों ? क्योंकि साठ साल के बाद और सब जगह आदमी सठिया जाते हैं। और राजनीति में ? साठ साल के बाद ही समझदार होते हैं। बड़ा मजा है। जब तक सठियाओ नहीं, तब तक तो कोई तुम्हारी प्रतिष्ठा ही नहीं है। तब तक कौन तुम्हें पूछता है ! पहली बात तो लोग यह पूछते हैं कि सठियाये कि नहीं ? सठिया गये तो नेता होने के योग्य हो।

मोरारजी देसाई ने साठ साल पहले विश्वविद्यालय छोड़ा होगा। साठ साल पहले उनकी जो जानकारी थी विश्वविद्यालय में, सब बदल गयी। दुनिया और से और हो गयी। इन साठ सालों में जो-जो गति हुई है विज्ञान की, ज्ञान की, उससे मोरारजी का कोई संबंध नहीं, कोई पहचान नहीं। जरूरत भी नहीं है, क्योंकि लोगों को भी इससे प्रयोजन नहीं है। चरखा कातने से प्रयोजन है, तो वे चरखा कातते रहे, अपनी खादी बुनते रहे, उपवास करते रहे और गोटियां बिठाते रहे।

इस साठ साल में दुनिया को स्वर्ग बनाने योग्य विज्ञान का जन्म हो चुका है। मगर मोरारजी की उससे क्या पहचान है, क्या संबंध है ? होश भी नहीं है उन्हें कि दुनिया कहां से कहां आ गयी है। वे अगर इस देश को चलाने की भी कोशिश करेंगे तो उनका पुराना ज्ञान, साठ साल पुराना है जिसका अब कोई अस्तित्व नहीं है कहीं भी। ज्ञान रोज नया हो रहा है और नया ज्ञान द्वार खोल रखा है।

तुम राजनीति को धीरे-धीरे विदा करो। विशेषज्ञ को लाना होगा। राजनीति के दिन लद गये। राजनीति अब मुर्दा है। लाश है; तुम ढो रहे हो, जब तक ढोना है ढोते रहो। लेकिन जल्दी ही सारी दुनिया को यह तय करना पड़ेगा कि

हमें विशेषज्ञ की जरूरत है। विशेषज्ञ हल कर सकता है। और इस देश में विशेषज्ञ को कोई सुनने को राजी नहीं है। इस देश के विशेषज्ञ को देश छोड़ देना पड़ता है। इस देश के विशेषज्ञ की प्रतिष्ठा दूसरी जगह होती है, दूसरे मुल्कों में होती है। इस देश में तो विशेषज्ञ को कोई पूछता ही नहीं; यहां तो पूछ राजनीतिज्ञ की है। यहां विशेषज्ञ का कोई सम्मान नहीं, कोई समादर नहीं है।

एक तरफ राजनीति है जो जान देश की लिए ले रही है और दूसरी तरफ राजनीतिज्ञों के पलड़े में बैठी हुई ब्यूरोक्रेसी है, नौकरशाही है। बची-खुची जान वह लिये ले रही है। इन दोनों के बीच, इन दो पाटों के बीच भारत मर रहा है। इन दोनों से छुटकारा होना चाहिए। ब्यूरोक्रेसी इतनी फैल गयी है कि छोटा-मोटा काम होने में वर्षों लग जाते हैं। बस फाइलें सरकती रहती हैं, कोई काम कभी होता नहीं। सबसे ज्यादा होशियर अधिकारी वह है जो कुछ काम नहीं करता और फाइलें सरकाता है।

मैंने सुना है, एक दफ्तर में, एक आदमी की टेबल पर फाइलों की कभी भीड़ नहीं होती थी। रोज सांझ को टेबल खाली। सारे दफ्तर के लोग चकित थे। सबकी टेबलों पर ढेर लगे हैं, फाइलों पर फाइलें, सबकी टेबिलों पर फाइलें लदी हैं; हल नहीं होती हैं इतनी उलझनें हैं। और इस आदमी की टेबल पर फाइल आती ही नहीं!

घटना होगी महाराष्ट्र की, महाराष्ट्र के सचिवालय की। फिर किसी ने पूछा कि भाई, एक राज तो बताओ, तुम किस भांति हल कर लेते हो सब मामले, तुम्हारी टेबल पर कभी फाइलें इकट्ठी नहीं होतीं?

उसने कहा: मेरी भी एक तरकीब है। जो भी फाइल मेरे पास आई, मैं उस पर लिख देता हूं ऊपर: 'सेन्ड इट टू मिस्टर पाटिल।' क्यों? क्योंकि कोई-न-कोई पाटिल तो होगा ही। एक नहीं कई पाटिल हैं। पाटिलों से भरा है पूरा-का-पूरा सचिवालय। तो किसी न किसी पाटिल के पास जाएगी, अपने को मतलब क्या कहीं भी जाए--'सेन्ड इट टू मिस्टर पाटिल'!

जो आदमी पूछ रहा था उसने कहा: हद हो गयी, मैं ही मिस्टर पाटिल हूं! तभी तो मैं कहूं कि मेरी टेबल पर तो फाइलें बढ़ती ही जाती हैं। और जो देखो वही फाइल चली आ रही है--सेन्ड इट टू मिस्टर पाटिल!

यहां होशियार आदमी वह है जो टाले। वह भेजता रहता है एक से दूसरे... फिर लौटती है, फिर जाती है, फिर आती है, बस फाइलें चलती रहती हैं।

राजनीतिज्ञ लगे रहते हैं झगड़ों में और नौकरशाही लालफीते में उलझी रहती है और देश मरता जा रहा है। देश में एक त्वरित गति चाहिए काम की। जो काम क्षणों में हो सकते हैं वे सालों में नहीं होते। ऐसा लगता है कोई करना

ही नहीं चाहता काम। दफ्तरों में लोग मक्खियां उड़ा रहे हैं। देश मरता जाता है। क्योंकि भारत सदियों से जिम्मेवारी लेने की आदत छोड़ चुका है--टालो, स्थगित करो, कल पर छोड़ दो, किसी और के कंधे पर सवार कर दो।

एक उत्तरदायित्व का बोध नहीं है देश में। किसी भी व्यक्ति को ऐसा नहीं है कि मेरा भी कोई उत्तरदायित्व है, कुछ मैं करूं। और दूसरी तरफ राजनेताओं को लड़ने से फर्सत नहीं है। वे अपने-अपने दांव-पेंच बिठाने में लगे रहते हैं।

पार्टी मीटिंग में
अपने साथियों से
खूब लड़-झगड़कर
वे अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के
भव्य समारोह में आये
जबरन मुसकराये
बच्चों से
उन्होंने खूब प्यार किया
और संदेश दिया,
'हमेशा एकता के लिए
जियें और मरें
भूल कर भी आपस में
लड़ाई-झगड़ा न करें!'

बस एक उपदेश है--पर उपदेश कुशल बहुतेरे--और एक उनकी जिन्दगी है जहां सिवाय लड़ाई-झगड़ा के, गाली-गलौज के...। शायद ही दुनिया में ऐसी कहीं पार्लियामेण्ट हों जहां जूते चलते हैं, कुर्सियां चलती हैं, चप्पलें चलती हैं, लोग बाहें चढ़ा लेते हैं, कुश्तम-कुश्ती हो जाती है। ऐसे पहलवान तो भारत में ही हैं। मल्लयुद्ध है यहां तो!

अभी गोवा की पार्लियामेण्ट में जो हुआ वह देखा! उसमें और तो लोग पिटे-कुटे सो ठीक ही, महात्मा गांधी तक पिट गये! उनकी मूर्ति बीच में थी, किसी ने उसको ही धक्का मार दिया। वे भी चारों खाने चित जमीन पर पड़े। और जूते इत्यादि फेंकना तो बिलकुल सहज बात है।

एक राजनेता से उसका बेटा पूछ रहा था, कि पिताजी, अस्त्र और शस्त्र में क्या भेद होता है?

तो उस राजनेता ने कहा: बेटा, शस्त्र वह जो फेंक कर मारा जाए, अस्त्र वह जो पकड़कर मारा जाए।

तो उसके बेटे ने कहा : अब एक सवाल और । चप्पल क्या है? अस्त्र कि शस्त्र ? क्योंकि कुछ लोग पकड़कर भी मारते हैं और कुछ लोग फेंक कर भी मारते हैं।

भोलेराम ! ये अस्त्र-शस्त्र वाले राजनीतिज्ञों से सावधान रहो । चित्त को थोड़ा राजनीति से मुक्त करो । और राजनीतिज्ञों का सम्मान समाप्त करो। राजनीतिज्ञों की उपेक्षा करो । न जाओ, न भीड़-भाड़ करो न स्वागत-समारोह करो, बंद करो यह सब । जरा राजनीतिज्ञों को उपेक्षा झेलने दो । मैं तुमसे कहता हूं : काले झंडे दिखाने भी मत जाओ, क्योंकि उसको देखकर भी वे प्रसन्न होते हैं कि चलो आये तो ! काले झंडे दिखाने भी मत जाओ, दूसरे झंडों की तो बात छोड़ दो। जाओ ही मत । राजनीतिज्ञों की उपेक्षा करो । दो कौड़ी का मूल्य है उनका । और उनकी तुम जितनी उपेक्षा करोगे उतना उनको बोध आएगा और उतनी ही राजनीति की दौड़ कम होगी, आपा-धापी कम होगी, कम लोग उत्सुक रह जाएंगे । और धीरे-धीरे विशेषज्ञ पर ध्यान दो । राजनीतिज्ञ को तुम्हारी पड़ी क्या है, देश की पड़ी क्या है ? उसे अपनी फिक्र है, अपने बाल-बच्चों की फिक्र है, अपने भाई-भतीजों की फिक्र है।

एक राजनीतिज्ञ दवाई की दुकान पर दवा लेने के लिए जल्दी मचा रहा था। राजनीतिज्ञ था, हर जगह सबसे पहले उसके ऊपर ध्यान दिया जाना चाहिए। केमिस्ट ने खीझ कर कहा : धीरज रखिये नेताजी ! कहीं मैं जल्दी में आपको जहर की गोलियां दे डालूं तो ?

'कोई बात नहीं'––राजनीतिज्ञ ने कहा––'दवा मुझे अपने लिए नहीं, पड़ोसी के लिए चाहिए।'

किसको पड़ी है पड़ोसी की ! 'जल्दी करो । जहर हो तो भी चलेगा।'

और राजनीतिज्ञों से जरा सावधान रहना, क्योंकि राजनीति की सारी कला यह है।...

किसी ने पूछा था विंस्टन चर्चिल से एक बार। राजनीतिज्ञ, विंस्टन चर्चिल––राजनेताओं का राजनेता। किसी ने पूछा था कि क्या यह भी संभव है कि कोई आदमी जिन्दगी-भर अपने पैंटों में हाथ डाले, गाना गुनगुनाता, मौज से जिन्दगी गुजार दे !

चर्चिल ने कहा : हां, संभव है; सिर्फ एक बात का ख्याल रहे, हाथ अपने हों और जेब दूसरे की। फिर क्या दिक्कत है ? गाओ गीत, गुनगुनाओ गीत ! अपनी जेब में हाथ डालकर काम न चलेगा।

दुकानदार को कोई वस्तु लेने के लिए भीतर भेज कर नेताजी ने सामने रखी नारियल की बोरी में से एक नारियल उठाकर चुपके से अपने थैले में रख लिया

और बाहर से ही पूछा : क्यों सेठ, आजकल मिर्च का क्या भाव है?

दुकानदार ने भीतर से ही जवाब दिया : नारियल आजकल एक रुपये का है, मिर्च का भाव बाहर आकर बताता हूं।

जरा तुम्हें सावधान होना पड़ेगा । जरा ध्यान रखना, नेताजी आसपास हों, अपनी जेब पकड़ लेना । नेताजी आसपास दिखाई पड़ जाएं, सावधान ! ऐसे अवसर पर सम्यक् स्मृति साधना । क्योंकि नेताजी यानी सूक्ष्म जेबकट––जो जेब काटें इस तरकीब से कि तुम्हें पता न चले।

और तुम पूछते हो समाजवाद का क्या हुआ ?

नेताजी
ये टूटते हुए शिलान्यास के पत्थर
यह सूखी नदी
अधबना पुल,
यह बस के लाल डिब्बों की तरह
उड़ती हुई समृद्धि की धूल,
यह बाढ़
यह अकाल
यह महामारी
क्षमा करें,
क्या आप बता सकते हैं,
इस देश में समाजवाद कब तक आएगा ?

वह बोले यह तो आपको
वह टूटा हुआ शिलान्यास का पत्थर बताएगा,
जिसके भवन की ईंटें
सहकारी संस्था वाले खा गये हैं।
आप नदी और पुल पर आ गये हैं
समस्या भारी है
नदी जनता की है और पुल सरकारी है,
फिर भी सूचना विभाग कह चुका है—
बारह पुल सरकारी फाइलों पर
पूरी तरह बन चुके हैं, आठ का काम जारी है।
वह भी एक या दो वर्ष में पूरी तरह बन जाएंगे।

नेताजी का कहना है घबराने की बात नहीं

जब पुल बन गया है
तो नदी भी लाएंगे।
आपको आब्जेक्शन है
लोग अकाल बाढ़, महामारी से
जिन्दा जी तर गये हैं।
यार, आप भी हद कर गये हैं
हम आपको कैसे समझाएं
उनके तो भाई-भतीजे थे,
पर हमारे तो वोटर मर गये हैं।

नेता का दुख अलग है। महामारी होती है तो उसको यह फिक्र नहीं होती कि लोग मर रहे हैं, उसे फिक्र होती है अपने वोटर कितने मर गये! अगर दूसरे के वोटर मर गये हैं तो चित्त प्रसन्न होता है; भगवान को वह धन्यवाद देता है कि खूब किया, ठीक किया, जो करना था वही किया।

समाजवाद की चिंता किसे है? समाजवाद तो एक नारा है, एक थोथा नारा, जिसकी छाया में, थोथे नारे की छाया में तुम सपने देखते रहो, सोये रहो।

देश को थोड़ा सजग होना पड़ेगा, इतना सजग होना पड़ेगा कि राजनीतिज्ञ देश को और धोखा न दे सकें। मेरा राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है, लेकिन इतना तो मैं कहना चाहूंगा देश के प्रत्येक व्यक्ति को कि सजग रहो, थोड़े जागो, नहीं तो यह शोषण जारी रहेगा; इस शोषण का फिर कोई अंत नहीं हो सकता।

यह जो क्रांतियां राजनेता करते हैं इन क्रांतियों से कुछ होने वाला नहीं है। ये दो कौड़ी की क्रांतियां हैं। यह जो अभी-अभी जयप्रकाश नारायण ने समग्र क्रांति कर डाली—इसमें न तो कुछ क्रांति है, न कुछ समग्र है। मुर्दों को सत्ता में बिठा दिया, समग्र क्रांति हो गयी। सब वही का वही है, वही के वही लोग, इस पार्टी में थे, वही मोरारजी देसाई, वही दूसरी पार्टी में हो गये। वही जगजीवन राम उस पार्टी में थे, वही जगजीवन राम दूसरी पार्टी में हो गये—और समग्र क्रांति हो गयी! आदमी वही के वही हैं, धंधा वही का वही जारी है, काम वही का वही जारी है—और समग्र क्रांति हो गयी!

इन क्रांतियों से कुछ भी न होगा। ये क्रांतियां सिर्फ लोगों के लिए अफीम हैं और ये समाजवाद की बड़ी-बड़ी बातें सिर्फ लोगों को सुलाये रखने के उपाय हैं। ये ऐसे ही है जैसे छोटा बच्चा शोरगुल मचाता है, रोता है, तो उसके मुंह में हम चुसनी दे देते हैं। रबर को चूसता रहता है गरीब बच्चा, उसको समझ में ही नहीं आता कि यह स्तन नहीं है मां का। यह तो जरा बड़ा होगा तब समझ में आएगा,

तब वह फेंक देगा चुसनी, वह कहेगा, किसको धोखा दे रहे हो? ये समाजवाद वगैरह चुसनियां हैं। इनसे जरा सावधान! जरा गौर से तो देखो, इनमें से कुछ निकल नहीं रहा है, रबर को चूस रहे हो।

समाजवाद इस तरह आने वाला नहीं, न इस देश का सूर्योदय इस तरह होने वाला है। इस देश का सूर्योदय हो सकता है—लोग थोड़े जागरूक हों, लोग चैतन्य हों, लोग थोड़ा सोचें-विचारें, और लोग राजनीति को गौण करें। प्रतिष्ठा ज्ञान की हो, राजनीति की नहीं। प्रतिष्ठा विज्ञान की हो, राजनीति की नहीं। प्रतिष्ठा धर्म की हो, राजनीति की नहीं। राजनीति सबसे गयी-बीती चीज है; उसके ऊपर बहुत चीजें हैं—ज्ञान है, विज्ञान है, दर्शन है, धर्म है। राजनीति सबसे नीचे का सोपान है इस सीढ़ी का, लेकिन वह सिरताज होकर बैठ गयी है। वह मुकुट बन कर बैठ गयी है। उसे उसकी जगह पर वापिस लाओ। उससे ज्यादा मूल्य ज्ञान का है, उससे ज्यादा मूल्य अध्यात्म का है।

तुम्हारे मूल्य रूपांतरित होने चाहिए। मूल्यों का एक रूपांतरण जरूरी है।

भोलेराम, और भोले रहने से नहीं चलेगा। भोलापन छोड़ो। और भोलापन छोड़ो तो मैं यह नहीं कहता कि चालबाज हो जाओ, चालाक हो जाओ, नहीं तो तुम्हीं राजनीतिज्ञ हो जाओगे। भोलापन छोड़ो, तो मेरा अर्थ है: होश संभालो; थोड़ा विचारवान हो जाओ; थोड़ा देखकर चलो; थोड़ी आंख खोलो और धोखे में न पड़ो। इतना आसान न रह जाए लोगों का धोखा देना कि हर कोई आये और तुम्हें धोखा दे।

सदियों इस देश ने धोखा खाया है। अब तो समय है कि हम जागें, यह नींद टूटे, यह सपना टूटे। यह देश अपनी गरिमा को वापस पाये, अपने गौरव को पुनः उपलब्ध हो!

आज इतना ही।
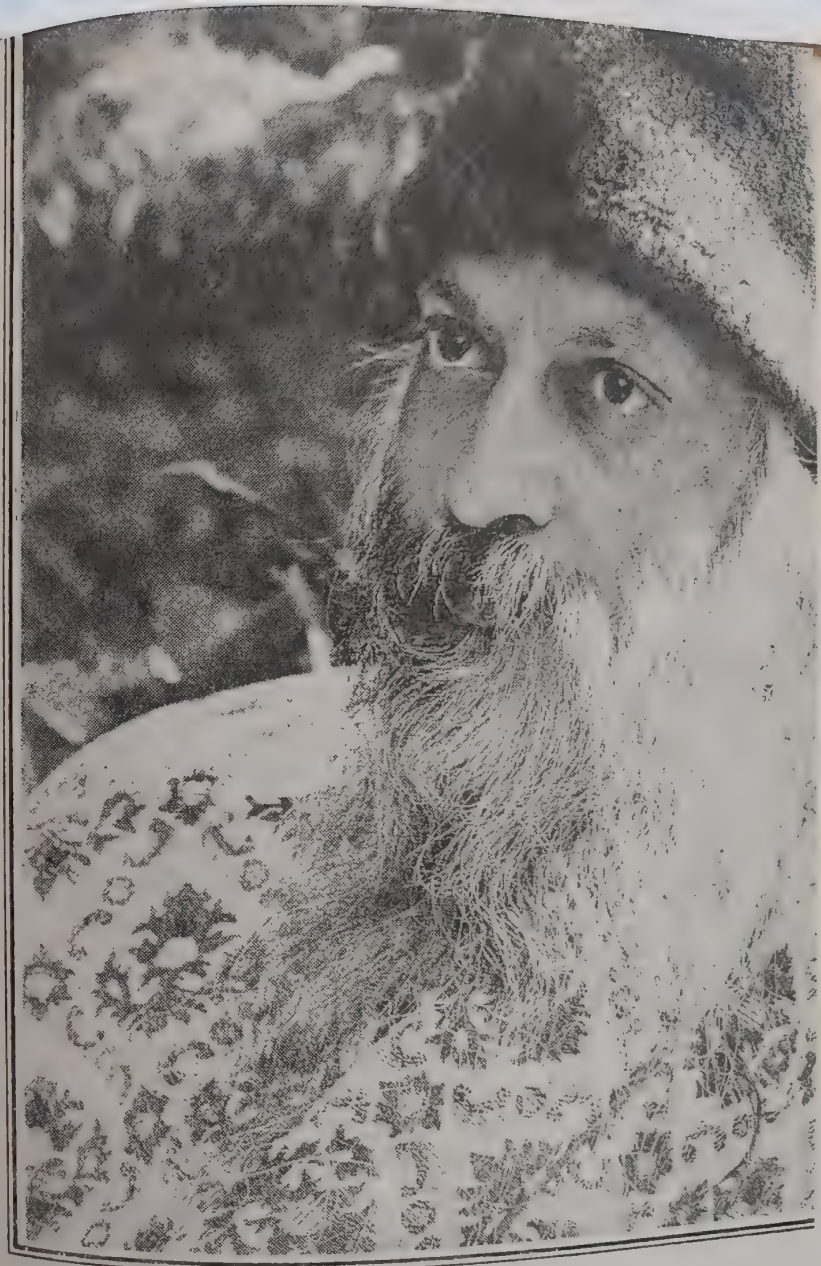
पाहुन आयो भाव सों

नौवां प्रवचन; दिनांक २९ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज ।।
घर में नहीं अनाज, भजन बिनु खाली जानो ।
सत्यनाम गयो भूल, झूठ मन माया मानो ।।
महाप्रतापी रामजी, ताको दियो बिसारि ।
अब कर छाती का हनो, गये सो बाजी हारि ।।
भीखा गये हरिभजन बिनु तुरतहिं भयो अकाज ।
पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज ।।

वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं ।।
अच्छर समुझा नाहिं, रहा जैसे का तैसा ।
परमारथ सों पीठ, स्वार्थ सनमुख होइ बैसा ।।
सास्तर मत को ज्ञान, करम भ्रम में मन लावै ।
छुइ न गयो बिज्ञान, परमपद को पहुंचावै ।।
भीखा देखे आपु को, ब्रह्म रूप हिये माहिं ।
वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं ।।

ऐ मेरे शहर, गुलाबों के वतन, मेरे चमन
लौट आया हूं मैं फिर मौत के वीरानों से
फिर कोई शेर, कोई नज़्म पुकारे मुझको
फिर मैं अफ़्साने बनाऊं तेरे अफ़्सानों से

अपनी तहरीक के धारों से अलग, तुझसे भी दूर
एक शब से भी मेरे ख्वाब संभाले न गये
आंख खुलती ही रही रात के सन्नाटे में
शिकवहाये-दिले-बेताब संभाले न गये

कमरे की क़ब्र में कम्बल का कफ़न ओढ़े हुए
खुले दरवाज़ों से बाहर की तरफ़ तकता रहा
मेरी आवाज़ भी जैसे मेरी आवाज़ न थी
भरे बाज़ार में तनहा भी था, हैरान भी था

अपने किरदार के टुकड़ों को इकट्ठा करके
लौट आया कि वहां रहके मिला क्या मुझको
जख्मों के बारे में कुछ पूछ लो दीवाने से
ऐ मेरे शहर की वीरान गुज़रगाहो, उठो

मेरी यादों के पियाले में भरो फिर फिर कोई मय
ऐ मेरे ख्वाबों के बेनाम खुदाओ, आओ
मेरे सीने में कई जख्म अभी जिन्दा हैं
आओ, ममता भरी गंगा की हवाओ, आओ।

इस संसार में मनुष्य एक परदेसी है। यहां हमारा घर नहीं, यहां हम बेघर हैं। हम कितने ही घर बना लें यहां घर बन सकता नहीं। यहां घर के बनने की कोई सम्भावना ही नहीं है। यहां तो बनाये सारे घर आज नहीं कल उजड़ेंगे। धोखा हम थोड़े दिन का खा लें भला, राहत थोड़ी देर को अपने मन को दे लें भला, लेकिन आज नहीं कल डेरा उठाना पड़ेगा, उठाना ही पड़ता है। मौत से बचने का कोई उपाय नहीं।

और चूंकि मौत से बचने का कोई उपाय नहीं है, अपने घर की याद समय रहते करो। अपने असली घर की याद करो। कहां से आते हो? कौन हो? इसे पहचानो। इसे बिना पहचाने कोई भी व्यक्ति न तो शांति को, न आनंद को, न अमरत्व को उपलब्ध हुआ है, न हो सकता है। इसे बिना पहचाने भीड़ में भी रहोगे और अकेले रहोगे। भीड़ में भी कहां कौन-सी मैत्री है? प्रेम के नाम पर भी सब प्रेम का धोखा है!

कमरे की क़ब्र में कम्बल का कफ़न ओढ़े हुए
खुले दरवाज़ों से बाहर की तरफ़ तकता रहा
मेरी आवाज़ भी जैसे मेरी आवाज़ न थी
भरे बाजार में तनहा भी था, हैरान भी था

बाजार तो भरा है। शोरगुल बहुत है। लोग ही लोग हैं चारों तरफ। मगर कौन अपना है? अपने तो हम अपने भी नहीं, दूसरा तो क्या खाक अपना होगा! यह देह भी अपनी नहीं, यह भी मिट्टी की है और मिट्टी में गिर जाएगी। और यह मन भी अपना नहीं, यह भी बाहर से उधार मिला है और बाहर ही बिखर जाएगा, तितर-बितर हो जाएगा। जिसे हम अभी समझते हैं अपना होना, वह भी अपना नहीं; दूसरे तो क्या खाक अपने होंगे! और इस जिंदगी में सिवाय टुकड़े-टुकड़े होने के और क्या होता है? जैसे कोई पटक दे दर्पण को भूमि पर और चकनाचूर हो जाए दर्पण, ऐसी हमारी दशा है, चकनाचूर हम हैं।

अपने किरदार के टुकड़ों को इकट्ठा करके
लौट आया कि वहां रहके मिला क्या मुझको
जख्मों के बारे में कुछ पूछ लो दीवाने से
ऐ मेरे शहर की वीरान गुजरगाहो, उठो

एक न एक दिन अपने सारे टुकड़ों को सम्हालकर, अपने सारे टुकड़ों को इकट्ठा करके, असली घर की तलाश करनी ही होगी; अपने असली नगर की तलाश करनी ही होगी। उस नगर को फिर तुम जो नाम देना चाहो दो—कहो परमात्मा, कहो मोक्ष, कहो निर्वाण, कैवल्य, जो तुम्हारी मर्जी; वे सारे भेद नामों के

हैं। मगर एक बात पक्की है कि यहां हम अपने घर में नहीं हैं। और लाख इंतजाम कर लेते हैं, बना लेते हैं, मगर सब इंतजाम बिगड़ जाते हैं। कागज की नावें उस पार नहीं पहुंचा सकतीं। और इस क्षणभंगुर जीवन में बनाये गये सब उपाय व्यर्थ हो जाने के लिए आबद्ध हैं।

मेरी यादों के पियाले में भरो फिर फिर कोई मय
ऐ मेरे ख्वाबों के बेनाम खुदाओ, आओ
मेरे सीने में कई ज़ख्म अभी ज़िन्दा हैं
आओ, ममता भरी गंगा की हवाओ, आओ।

उठनी चाहिए एक पुकार परमात्मा के लिए। उठनी चाहिए एक पुकार स्वर्ग की हवाओं के लिए। उठनी चाहिए एक पुकार उस मदमस्ती के लिए जो केवल धर्म के द्वारा ही सम्भव होती है।

पुकारो उस अतिथि को!

अतिथि शब्द प्यारा है। अतिथि शब्द सबसे पहले परमात्मा के लिए उपयोग किया गया है। तुमने कहावत सुनी है—'अतिथि देवता है'। मैं तुमसे कहता हूं: 'देवता अतिथि है।' अतिथि का अर्थ होता है जो बिना तिथि बताए आ जाए; जो पहले से कोई खबर न दे कि कब आता हूं, कोई सूचना न दे; जो एक दिन अचानक द्वार पर खड़ा हो जाए।

मगर यूं अचानक अगर वह द्वार पर खड़ा भी हो जाए और तुम्हारी आंखें बंद हों, और तुम्हारे हृदय में प्रार्थना न उठी हो, तो तुम चूक जाओगे। तुम चूके हो बहुत बार। उसने बहुत बार दस्तक दी है मगर तुमने सुनी नहीं। तुम्हारे मन का शोरगुल इतना है, तुम सुनो तो कैसे सुनो? उसकी आवाज धीमी है। उसकी आवाज गुफ्तगू है। वह चिल्लाता नहीं, काना-फूसी करता है। वह आक्रमक नहीं है, हौले-हौले आता है। उसके पैरों की भी आवाज तुम्हारी सीढ़ियों पर सुनाई न पड़ेगी। उसकी दस्तक भी बड़ी माधुर्य से भरी है, संगीतपूर्ण है।

अगर तुम शांत नहीं हो तो चूक जाओगे। और तुम्हारा मन इतने उपद्रव इतनी अशांति, इतने शोरगुल से भरा है कि चूकना निश्चित है। और तुम मौजूद भी कहां हो! अगर वह आये भी तो तुम्हें पाएगा कहां; तुम जहां हो वहां तो तुम कभी हो ही नहीं। परमात्मा तुम्हें खोजे भी तो कहां खोजे; तुम तो भागे हुए हो। तुम्हारा मन तो सतत गतिमान है, चंचल है। अभी यहां, अभी वहां—एक क्षण को भी तुम ठहरे हुए नहीं हो। तुम ठहरो तो मिलन हो। ठहरने का नाम ध्यान है। उसकी तरफ आंख उठा लेने का नाम भजन है। शांत प्रार्थना में झुक जाने का नाम तैयारी है।

कौन सा धरातल है
धरूं कहां पांव ?
सुस्ताऊं पल-दो पल
कहो, कहां छांव ?
द्रुत धारा
दुविधा की
एक नहीं घाट
निश्चित है
डूबूंगा
चौड़ा है पाट
झंझा के बीच ठौर
भंवर-बीच ठांव
सुस्ताऊं पल-दो पल
कहो, कहां छांव ?
गर्दीली गलियां
सब
सड़कें पक्की
देख रहा हूं
सब की
आंखें शक्की
हर शहर पराया है
बेगाना गांव
सुस्ताऊं पल-दो पल
कहो, कहां छांव ?

यहां छांव कहां है ? बबूल के वृक्ष हैं यहां; इनकी छाया नहीं बनती, इनमें सिर्फ कांटे लगते हैं। यहां दो पल को भी छांव नहीं मिलती। मगर तुम टाले जाते कल पर। तुम बांधे जाते आशा—आज नहीं हुआ, कल होगा। और कल कभी आया है ? कल कभी नहीं आया। इस सत्य को पहचानो, परखो; इसे प्राणों में सम्हाल कल रखो—कल न कभी आया है, न कभी आएगा; जो आता है, जो आया है, जो आया हुआ है, वह है आज। कल पर मत टालो। अगर तुम कल पर टालते रहे तो परमात्मा से कभी मिलना न हो सकेगा। परमात्मा आज है और तुम कल हो। परमात्मा नगद है और तुम उधार हो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन बहुत परेशान हो गया था उधार लेने वाले

लोगों से। उसने किसी फकीर से सलाह ली कि क्या करूं, क्या न करूं ? परिचित हैं, इनकार भी नहीं कर सकता। द्वार पर आ जाते हैं, संकोच में देना ही पड़ता है। इतना उधार दे चुका हूं कि दुकान डूबी-डूबी हुई जा रही है; दिवाला निकलने के करीब है। मुझे कुछ सहारा दो, कुछ साथ दो।

उस फकीर ने कहा : यह भी कोई कठिन बात है ! दरवाजे पर एक तख्ती लगा दो—आज नगद, कल उधार।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : वह मैं समझा, तख्ती लगा दूंगा, मगर कल वे उधार मांगेंगे, फिर मैं क्या करूंगा ?

फकीर ने कहा : तू फिक्र छोड़; कल कभी आया है !

और तब से मुल्ला नसरुद्दीन ने तख्ती लगा दी है द्वार पर—आज नगद, कल उधार। लोग आते हैं, तख्ती पढ़ते हैं तो वे कहते हैं फिर मुल्ला कल आएंगे। मुल्ला कहता है जरूर आना। मगर कल जब आते हैं तब भी तख्ती वही है—आज नगद, कल उधार।

कल तो होता ही नहीं और हम कल की ही आशा लगाये बैठे हैं। कल की आशा का नाम संसार है और आज जीने का नाम मोक्ष। कल का विस्तार वासना है और आज ठहर जाना प्रार्थना।

कौन सा धरातल है
धरूं कहां पांव ?

अगर कल में तुम पांव रखना चाहते हो तो नरक पाओगे। कल तो है ही नहीं, वहां कहां पांव रखोगे ?

सुस्ताऊं पल-दो पल
कहो, कहां छांव ?

अगर कल में सुस्ताना चाहते हो तो कभी सुस्ता न पाओगे। कल तो दौड़ाएगा, दौड़ाएगा, दौड़ाएगा, दौड़ाता रहेगा जब तक मौत ही न आ जाए; दौड़ाएगा तब तक जब तक कब्र में गिर न जाओ। जो कल से बंधा है उसके जीवन में सुस्ताने की सम्भावना नहीं है।

द्रुत धारा
दुविधा की
एक नहीं घाट

और तुम्हारे मन में दुविधाएं ही दुविधाएं हैं—यह करूं, वह करूं; ऐसा करूं, वैसा करूं; क्या करूं, क्या न करूं ! तुम्हारा मन दुविधाओं का एक जाल है। जैसे

मछली फंस गयी हो मछुए के जाल में, ऐसे तुम दुविधा के जाल में फंसे हो। तुम्हारे भीतर कुछ भी थिर नहीं। तुम्हारे भीतर कुछ भी एकाग्र नहीं। तुम्हारे भीतर कुछ भी समग्र नहीं। अगर एक चीज भी तुम्हारे भीतर समग्र हो जाए, एकाग्र हो जाए तो वहीं से द्वार मिल जाए परमात्मा में।

द्रुत धारा
दुविधा की
एक नहीं घाट

यह जो दुविधा की धारा है इसका घाट होता ही नहीं; इसका घाट हो ही नहीं सकता।

निश्चित है
डूबूंगा
चौड़ा है पाट

जरा गौर तो करो, कितने तुमसे पहले डूब गये, कितने आज डूब रहे हैं, और तुम पार कर पाओगे? बड़े-बड़े पार नहीं कर पाये, तुम पार कर पाओगे? मगर आदमी का अहंकार ऐसा है कि हर अहंकार सोचता है: मैं अपवाद हूं। और लोग न कर पाये होंगे पार, मैं तो पार कर लूंगा। वे कुशल न होंगे, प्रवीण न होंगे, तैरना न आता होगा; उनकी नाव कमजोर होगी; उनकी पतवार मजबूत न होगी, उनकी दिशा भ्रांत होगी; उन्होंने गलत मुहूर्त में नाव छोड़ी होगी। मैं तो मुहूर्त भी ठीक ज्योतिषियों से पूछकर चलूंगा; नाव भी मजबूत बनाऊंगा; पतवारें भी सम्हालकर चलाऊंगा—सब होश रखूंगा। यही वे भी सोचते थे जो तुमसे पहले डूब गये हैं। यही सभी सोचते हैं, और यही सोचने में सभी डूबते हैं।

नहीं, यह पाट ही इतना चौड़ा है, इसमें तुम अपने सहारे पार नहीं हो सकते—परमात्मा पार कराये तो कराये। जिसने परमात्मा को नाव बनाया, वह तो पार हो जाता है; और जिसने अपनी नाव खुद बनाने की कोशिश की, अपने ही प्रयास से पार जाना चाहा, वह निश्चित डूबता है।

निश्चित है
डूबूंगा
चौड़ा है पाट
झंझा के बीच ठौर
भंवर-बीच ठांव
सुस्ताऊं पल-दो पल

कहो, कहां छांव?
गर्दीली गलियां
सब
सड़कें पक्की
देख रहा हूं
सब की
आंखें शक्की

जरा लोगों की आंखों में झांको, कहीं तुम्हें आस्था के दीये जलते हुए दिखाई पड़ते हैं? आस्थावानों में भी नहीं। तथाकथित आस्थावानों में भी नहीं। मंदिरों में जाओ, मस्जिदों में जाओ, गुरुद्वारों में जाओ, गिरजों में जाओ. लोगों की आंख में झांको—आस्था का दीया जलता हुआ दिखाई पड़ता है? श्रद्धा की सुगंध अनुभव होती है? नहीं, ये वही के वही लोग हैं। जिनको तुम बाजार में मिलते हो, दुकान पर मिलते हो, जुआघरों में मिलते हो, शराबघरों में मिलते हो—ये वही के वही लोग हैं; यही मंदिर भी आ जाते हैं। वस्त्र बदल लेते होंगे, नहा-धो आते होंगे; मगर वह सब तो ऊपर-ऊपर है, भीतर के प्राण तो वही के वही हैं। मंदिर में भी इनका मन तो कहीं और है। मस्जिद में भी इनके प्राण तो कहीं और हैं। गिरजे में भी ये हैं कहां, इनके प्राण तो कहीं और अटके हैं। जरा इनके भीतर झांको— बैठे हैं गिरजे में, होंगे बाजार में।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन मस्जिद नहीं जाता था। एक फकीर गांव में आया था। मुल्ला की पत्नी उससे बहुत प्रभावित थी। वह आदमी भी गजब का था। मुल्ला की पत्नी ने कहा कि मेरे पति को अगर मस्जिद ले आओ तो कुछ समझूं, तो कोई चमत्कार! राख निकाल दी कि घड़ी निकाल दी, इन बातों में मुझे रस नहीं है—मेरे पति को किसी तरह प्रार्थना में लगा दो, परमात्मा में लगा दो तो चमत्कार!

फकीर ने कहा: कल सुबह आऊंगा। जल्दी ही फकीर सुबह-सुबह आया। मुल्ला बगीचे में घूम रहा था। पत्नी अपने पूजागृह में भोर की पूजा कर रही थी, भोर की नमाज पढ़ रही थी। फकीर ने मुल्ला नसरुद्दीन को कहा: यह बात शोभा नहीं देती, अब उम्र हो गयी, अब बाल भी पक गये, अब परमात्मा को कब याद करोगे? और तुम्हारी पत्नी देखो... कहां है तुम्हारी पत्नी?

तो मुल्ला ने कहा: सच पूछो तो पत्नी बाजार में है, सब्जी खरीद रही है। और जिस सब्जी वाली से सब्जी खरीद रही है झगड़ा हो गया है, मारपीट की नौबत है, एक-दूसरे के बाल पकड़ लिए हैं...।

फकीर ने कहा : रुको-रुको, इतनी सुबह कहां दुकान खुली होगी, कहां सब्जी वाला होगा ?

और इतनी ही बात सुनी पत्नी ने—जो पूजागृह में बैठी थी—वह निकलकर बाहर आ गयी। उसने कहा : हद हो गयी झूठ की भी ! मैं पूजा कर रही हूं। तुम झूठ बोलते हो यह तो मुझे मालूम था नसरुद्दीन, मगर ऐसी झूठ बोलोगे इसकी कल्पना मैंने भी न की थी।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : तू सच-सच बता, पूजा तो तू कर रही थी लेकिन मैं जो कह रहा हूं, क्या सच में गलत है ?

पत्नी चौंकी, याद आया, बात तो सच थी। फकीर के सामने झूठ भी नहीं बोल सकती थी। फकीर ने पूछा कि तू बोल। तो उसकी पत्नी ने कहा कि हां, बात तो सच है। बैठी तो पूजा करने थी मगर आज सब्जी खरीदने जाना है क्योंकि आप आने वाले हैं, अच्छा भोजन बनाना है। तो वही ख्याल मन में गूंज रहा था, तो विचार में मैं बाजार चली गयी थी। सब्जी खरीद रही थी। और सब्जी वाली दोगुने दाम मांग रही थी। बात बिगड़ गयी। झंझट हो गयी। उसने मेरे बाल पकड़ लिए, मैंने उसके बाल पकड़ लिए। तब ही इस मेरे पति ने आपको कहा...।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : प्रार्थनागृह में बैठने से क्या होगा; मन को बिठाना बड़ा कठिन है। पूजा भी करते हैं लोग, हवन, यज्ञ, विधि-विधान—मन नहीं बैठता, मन भागा ही भागा है।

द्रुत धारा
दुविधा की
एक नहीं घाट
देख रहा हूं
सब की
आंखें शक्की

और यहां श्रद्धावान भी बस झूठे हैं—श्रद्धा भी ऊपर-ऊपर है, थोपी हुई है, ओढ़ी है। जरा भीतर कुरेदो, जरा झांको, जरा परदा उठाओ और फूलों के पीछे मवाद मिलेगी; अच्छी-अच्छी बातों के पीछे गंदे-गंदे इरादे मिलेंगे। शुभाकांक्षाओं से पटा पड़ा है नर्क का मार्ग, ऐसी कहावत है। ठीक ही है कहावत। आकांक्षाएं अगर शब्दों में पूछो तो बड़ी शुभ हैं, मगर अगर प्राणों में झांको तो बड़ी अशुभ हैं। फूलों की चर्चा है, कांटों की खेती है। अमृत के गीत हैं, विष भरा है प्राणों के घट में।

हर शहर पराया है
बेगाना गांव
सुस्ताऊं पल-दो पल
कहो, कहां छांव ?

यहां कोई अपना घर नहीं, अपना कोई गांव नहीं। यहां कोई छांव की सम्भावना नहीं। दो पल के लिए भी विश्राम कहां है ? विश्राम तो सिर्फ राम में है। राम ही विश्राम है। गुरु-परताप साध की संगति ! वह विश्राम मिल सकता है किसी गुरु के सानिध्य में; दीवानों, मस्तों की संगति में। प्रार्थनापूर्ण लोग जहां इकट्ठे हों वैसी मधुशाला में उठो-बैठो। जहां किसी जीवन में श्रद्धा का, आस्था का दीया जला हो, अपने बुझे दीये को उस दीये के करीब लाओ। जले दीयों के करीब आकर बुझे दीये जल जाते हैं। ज्योति से ज्योति जले !

भीखा के सूत्र :

पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज।।
घर में नहीं अनाज, भजन बिनु खाली जानो।

पाहुन आयो भाव सों....परमात्मा आया है, अतिथि होकर आया है, पाहुना होकर आया है, द्वार पर खड़ा है। जैसे सुबह-सुबह सूरज निकले और उसकी किरणें द्वार पर खड़ी हों और तुम्हारा द्वार बंद हो तो किरणें जबर्दस्ती भीतर प्रवेश नहीं करेंगी। जब इस सूरज की किरणें जबर्दस्ती भीतर प्रवेश नहीं करतीं, अनधिकार प्रवेश नहीं करतीं, बिना आज्ञा के प्रवेश नहीं करतीं, तो उस परम प्रकाश की किरणें तो कैसे बिना आज्ञा के प्रवेश करेंगी ! तुम निमंत्रण दो, तुम पलक-पांवड़े बिछाओ, तो ही वह परम अतिथि, पाहुना भीतर प्रवेश करे।

पाहुन आयो भाव सों....और परमात्मा तो जब भी आता है प्रेम से ही आता है। परमात्मा यानी प्रेम। परमात्मा का कुछ और होने का ढंग ही नहीं है। परमात्मा का अर्थ यानी प्रेम। परमात्मा का निचोड़ प्रेम है, सुगंध प्रेम है।

पाहुन आयो भाव सों....बहुत भाव से, बहुत प्रेम से परमात्मा द्वार पर खड़ा है, और तुम ? तुम सोये हो। तुम्हारी आंखें बंद हैं। तुम्हारी कोई तैयारी नहीं है अतिथि को स्वीकार करने की।

....घर में नहीं अनाज.... ! भीखा तो गांव के आदमी हैं, गांव की भाषा में बोलते हैं। वे यह कह रहे हैं कि तैयारी बिलकुल भी नहीं है, घर में अनाज भी नहीं है और पाहुन द्वार पर आकार खड़ा हो गया है, अब क्या करोगे !

घर में नहीं अनाज, भजन बिनु खाली जानो।

वे किस अनाज की बात कर रहे हैं—भजन की। क्योंकि परमात्मा का तो एक ही स्वागत हो सकता है, वह भजन से। वह तो भजन का भूखा है। उसकी

भूख तुम किसी और तरह नहीं मिटा सकोगे, वह तो भक्ति का भूखा है। तुम्हारे भीतर भक्ति हो, भजन हो, तो परमात्मा तृप्त हो जाए।

और ध्यान रखना, जिस दिन परमात्मा तुमसे तृप्त होगा, उसी दिन तुम तृप्त हो सकोगे, उसके पहले नहीं। कभी नहीं, हजारों-हजारों जनमों में भी नहीं, अनंत-अनंत मार्गों पर भटको, लेकिन तुम तृप्त न हो सकोगे। जब तक परमात्मा तुमसे तृप्त नहीं है, तब तक तुम तृप्त न हो सकोगे। उसकी तृप्ति ही तुम्हारी अंतरात्मा में झलकेगी तृप्ति की भांति। उसकी तृप्ति ही तुम्हारे दर्पण में तृप्ति की भांति प्रतिबिम्ब बनेगी।

जिस दिन परमात्मा तुमसे तृप्त है, उस दिन तुम तृप्त हो। और कोई तृप्ति नहीं है। और सब तृप्तियां भ्रांतियां हैं।

भजन के बिना तुम क्या हो? एक ऐसा घर जिसमें दीया नहीं जला है। एक ऐसा फूल जो खिला नहीं। एक ऐसा द्वार जो बंद है। एक ऐसा प्राण जिसमें धड़कन नहीं। भजन के बिना तुम क्या हो? एक लाश। एक मुर्दा। एक धोखा जीवन का। चल लेते हो, उठ लेते हो, माना; बाजार चले जाते हो, दुकान कर लेते हो, चार पैसे कमा लेते हो, माना; लेकिन यह सब यंत्रवत हो रहा है--इसमें जागरूकता नहीं है, इसमें अहोभाव नहीं है, इसमें आनंद नहीं है, उमंग नहीं है, उत्साह नहीं है, उत्सव नहीं है--इसमें जीवन का कोई लक्षण नहीं है।

सिर्फ सांस का बाहर भीतर आना जीवन है? सिर्फ भोजन कर लेना और पानी पी लेना और फिर मल-मूत्र का त्याग कर देना जीवन है? रोज सुबह उठ आना और आपाधापी में लग जाना और सांझ थककर फिर बिस्तर पर पड़ जाना और फिर सुबह वही आपाधापी--यह जीवन है? इस पुनरुक्ति को तुम जीवन कहते हो! कहां है इसमें काव्य? कहां है संगीत? कहां है नृत्य? न कोई बांसुरी बजती है, न किसी मृदंग पर थाप पड़ती है।

अगर यह जीवन है, तो मृत्यु क्या बुरी? अगर यह जीवन है, तो मृत्यु इससे लाख गुनी बेहतर। कम-से-कम विश्राम तो होगा। कम-से-कम कब्र में शांति तो होगी। कम-से-कम कब्र पर हरी घास तो ऊगेगी। कम-से-कम कब्र पर कभी कोई फूल तो खिलेगा। तुम खाद बन जाओगे, घास हरी होगी। तुम खाद बन जाओगे, फूल सुर्ख होगा। तुम खाद बन जाओगे, उस फूल पर कभी कोई तितली मंडराएगी, कभी कोई चांद ऊगेगा; उस फूल के पास कभी कोई पक्षी गीत गाएगा, कोई मोर नाचेगा--कुछ तो होगा! मगर तुम्हारी जिंदगी में कब मोर नाचे? कब तितलियां उड़ीं? कब सुवास उठी? कब प्रकाश झरा?

नहीं, भजन के बिना तुम बिलकुल खाली हो, बिलकुल रिक्त हो।

...भजन बिनु खाली जानो।

सत्यनाम गयो भूल, झूठ मन माया मानो।।

और जिसे याद करना है... स्मरण रखना, वह कोई नयी बात नहीं है। जिसे याद करना है, उसे हम भूल गये हैं, वह हमें याद थी। हर बच्चा जब पैदा होता है तो उसे परमात्मा की याद होती है। अभी-अभी मौत से पार हुआ है, अभी-अभी नौ महीने पहले मरा है। मौत का झटका, मौत का धक्का, झकझोर गया है। एक जिंदगी बेकार हो गयी थी। मौत ने आकर चौंका दिया था, नींद तोड़ दी थी, सब ख्वाब बिखर गये थे। और फिर नौ महीने गर्भ की शांति, शून्यता, सन्नाटा, ध्यान...! एक तो मौत का झटका जो कह गयी कि जिंदगी बेकार है। कि तुम जैसे जिये व्यर्थ जिये, न जीते तो भी चलता। कि तुमने कुछ पाया नहीं--कोई घाट न मिला, कोई पाट न मिला, नाव मझदार में डूब गयी, अब देख लो। और तुम अपवाद नहीं हो, तुम भी वैसे ही हो जैसे सब हैं। तुम्हारे लिए कोई विशेष नियम लागू नहीं होंगे। सब मरते हैं, तुम मरे, देखो अब मिट्टी मिट्टी में गिरी। एक तो मौत जगा गयी, मौत कह गयी कि मिट्टी मिट्टी में चली और चैतन्य उड़ चला। और फिर नौ महीने का विश्राम। नौ महीने मां के गर्भ में न कोई काम है, न कोई चिंता है। मौत का झकझोरा फिर नौ महीने का विश्राम।

बच्चा जब पैदा होता है, परमात्मा की याद से भरा पैदा होता है, होना ही चाहिए। फिर उसे याद आ गयी होती है अपने असली घर की। मगर हम भुलाने में लग जाते हैं। हम उसे भरमाने में लग जाते हैं। समाज, शिक्षा, राज्य, सबकी चेष्टा यह है--भरमाओ, भटकाओ। हम जल्दी से बच्चे को भाषा सिखाने में लग जाते हैं ताकि मौन खंडित हो जाए। जिस दिन बच्चा मम्मी, पप्पा, डैडी, कहने लगता है, हमारी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। घर में आनंद की लहर छा जाती है कि बच्चा भाषा सीख गया। रोओ उस दिन क्योंकि बच्चा मौन भूल रहा है, बच्चे की शांति खंडित हो रही है। बच्चे की शांत झील में तुमने कंकड़-पत्थर फेंक दिये। डैडी--एक पत्थर, मम्मी--एक पत्थर और। झील को तुम झकझोरने लगे। मगर मम्मी खुश है, डैडी प्रसन्न हैं; उनके अहंकार को तृप्ति मिल रही है, उनका बेटा बोलने लगा। बस अब सिखाये चलो। अब चूकना शुरू हुआ। अब भटकना शुरू हुआ। अब फिर वही चक्कर।

सत्यनाम गयो भूल, झूठ मन माया मानो।।

अब भूल जाएगा परमात्मा फिर, और फिर झूठ में मन उलझ जाएगा। और बहुत मुश्किल है कि कभी कोई मिल जाए जो तुम्हें जगा दे। क्योंकि धीरे-धीरे तुम्हारी नींद सघन करने के उपाय किया जा रहे हैं। धारणाएं, सिद्धांत, विश्वास, शास्त्र, सब नींद को गहरा करते हैं; सब अफीम हैं; सब सांत्वनाएं हैं। झूठी सांत्वनाएं क्योंकि सत्य के अतिरिक्त और कोई सांत्वना सच्ची नहीं हो सकती। कौन तुम्हें

जगाएगा ? कौन तुम्हें चोट करेगा ?

मैंने सुना है, एक फकीर एक यूनिवर्सिटी में अध्यापक हो गया। जैसे ही वह नया-नया पहले दिन कक्षा में उपस्थित हुआ तो एक मनचले छात्र ने अपना नाम आने पर खड़े होकर कहा : यस मैडम !

सुनते ही कक्षा में हंसी गूंजने लगी। लेकिन फकीर तो फकीर था ! फकीर भी खिलखिला कर हंसा और इतने जोर से हंसा कि कक्षा में धीमी-धीमी जो हंसी चल रही थी, वह एक झटके में बंद हो गयी। और फकीर ने फिर शालीनता से कहा :

'यह इश्क मोहब्बत की तासीर कोई देखे,
अल्लाह भी मजनूं को लैला नजर आता है।'

अब तो पूरी कक्षा ठहाकों से गूंज उठी। बेचारे मजनूं की हालत सच में देखने जैसी थी।

कौन तुम्हें चौंकाएगा ? कौन तुम्हें झकझोरगा ? फकीरों से मिलना तो मुश्किल होता जा रहा है। जिनसे तुम मिलोगे भी वे भी बंधनों में बंधे हैं—कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है। और जो हिन्दू है, जो मुसलमान है, जो ईसाई है, वह साधु नहीं है, वह साधु नहीं हो सकता। साधु का क्या कोई धर्म होता है ? साधु के तो सब धर्म अपने होते हैं। साधु तो स्वयं धर्म होता है। साधु का कोई विशेषण नहीं होता। जब तक कोई कहे कि जैन साधु तब तक समझना कि साधु नहीं। जब कोई कह सके हिम्मत से कि साधु, विशेषणरहित तब समझना कि कुछ बात हुई, कोई क्रांति घटी।

ऐसा कोई साधु मिल जाए, ऐसी कोई संगति मिल जाए, तो तुम जाग सकते हो—गुरु-परताप साध की संगति—नहीं तो इस संसार में तो सब सुलाने के आयोजन हैं। यह संसार तो सोये हुए लोगों की भीड़ है। और सोये हुए लोग जागे हुए आदमी को बर्दाश्त नहीं करते क्योंकि जगा हुआ आदमी कुछ खटर-पटर करेगा, कुछ शोरगुल करेगा, उठेगा, बैठेगा . . .।

मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। मेरे एक प्रोफेसर थे। दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर थे तो जैसा होना चाहिए वैसे थे—झक्की थे, बहुत झक्की थे। उनकी कक्षा में मैं अकेला ही विद्यार्थी था। उनकी कक्षा में कोई विद्यार्थी होने को राजी भी नहीं होता था क्योंकि उनकी कक्षा भी बड़ी अजीब थी। वे कभी तीन घंटे बोलते, कभी चार घंटे बोलते। वे कहते कि घंटा जब शुरू होता है तब तो मेरे हाथ में है शुरू करना, लेकिन जब तक मैं पूरा न हो जाऊं, जब तक मैं अपनी बात पूरी न कह दूं, तब तक मैं रुक नहीं सकता। तो चालीस मिनट में घंटा तो बज जाएगा लेकिन चालीस मिनट में मैं अपनी बात कैसे पूरी कहूंगा, जब पूरी होगी बात तब होगी।

कौन बैठे तीन-चार घंटा ? मैं बैठ सकता था, मैंने उनसे कहा : देखिए, मेरा भी एक नियम है। वे बोले : तुम्हारा क्या नियम है ? मेरा नियम यह है कि मैं आंख बंद करके सुनता हूं और मैं बिलकुल पसंद नहीं करता कि बीच में मुझे कोई बाधा डाले। आप बोलें जितना बोलना है। उन्होंने कहा मुझे इसमें कोई अड़चन नहीं है। तो मैं उनकी कक्षा में सोता था, वे बोलें जितना बोलना हो। उन्होंने मुझे यह भी कह दिया था—अगर तुम्हें बीच में कभी बाहर जाना हो तो तुम जा सकते हो, मगर पूछने की जरूरत नहीं है कि क्या मैं बाहर जाऊं, क्योंकि उससे मेरे बोलने में बाधा पड़ती है। तुम बाहर जाओ, तुम घूम-फिर कर आ जाओ, मैं बोलता रहूंगा। मैं अपनी धारा में किसी तरह का खंडन पसंद नहीं करता।

दो-तीन-चार साल से उनकी कक्षा में एक भी विद्यार्थी नहीं आया था। तीन-चार साल बाद मैं आया था तो उनका मैं बहुत प्यारा हो गया, बहुत चहेता हो गया। उन्होंने कहा कि ऐसा क्यों नहीं करते—वे भी अकेले थे, कभी उन्होंने विवाह किया नहीं—तुम क्यों हॉस्टल में पड़े हो, मेरे पास बड़ा बंगला है, तुम वहीं आ जाओ। तो मैंने कहा यह भी ठीक है। मैं उनके बंगले में पहुंच गया। वहां बड़ी अड़चन खड़ी हुई। अड़चन यह खड़ी हुई कि वे दो बजे रात उठ आते और गिटार बजाते। अब दो बजे रात कोई गिटार बजाये तो मैं सो ही न पाऊं; दो बजे के बाद तो सोना असंभव। इलेक्ट्रिक गिटार पूरे घर में गूंजे।

एक दिन मैंने सुना। दूसरे दिन मैंने उनसे कहा कि क्षमा करें, मेरी भी एक आदत है।

कहो, क्या आदत है ?

मैंने कहा : मैं दो बजे तक जोर-जोर से पढ़ूंगा। तो मैं दो बजे रात तक इतने जोर-जोर से पढ़ता कि वे सो न पाते।

तो दूसरे दिन सुबह मुझसे बोले कि देखो, मैं अपनी आदत छोड़ूं, तुम अपनी आदत छोड़ो। फिर चल सकता है। क्योंकि इस घर में अगर हम दो में से एक भी जागा रहा तो दूसरा सो नहीं सकता। और तुम्हारी भी खूब आदत है, मैंने पढ़ने वाले बहुत देखे मगर जोर-जोर से पढ़ने वाला... इतने जोर से जैसे तुम हजार, दो हजार आदमियों के सामने व्याख्यान दे रहे हो। मैंने कहा : भविष्य का अभ्यास कर रहा हूं।

उन्होंने गिटार छोड़ दिया, मैंने पढ़ाई छोड़ दी, तब कहीं सो सके हम दोनों अन्यथा सोना मुश्किल था।

एक भी जागा हो तो सोये लोगों को अड़चन तो खड़ी करेगा। और जगा हुआ आदमी इसलिए हमें कष्टपूर्ण मालूम होता है। हम जागे हुए आदमी बर्दाश्त

नहीं करते, हम उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। और वे ही हैं जो हमारे सौभाग्य हैं। और वे ही हैं जिनसे हमारे सौभाग्य की सम्भावना है। और वे ही हैं जिनसे हमारा रूपान्तरण हो सकता है, हमारा अंधकार कटे और सुबह हो। और वे ही हैं जिनसे हम नाराज हैं। हम पूजा करते, सम्मान करते, सत्कार करते, उनका जो हमारी नींद को और गहरा कर देते हैं।

हम पंडित-पुरोहितों का बहुत सम्मान करते हैं। मगर जीसस के साथ तुमने क्या किया? और सुकरात के साथ तुमने क्या किया? और मंसूर के साथ तुमने क्या किया? ये जागे हुए लोग जिनके साथ तुम जुड़ जाते तो तुम्हारा भी दीया जल जाता, तो तुम भी रोशन हो गये होते। शायद तुम्हें वापस दुनिया में आने की जरूरत न पड़ती, अब तक तुम आकाश में लीन हो गये होते। अब तक सारा अस्तित्व तुम्हारा होता, इस छोटी-सी देह में तुम बंद न होते। मगर नहीं, जागा हुआ आदमी कष्ट देता है।

सोयों की दुनिया है यह। यहां सब सोये हैं; इनके साथ तुम भी सोये रहो तो सोयों को भी अच्छा लगता है; तुम्हें भी सुविधा होती है।

अदालत में वकील पक्षों में बहस चल रही थी। गरमा-गरमी धीरे-धीरे बढ़ने लगी और बातें गाली-गलौज तक पहुंचने लगीं। सरकारी पक्ष का वकील अभियुक्त के वकील से बोला: 'तुम गधे हो।' अभियुक्त का वकील बोला: 'गधा मैं नहीं, गधे तुम हो।' मजिस्ट्रेट ने अपनी हथौड़ी से टेबल को ठोंकते हुए कहा: 'सभ्य जनों, आप लोग भूल रहे हैं कि मैं भी यहां हूं।'

सोये हुए लोगों की दुनिया—उनका गणित एक, उनका तर्क एक, उनका हिसाब एक, उसमें एक तालमेल होता है। जागा हुआ आदमी एकदम तालमेल के बाहर हो जाता है; उसकी भाषा और हो जाती है, उसका गणित और हो जाता है। वह तुमसे विपरीत दिशा में चलने लगता है। तुम भागे जा रहे हो छायाओं के पीछे, वह पीठ कर लेता है। मगर जागे हुए का साथ करोगे तो ही जाग सकते हो।

सत्यनाम गयो भूल... जिनको याद आ गया हो सत्यनाम; जो पुनः छोटे बच्चों की भांति हो गये हैं; जिन्होंने फिर से जन्म ले लिया है, द्विज हो गये हैं जो; ब्राह्मण हो गये हैं जो; जिन्होंने ब्रह्म को जान लिया है—वे ही तुम्हें जगा सकेंगे।

झूठ मन माया मानो... मन बड़े झूठ में पड़ गया है, बड़ी माया में उलझ गया है।

पहिये की धुरी पर मक्खी एक बैठकर,
गर्व से भरी और बोली यों ऐंठकर,

कितनी धूल उड़ रही है मेरी पदचाप से?
कहोगे न यह सब मेरे ही प्रताप से?
पिद्दी उठ बोला तब, यह भी होगा सही,
पैरों पर आसमान क्या तू देखती नहीं?
सुन गर्वोक्ति, बोला गधा एक सस्वर,
देखा अरे, गायक है मुझ-सा कहीं पर?
विस्मित विधाता देख बोले यह क्या किया?
पुतले में हाथी का अहंकार भर दिया?
अब रचा एक नया मानव का संसार।
पर किया नर ने विधाता का ही बहिष्कार।

गधे-घोड़े सब पीछे पड़ गये, छूट गये बहुत पीछे, आदमी ने अहंकार की सर्वाधिक उद्घोषणा की। इसीलिए तो फिर परमात्मा ने आदमी के बाद कुछ नहीं बनाया; थक गया, घबड़ा गया, डर गया। बहुत भूल वैसे ही हो चुकी थी आदमी को बनाकर, आदमी के बाद फिर उसने बनाना ही बंद कर दिया। आदमी ने काफी मूढ़ता प्रदर्शित की है। सबसे बड़ी मूढ़ता यह है कि उसका अहंकार इतना है, उसका मैं-भाव इतना है कि वह परमात्मा को स्मरण करे भी तो कैसे करे! परमात्मा के स्मरण में तो समर्पण करना होगा; अहंकार को अर्पित करना होगा; चरणों में झुकना होगा। भजन और क्या है? झुक जाने की कला; मिट जाने की कला। भजन और क्या है? अहंकार का विसर्जन और प्रभु का स्मरण, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

महाप्रतापी रामजी, ताको दियो बिसारि।
अब कर छाती का हनो, गये सो बाजी हारि॥

परमात्मा को तो भूल गये हो। जिसके साथ जुड़कर तुम महाशक्तिवान हो जाओ, उसे तो विस्मरण कर दिया है, और क्षुद्र-क्षुद्र बातों को खोज रहे हो—धन को, पद को, प्रतिष्ठा को। दो कौड़ी के खिलौनों में उलझ गये हो। असली तो भूल गया, नकली ने खूब भरमा लिया है। स्वभावतः नकली में कुछ खूबियां हैं जो असली में नहीं हैं; जो असली में हो ही नहीं सकतीं। नकली खूब विज्ञापन करता है। असल में नकली जीता विज्ञापन पर है, असली को तो विज्ञापन की कोई जरूरत नहीं होती। सूरज सुबह निकलता है, कोई घोषणा नहीं करता; कोई घोषणा आवश्यक नहीं है। उसके निकलते ही फूल खिलने लगेंगे; पक्षी गीत गाएंगे; लोग जगने लगेंगे। लेकिन किसी दिन अगर कोई झूठा सूरज निकले तो पहले विज्ञापन करेगा, डुंडी पिटवाएगा, शोरगुल मचवाएगा—तो ही शायद कोई भूला-

भटका पक्षी गाए, कोई भूला-भटका फूल खिल जाए, कोई भूला-भटका आदमी जग जाए।

नकली विज्ञापन पर जीता है। तुम जिन नकली बातों में उलझे हो उनका कितना विज्ञापन है ? सदियों-सदियों का विज्ञापन है। इतना लम्बा उनके विज्ञापन का इतिहास है कि तुम याद भी नहीं कर सकते कि कब विज्ञापन शुरू हुआ, कब भ्रांतियां तुम पर थोपी जानी शुरू की गयीं ! इतनी थोपी गयी हैं, इस तरह थोपी गयी हैं कि झूठ सच मालूम होने लगा है।

अडोल्फ हिटलर ने ठीक लिखा है अपनी आत्मकथा में कि अगर झूठ को बार-बार दोहराया जाए तो वह सच जैसा मालूम होने लगता है।

यही तो विज्ञापन की सारी कला है—बस दोहराए जाओ, फिक्र मत करो कि लोग मानते हैं कि नहीं मानते। लोगों की तीन सीढ़ियां हैं मनाने की। पहले तो वे हर चीज को कहते हैं गलत, ठीक नहीं हो सकती, असम्भव। यह पहली सीढ़ी है; समझो कि उन्होंने मानने की दुनिया में कदम रख दिया। दूसरी बात वे कहते हैं कि शायद हो सके, शायद सम्भव हो—यह दूसरी सीढ़ी। और तीसरी सीढ़ी ? वे कहते मैंने तो पहले ही कहा था कि यह ठीक है। हम तो पहले से कहते थे, कोई मानता नहीं था।

बस धीरज चाहिए विज्ञापन करने का। झूठ से झूठ बात पर लोगों को भरोसा लाया जा सकता है। कितनी झूठी बातों पर तुम्हें भरोसा है कभी तुमने ख्याल किया ? कपड़े के एक टुकड़े को बांध कर झंडा बना देते हैं और चले लोग—झंडा ऊंचा रहे हमारा ! चाहे प्राण भले ही जाएं, झंडा नहीं झुकना चाहिए। और झंडे में है क्या ? सिर्फ सदियों-सदियों का प्रचार है।

नक्शों पर देश बांट दिये गये हैं और देश बन गये ! और उन सीमाओं पर लोग प्राण गंवाते हैं। और सीमायें झूठी हैं। आदमी कहीं भी बंटा हुआ नहीं है। सारी पृथ्वी एक है। मगर छोटे-छोटे अड्डे बना लिए हैं।

राजनीतिज्ञ जी भी नहीं सकता इन झूठों के बिना। ये झंडों के झूठ, ये डंडों के झूठ, ये रेखाओं के झूठ—इन्हीं के बीच तो राजनीतिज्ञ जीता है, यही तो उसकी दुनिया है। ये सारे झूठ हट जाएं तो राजनीति समाप्त हो जाए। राजनीति समाप्त हो जाए, तो युद्ध समाप्त हो जाएं, वैमनस्य समाप्त हो जाए। लेकिन तब बहुत से लोगों का मजा ही चला जाएगा। उनका मजा ही यही है। नेतृत्व उनका मजा है। अगर दुनिया में शान्ति हो तो नेताओं की कोई जरूरत नहीं। दुनिया में लोग अगर प्रेम से जी रहे हों तो नेताओं की क्या आवश्यकता है ? लोग लड़ने चाहिए, लोग अज्ञानी रहने चाहिए, तो ही पंडित-पुरोहित को भी जीने की सुविधा है।

इन सबकी चेष्टा यह है कि तुम परमात्मा को भूल जाओ क्योंकि जो परमात्मा

को याद रखेगा वह इनमें से किसी जाल में भी नहीं पड़ सकता है। परमात्मा को भूलते ही तुम शिकार हो जाओगे हजार तरह के झूठों के। एक दीया क्या बुझता है, अंधेरे में हजार तरह के झूठ चलने लगते हैं। एक दीया क्या जलता है, अंधेरे के हजारों झूठ एक साथ समाप्त हो जाते हैं।

अब कर छाती का हनो, गये सो बाजी हारि।

राम को तो भूल बैठे हो, फिर छाती पीट रहे हो कि जिंदगी में कुछ नहीं है, कि कोई अर्थ नहीं है; कि क्या करें ? क्या न करें ? राम को तो भूल बैठे हो जिससे अर्थ हो सकता था, गरिमा हो सकती थी, गौरव हो सकता था। वृक्ष को तो पानी नहीं देते हो और कहते हो फूल आते नहीं !

फ्रेडरिक नीत्से ने पश्चिम में घोषणा की—ईश्वर मर गया है, और फिर फ्रेडरिक नीत्से पागल हो गया यह घोषणा करके। क्योंकि फिर सवाल उठा कि जिंदगी में अर्थ क्या है ? फिर जीएं क्यों ? जीने का सार क्या है ? पहले ईश्वर नहीं है यह घोषणा कर दी, अहंकार ने यह घोषणा करवा दी कि ईश्वर नहीं है. अब मुसीबत आयी। बिना ईश्वर के अर्थ खो गया। बिना ईश्वर के संदर्भ ही न बचा जिसमें अर्थ पैदा हो सके।

बिना ईश्वर के हम क्या हैं ? सिर्फ दुर्घटनाएं। सिर्फ मिट्टी के पुतले—आज हैं, कल नहीं हो जाएंगे; थे या नहीं बराबर हो जाएगा। ईश्वर है तो शाश्वतता है। ईश्वर है तो अमरता है। ईश्वर है तो देह के बाद भी हम जिएंगे। ईश्वर है तो देह के बाद भी जीवन रहेगा—और नये पंख, और नये आयाम। ईश्वर है तो अंत नहीं है, अनंत है। और अनंतता के ही संदर्भ में अर्थ हो सकता है। नहीं तो इस छोटी-सी जिंदगी का क्या मूल्य ?

इस बात को ठीक से समझ लेना—अर्थ होता है हमेशा अपने से बड़े संदर्भ में। एक कविता है, उसकी एक पंक्ति में अर्थ है लेकिन कविता के संदर्भ में. अगर कविता को तुम अलग कर लो और पंक्ति को बचा लो, पंक्ति में कोई अर्थ न रह जाएगा। फिर पंक्ति में भी शब्दों में अर्थ है, लेकिन पंक्ति के संदर्भ में. अगर एक शब्द को तुम अलग खींच लो तो उसमें कुछ अर्थ न रह जाएगा। फिर शब्द में भी अर्थ है लेकिन अगर शब्दों से तुम अक्षरों को अलग खींच लो तो अक्षरों में क्या अर्थ रह जाएगा ? अ में क्या अर्थ है ? ब में क्या अर्थ है ? 'अब' में अर्थ है। लेकिन अ में कोई अर्थ नहीं, ब में कोई अर्थ नहीं। रा में क्या अर्थ है ? म में क्या अर्थ है ? लेकिन 'राम' में अर्थ है। फिर अगर राम की पूरी कथा के संदर्भ में राम को लो तो और बहुत अर्थ है। और अगर सारे जगत के संदर्भ में राम को लो तो अर्थ ही अर्थ है, अर्थ का महासागर है।

अर्थ होता है अपने से बड़े संदर्भ में लेकिन आदमी का अहंकार चाहता है—

हमसे ऊपर कोई भी नहीं। बस वहीं अड़चन हो जाती है। जिसने कहा मुझसे ऊपर कोई भी नहीं, उसके जीवन में अर्थ खो जाता है। जिसने कहा मुझसे ऊपर सब कुछ है--आकाश पर आकाश हैं; आसमानों पर आसमान हैं--उसके जीवन में अर्थ ही अर्थ की वर्षा हो जाती है। फिर ऐसा व्यक्ति कुछ भी बोले उसका एक-एक वचन उपनिषद् है। फिर ऐसा व्यक्ति उठे तो उसका उठना, उसका बैठना उपासना है। ऐसा व्यक्ति न बोले तो उसके न बोलने में संगीत है।

बोलों के देवता !
बोल कुछ ऐसे बोलो !
ऐसे बोल कि
जिनके शब्दों में अमरत्व-सिन्धु लहराए,
ऐसे बोल कि
जिनको सुनने उच्च हिमालय शीश उठाए
ऐसे बोलो : युग की सांसों में लय की मधुता तुम घोले !
सूझों के अंकुर
उन्मादों की उर्वर धरती पर फूटें,
कहीं न कोमल कला-कुसुम
नव कठिन ज्ञान के हाथों टूटें,
अन्तरात्मा-कलाकार ! मत, निज को बुद्धि-तुला पर तोलो !
करो मूकता की अर्चा
तुम व्यथा-अश्रुओं को न गिराओ,
उन्मादी बलिदान-पंथ पर
फूलों जैसे शीश चढ़ाओ,
वाणी-घट में भरे वेदना-रस, जीवन-सिंचित कर डोलो !
बोलों के देवता !
बोल कुछ ऐसे बोलो !

ऐसे बोल निश्चित पैदा होते हैं। मगर ऐसे बोल तुमसे पैदा नहीं होते, तुम जब माध्यम होते हो तब पैदा होते हैं। जब तुम सिर्फ बांसुरी होते हो और परमात्मा के ओंठों पर अपनी बांसुरी को छोड़ देते हो, तब ऐसे बोल पैदा होते हैं जिनमें माधुर्य है, जिनमें रस है, जिनमें अमृत है ! ऐसे ही उपनिषद् जन्मे। ऐसे ही कुरान जन्मा। ऐसी ही बाइबिल जन्मी। ऐसे ही धम्मपद जन्मा। ऐसे ही भीखा के ये सीधे-सीधे बोल जन्मे।

महाप्रतापी रामजी, ताको दियो बिसारि।

अब कर छाती का हनो, गये सो बाजी हारि।

इस दुनिया में सिर्फ एक ही बाजी है--हारो या जीतो। राम के साथ जुड़ गये तो जीत गये, राम से टूट गये तो हार गये, और कुछ बाजी नहीं है। हिसाब-किताब सीधा-सीधा, साफ-साफ है, दो और दो चार जैसा गणित स्पष्ट है। जीतना हो, राम से जुड़ जाओ; हारना हो, राम से टूट जाओ। लेकिन एक बात तुम्हें याद दिला दूं, अगर जीतने के लिए राम से जुड़े तो कभी न जीतोगे। अगर जीतने की आकांक्षा से राम से जुड़े, तब तो तुम राम से जुड़े ही नहीं, तुम तो अहंकार से ही जुड़े रहे, तुम्हारा अहंकार राम का भी शोषण करने लगा। यह भजन न हुआ, यह भक्ति न हुई, यह भाव न हुआ--यह तो शोषण हुआ। तुमने राम को भी साधन बना लिया, साध्य तो तुम ही रहे।

मैं फिर कहता हूं : जीतना हो तो राम से जुड़ो, मगर जीतना तुम्हारी आकांक्षा नहीं होनी चाहिए। राम से जो जुड़ता है वह परिणाम में जीत ही जाता है। मगर राम से जुड़ने की कला भी समझ लो--जो हारता है राम के सामने, वही जुड़ता है। इस विरोधाभास में ही सारी भक्ति का शास्त्र है। जो हारता है, राम से जुड़ता है... हारे को हरिनाम ! और जो हार कर राम से जुड़ गया, जीत गया। यह प्रेम का गणित है। यहां हार जीत बन जाती है और यहां जीत हार हो जाती है।

भीखा गये हरिभजन बिनु, तुरतहिं भयो अकाज।

और अगर बिना परमात्मा से जुड़े चले गये फिर, तो तुरंत ही अकाज हो जाएगा। क्या अकाज ? इधर मरे, उधर जन्मे। देर नहीं लगती, क्षण-भर की देर नहीं लगती। क्योंकि मरते वक्त आदमी एक ही आकांक्षा से भरा होता है--जीवेषणा। मरते वक्त सारी आकांक्षाएं एक ही आकांक्षा बन जाती हैं--कैसे जीऊं, कैसे और जीऊं ! सारा प्राण एक ही बिंदु पर केंद्रित हो जाता है--मरूं नहीं, मृत्यु न हो। यही आकांक्षा नये जन्म में ले जाती है। मरते वक्त जिसके मन में जीने की प्रबल आकांक्षा है, वह मरते ही तत्क्षण किसी गर्भ में प्रवेश कर जाता है। उसको कहा अकाज; बुरा काम हो गया, हानि हो गयी।

भीखा गये हरिभजन बिनु, तुरतहिं भयो अकाज।

तो भीखा कहते हैं : सावधान किये देता हूं कि अगर हरिभजन के बिना गये... बहुत बार गये हो, हर बार अकाज हुआ, इस बार सम्हलो ! अब तो सम्हलो। इस बार सम्हल कर जाओ ! इस बार मरते क्षण हरिभजन हो, जीवेषणा नहीं। इस वक्त मरते क्षण राम हृदय में हो, काम नहीं। इस बार मरते क्षण प्रार्थनापूर्ण हो हृदय, वासनापूर्ण नहीं। इस बार मरते वक्त देह से, मन से मुक्त हो जाने की प्रबल आकांक्षा, अभीप्सा हो, तो सुकाज हो जाएगा। फिर नयी देह नहीं होगी, नया आवागमन नहीं होगा। फिर तुम मुक्त आकाश के हिस्से हो जाओगे,

सारा आकाश तुम्हारा होगा। फिर तुम क्षुद्र देह में न बंधोगे। तुम सीमा में आबद्ध न होओगे। और वही दुख है, वही नर्क है। सीमा में असीम का आबद्ध होना नर्क है, असीम का असीम में लीन हो जाना स्वर्ग है।

पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज ।।

और जब मौत आएगी तो परमात्मा खड़ा होगा द्वार पर. . .लेने आएगा तुम्हें कि शायद तैयारी हो तो तुम्हें ले जाए। . . .पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज. . .मगर तुम उसका स्वागत न कर पाओगे; तुम अपनी कौड़ियों में ही उलझे रहोगे।

मैंने सुना है, एक मारवाड़ी मर रहा था। आखिरी दम छोड़ने का क्षण, उसने आंख खोली, पास में बैठी अपनी पत्नी से कहा : लल्लू की मां, लल्लू कहां है?

तो पत्नी ने सोचा कि बेटे की याद आयी। कहा कि घबड़ाएं न, आपके उस तरफ बैठा हुआ है। सांझ हो रही है और अंधेरा उतर रहा है और फिर मरते आदमी को ठीक-ठीक दिखाई भी नहीं पड़ रहा है। आप चिंता न करें लल्लू उस तरफ बैठा है।

तो और भी चिंता से मारवाड़ी ने पूछा : फिर कल्लू कहां है?

कहा आप बिलकुल चिंता न करें, पत्नी ने कहा, लल्लू के पास ही कल्लू भी बैठा हुआ है।

तब तो मारवाड़ी बिलकुल हाथ टेककर उठने की कोशिश करने लगा। पत्नी ने कहा : क्या करते हो? तो उसने पूछा : और छोटू कहां है?

तो कहा : वह आपके बिलकुल पैरों के पास बैठा है।

तो मारवाड़ी ने कहा : हद हो गयी, फिर दुकान कौन चला रहा है? जब सब यहीं बैठे हैं, तो दुकान कौन चला रहा है?

मरते वक्त भी 'दुकान कौन चला रहा है' यहां मन अटका है। यह आदमी मर कर भी दुकान के चक्कर लगाएगा। देखेगा कि लल्लू, कल्लू, छोटू, क्या कर रहे हैं? कमाई ठीक से हो रही कि नहीं? वह जो कहानियां कहती हैं कि मर जाने के बाद लोग अपने गड़े हुए धन पर सांप बनकर बैठ जाते हैं, ठीक ही कहती होंगी क्योंकि अधिकतर लोग तो जिंदगी में ही, जिंदा ही सांप बनकर बैठे रहते हैं, मरकर भी और क्या करेंगे? जो जिंदगी-भर किया है वही मरकर भी करेंगे।

एक और मारवाड़ी के संबंध में मैंने सुना है। कोई मारवाड़ी नाराज न हो जाए। अब मैं करूं भी क्या; ये कहानियां किसी और के नाम से कहो तो जमती ही नहीं। मैं तो कई बार सोचता हूं कि किसी और के नाम से कहो। लेकिन किसी और के नाम से इनका कोई तालमेल ही नहीं होता। जैसे पश्चिम में सब कहानियां

यहूदियों के नाम से कही जाती हैं, वैसे भारत में ऐसी कोई भी कहानी कहनी हो तो सिवाय मारवाड़ी के कोई उपाय ही नहीं। मारवाड़ी भारत का यहूदी है।

एक आदमी अपने मित्र को एक कहानी सुना रहा था। बोला कि दो यहूदी... बस इतना ही बोल पाया था कि उसके मित्र ने कहा : छोड़ो भी जी, यहूदी, यहूदी यहूदी, कहानी किसी और नाम से नहीं कह सकते? उसने कहा : ठीक, और नाम से सही। दो ईसाई सिनागाग जा रहे थे ...। अब सिनागाग तो यहूदी ही जाते हैं वह तो यहूदियों के मंदिर का नाम है। मगर कहानी तो घटनी है सिनागाग में। अब ईसाई को भी रखने से क्या होगा?

तो कोई मारवाड़ी नाराज न हो।

एक मारवाड़ी मर रहा था। मरना तो सभी को पड़ता है। मारवाड़ी तक को मरना पड़ता है और आदमियों की तो बिसात क्या! उसके चार-छः लड़के बैठकर विचार कर रहे थे। छोटा लड़का बोला : एक रॉल्सरॉयस गाड़ी लानी चाहिए। पिता के अंतिम समय उनकी लाश को रॉल्सरॉयस गाड़ी में रखकर ले चलेंगे मरघट।

दूसरे भाई ने कहा : फिजूल खर्चा, अरे, मुर्दे को क्या रॉल्सरॉयस में ले गये कि एम्बेसेडर गाड़ी में ले गये, क्या फर्क पड़ता है? एम्बेसेडर से काम चल जाएगा।

तीसरे भाई ने कहा कि मुर्दे को क्या फर्क पड़ता है एम्बेसेडर... नाहक का खर्चा बांधना, पेट्रोल महंगा, पड़ोसी गाड़ी दें कि न दें, मेरा तो ख्याल है कि वह पुरानी तरकीब ही ठीक कि अर्थी बना लेंगे और कंधे पर रख कर ले चलेंगे।

चौथे भाई ने कहा : मरघट है दूर, गरमी के दिन और देश मारवाड़। खुद तो हम जल-भुन जाएंगे ही, साथ कौन जाएगा अर्थी के? और इनकी जिंदगी-भर की कहानियां और इनके जिंदगी-भर के गोरख-धंधे ... वैसे ही कोई साथ जाने को तैयार नही, तो इतनी दोपहरी में कौन साथ जाएगा? और हम भी थक-मर जाएंगे ले जाकर। बैलगाड़ी में रखकर ले चलना ठीक रहेगा।

पांचवें ने कहा : फिजूल की बकबास में पड़े हो, अपने घर जो गधा है, वही ठीक है. उसी पर बांध देंगे और ले चलेंगे।

तभी बाप जो मर रहा था, यह सब सुन रहा था, एकदम उठ आया और कहने लगा : मेरी चप्पल कहां हैं?

उन्होंने कहा : चप्पल का क्या करोगे? उसने कहा कि मैं पैदल ही चलता हूं। अरे, अभी इतनी जान मुझमें शेष है, नाहक का खर्चा करना, गधे को सताना, आज-कल घास भी महंगा और हर चीज की झंझट. . .। इतना तो मैं अभी चल सकता हूं। मरघट तक मैं पैदल ही चला चलता हूं, वहीं चलकर मर जाऊंगा, तुम्हें कोई दिक्कत ही नहीं आएगी।

मरते क्षण भी लोग सोचेंगे तो वही जो जिंदगी-भर सोचा है। जिंदगी-भर जैसे जिये हैं उसका ही तो निचोड़ मृत्यु के समय आंख के सामने खड़ा हो जाएगा।

भीखा गये हरिभजन बिनु, तुरतहिं भयो अकाज।

देर नहीं लगती, उसी क्षण अकाज हो जाता है।

पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज।।

जब मौत आती है तो मौत ही नहीं आती, मौत के दो चेहरे हैं...। तुमने तो मौत के संबंध में जो कहानियां सुनी हैं वे यही हैं कि भैंसे पर बैठकर यमदूत, काले, भयंकर...वह एक ही हिस्सा है कहानी का। वह तुमने गलत लोगों से सुनी हैं। गलत लोगों की जिंदगी में वही होता है। सौ में से निन्यानबे की जिंदगी में वही होता है लेकिन बुद्धों की जिंदगी में भैंसे पर बैठकर यमदूत नहीं आते, बुद्धों के जीवन में तो स्वयं परमात्मा आता है; बुद्धों के जीवन में तो स्वयं प्रकाश आता हैं; बुद्धों के जीवन में तो स्वयं अमृत बरसता है। जब उनकी मृत्यु आती है तो मृत्यु उनके लिए परमात्मा का द्वार है।

यह तो बुद्धुओं के जीवन में भैंसा और यमदूत इत्यादि आते हैं। यह उनकी ही वृत्तियों का प्रगाढ़ रूप है। यह उनके ही चित्त का प्रतिफलन है। यह उनके ही जीवन का सार-निचोड़ है। यह कालख उनके ही हृदय की कालख है और यह भैंसा उनकी ही वासना का भैंसा है।

जिन्होंने ध्यान को जाना है, भजन को जाना है, उन्होंने मृत्यु का एक बड़ा मधुर और मृदुल रूप जाना है। जीवन तो जीवन, मृत्यु भी उनके लिए कमल के फूलों की तरह आती है। बस फूलों की पंखड़ियां बरस जाती हैं। देह से छुटकारा दुखपूर्ण नहीं होता, सुखपूर्ण होता है, महा-सुखपूर्ण होता है। देह से मुक्ति ऐसी होती है जैसे किसी ने पिंजड़ा खोल दिया और आकाश का पंछी उड़ चला।

वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं।।

और तुम पढ़ते रहो वेद और पुराण; और पढ़ते रहो कुरान और बाइबिल, कुछ भी न होगा।

जो अच्छर समुझा नाहिं... अगर तुमने अक्षर को, राम को, शाश्वत को, सनातन को, नित्य को नहीं जाना। अगर तुम अक्षरों में ही उलझे रहे और 'अक्षर' को न जाना; शब्दों में ही उलझे रहे और निःशब्द को न जाना, तो तुम चूक जाओगे। तो तुम्हारी जिंदगी में कुछ भी होगा नहीं। तुम कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लोगे, भीतर तुम वैसे के वैसे रहोगे।

सत्य प्रिया ने एक अच्छी कहानी मेरे पास भेजी है। एक बहुत प्रसिद्ध सर्जन, उन्हें जरूरत थी एक सहायक डॉक्टर की। विज्ञापन दिया। बड़े-बड़े डिग्रियों वाले डॉक्टर उम्मीदवार थे। पर उन्होंने एक सरदार को चुना। सरदार अभी-अभी लौटा

था, इंग्लैंड से बड़ी डिग्रियां लेकर लौटा था, खूब पढ़-लिखकर लौटा था, बड़े प्रमाण-पत्र लाया था, शेष सब उसके सामने फीके थे। और पहले ही दिन यह घटना घटी।

सर्जन ने एक बड़ा आपरेशन किया। आपरेशन पूरा होने से पहले ही मरीज होश में आ गया। सर्जन ने जल्दी से अपने सहायक सरदार को कहा कि दौड़कर क्लोरोफार्म की बोतल ले आओ। सरदार जी दूसरे कमरे से बोतल लेकर खट-खट जूते बजाते दौड़ते आ ही रहे थे कि चिकना फर्श और तभी घड़ी ने बारह के घंटे बजाये, सो सरदार जी धड़ाम से फर्श पर गिरे, बोतल गिरी। बोतल टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गयी। सर्जन तो बहुत घबड़ाया। उसने कहा: सरदार जी, अब क्या होगा? क्योंकि अस्पताल में यह आखिरी बोतल थी।

सरदार जी बोले: सर, आप बिलकुल चिंता मत कीजिए। मैं अभी मरीज को बेहोश किये देता हूं। यह कह कर सरदार जी ने अपना शर्ट उतारा और अपनी हथेली को कच्छ (कांख) पर मलकर मरीज को सुंघा दिया। मरीज फौरन बेहोश हो गया। सर्जन ने आश्चर्य से सरदार जी की तरफ देखा, तो सरदार जी बोले: आप बिलकुल चिंतित न हों; अभी कच्छा बाकी है।

इंग्लैंड भी हो आये, बड़ी डिग्रियां भी ले आये, मगर फिर सरदार आखिर सरदार...। ऊपर-ऊपर सब हो गया मगर भीतर की पकड़ तो वही रहेगी न! भीतर आदमी नहीं बदलता ऐसे। तुम वेद पढ़ो, पुराण पढ़ो, कंठस्थ कर लो, तोते हो जाओ, नहीं कुछ लाभ होगा।

वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं।।

अच्छर समुझा नाहिं, रहा जैसे का तैसा।

तुम नहीं समझोगे अगर राम को तो तुम वैसे के वैसे रहोगे, तुम्हारा पांडित्य किसी काम का नहीं है। गंगा नहाओ, काशी जाओ, काबा जाओ, कुछ काम नहीं पड़ने वाला है जब तक कि तुम्हारे भीतर उस पाहुने को तुम अंगीकार न कर पाओ, जब तक तुम्हारे भीतर ऐसी तैयारी न हो कि जब प्रभु आये तो तुम दोनों हाथ आलिंगन के लिए फैला सको, उसे बाहों में भर लो, कि जब प्रभु आये तो तुम उसके चरणों में सिर रख दो!

और प्रभु प्रतिक्षण आता है, प्रतिपल आता है, आता ही रहता है; उसके अतिरिक्त आने को कोई और है भी नहीं। हवा का झोंका आता है तो उसी ने दस्तक दी है। फूलों की गंध आयी तो वही आया। सूरज की किरण झांकी तो वही झांका। पक्षी गाया तो वही गाया। वृक्ष में फूल खिला तो वही खिला। उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। जो जानते हैं उनके लिए परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। और जो नहीं जानते उनको परमात्मा को छोड़कर और सब कुछ है। मगर उस एक के साधने से सब सध जाता है और सब साधे सब जाय!

तुम वेद, कुरान पढ़ोगे, चालबाज हो जाओगे, होशियार हो जाओगे, बेईमान हो जाओगे। तुम्हारी बेईमानी पांडित्य का रूप ले लेगी। तुम शब्दों और तर्कों में कुशल हो जाओगे। तुम लफ्फाज हो जाओगे। तुम मीठे-मीठे लच्छेदार शब्दों के जाल बुनने लगोगे। उसमें तुम दूसरों को फंसाओगे ही फंसाओगे खुद भी फंस जाओगे। तुम नयी-नयी तरकीबें निकाल लोगे लेकिन वे सारी तरकीबें तुम्हें संसार में ही उलझाए रखेंगी।

एक कालेज में यह घटना घटी। एक मोटी लड़की थी। किसी लड़के ने उसे भैंस कह दिया। इस बात ने काफी तूल पकड़ा और बात आखिर प्रिंसिपल तक जा पहुंची।

प्रिंसिपल ने उस लड़के को और उस लड़की को दोनों को अपने आफिस में बुलाया। प्रिंसिपल ने लड़के से कहा : बेटे, तुम्हें शर्म आनी चाहिए, क्या महिलाओं से इस प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग करते हैं?

लड़के ने कहा : मगर सर, क्या किसी मोटी लड़की को भैंस कहना गुनाह है?

प्रिंसिपल ने कहा : गुनाह तो नहीं, मगर यह बेढंगा है बेटे। तुम इससे माफी मांगो!

लड़का : तो महोदय, क्या किसी भैंस को मैं बहिनजी कह सकता हूं?

प्रिंसिपल ने कहा : हां-हां, क्यों नहीं, किसी भैंस को तुम बहनजी कहकर संबोधित करो इसमें कोई हर्जा नहीं है।

लड़का उस मोटी लड़की की तरफ मुंह करके बोला : माफ कर दीजिए बहिनजी।

तुम होशियार हो जाओगे, शब्दों में कुशल हो जाओगे, तर्कजाल बैठालने लगोगे, विवादी हो जाओगे, लेकिन इससे भजन पैदा नहीं होगा, भक्ति पैदा नहीं होगी। और जहां भजन नहीं, भक्ति नहीं, तुम वैसे के वैसे।

वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं।।
अच्छर समुझा नाहिं, रहा जैसे का तैसा।
परमारथ सों पीठ, स्वार्थ सनमुख होइ बैसा।।

परमात्मा की तरफ पीठ कर ली है तुमने और स्वार्थ के सामने मुंह किये बैठे हो। स्वार्थ की पूजा कर रहे हो। झूठे देवताओं की पूजा कर रहे हो।

सास्तर मत को ज्ञान, करम भ्रम में मन लावै।

और तुम्हारा सारे शास्त्रों का ज्ञान क्या है? उधार, बासा, दूसरों का। अपने अनुभव के बिना कोई मुक्ति नहीं है। अपने अनुभव के बिना कोई सत्य नहीं है। मैं अपना सत्य तुमसे कहूंगा, तुम तक पहुंचते-पहुंचते असत्य हो जाएगा। मेरा सत्य तुम्हारा सत्य हो ही नहीं सकता—इस बात को बिलकुल निर्णायक

रूप से अपने हृदय में समा जाने दो। आसान और सस्ता यही है कि हम दूसरों के सत्यों को अपना समझ लें क्योंकि न मेहनत, न श्रम, न साधना. . .हल्दी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए. . .कुछ लगता ही नहीं। पढ़ ली किताब, अच्छी-अच्छी बातें सीख लीं। अच्छी-अच्छी बातें बोलने भी लगे, मगर बस ओंठ पर ही रहेंगी ये अच्छी बातें, तुम्हारे हृदय की कालिख और कल्मष इनसे धोया नहीं जाएगा। यह स्नान ऊपर-ऊपर रहा, धूल झड़ जाएगी देह की, मगर आत्मा की धूल का क्या होगा? और तुम्हारी बुद्धि बड़ी पारंगत हो जाएगी। हां, तुम दूसरों पर प्रभाव बांध सकोगे लेकिन राम पर प्रभाव नहीं बंधेगा। राम पर प्रभाव तुम्हारे ज्ञान का नहीं बंधता, तुम्हारी निर्दोषता का बंधता है, सरलता का बंधता है। तुम्हारे पांडित्य का नहीं, तुम्हारी विनम्रता का। पांडित्य तो अहंकार का आभूषण है। परमात्मा से संबंध बनता है जब तुम कह पाते हो समग्र हृदय से कि मैं अज्ञानी हूं, कि मेरे जानने से भी क्या जाना जा सकेगा, मेरी औकात क्या, मेरी बिसात क्या, यह छोटी-सी खोपड़ी है और यह विराट अस्तित्व जैसे कोई चम्मच से सागर को भर-भरकर खाली करना चाहे. . .।

मैंने सुना है कि अरिस्तोतल—यूनान का सबसे बड़ा दार्शनिक—समुद्र के किनारे टहलने गया था। और कोई एक नंगा फकीर एक बड़े अजीब काम में लगा था—एक छोटी-सी चम्मच से पानी भरकर लाता था सागर का और रेत में उसने एक गड्ढा खोद रखा था, उसमें पानी डालकर फिर भागा जाता, फिर चम्मच भरता, फिर गड्ढे में डालता, फिर भागा जाता।. . .दोनों ही काम फिजूल थे क्योंकि सागर कब खाली होगा इसकी चम्मच से और जो रेत में डाल जाता था पानी, जब तक लौटकर आता रेत पी जाती। न गड्ढा भरता, न सागर खाली होता।

अरिस्तोतल देखता रहा, फिर उससे न रहा गया। ऐसे दूसरे के काम में व्यवधान डालना उसके शिष्टाचार के विपरीत था मगर यह बात जरा सीमा के बाहर हो रही थी। न रहा गया उससे। उसने कहा : क्षमा करना मेरे भाई, तुम्हारा उपक्रम देखकर मुझे हैरानी होती है; तुम कर क्या रहे हो? तुम्हारा इरादा क्या है?

उस नंगे फकीर ने कहा कि समुद्र को खाली करके इस गड्ढे में भरना है।

अरिस्तोतल हंसने लगा। उसने कहा : मजाक तो नहीं कर रहे हो? इतना बड़ा समुद्र इतनी छोटी चम्मच, यह छोटा-सा गड्ढा, वह भी रेत में, यह कैसे हो पाएगा? और जिंदगी बहुत छोटी है; अभी बीत जाएगी, चार दिन की है।

और वह फकीर हंसने लगा। और उसने कहा : मैं तुम्हारे लिए ही यह उपक्रम कर रहा हूं। यह तुम्हारी खोपड़ी कितनी बड़ी है, चम्मच से ज्यादा बड़ी? और यह अस्तित्व कितना बड़ा है? सागर से अनंत गुना बड़ा। और तुम इस खोपड़ी

से समझने चले हो अस्तित्व को ? कि इसका राज खोल लोगे ? कि इसका रहस्य जान लोगे ? यह कब हो पाएगा, जिंदगी बहुत छोटी है ?

इसके पहले कि अरिस्तोतल उससे पूछे कि भाई तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है, वह फकीर तो चलता बना । अरिस्तोतल उसके पीछे भी दौड़ा लेकिन वह तो भाग ही गया । कहानी में साफ नहीं है कि यह फकीर कौन था । लेकिन बहुत सम्भव है यह आदमी डायोजनीज रहा हो क्योंकि वही यूनान में नंगा रहता था। अगर न भी डायोजनीज रहा हो तो डायोजनीज की हैसियत का ही कोई दूसरा फकीर रहा होगा, उसका कोई शिष्य रहा होगा ।

उस दिन से अरिस्तोतल को कभी चैन न मिला । उस दिन से यह बात उसे भूली ही नहीं । सोचता था उस दिन के बाद भी, विचारता था, लेकिन जानता था कि यह चम्मच से सागर खाली करने का उपाय है जो सफल नहीं हो सकता, जिसकी असफल हो जाने की नियति सुनिश्चित है ।

सास्तर मत को ज्ञान, करम भ्रम में मन लावै ।

शास्त्र जानो, मतों को जानो, दर्शन को जानो, बड़े-बड़े विचार सीखो, बड़े सिद्धांतों को स्मृति का अंग बना लो, लेकिन इससे कुछ भेद नहीं पड़ेगा; मन तो उलझा रहेगा काम में, वासना में; मन तो उलझा रहेगा संसार के भ्रम में, सपनों में—कोई भेद नहीं पड़ेगा ।

एक बड़े फर्म का मैनेजर मरणासन्न अवस्था में पलंग पर पड़ा हुआ था । फर्म का मालिक उसे अंतिम विदाई देने के लिए आया हुआ था । मैनेजर बड़ा धार्मिक व्यक्ति था । नियमित पूजा-पाठ, व्रत-नियम, उपवास, तीर्थयात्रा, सत्यनारायण की कथा, यज्ञहवन, जो भी सम्भव है, सब करता था, करवाता था । उसकी प्रसिद्धि थी गांव में । उसका असली नाम लोग भूल गये थे, उसको लोग भगतजी के नाम से ही जानने लगे थे ।

भगतजी मर रहे थे । मालिक फर्म का आया हुआ था । भगतजी ने दुखित स्वर में कहा : मालिक, मुझे माफ कर देना । अब मृत्यु के क्षण में आपसे क्या छिपाऊं क्योंकि अब जब मर ही रहा हूं, तो आपको बता देना उचित ही होगा कि मैंने आपकी फर्म से लाखों रुपये का घोटाला किया है । और कम्पनी मेरी ही वजह से घाटे में चल रही थी ।

फर्म के मालिक ने कहा : घबड़ाओ मत भगतजी, तुम्हीं थोड़े ही व्रत, नियम उपवास करते हो, मैं भी करता हूं; और तुम्हीं थोड़े ही तीर्थयात्रा करते हो, मैं भी करता हूं; और तुम्हीं थोड़े ही सत्यनारायण की कथा करवाते हो, मैं भी करवाता हूं; तुम्हीं थोड़े ही भगत हो, मैं भी भगत हूं ।

भगतजी ने कहा : मैं कुछ समझा नहीं ।

तो उस मालिक ने कहा : समझो, अब मरते वक्त तुमसे भी क्या छिपाना । निश्चित मरो भगतजी, घबड़ाओ मत, न ही किसी प्रकार का अपराध-भाव अपने हृदय में लाओ क्योंकि तुम्हें जहर भी मैंने ही दिलवाया है ।

सारा धर्म, सारा क्रियाकांड पाखंड की तरह ही है, जब तक कि राम हृदय में न बसे; जब तक कि राम हृदय में न गूंजे । और कैसे गूंजेगा राम हृदय में ? तुम हटो, जगह खाली करो, सिंहासन रिक्त करो !

पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज ।
घर में नहीं अनाज, भजन बिनु खाली जानो ।

भरो इस हृदय को आनंद-उत्सव से, उसकी प्रार्थना से । उतरेगा जरूर पाहुन । पाहुना आएगा, सदा आता रहा है । आना निश्चित है, तुम्हारी तैयारी चाहिए ।

सास्तर मत को ज्ञान, करम भ्रम मन में लावै ।
छुइ न गयो बिज्ञान, परमपद को पहुंचावै ।।

व्यर्थ की बकवास में पड़े हो जिसको तुम ज्ञान कहते हो, विज्ञान सीखो । विज्ञान का अर्थ होता है : ब्रह्मज्ञान । विज्ञान का अर्थ होता है : विशेष ज्ञान जो ब्रह्म से मिला दे, ऐसा ज्ञान जो ब्रह्म से मिला दे ।

छुइ न गयो विज्ञान, परमपद को पहुंचावै ।

ज्ञान में ही उलझे रहोगे, फिर विज्ञान कब छुओगे ? और विज्ञान कहां सीखा जाता है ? ज्ञान तो किताबों से मिल जाता है, विज्ञान . . .? गुरु-परताप साध की संगति !

भीखा देखे आपु को, ब्रह्म रूप हिये माहिं ।

जिस दिन तुम देख लोगे ब्रह्म को अपने ही हृदय में, अपने ही भीतर धड़कता हुआ, जीवन्त, तरंगित. . .वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं. . . उसके पहले पढ़ते रहो वेद-पुराण, कुछ अर्थ का नहीं है । जिस दिन अपने भीतर अक्षर को देखोगे उस दिन सब अक्षरों में जो लिखा है, समझ आ जाएगा, बिना पढ़े समझ आ जाएगा; नहीं कुरान पढ़नी होगी और समझ आ जाएगा ।

एक ईसाई मिशनरी झेन फकीर से मिलने गया । गया था झेन फकीर को प्रभावित करने ईसा के वचनों से । उसने सुंदरतम वचन ईसा के चुने थे । पर्वत पर जो प्रवचन है ईसा का, जिसमें वे बार-बार कहते हैं : धन्यभागी हैं वे जो विनम्र हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है । धन्यभागी हैं वे जो इस जगत में अंतिम हैं, क्योंकि प्रभु के राज्य में, मेरे प्रभु के राज्य में वे ही प्रथम होंगे । ऐसे-ऐसे अद्भुत वचन ! जब वह फकीर पढ़ने लगा.. उसने पहला ही वचन पढ़ा कि धन्यभागी हैं वे जो विनम्र हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का है ।

झेन फकीर ने कहा कि बस और ज्यादा पढ़ने की जरूरत नहीं है; जिसने

भी यह कहा हो, वह आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है।

उस फकीर ने कहा : अरे, आगे तो सुनिए।

झेन फकीर ने कहा : तुम्हारी मर्जी हो तो सुनाओ मगर बात पूरी हो गयी। जिसने भी यह कहा है, किसने कहा है क्या लेना-देना, मगर जिसने भी कहा है वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है।

उसने यह भी नहीं पूछा कि यह वचन किसका है हिंदू का, मुसलमान का, बौद्ध का, जैन का, ईसाई का, किसका ? किस शास्त्र का है यह भी नहीं पूछा !

जिसने अपने भीतर अक्षर को देख लिया, उसने सबके भीतर अक्षर को देख लिया। उसे आ गयी पहचान सारे उपनिषदों की। उसे वेदों का वेद उपलब्ध हो गया। वह स्वयं वेद हो गया।

भीखा देखे आपु को, ब्रह्म रूप हिये माहिं।
वेद-पुरान पढ़े कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं ।।

अगर तुमने वेद-पुरान पढ़ भी लिए और अक्षर को अपने भीतर नहीं जाना—सब व्यर्थ है, सब बिलकुल व्यर्थ है।

उड़ धाये नीड़-ओर विहग-वृन्द फर-फर कर,
चँ-चुक-चुक के सुचारु रव से नभ थर-थर कर।
घन-गन-संकुलित गगन कज्जल का पुंज बना,
मानो नभ-थाली में दृग अंजन सघन सना;
अस्ताचल ओट हुआ दिन-मणि का रथ अपना
जग को मोहित करने आया निशि का सपना;
नभचारी नभ-पथ से लौट चले अपने घर
पंखों से फर-फर कर !

सांझ हुई; सनिकेतन को गृह की सुध आयी;
अनिकेतन के हिय में निशि की चिन्ता छायी;
दिन-क्षण, विचरण ही में, बीत गये दुखदायी,
अब यह वन्ध्या सन्ध्या श्रान्ति-समस्या लायी;
पाये निशि-वास कहां थकित पथिक यह बेघर ?
आया विश्राम-प्रहर !

जब जीवन-रवि डूबा, मरण-तिमिर बढ़ आया,—
जब कराल काल व्याल अन्धकार चढ़ आया—
तब हिय यों पूछ उठा : यह क्या मृण्मय माया ?
यह कैसा परिवर्तन ? यह कैसी तम-छाया ?

अब निशि-आवास-दान करे कौन करुणाकर ?
कंपता है हिय थर-थर !

निशि का विश्राम कहां ? पूछा जब यों मन ने,
ठौर कहां ? पूछा जब यों इस मृण्मय कण ने,
बोली तब अमर साध : कैसे निशि के सपने ?
ऐ, रे ! आह्वान किया तेरा, चिर चेतन ने !
काले अवगुण्ठन में छिप आये हैं प्रियवर
मत डर, रे अजर, अमर !

आज, सांझ तेरी यह नव प्रभात पूर्ण हुई,
तुझ से अनिकेतन की चिन्ता सब चूर्ण हुई;
हुए आज द्वन्द्व दूर, आज दूर हुई दुई;
मरघट के नभ से है आज अमिय फुही चुई;
मृत्यु का कराल कण्ठ गाता है जीवन स्वर
अब कैसा भय ? क्या डर ?

मृत्यु अगर तुमने जीवन में प्रभु को स्मरण नहीं किया तो बहुत भयभीत करती है और प्रभु को स्मरण किया—मृत्यु का कराल कण्ठ गाता है जीवन स्वर ! तब तो मृत्यु में से अमृत का अनुभव होता है।

अब कैसा भय ? क्या डर ?
आज, सांझ तेरी यह नव प्रभात पूर्ण हुई,

तब तो सांझ सुबह हो गयी। अमावस पूर्णिमा हो गयी। जहर अमृत हो गया।

आज, सांझ तेरी यह नव प्रभात पूर्ण हुई,
तुझ से अनिकेतन की चिन्ता सब चूर्ण हुई;
हुए आज द्वन्द्व दूर, आज दूर हुई दुई;
मरघट के नभ से है आज अमिय फुई चुई;

मरघट पर अमृत बरसता है। जिन्होंने राम को स्मरण कर लिया है, उनकी मृत्यु भी मृत्यु नहीं है। और जिन्होंने राम को स्मरण नहीं किया, उनका जीवन भी जीवन नहीं है। गुरु-परताप साध की संगति ! खोजो गुरु, खोजो साधुओं की संगति ताकि तुम्हारा जीवन तो जीवन हो ही सके, तुम्हारी मृत्यु भी जीवन हो सके। यह महा-अवसर है, चूक न जाए। जागो !

आज इतना ही।
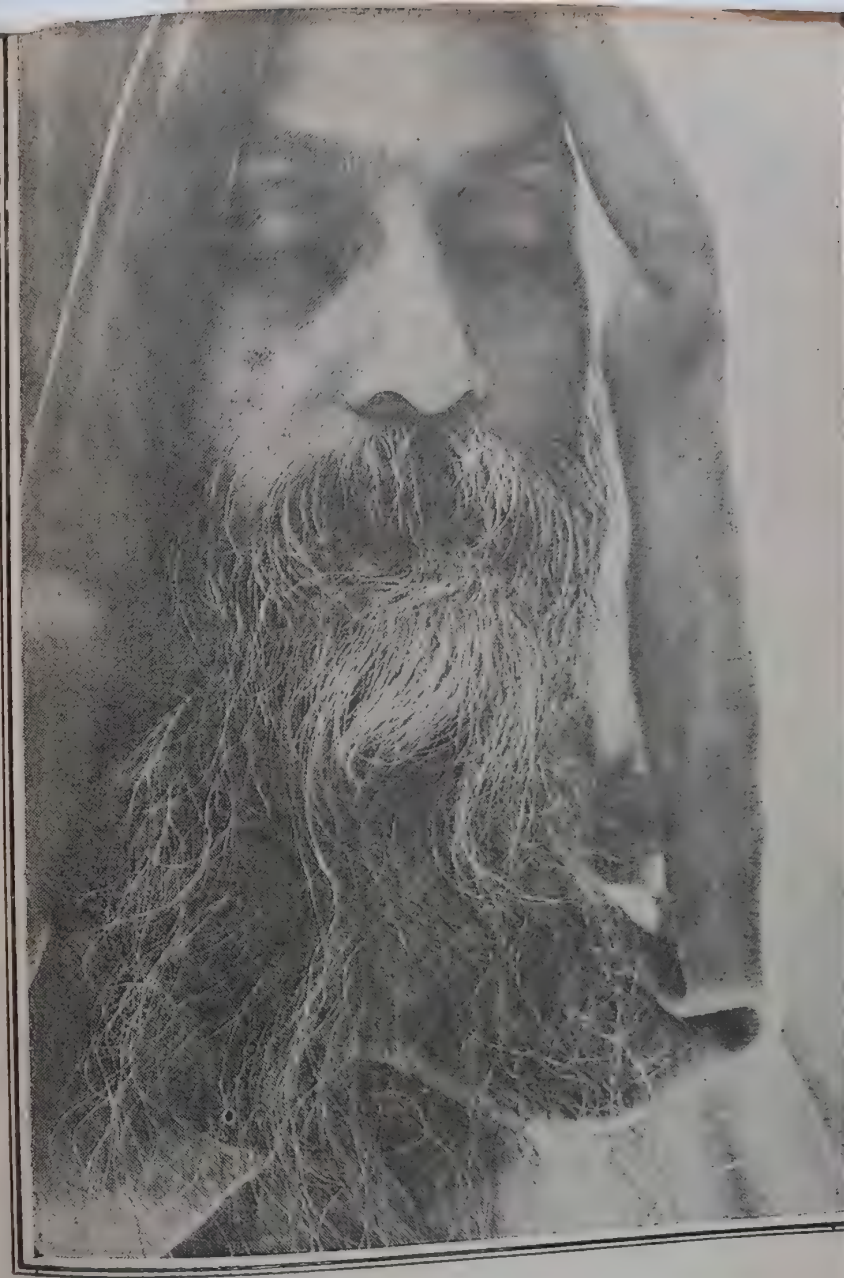
मेरा पथ तो मुक्त गगन

दसवां प्रवचन; दिनांक ३० मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

भगवान ! मेरे मन में बहुत द्वन्द्व है कि आपके पास आकर मुझे समाधान मिलेगा या नहीं ! मैं बहुत उलझन में हूं। मेरा मन ऐसी चीजों से ग्रस्त है, जो स्वीकार्य नहीं हैं। जब मैं अपने में होती हूं, तो उनके साथ समायोजित हो जाती हूं, लेकिन आपके पास पहुंचकर मेरे उपद्रव बढ़ जाते हैं और मैं घबड़ा जाती हूं। मेरा व्यक्तित्व ज्यादा हठी और संदेहशील हो गया है; इस कारण अभी समर्पण कठिन है। इसके बावजूद मुझे आश्रम आने का जी बहुत होता है।

भगवान ! झाबुआ के निकट पच्चीस सौ पच्चीस हवन-कुण्ड बनाकर यज्ञ हो रहा है। सुना है, यह पृथ्वी का सबसे बड़ा यज्ञ है, जिसकी तथाकथित पण्डे-पुरोहित और राजनीतिज्ञ बड़ी तारीफ कर रहे हैं।

और दूसरी ओर आप जिस मंदिर और जीवन-तीर्थ के निर्माण में लगे हैं, उसमें ये ही लोग बाधा डाल रहे हैं। लगता है, यह इन तथाकथित पण्डे-पुरोहितों और राजनीतिज्ञों की सांठ-गांठ है। ऐसा क्यों ?

भगवान ! मैं कवि हूं, क्या सत्य को पाने लिए यह पर्याप्त नहीं है ?

पहला प्रश्न : भगवान ! मेरे मन में बहुत द्वंद्व है कि आपके पास आकर मुझे समाधान मिलेगा या नहीं ! मैं बहुत उलझन में हूं। मेरा मन ऐसी चीजों से ग्रस्त है, जो स्वीकार्य नहीं हैं। जब मैं अपने में होती हूं, तो उनके साथ समायोजित हो जाती हूं, लेकिन आपके पास पहुंचकर मेरे उपद्रव बढ़ जाते हैं और मैं घबड़ा जाती हूं। मेरा व्यक्तित्व ज्यादा हठी और संदेहशील हो गया है; इस कारण अभी समर्पण कठिन है। इसके बावजूद मुझे आश्रम आने का जी बहुत होता है।

★ वीणा पटेल ! द्वंद्व शुभ लक्षण है। अभागे हैं वे जिन्हें द्वंद्व का अनुभव नहीं होता, क्योंकि जिन्हें द्वंद्व का अनुभव नहीं होता वे निर्द्वंद्व को कभी अनुभव न कर पाएंगे। उलझन की प्रतीति सुलझने का पहला चरण है। असमाधान से भरा चित्त समाधान की तलाश है।

सिर्फ जड़बुद्धि सोचते हैं कि उलझन नहीं है। सिर्फ जड़बुद्धि द्वंद्व में नहीं होते। जिनके पास थोड़ी विचार की क्षमता है, द्वंद्व तो होगा ही, उलझन तो होगी ही। जीवन की समस्यायें उन्हें दिखाई पड़ेंगी और उन्हें हल करने की छटपटाहट बढ़ेगी। या तो उन समस्याओं को हल करो या फिर उन समस्यों को भुलाओ। भुलाने से मिटेंगी नहीं, फिर-फिर लौट आएंगी, और सबल होकर लौट आएंगी, फिर-फिर उनका आघात होगा, आक्रमण होगा। जीवन ऐसे ही व्यर्थ के संघर्ष में व्यतीत हो जाएगा।

इसलिए जब तू यहां आती है, तो उपद्रव बढ़ जाते हैं क्योंकि समस्यायें स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती हैं; जब यहां नहीं आती, तो अपने मन को समझा-बुझा लेती होगी; समस्यायों के प्रति आंख बंद कर लेती होगी; समस्याओं के प्रति पीठ कर लेती होगी; सब ठीक है—ऐसी मान्यता में समायोजन कर लेती होगी। मगर वह

समायोजन झूठा है। उस समायोजन का कोई भी मूल्य नहीं; धोखा है, वंचना है। और पीछे बहुत पछताएगी क्योंकि जो समय ऐसी वंचना में गया, वह समय समाधान में लग सकता था।

मेरे पास आने वालों का ऐसा स्वाभाविक अनुभव है। तेरा ही नहीं, जो भी नया-नया मेरे पास आएगा, वह आता तो समाधान की तलाश में है लेकिन पहले तो समस्याओं से सामना करना होगा। जैसे कोई चिकित्सक के पास जाता है, जब जाता है तब तो उसे पता नहीं होता कि बीमारी क्या है, सिर्फ एक आभास होता है कि कुछ गड़बड़ है, जैसा होना चाहिए वैसी देह नहीं है। स्वास्थ्य में कहीं कोई कमी है। मगर कुछ स्पष्ट नहीं होता कि टी. बी. है कि कैंसर है, कि कौन-सी मुसीबत भीतर पक रही है? इसलिए बहुत से लोग तो चिकित्सक के पास जाने से भी डरते हैं क्योंकि जाएंगे तो वह अंगुली रख देगा बीमारी पर। वे मानकर बैठे रहते हैं घर कि कुछ छोटी-मोटी बात है, कोई सर्दी-जुकाम है, कोई सिर में दर्द है, ठीक हो जाएगा—एस्प्रो ले लो, एनासिन ले लो। अपने को भुलाते रहो, समझते रहो। या वे ऐसे लोगों के पास जाते हैं जहां कोई ताबीज दे दे, कोई राख दे दे, कोई आशीर्वाद दे दे कि सब ठीक हो जाएगा, बिना इस बात की फिक्र किये कि बीमारी क्या है। बिना निदान के कोई उपचार कर दे, ऐसे लोगों के पास जाते हैं।

चिकित्सक के पास जाने में बीमार थोड़ा डरता है, उसके पैर कंपते हैं। और मैं समझता हूं उसकी अड़चन। घबड़ाता है कि कहीं सच में कोई बड़ी बीमारी न हो! चिकित्सक के पास जाएगा तो समाधान तो मिल सकता है लेकिन समाधान के पहले निदान है और निदान तो घबड़ाएगा। जब पहली दफे तुमसे कोई कहेगा कि तुम्हें टी. बी. है, कि तुम्हें कैंसर है, तो पैरों के नीचे की जमीन खिसकी, कि दिन में तारे दिखाई पड़ने लगेंगे। सब अस्त-व्यस्त हो जाएगा। अब तक की सब शांति खंडित हो जाएगी। सारा समायोजन तितर-बितर जाएगा। सुलझे हुए धागे उलझ जाएंगे।

एकनाथ के जीवन में ऐसा उल्लेख है। एक युवक एकनाथ के पास आता था। जब भी आता था तो वह बड़ी ऊंची ज्ञान की बातें करता था। एकनाथ को दिखाई पड़ता था, वे ज्ञान की बातें सिर्फ अज्ञान को छिपाने के लिए हैं। एक दिन उसने एकनाथ को पूछा सुबह-सुबह कि एक संदेह मेरे मन में सदा आपके प्रति उठता है। आपका जीवन ऐसा ज्योतिर्मय, ऐसा निष्कलुष, ऐसी कमल की पंखड़ियों जैसा निर्दोष क्वांरा, लेकिन कभी तो आपके जीवन में भी पाप उठे होंगे? कभी तो अंधेरे ने भी आपको घेरा होगा? कभी आपकी जिंदगी में भी कल्मष घटा होगा? ऐसा तो नहीं हो सकता कि पाप से आप बिलकुल अपरिचित हों! मैं यही पूछना चाहता हूं। आज यही सवाल लेकर आया हूं, और चूंकि और कोई मौजूद नहीं है, आज आपको अकेला ही मिल गया हूं, इसलिए निस्संकोच पूछता हूं कि आपके मन में पाप उठता

है कभी या नहीं; उठा है। कभी या है नहीं?

एकनाथ ने कहा : यह तो मैं पीछे बताऊं; इससे भी ज्यादा जरूरी बात पहले बतानी है कि कहीं मैं भूल न जाऊं, बातचीत में कहीं अटक न जाऊं, कहीं भूल ही न जाऊं, जरूरी बात चूक न जाए! कल अचानक जब तू जा रहा था तेरे हाथ पर मेरी नजर पड़ी तो मैं दंग रह गया; तेरे उम्र की रेखा समाप्त हो गयी है। सात दिन और जिएगा तू। बस, सातवें दिन सूरज के डूबने के साथ तेरा डूब जाना है। अब तू पूछ क्या पूछता था।

वह युवक तो उठकर खड़ा हो गया। अब कोई पूछने की बात, अब कोई समस्या समाधान, अब कोई जिज्ञासा, अब कोई दार्शनिक मीमांसा. . .वह तो उठकर खड़ा हो गया, उसने कहा : मुझे कुछ नहीं पूछना है! मुझे घर जाने दो।

एकनाथ ने कहा : बैठो भी, अभी आये, अभी चले, इतनी जल्दी क्या है? सत्संग होगा, चर्चा होगी, तत्व विचार होगा, रोज की ज्ञान की बातें—ब्रह्म, मोक्ष, कैवल्य. . .।

उसने कहा कि छोड़ो भी, आज उनमें मुझे कुछ रस नहीं। वह जवान आदमी एकदम जैसे बूढ़ा हो गया। अभी आया था मंदिर की सीढ़ियां चढ़कर तो उसके पैरों में बल था, लौटा तो दीवाल का सहारा लेकर उतर रहा था, पैर उसके कंप रहे थे। घर जाकर घर के लोगों को कहा; रोना-धोना शुरु हो गया। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये। उस दिन तो घर में फिर चूल्हा ही न जला, पास-पड़ोस के लोगों ने लाकर भोजन करवाया। उसने तो भोजन ही नहीं किया; अब क्या भोजन! वह तो बोला ही नहीं, वह तो आंख बंद करके बिस्तर पर पड़ा रहा। सात दिन में उसकी हालत मरणासन्न जैसी हो गयी। बार-बार सातवें दिन पूछता था—सूरज के डूबने में और कितनी देर है? आवाज भी मुश्किल से निकलती थी। घर में रोआ-गायी मची थी। मेहमान इकट्ठे हो गये थे। दूर-दूर से प्रियजन आ गये थे अंतिम विदा देने।

और सूरज डूबने के ठीक पहले एकनाथ ने द्वार पर दस्तक दी। एकनाथ भीतर आये। एकनाथ उसके पास गये। वह तो आंख बंद किये पड़ा था। हाथ से उसकी आंखें खोलीं और कहा कि एक बात तुझे बताने आया हूं। यह तू क्या कर रहा है, ऐसा क्यों पड़ा है?

उसने कहा : और क्या करूं? सूरज डूबने में कितनी देर है? ये सात दिन मैंने इतना नर्क भोगा है जितना कभी नहीं। अब तो ऐसा लगता है मर ही जाऊं तो झंझट कटे।

एकनाथ ने कहा कि मैं तुझे तेरे प्रश्न का उत्तर देने आया हूं। वह तूने मुझसे पूछा था न कि आपके मन में पाप कभी उठता है। मैं पूछने आया हूं तुझसे कि सात

दिन में तेरे मन में कोई पाप उठा ? उस आदमी ने कहा : कहां की बातें कर रहे हो ! कैसा पाप, कैसा पुण्य ? सात दिन तो कोई विचार ही नहीं उठा, बस एक ही विचार था––मौत, मौत, मौत; एक दिन गया, दो दिन गये, तीन दिन गये, चार दिन गये, यह घड़ी-घड़ी बीती जा रही है, पल-पल चूका जा रहा है। सातवां दिन दूर नहीं है, सूरज के डूबते ही सब डूब जाएगा। मौत थी और कुछ भी न था। इन सात दिनों में अंधकार था अमावस का और कुछ भी न था। कहां का पाप, कहां का पुण्य ?

एकनाथ ने कहा : तो उठ, अभी तुझे मरना नहीं है। तेरी हाथ की रेखा अभी काफी लंबी है। यह तो मैंने सिर्फ तेरे प्रश्न का उत्तर दिया था। ऐसे ही जिस दिन से मुझे मौत दिखाई पड़ गयी है, पाप नहीं उठा। जिसको मौत दिखाई पड़ जाती है पाप नहीं उठता, एकनाथ ने कहा।

ऐसा उत्तर कोई सद्गुरु ही दे सकता है। मगर ऐसे उत्तर महंगे तो हैं। यह सौदा सस्ता तो नहीं है।

वीणा, यहां आएगी तो उपद्रव तो खड़े होंगे। यहां आएगी तो दबे-दबाये प्रश्न उभरेंगे। जिन समस्यों की छाती पर तू बैठ गयी है, वे फिर वापिस तड़फड़ाएंगी। और जिन उलझनों को तूने समझा लिया है अपने को कि सुलझ गयीं, वे फिर दिखाई पड़नी शुरू होंगी।

जिंदगी में समाधान की तलाश के लिए जो जाएगा, पहले तो निदान होगा और निदान दुखद होता है, निदान पीड़ा लाता है। किसी मरीज को कहना कि टी. बी. है, कि कैंसर है.. चिकित्सक को भी बहुत सोचना पड़ता है—कहे कि न कहे ! चिकित्सक को भी बहुत सोचना पड़ता है कि कैसे कहे ? कैसे धीरे-धीरे कहे ? कैसे आहिस्ता-अहिस्ता कि ज्यादा चोट न हो जाए। लेकिन कहना तो पड़ेगा और मैं जिन समस्याओं के संबंध में बात कर रहा हूं, वे छिपाई नहीं जा सकतीं।

तेरा अनुभव ठीक है कि आप के पास पहुंचकर मेरे उपद्रव बढ़ जाते हैं और मैं घबड़ा जाती हूं। लेकिन यह शुभ लक्षण है। इसका अर्थ है कि तूने मुझे सुना। इसका अर्थ है कि तू सोयी नहीं थी। इसका अर्थ है कि मैं तेरे हृदय तक पहुंचा। इसका अर्थ है कि तेरी सांसों में मैं समाया। इसका अर्थ है कि मैंने तुझे विचलित किया। और जो मुझसे विचलित हो जाता है उसने अच्छी खबर दी, सुसमाचार है। क्योंकि जो मुझसे विचलित हो जाता है, जिसे मेरी बात चोट करती है, उसे मेरी बात जगाएगी भी।

चोट तो करनी पड़ेगी सोयों को जगाना हो तो। हिलाना तो पड़ेगा। उनके सपने तो तोड़ने पड़ेंगे। उनकी बंद आंखों पर ठंडा पानी तो फेंकना पड़ेगा। और वे नाराज भी होंगे। और तुझे नाराजगी भी होती होगी। और तुझे संदेह उठते

होंगे स्वभावतः कि इससे तो मैं अपने में ही होती हूं तभी ज्यादा समायोजित होती हूं, यहां आती हूं तो और उलझन बढ़ जाती है। मैं तेरी उलझन नहीं बढ़ा रहा, मैं सिर्फ तेरी दबायी गयी उलझनों को प्रगट कर रहा हूं।

और मुझे तेरा तो पता भी नहीं है, ये तो मनुष्यमात्र की दबायी गयी उलझनें हैं जिनकी मैं चर्चा कर रहा हूं। मैं तो तुझे पहचानता भी नहीं हूं, तुझे देखा भी नहीं। मगर मनुष्य मनुष्य में भेद कहां है ! जो अ की मुसीबत है, वही ब की मुसीबत है। थोड़े-बहुत मात्रा के अंतर होंगे, थोड़े रंग-ढंग के भेद होंगे मगर मुसीबतें वही––मौत वही, जीवन वही, जीवन का मौलिक प्रश्न वही कि मैं कौन हूं ? कि जीवन की सार्थकता क्या है, कि प्रयोजन क्या है ? कि क्यों है यह अस्तित्व?

और तूने कहा कि मेरा मन ऐसी चीजों से ग्रस्त है जो स्वीकार्य नहीं हैं। जब तक तू उन्हें स्वीकार न करेगी तब तक मन ग्रस्त ही रहेगा। अस्वीकार करके कोई विजय नहीं होती क्योंकि जो-जो हम अस्वीकार करते हैं अपने भीतर, वही दबा पड़ा रह जाता है। और जो दबा पड़ा रह जाता है वह अपने उभरने का अवसर खोजेगा। मेरे पास आती है, वही उभर आता होगा क्योंकि मैं दमन के विपरीत हूं। जैसे किसी आदमी ने कामवासना को दबा लिया हो और ब्रह्मचर्य का लबादा ओढ़कर बैठ गया हो––यहां मेरे पास आएगा, लबादा सरकने लगेगा। क्योंकि मैं कहता हूं : कामवासना को दबाना नहीं है, जानना है। जानने से जीत है, दबाने में हार है।

कामवासना को जिसने दबाया वह और भी ज्यादा कामवासना से ग्रस्त होता चला जाएगा। उसके रोएं-रोएं में मवाद फैल जाएगी वासना की। ब्रह्मचर्य जरूर घटता है लेकिन उनको कभी नहीं घटता जो वासना को दबा लेते हैं; उनको घटता है जो वासना में साक्षीभाव को जोड़ देते हैं––दबाते नहीं, उभारकर वासना को पूरा का पूरा देख लेते हैं, आंख भरकर देख लेते हैं। जिन्होंने भी अपनी वासना को आंख भरकर देख लिया है उन्हीं की वासना प्रार्थना में रूपान्तरित हो जाती है। वही वासना जो भटकाती थी, मार्ग बन जाती है। वही सीढ़ी जो नीचे ले जाती है, वही सीढ़ी तो ऊपर ले जाएगी। और वही रास्ता जो तुम्हें यहां तक ले आया है, वापिस तुम्हें घर ले जाएगा। वासना संसार में ले आयी है, वासना ही परमात्मा में ले जाएगी। फर्क इतना ही होगा कि संसार में आते वक्त पीठ परमात्मा की तरफ थी, मुंह संसार की तरफ था; लौटते वक्त पीठ संसार की तरफ होगी, मुंह परमात्मा की तरफ होगा। लेकिन वासना वही, ऊर्जा वही, शक्ति वही। उसी शक्ति के सहारे तो तुम पानी में डुबकी लगाते हो और उसी शक्ति के सहारे तुम पानी के बाहर निकल आते हो।

जिसने तुम्हें भटकाया है, उसी में सुलझाव छिपा है। जहर में अमृत दबा पड़ा

है, खोजी चाहिए। बोधपूर्वक खोज करनी है। इसलिए मेरे पास अगर किसी ने थोप-थापकर ब्रह्मचर्य बिठा लिया हो--और ऐसे काफी लोग हैं इस देश में, ऐसे ही लोग हैं, ऐसे ही लोगों से यह देश भरा है--तो जरूर मेरी बात सुनेंगे तो उनकी वासना में नये अंकुर आने लगेंगे। वह जो अस्वीकार्य है, सिर उठाने लगेगा। वे घबड़ाएंगे। जिन्होंने क्रोध को दबा लिया है, वे घबड़ाएंगे। जिन्होंने लोभ को दबा लिया है, वे घबड़ाएंगे। जिन्होंने दबाया है वह तो मेरे पास आकर थोड़ी घबड़ाहट से भरेंगे। यह स्वाभाविक है।

मगर इसका अर्थ यह नहीं है कि मेरे पास आने से डर जाओ; तब तो तुम चूक गये एक अवसर। गुरु-परताप साध की संगति! यह कोई सस्ता सौदा नहीं है. यह महंगी यात्रा है। यह जोखम है। यह जुआ है। इसलिए तेरा मन द्वंद्व से भर जाता है और तुझे लगता है कि मुझे समाधान मिलेगा या नहीं।

जो मन द्वंद्व से भरता है वह इसीलिए तो द्वंद्व से भरता है कि निर्द्वंद्व होना उसकी क्षमता है। इस बात को ठीक से समझ लो। जो आदमी बीमार हो सकता है, वह स्वस्थ हो सकता है। मुर्दे बीमार नहीं होते। तुमने कभी किसी मुर्दे को बीमार देखा? मुर्दे बीमार नहीं होते, मुर्दे स्वस्थ भी नहीं हो सकते। मूढ़ द्वंद्व से नहीं भरते, मूढ़ बुद्धता को भी उपलब्ध नहीं होते। द्वंद्व से भरना, चिंतातुर होना, इस बात का लक्षण है कि भीतर विवेक है, भीतर बोध है, चैतन्य है, भीतर समझ है।

लेकिन अब तक उसका सम्यक उपयोग नहीं हुआ है। उसका सम्यक उपयोग हो जाए तो बस कांटों को फूल बना लेने की कला ही तो मैं सिखाता हूं। काम को राम बना लेना है। और कंकड़-पत्थर हीरे-जवाहरातों में बदल जाते हैं। और तब तुम जीवन की समस्याओं के प्रति धन्यवाद से भरोगी। तब तुम जीवन की समस्याओं के प्रति अनुग्रह अनुभव करोगी। क्योंकि उन्हीं समस्याओं ने सोपान का काम किया है, वे ही तुम्हें समाधान तक ले आयीं।

लेकिन जो स्वीकार्य नहीं है उसे स्वीकार करना होगा; तुम्हारे स्वीकार करने न करने से न तो कुछ फर्क पड़ता है, न कुछ मिटता है, न कुछ बनता है। जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करो अगर रूपान्तरण चाहिए क्योंकि स्वीकार से ही रूपान्तरण है। अस्वीकार से संघर्ष है। अस्वीकार से खंडित हो जाओगे और कुछ नहीं हो सकता, टुकड़े-टुकड़ों में बंट जाओगे। जो आदमी अपनी कामवासना से लड़ेगा वह दो हिस्सों में हो गया। एक तरफ कामवासना हो गयी उसकी, एक तरफ वह हो गया। और ध्यान रखना कामवासना कोई छोटी बात नहीं है, रोएं-रोएं में समायी है, तुम उसी से पैदा हुए हो, तुम उसी से निर्मित हो। तुम्हारी देह का कण-कण कामवासना से भरा है, उससे लड़ोगे तो अपने से ही लड़ोगे। इस खुद से चलने वाली कुश्ती में कभी विजय नहीं हो सकती, बुरी तरह हारोगे, बुरी तरह टूटोगे और खंड-खंड

होकर छितर जाओगे। जैसे पारा छितर जाए ऐसे छितर जाओगे। जैसे कांच को कोई पत्थर पर पटक दे और चकनाचूर हो जाए ऐसे चकनाचूर हो जाओगे।

जीवन को बदलना है। जीवन को ऊंचाइयों पर ले जाना है। जीवन को पंख देना है। तो जीवन में द्वंद्व नहीं होना चाहिए। अपने भीतर द्वैत नहीं होना चाहिए, अद्वैत होना चाहिए। मैं तुम्हें अद्वैत का पहला पाठ सिखाता हूं--तुम जैसे हो वैसे ही अपने को स्वीकार करो। बुरे-भले के निर्णय बड़ी मुसीबत में डाले हुए हैं। क्या बुरा है, क्या भला है--तुम्हें कुछ पता नहीं है। क्या शुभ, क्या अशुभ--तुम्हें कुछ पता नहीं है। मगर दूसरों ने जो सिखा दिया है वही पकड़ बैठा है, उसने ही तुम्हारे प्राण ले लिए हैं।

अगर तुम सारी दुनिया की अलग-अलग जातियों की जीवन व्यवस्था को समझो तो यह बात तुम्हें समझ में आ जाएगी। चीन में लोग सांप का भी भोजन करते हैं। सांप का भी भोजन करते हैं, यह तुम सोच भी न सकोगे। चीन में सांप का भोजन स्वादिष्टतम भोजनों में एक समझा जाता है। बच्चे बचपन से ही यह बात देखते हैं, किसी को अड़चन नहीं पैदा होती। लेकिन तुम्हारे सामने कोई नाश्ते में सांप को उबालकर रख दे तो तुम तो महीने पन्द्रह दिन भोजन न कर सकोगे, ऐसी ग्लानि पैदा हो जाएगी। जो तुमने सुना है तुम्हें ठीक लगता है। जो तुमने सुन रखा है बचपन से, वह तुम्हारे भीतर ठीक होकर बैठ गया है। उसको तुमने पकड़ लिया है। उस पर पुनर्विचार नहीं किया। उस पर आत्म-निरीक्षण नहीं किया। तुमको कहा गया है, क्रोध बुरा है। लेकिन तुम्हें यह नहीं कहा गया कि इस क्रोध के भीतर ही छिपी करुणा का स्रोत है। क्रोध जरूर बुरा है अगर क्रोध ही रह जाए, लेकिन अगर क्रोध करुणा बन जाए तो क्रोध भी सौभाग्य है।

तुमने कभी यह बात सुनी है कि कोई नपुंसक बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ हो आज तक? न पूरब में, न पश्चिम में, कोई नपुंसक बुद्धत्व को क्यों उपलब्ध नहीं हुआ? क्योंकि काम-ऊर्जा ही न हो तो ब्रह्मचर्य कैसे फले! अगर ब्रह्मचर्य के ही कारण लोग बुद्धत्व को उपलब्ध होते होते तो सब नपुंसक बुद्ध की तरह ही हो जाते। ऊर्जा ही नहीं है कामवासना की तो ब्रह्म-

अभाव किसी काम नहीं आता।
चर्य का फूल कैसे खिलेगा! तुमने यह बात देखी कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, बुद्ध भी क्षत्रिय हैं। और इन दो धर्मों ने--जैनों और बौद्धों ने--अहिंसा का पाठ दिया दुनिया को। क्षत्रियों ने और अहिंसा का पाठ दिया! यह थोड़ी बात चौंकाती नहीं? ब्राह्मणों को देना चाहिए था, सो ब्राह्मणों ने तो परशुराम दिये दुनिया को। कि कहते हैं उन्होंने अनेक बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया, उठकर फरसा और सफाई कर दी। ब्राह्मणों ने परशुराम दिये और क्षत्रियों ने--महावीर, पार्श्व, नेमी, बुद्ध--अहिंसा के तीर्थंकर दिये। यह जरा सोचने जैसी बात

है कि ऐसा कैसे हुआ ? अगर जैनों के सब तीर्थंकर ब्राह्मण होते, बात में बिलकुल तर्क होता, गणित होता। लेकिन जैनों का कोई ब्राह्मण तीर्थंकर नहीं है। क्या कारण है ? क्षत्रियों के पास ही इतना क्रोध था, इतना प्रज्ज्वलित क्रोध था कि करुणा पैदा हो सकी। करुणा पैदा होने के लिए प्रज्ज्वलित क्रोध की क्षमता चाहिए। यह चमकती हुई धार थी तलवार की जो करुणा बन सकी।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है अंगुलीमाल का। एक आदमी जो नाराज हो गया सम्राट से और उसने घोषणा कर दी कि वह एक हजार आदमियों की गर्दन काटकर उनकी अंगुलियों की माला बनाकर पहनेगा। उसका नाम ही अंगुलीमाल हो गया। उसका असली नाम ही भूल गया। उसने लोगों को मारना शुरू कर दिया। वह बड़ा मजबूत आदमी था, खूंखार आदमी था। वह राजधानी के बाहर ही एक पहाड़ी पर अड्डा जमाकर बैठ गया। जो वहां से गुजरता उसको काट देता, उसकी अंगुलियों की माला बना लेता। वह रास्ता चलना बंद हो गया। औरों की तो बात छोड़ो राजा के सैनिक और सिपाही भी उस रास्ते से जाने को राजी नहीं थे। राजा खुद थर-थर कांपता था।

नौ सौ निन्यानबे आदमी उसने मार डाले, वह हजारवें की तलाश कर रहा था। उसकी मां भर उसको मिलने जाती थी, अब तो वह भी डरने लगी। लोगों ने उससे पूछा कि अब तू नहीं जाती अंगुलीमाल को मिलने ? उसने कहा : अब खतरा है; अब उसको एक की ही कमी है। अब वह किसी को भी मार सकता है। वह मुझे भी मार सकता है। वह बिलकुल अंधा है। उसको हजार पूरे करने ही हैं। पिछली बार उसकी आंखों में मैंने जो देखा तो मुझे लगा अब यहां आना खतरे से खाली नहीं है। पिछली बार मैंने उसकी आंखों में शुद्ध पशुता देखी। अब मेरी जाने की हिम्मत नहीं पड़ती।

और तभी बुद्ध का आगमन हुआ उस राजधानी में और वे उसी रास्ते से गुजरने वाले थे, लोगों ने रोका कि वहां न जाएं क्योंकि वहां अंगुलीमाल है। आपने सुना होगा, वह हजार आदमियों की गर्दन काटने की कसम खा चुका है। नौ सौ निन्यानबे मार डाले उसने, एक की ही कमी है। उसकी मां तक डरती है। तो वह आपको भी छोड़ेगा नहीं। उसको क्या लेना बुद्ध से और गैर-बुद्ध से।

बुद्ध ने कहा : अगर मुझे पता न होता तो शायद मैं दूसरे रास्ते से भी चला गया होता लेकिन अब जब तुमने मुझे कह ही दिया कि वह एक ही आदमी की प्रतीक्षा में बैठा है... उसका भी तो कुछ ख्याल करना पड़ेगा। कितना परेशान होगा। जब उसकी मां भी नहीं जा रही और रास्ता बंद हो गया है तो उसकी प्रतिज्ञा का क्या होगा ? मुझे जाना ही होगा। और फिर इस आदमी की सम्भावना अनंत है। जिसमें इतना क्रोध है, इतनी प्रज्ज्वलित अग्नि है; जिसमें इतना साहस

है, इतना अदम्य साहस है कि सम्राट के सामने, राजधानी के किनारे बैठकर नौ सौ निन्यानबे आदमी मार चुका है और सम्राट बाल बांका नहीं कर सके। वह आदमी साधारण नहीं है, उसके भीतर अपूर्व ऊर्जा है, उसके भीतर बुद्ध होने की सम्भावना है।

बुद्ध के शिष्य भी उस दिन बहुत घबड़ाये हुए थे। रोज तो साथ चलते थे, साथ ही क्यों चलते थे प्रत्येक में होड़ होती थी कि कौन बिलकुल करीब चले, कौन बिलकुल बायें-दायें चले। मगर उस दिन हालत और हो गयी, लोग पीछे-पीछे सरकने लगे। और जैसे-जैसे अंगुलीमाल की पहाड़ी दिखाई शुरू हुई कि शिष्यों और बुद्ध के बीच फर्लांगों का फासला हो गया। शिष्य ऐसे घसटने लगे जैसे उनके प्राणों में प्राण ही नहीं रहे, श्वासों में श्वास नहीं रही, पैरों में जान नहीं रही।

बुद्ध अकेले ही पहुंचे। अंगुलीमाल तो बहुत प्रसन्न हुआ कि कोई आ रहा है। लेकिन जैसे-जैसे बुद्ध करीब आये, बुद्ध की आभा करीब आयी... गुरु-परताप साध की संगति...वह सद्‌गुरु की आभा करीब आयी वैसे-वैसे अंगुलीमाल के मन में एक चमत्कृत कर देने वाला भाव उठने लगा कि नहीं इस आदमी को नहीं मारना। अंगुलीमाल चौंका; ऐसा उसे कभी नहीं हुआ था। उसने गौर से देखा, देखा भिक्षु है, पीत वस्त्रों में। सुंदर है, अद्वितीय है। उसके चलने में भी एक प्रसाद है। नहीं-नहीं, इसको नहीं मारना। मगर अंगुलीमाल का पशु भी बल मारा। उसने कहा : ऐसे छोड़ते चलोगे तो हजार कैसे पूरे होंगे ? द्वंद्व उठा भारी, चिंता उठी भारी—क्या करूं, क्या न करूं ? मगर जैसे बुद्ध करीब आने लगे, वैसे अंगुलीमाल की अंतरात्मा से एक आवाज उठने लगी कि नहीं-नहीं, यह आदमी मारने योग्य नहीं है। यह आदमी सत्संग करने योग्य है। यह आदमी पास बैठने योग्य है।

तुम अंगुलीमाल की मुसीबत समझ सकते हो। एक तो उसका व्रत, उसकी प्रतिज्ञा, और एक इस आदमी का आना जिसको देखकर उसके भीतर अपूर्व प्रेम उठने लगा, प्रीति उठने लगी। द्वंद्व तो हुआ होगा वीणा, बहुत द्वंद्व हुआ होगा, महाद्वंद्व हुआ होगा, तुमुलनाद छिड़ गया होगा, महाभारत छिड़ गया होगा उसके भीतर। एक उसके जीवन-भर की आदत, संस्कार और यह एक बिलकुल नयी बात, एक नयी किरण, एक नया फूल खिला, जहां कभी फूल नहीं खिले थे।

जैसे बुद्ध करीब आने लगे कि वह चिल्लाया कि बस रुक जाओ, भिक्षु वहीं रुक जाओ। शायद तुम्हें पता नहीं कि मैं अंगुलीमाल हूं, मैं सचेत कर दूं। मैं आदमी खतरनाक हूं, देखते हो मेरे गले में यह माला, यह नौ सौ निन्यानबे आदमियों की अंगुलियों की माला है ! देखते हो मेरा वक्ष जिसमें मैंने नौ सौ निन्यानबे आदमियों की खोपड़ियां टांग रखी हैं ? सिर्फ एक की कमी है, मेरी मां ने भी आना बंद कर दिया है। मैं अपनी मां को भी नहीं छोड़ूंगा, अगर वह आएगी तो उसकी गर्दन काट

लूंगा मगर मेरी हजार की प्रतिज्ञा मुझे पूरी करनी है, मैं क्षत्रिय हूं।

बुद्ध ने कहा : क्षत्रिय मैं भी हूं । और तुम अगर मार सकते हो तो मैं मर सकता हूं। देखें कौन जीतता है !

ऐसा आदमी अंगुलीमाल ने नहीं देखा था। उसने दो तरह के आदमी देखे थे। एक--जो उसे देखते ही भाग खड़े होते थे, पूंछ दबाकर और एकदम निकल भागते थे; दूसरे--जो उसे देखते ही तलवार निकाल लेते थे। यह एक तीसरे ही तरह का आदमी था। न इसके पास तलवार है, न यह भाग रहा है। करीब आने लगा। अंगुलीमाल का दिल थरथराने लगा । उसने कहा कि देखो भिक्षु, मैं फिर से कहता हूं रुक जाओ, एक कदम और आगे बढ़े कि मेरा यह फरसा तुम्हें दो टुकड़े कर देगा।

बुद्ध ने कहा : अंगुलीमाल, मुझे रुके तो वर्षों हो गये, अब तू रुक।

अंगुलीमाल ने तो अपना हाथ सिर से मार लिया। उसने कहा : तुम पागल भी मालूम होते हो। मुझ बैठे हुए को कहते हो तू रुक, और अपने को, खुद चलते हुए को, कहते हो मुझे वर्षों हो गये रुके हुए !

बुद्ध ने कहा : शरीर का चलना कोई चलना नहीं, मन का चलना चलना है। मेरा मन चलता नहीं। मन की गति खो गयी है। वासना खो गयी है। मांग खो गयी है। कोई इच्छा नहीं बची। कोई विचार नहीं रहा है। मन के भीतर कोई तरंगें नहीं उठतीं। इसलिए मैं कहता हूं कि अंगुलीमाल मुझे रुके वर्षों हो गये, अब तू भी रुक।

और कोई बात चोट कर गयी तीर की तरह अंगुलीमाल के भीतर। बुद्ध करीब आये, अंगुलीमाल बड़ी दुविधा में पड़ा करे क्या ! मारे बुद्ध को कि न मारे बुद्ध को ?

बुद्ध ने कहा : तू चिंता में न पड़, संदेह में न पड़, दुविधा में न पड़; मैं तुझे परेशानी में डालने नहीं आया। तू मुझे मार, तू अपनी हजार की प्रतिज्ञा पूरी कर ले। मुझे तो मरना ही होगा--आज नहीं कल, कल नहीं परसों। आज तू मार लेगा तो तेरी प्रतिज्ञा पूरी हो जाएगी, तेरे काम आ जाऊंगा। और फिर कल तो मरूंगा ही। मरना तो है ही। किसी की प्रतिज्ञा पूरी नहीं होगी, किसी के काम नहीं आऊंगा। जिंदगी काम आ गयी, मौत भी काम आ गयी; इससे ज्यादा शुभ और क्या हो सकता है ! तू उठा अपना फरसा, मगर सिर्फ एक शर्त।

अंगुलीमाल ने कहा : वह क्या शर्त ?

बुद्ध ने कहा : पहले तू यह वृक्ष से एक शाखा तोड़ कर मुझे दे दे। अंगुलीमाल ने फरसा उठाकर वृक्ष से एक शाखा काट दी। बुद्ध ने कहा : बस, आधी शर्त पूरी हो गयी, आधी और पूरी कर दे--इसे वापिस जोड़ दे।

अंगुलीमाल ने कहा : तुम निश्चित पागल हो। तुम अद्भुत पागल हो। तुम

परमहंस हो मगर पागल हो। टूटी शाखा को कैसे मैं जोड़ सकता हूं ?

तो बुद्ध ने कहा : तोड़ना तो बच्चे भी कर सकते हैं, जोड़ने में कुछ कला है। अब तू मेरी गर्दन काट मगर गर्दन जोड़ सकेगा एकाध की ? नौ सौ निन्यानबे गर्दनें काटीं, एकाध जोड़ सका ? काटने में क्या रखा है अंगुलीमाल, यह तो कोई भी कर दे, कोई भी पागल कर दे। मेरे साथ आ, मैं तुझे जोड़ना सिखाऊं। मौत में क्या रखा है, मैं तुझे जिंदगी सिखाऊं। देह में क्या रखा है, मैं तुझे आत्मा सिखाऊं। ये छोटी-मोटी प्रतिज्ञाओं में, अहंकारों में क्या रखा है, मैं तुझे महा प्रतिज्ञा का पूरा होना सिखाऊं। मैं तुझे बुद्ध बनाऊं। मैं आया ही इसलिए हूं कि या तो तू मुझे मारेगा या मैं तुझे मारूंगा। निर्णय होना है, या तो तू मुझे मार या मैं तुझे मारूं।

वीणा, यही मैं तुझसे कहता हूं। मेरे पास जो आये हैं, निर्णय होना है : या तो मैं उन्हें समाप्त करूंगा या वे मुझे समाप्त करेंगे। इस से कम में कुछ हल होने वाला नहीं है। और मुझे समाप्त वे नहीं कर सकेंगे, क्योंकि समाप्त हुए को क्या समाप्त करोगे !

अंगुलीमाल बुद्ध पर हाथ नहीं उठा सका। उसका फरसा गिर गया। वह बुद्ध के चरणों में गिर गया। उसने कहा : मुझे दीक्षा दें। आदमी मैंने बहुत देखे मगर तुम जैसा आदमी नहीं देखा। मुझे दीक्षा दें। बुद्ध ने उसे तत्क्षण दीक्षा दी। और कहा आज से तेरा व्रत हुआ--करुणा। उसने कहा : आप भी मजाक करते हैं, मुझ क्रोधी को करुणा ! बुद्ध ने कहा : तुझ जैसा क्रोधी जितना बड़ा करुणावान हो सकता है उतना कोई और नहीं।

गांव भर में खबर फैल गयी, दूर-दूर तक खबरें उड़ गयीं कि अंगुलीमाल भिक्षु हो गया है। खुद सम्राट प्रसेनजित, बुद्ध के दर्शन को तो नहीं आया था लेकिन यह देखने आया कि अंगुलीमाल भिक्षु हो गया है तो बुद्ध के दर्शन भी कर आऊं और अंगुलीमाल को भी देख आऊं कि यह आदमी है कैसा, जिसने थर्रा रखा था राज्य को ! उसने बुद्ध के चरण छुए और उसने फिर बुद्ध को पूछा कि मैंने सुना है भन्ते कि वह दुष्ट अंगुलीमाल, वह महाहत्यारा अंगुलीमाल, आपका भिक्षु हो गया, मुझे भरोसा नहीं आता। वह आदमी और संन्यासी हो जाए, मुझे भरोसा नहीं आता।

बुद्ध ने कहा : भरोसा, नहीं भरोसे का सवाल नहीं। यह मेरे दायें हाथ जो व्यक्ति बैठा है जानते हो यह कौन है ? अंगुलीमाल है। अंगुलीमाल पीत वस्त्रों में बुद्ध के दायें हाथ पर बैठा था। जैसे ही बुद्ध ने यह कहा कि अंगुलीमाल है, प्रसेनजित ने अपनी तलवार निकाल ली घबड़ाहट के कारण।

बुद्ध ने कहा : अब तलवार भीतर रखो; यह वह अंगुलीमाल नहीं जिससे

तुम परिचित हो, तुम्हारी तलवार की कोई जरूरत नहीं है। तुम घबड़ाओ मत, कंपो मत, डरो मत; अब यह चींटी भी नहीं मारेगा; इसने करुणा का व्रत लिया है।

और जब पहले दिन अंगुलीमाल भिक्षा मांगने गया गांव में तो जैसे लोग सदा से रहे हैं—छोटे, ओछे, निम्न; जैसी भीड़ सदा से रही है—मूढ़, जो अंगुलीमाल से थर-थर कांपते थे उन सबने अपने द्वार बंद कर लिए, उसे कोई भिक्षा देने को तैयार नहीं। नहीं इतना, लोगों ने अपनी छतों पर, छप्परों पर पत्थरों के ढेर लगा लिए और वहां से पत्थर मारे अंगुलीमाल को। इतने पत्थर मारे कि वह राजपथ पर लहूलुहान होकर गिर पड़ा लेकिन उसके मुंह से एक बद्दुआ न निकली।

बुद्ध पहुंचे, लहूलुहान अंगुलीमाल के माथे पर उन्होंने हाथ रखा। अंगुलीमाल ने आंख खोलीं और बुद्ध ने कहा: अंगुलीमाल लोग तुझे पत्थर मारते थे, तेरे सिर से खून बहता था, तेरे हाथ-पैर में चोट लगती थी, तेरे मन को क्या हुआ?

अंगुलीमाल ने कहा: आपके पास आकर मन नहीं बचा। मैं देखता रहा साक्षीभाव से। जैसा आपने कहा था हर चीज साक्षीभाव से देखना, मैं देखता रहा साक्षीभाव से।

बुद्ध ने उसे गले लगाया और कहा: ब्राह्मण अंगुलीमाल, अब से तू क्षत्रिय न रहा, ब्राह्मण हुआ। ऐसों को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं। अब तेरा ब्रह्म-कुल में जन्म हुआ। अब तूने ब्रह्म को जाना।

मेरे पास तुम आओगे तो पहले तो समस्याएं उठेंगी, दुविधाएं उठेंगी, चिंताएं उठेंगी, द्वंद्व उठेंगे। और यह द्वंद्व बिलकुल स्वाभाविक है कि आपके पास आकर मुझे समाधान मिलेगा या नहीं! यह तो जल पीओ तो ही पता चले। जल बिना पिये कैसे पता चलेगा कि प्यास बुझेगी या नहीं! और दीया जलाये बिना कैसे पता चलेगा कि अंधेरा मिटेगा या नहीं! कोई उपाय नहीं है। एक ही उपाय है अनुभव।

वीणा, अपने को स्वीकार करो। मेरा संन्यास स्वीकार का संन्यास है—इसमें त्याग नहीं है, इसमें पलायन नहीं है, इसमें भगोड़ापन नहीं है, इसमें जीवन को अंगीकार करना है क्योंकि जीवन परमात्मा की देन है, इसमें से कुछ भी निषेध नहीं करना है। हां, रूपान्तरित करना है बहुत, मगर काटना कुछ भी नहीं है, एक पत्ता भी नहीं काटकर गिराना है। इसके पत्ते-पत्ते पर राम लिखा है। इसके पत्ते-पत्ते पर उसके हस्ताक्षर हैं। इस पूरे के पूरे जीवन को ही उसके चरणों के योग्य बनाना है। न कहीं भागना, न कहीं जाना है—यहीं, जहां हो वहीं, जैसे हो वैसे ही तुम्हें परमात्मा के योग्य बनाने की कला मैं सिखाऊंगा।

समाधान मिलेगा, निश्चित मिलेगा। अगर असमाधान है तो समाधान मिलेगा ही। अगर बीमारी है तो चिकित्सा हो सकती है। साक्षीभाव सीखना होगा।

यह दमन, अस्वीकार, यह सिखायी गयी बकवास छोड़नी होगी। और तूने पूछा: 'मेरा व्यक्तित्व ज्यादा हठी और संदेहशील हो गया है।' अच्छे लक्षण हैं। 'इस कारण अभी समर्पण कठिन है।' वह बात गलत है। समर्पण करने के लिए संकल्प चाहिए। सिर्फ संकल्पवान ही समर्पण कर सकते हैं। महासंकल्पवान ही समर्पण कर सकते हैं। समर्पण कोई कमजोरों की बात नहीं है। इस दुनिया में जो सबसे बड़ा कार्य है वह समर्पण है। इसलिए विरोधाभास तो लगेगा मेरी बात में। जब मैं कहता हूं कि समर्पण वे ही कर सकते हैं जो महासंकल्पवान हैं, तो तुझे उल्टा तो लगेगा क्योंकि आमतौर से हम सोचते हैं—संकल्प छोड़ना होगा तो समर्पण होगा। लेकिन संकल्प छोड़ने के लिए महासंकल्प चाहिए। कांटे से कांटा निकालना होता है। संकल्प को निकालना हो तो महासंकल्प चाहिए। और एक बार संकल्प महासंकल्प से निकाल दिया गया तब जो शेष रह जाता है वही समर्पण है।

समर्पण संकल्प के विपरीत नहीं है, संकल्प का अभाव है। तो जो मेरे पास आएंगे पहले तो संकल्पवान होते चले जाएंगे; उसको ही तू हठ कह रही है।

और तू कहती है कि 'मन संदेहशील हो गया है।' वह भी शुभ है। मैं सिखाता ही हूं संदेह। मैं आस्था नहीं सिखाता, आस्था आनी चाहिए। संदेह की सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धा के मंदिर तक पहुंचना चाहिए। संदेह को दबाकर श्रद्धा कर ली, दो कौड़ी की है, उसका कोई मूल्य नहीं। संदेह कर करके श्रद्धा आये, इतना संदेह करो कि संदेह करने को न बचे। इतना संदेह करो कि संदेह संदेह पर भी लागू हो जाए। इतना संदेह करो कि संदेह करते-करते ही गिर जाए और मर जाए। समग्रता से संदेह करो ताकि संदेह के प्राण-पखेरू उड़ जाएं। और तब जो रह जाता है खुला आकाश—वही श्रद्धा है, वही समर्पण है।

एक तो विश्वास है जो दुनिया में सिखाया जा रहा है—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन। ये सब विश्वासी हैं, इनको श्रद्धा नहीं है। इन्होंने संदेह को दबा लिया है, छिपा लिया है, अपने अचेतन मन की काल-कोठरी में डाल दिया है। वह वहां पड़ा है भलीभांति जिंदा, कभी भी निकल आएगा। जरा खुरेचो और बाहर आ जाएगा। जरा किसी की श्रद्धा पर प्रश्न उठाओ और वह नाराज होने लगेगा। क्यों? क्योंकि उसे डर लगता है कि कहीं भीतर के संदेह फिर जाग न जाएं। किसी तरह सुला पाया है, किसी तरह छिपा पाया है, फिर कहीं नग्नता प्रगट न हो जाए। जैसे तुम कपड़ों के भीतर नंगे हो, ऐसे ही तुम संदेहों से भरे हो, श्रद्धा सिर्फ तुम्हारे कपड़े हैं। इन कपड़ों का कोई मूल्य नहीं है।

मैं कोई और ही श्रद्धा सिखाता हूं जो संदेह के विपरीत नहीं है, बल्कि संदेह का उपयोग करती है। संदेह करो, जी भरकर संदेह करो। पूछो, प्रश्न उठाओ। और एक एक ऐसी घड़ी आती है। प्रश्न पूछने की जब सब प्रश्न गिर जाते हैं। और एक

ऐसी घड़ी आती है संदेह की महाघड़ी, जब संदेह निष्प्राण हो जाता है।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा विचारक हुआ—— देकार्त। उसने अपने जीवन की खोज संदेह से शुरू की। ठीक रास्ता वही है खोज का। उसने कहा: मैं हर चीज पर संदेह करूंगा, जब तक ऐसी चीज न पा जाऊं जिस पर संदेह न कर सकूं। मैं तो कोशिश करूंगा उस पर भी संदेह करने की लेकिन संदेह कर ही न सकूं; लाख करूं उपाय और लाख पटकूं सिर लेकिन संदेह न कर सकूं——जब तक ऐसे किसी स्थान पर न आ जाऊंगा, तब तक संदेह करूंगा। श्रद्धा तो तभी जब संदेह असम्भव हो जाएगा।

और वह घड़ी आयी। एक दिन आयी। जरूर आयी। आती है।

मैंने भी अपनी यात्रा संदेह से शुरू की वीणा। मैंने अपनी यात्रा नास्तिकता से शुरू की वीणा! इसलिए मैं जानता हूं उस रास्ते को। वही रास्ता मेरा जाना-माना रास्ता है। उस रास्ते पर जो आने को तैयार हैं उनके साथ तो मेरा संबंध बहुत गहरा बन जाता है। मैं नास्तिकों के लिए हूं। और यह सदी नास्तिकों की है, इसलिए मेरा धर्म इस सदी का धर्म है। आने वाला भविष्य नास्तिकों का है, इसलिए मेरा धर्म भविष्य का धर्म है। आने वाले बच्चे जबरदस्ती नहीं मनवाये जा सकेंगे। तुम उनसे लाख कहो कि ईश्वर है, वे मान नहीं लेंगे। रोज-रोज बुद्धि प्रखर हो रही है, प्रगाढ़ हो रही है। हर पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से ज्यादा जागरूक होती जा रही है, ज्यादा होशपूर्ण होती जा रही है, ज्यादा प्रश्न उठाती है। इतना आसान नहीं है अब कि तुम लोगों को समझा-बुझा दोगे और लोग मान लेंगे। अब तो संदेह का जगत है। अब तो वही धर्म जी सकता है जो संदेह का उपयोग करना जानता हो।

मैं जो धर्म की प्रक्रिया तुम्हें दे रहा हूं उसमें संदेह दुश्मन नहीं है, मित्र है। संदेह पर धार रखनी है।

देकार्त ने संदेह से शुरू किया। ईश्वर पर संदेह किया, स्वर्ग पर संदेह किया, नर्क पर संदेह किया, शैतान पर संदेह किया, यहां तक कि जगत पर संदेह, किया, क्योंकि क्या पता हो, न हो! रात सपने में भी तो मालूम होता है कि बाहर चीजें हैं, और सुबह जागकर पता चलता है कि नहीं हैं। तो हो सकता है अभी हम सपना देख रहे हों। तुम सपना देख रहे होओ कि मुझे सुन रहे हो। जो मुझे रोज सुनते हैं कभी-कभी सपना देखते हैं कि मुझे सुन रहे हैं। कौन जाने तुम सपने में हो कि जागे हो। बहुत सम्भावना तो सपने में होने की है, जागने की सम्भावना तो बहुत कम है। क्योंकि जो जाग गया वह तो बुद्ध हो गया।

क्या पक्का है कि जो बाहर है वह है? उसका क्या प्रमाण है? उसका कोई भी प्रमाण नहीं है। उस पर भी संदेह किया देकार्त ने। ऐसे संदेह करता ही गया,

करता ही गया, और एक दिन वह महाघड़ी आ गयी, वह महत क्षण आ गया जब संदेह अटक गया। संदेह अटका अपने अस्तित्व पर। 'मैं हूं' इस पर संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि इस पर संदेह करने के लिए भी तुम्हारा होना जरूरी है। तुम अगर कहो कि 'मैं नहीं हूं', तो कौन कह रहा है? तुम अगर कहो कि 'मुझे अपने पर संदेह है', तो किसको संदेह है? यह जो मेरा अस्तित्व है, यह जो आत्मा है, यह संदेह के परे है; इस पर संदेह नहीं हो सकता।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने मित्रों को होटल में...गपसड़ाका मारता था, बात में बात निकल गयी, कह गया—डींग मार रहा था, कह गया—कि मुझ जैसा दानी इस गांव में कोई भी नहीं।

एक मित्र ने कहा: मुल्ला, यह बात जंचती नहीं। और तुम बहुत झूठ बोलते हो, हम मान भी लेते हैं कि जंगल गया था पांच शेर इकट्ठे मार डाले। कि एक तीर से सात पक्षी गिरा दिये। वह हम सब मान लेते हैं लेकिन इसको तो हम न मानेंगे। क्योंकि हम इसी गांव में रहते हैं, तुम्हारा दान कभी देखा नहीं। दान तो दूर कभी तुमने एक दिन हमें चाय-नाश्ते पर घर बुलाया भी नहीं।

तो मुल्ला ने कहा: आओ, इसी वक्त आओ, भोज का निमंत्रण देता हूं।

तीस-पैंतीस आदमी——होटल का मैनेजर और बैरा सब साथ हो लिए। अकड़ में कह तो गया लेकिन जैसे-जैसे घर करीब आने लगा और जैसे-जैसे पत्नी की शकल याद आयी, वैसे-वैसे घबड़ाने लगा कि अब एक मुसीबत हुई। दरवाजे पर पहुंचकर फुसफुसा कर बोला कि भाइयो, आप भी पति हो, मैं भी पति हूं। हम सब एक दूसरे की स्थिति जानते हैं। तुम जरा यहीं रुको, पहले जाकर मुझे पत्नी को राजी कर लेने दो। दिन-भर से घर से नदारद हूं, असल में गया था सुबह सब्जी लेने। सब्जी तो लाया ही नहीं हूं और पैंतीस आदमियों को भोज पर ले आया हूं। और दिन-भर की पत्नी खिसियायी बैठी होगी। तो जरा थोड़ा-सा मुझे मौका दो, तुम जरा रुको, मैं भीतर जाकर जरा पत्नी को समझा-बुझा लूं, जरा राजी कर लूं।

मित्रों ने कहा: यह बात जंचती है। सबको अपना-अपना अनुभव है, सभी को बात जंची।

मुल्ला नसरुद्दीन भीतर गया। आधा घंटा बीत गया, लौटा ही नहीं, घंटा बीतने लगा। लोगों ने कहा: अब रात भी होने लगी और देर भी होने लगी, और डेढ़ घंटा बीतने लगा। उन्होंने कहा हद हो गयी, सो गया या क्या हुआ! कितनी देर लग गयी पत्नी को समझाने में? और कोई आवाज भी नहीं आ रही है कि समझा रहा हो, कि पत्नी चिल्ला रही हो, कि बर्तन फेंके जा रहे हों, कि प्लेटें तोड़ी जा रही हों, कुछ भी नहीं हो रहा, सन्नाटा है घर में। आखिर उन्होंने दस्तक दी। अब मुल्ला ने अपनी पत्नी से कहा कि कुछ नालायक मेरे साथ आ गये हैं। अब

उनसे बचने का एक ही उपाय है, तू ही मुझे बचा सकती है। तू जा और उनसे कह दे कि मुल्ला नसरुद्दीन घर में नहीं है।

पत्नी गयी। दरवाजा खोला। मित्रों ने पूछा कि मुल्ला कहां है? पत्नी ने बिलकुल कहा कि मुल्ला! वे सुबह से घर से गये हैं सब्जी लेने, अभी तक लौटे नहीं। वे घर पर नहीं है।

उन्होंने कहा : अरे, यह तो हद हो गयी। हमारे साथ ही आये हैं, हमने अपनी आंखों से उन्हें घर के भीतर जाते देखा। और एक आदमी का सवाल नहीं कि धोखा खा जाए, पैंतीस आदमी मौजूद हैं। मित्र विवाद करने लगे कि नहीं वह जरूर घर में है।

मुल्ला भी सुन रहा है ऊपर की खिड़की से। अखिर उसके भी बर्दाश्त के बाहर हो गया कि विवाद ही किये जा रहे हैं। उसने खिड़की खोली और कहा : सुनो जी, यह भी तो हो सकता है तुम्हारे साथ आये हों और पीछे के दरवाजे से चले गये हों।

यह तुम नहीं कह सकते। तुम यह नहीं कह सकते कि मैं घर में नहीं हूं; क्योंकि तुम्हारा यह कहना तो इतना ही सिद्ध करेगा कि मैं घर में हूं। आत्मा एक-मात्र तत्व है जिस पर संदेह नहीं उठ सकता। इसलिए मैं तुम्हें परमात्मा नहीं सिखाता, आत्मा सिखाता हूं। आत्मा में डुबकी मारकर परमात्मा का अनुभव होता है। वह अनुभव है। वह श्रद्धा की बात नहीं है, अनुभव की बात है। आत्मा में डुबकी मारने का नाम ध्यान और जब डुबकी लग गयी तो उसका नाम समाधि। अभ्यास का नाम ध्यान, अभ्यास की पूर्णाहुति समाधि। आत्मा में डुबकी लग गयी तो पता चलता है कि 'मैं हूं', और जिसको पता चलता है 'मैं हूं', उसे पता चलता है यही 'मैं' सबके भीतर व्याप्त है। यही अस्तित्व सबके भीतर व्याप्त है। वही परमात्मा है।

वीणा, चिंता न कर। अगर हिम्मत है, अगर साहस है, तो तेरे संदेह का उपयोग कर लेंगे, तेरी हठ का उपयोग कर लेंगे। तेरी जितनी बीमारियां हों सब ला, हम सबका उपयोग कर लेंगे, हम सबकी सीढ़ियां बना लेंगे। कला भी यही है—अनगढ़ से अनगढ़ पत्थर का भी उपयोग किया जा सके। और अब तू भाग भी नहीं सकती।

तू कहती है : 'इसके बावजूद मुझे आश्रम आने का जी बहुत होता है।' एक बार जो यहां आया है, अगर सच में ही आया है; अगर एक बार भी किसी ने मेरी तरंग को अनुभव किया है; एक बार भी किसी ने मुझे अपने हृदय को छूने दिया है; एक बार भी स्वतंत्रता की—जिसके मैं रोज गीत गा रहा हूं—किसी को थोड़ी-सी झलक मिली है; इस आकाश की जिसकी तरफ मैं तुम्हें पुकार रहा हूं कि छोड़ो अपने पींजड़े, कि छोड़ो अपने पींजड़े, चाहे वे सोने के ही क्यों न हों, उड़ो आकाश

में, मुक्त गगन में, जिसको एक बार पंख फड़फड़ाने का मजा आ गया है—वह फिर लाख उपाय करे तो भी रुक नहीं सकता, फिर उसे कोई रोक नहीं सकता।

वीणा, तेरा रुकना सम्भव नहीं है; रोकने में व्यर्थ समय खराब न कर।

तुम रखो स्वर्णपिंजर अपना,
अब मेरा पथ तो मुक्त गगन।

गत युग की याद दिलाते हो—
था दुर्ग तुम्हारा वह उन्नत;
प्रासाद दुर्ग में बृहत् और
उसमें वह पिंजर स्वर्णावृत!

पर, वे प्रतीक थे बंधन के,
आडंबर, गर्व, प्रलोभन के;
मैंने तो लक्ष्य बनाए थे
कुछ और दूसरे जीवन के!

अरमान विकल थे यौवन के,
तन बंदी था, मन था उन्मन!
तुम रखो स्वर्णपिंजर अपना,
अब मेरा पथ तो मुक्त गगन!

बंधन में फंसने के पहले
यह सत्य जान मैं था पाया—
नभ छाया है इस धरती की,
धरती है इस नभ की छाया;

दोनों की गोद खुली, चाहे
मैं नभ में मुक्त उड़ान भरूं,
चाहे धरती पर उतर, तृणों,
रजकणों आदि को प्यार करूं;

दोनों के बीच नहीं बंधन,
अवरोध, दुराव, परायापन!
तुम रखो स्वर्णपिंजर अपना,
अब मेरा पथ तो मुक्त गगन!

अपना विभ्रम, अपना प्रमाद!

बंध गया एक दिन बंधन में!
वे दिन भी काट लिए मैंने,
छल को पहचाना जीवन में!

अब तोड़ चुका हूं मैं बंधन,
कैसे विश्वास करूं तुम पर?
तुम मुझे बुलाते हो भीतर,
मैं तुम्हें बुलाता हूं बाहर!

देखो तो--स्वाद मुक्ति का क्या,
कैसा लगता है स्वैर पवन!
तुम रखो स्वर्णपिंजर अपना,
अब मेरा पथ तो मुक्त गगन!

नभ-भू से दुर्ग दूर मुझको,
प्रासाद दुर्ग से दूर मुझे,
पिंजर ले गया दूर उससे
भी, बनकर निष्ठुर, क्रूर, मुझे।

फिर सबके पास लौट आया,
अब धरती मेरी, नभ मेरा।
रजकण मेरे, द्रुम, तृण मेरे,
पर्वत मेरे, सौरभ मेरा!

वह सब मेरा, जो मुक्ति मधुर,
वह रहा तुम्हारा, जो बंधन!
तुम रखो स्वर्णपिंजर अपना,
अब मेरा पथ तो मुक्त गगन!

रोकेंगे लोग तुम्हें--प्रियजन, परिवार के, मित्र। जो न कभी मित्र थे, न कभी प्रियजन थे, न कभी परिवार के थे--वे सब अचानक रोकने के लिए परिवार के हो जाएंगे, प्रियजन हो जाएंगे, मित्र हो जाएंगे। जो किसी दुख में कभी काम नहीं आये, वे सब बाधाएं खड़ी करेंगे। मगर उनसे कह दो--

तुम रखो स्वर्णपिंजर अपना,
अब मेरा पथ तो मुक्त गगन!

होगा तुम्हारा पिंजड़ा स्वर्ण का, मुक्ता, हीरे-जवाहरातों से जड़ा, सम्हालो

उसे तुम; मेरा तो आकाश है अब। और जो-जो तुम्हें अस्वीकार्य है, उसे स्वीकार करो। धरती को स्वीकार करो। धरती और आकाश दुश्मन नहीं हैं। मृण्मय और चिन्मय संगी हैं, साथी हैं। देह और आत्मा अलग-अलग नहीं हैं। परमात्मा और उसका यह विराट विश्व एक साथ लीन है, तल्लीन है--एक ही स्वर में आबद्ध।

दोनों की गोद खुली, चाहे
मैं नभ में मुक्त उड़ान भरूं
चाहे धरती पर उतर, तृणों,
रजकणों आदि को प्यार करूं;

दोनों के बीच नहीं बंधन,
अवरोध, दुराव, परायापन!
तुम रखो स्वर्णपिंजर अपना,
अब मेरा पथ तो मुक्त गगन!

और जिन्होंने भी तुम्हें दमन सिखाया है, विरोध सिखाया है, निंदा सिखायी है, शरीर की दुश्मनी सिखायी है, पदार्थ को पतन और पाप कहा है, उन सबसे विदा ले लो। न तो पदार्थ पाप है और न देह पाप है। पदार्थ में भी परमात्मा ही सोया है और देह में भी उसने ही रूप धरा है।

फिर सबके पास लौट आया,
अब धरती मेरी, नभ मेरा।
रजकण मेरे, द्रुम, तृण मेरे,
पर्वत मेरे, सौरभ मेरा।

वह सब मेरा, जो मुक्ति मधुर,
वह रहा तुम्हारा, जो बंधन!
तुम रखो स्वर्णपिंजर अपना,
अब मेरा पथ तो मुक्त गगन!

मैं तो तुम्हें खुले आकाश का निमंत्रण देता हूं वीणा। और इस खुले आकाश में ही बच सकोगी, इस खुले आकाश में ही वीणा बन सकोगी।

दूसरा प्रश्न : भगवान! झाबुआ के निकट पच्चीस सौ पच्चीस हवन-कुंड बनाकर यज्ञ हो रहा है। सुना है, यह पृथ्वी का सबसे बड़ा यज्ञ है, जिसकी तथा-कथित पण्डित-पुरोहित और राजनीतिज्ञ बड़ी तारीफ कर रहे हैं।

और दूसरी ओर आप जिस मंदिर और जीवन-तीर्थ के निर्माण में लगे हैं, उसमें

ये ही लोग बाधा डाल रहे हैं। लगता है, इन तथाकथित पण्डित-पुरोहितों और राजनीतिज्ञों की साठ-गांठ है। ऐसा क्यों?

★ कृष्ण वेदान्त! सांठ-गांठ कोई नयी नहीं, बहुत पुरानी, अति प्राचीन, सनातन है। मनुष्यजाति के इतिहास के प्रथम क्षणों में ही एक बात समझ में आ गयी राजनीतिज्ञ को कि पण्डित और पुरोहित को साथ लिए बिना मनुष्य की आत्मा को गुलाम करना असम्भव है। और अगर मनुष्य की आत्मा मुक्त हो, तो उसकी देह भी गुलाम नहीं हो सकती। अगर मनुष्य की देह को गुलाम बनाना है तो पहले उसकी आत्मा को गुलाम बनाना होगा।

राजनीतिज्ञ की इच्छा आदमी की देह को गुलाम बनाने की है और पंडित-पुरोहित की कला उसकी आत्मा को गुलाम बनाने की है। उन दोनों ने मिलकर एक षड्यंत्र रचा है। उन दोनों ने एक साथ मनुष्य की छाती पर बैठे रहने का आयोजन किया है।

सच्चा धार्मिक व्यक्ति न तो पंडित-पुरोहितों से प्रभावित होता है, न राजनीतिज्ञों से प्रभावित होता है। प्रभावित होने जैसा वहां कुछ है भी नहीं। पंडित-पुरोहित सिर्फ तोते हैं। शब्द होंगे उनके पास सुन्दर, व्याकरण होगी, भाषा होगी, शास्त्रों के उद्धरण होंगे, लेकिन आत्मा का कोई अनुभव नहीं है। और राजनीतिज्ञ तो इस पृथ्वी पर सर्वाधिक क्षुद्र, सर्वाधिक बुद्धिहीन, सर्वाधिक हीनता-ग्रस्त व्यक्ति है। लेकिन अपनी हीनता को छिपाने को वह हर तरह की चालबाजियां विकसित करता है। बुद्धिमान आदमी चालबाज नहीं होता। यह जानकर तुम हैरान होओगे—जितनी प्रतिभा होती है, उतना आदमी साफ-सुथरा होता है।

प्रतिभा को चालबाजी की जरूरत नहीं। चालबाजी की जरूरत होती है प्रतिभाहीन को क्योंकि वह चालबाजी से प्रतिभा की कमी पूरी करता है। जिसके पास असली सिक्के हैं, वह क्यों नकली सिक्के ढोये? लेकिन जिसके पास असली सिक्के नहीं हैं, वह तो नकली सिक्के ढोयेगा। जिसके पास सुंदर चेहरा है, वह क्यों मुखौटे ओढ़े? लेकिन जिसके पास कुरूप चेहरा है, उसे तो मुखौटे लगाने ही होंगे। जिसके पास सुंदर देह है, वह क्यों आभूषणों की चिंता करे? लेकिन जिसके पास कुरूप देह है, उसे तो सोने में, चांदी में ढांकना होगा।

तुमने देखा यह? स्त्रियां कितनी बेहूदी, बेढंगी, बौढ़म मालूम होती हैं जब चेहरे पर रंग-रोगन पोत लेती हैं, ओंठों पर लिप्स्टिक लगा लेती हैं। सिर्फ फूहड़पन जाहिर होता है। सिर्फ इतना ही जाहिर होता है कि इस स्त्री में बुद्धिमत्ता भी नहीं है। सौन्दर्य तो है ही नहीं, सुबुद्धि भी नहीं है, प्रसाद भी नहीं है।

तुमने स्त्रियां देखी हैं, लदी हैं सोने-चांदी से। जैसे सोने-चांदी की चमक में वे अपनी गैर-चमकती आत्मा को छिपा लेने की चेष्टा कर रही हैं। वैसा ही

राजनीतिज्ञ है उसके पास बुद्धि तो नाममात्र को नहीं। बुद्धि होती तो वैज्ञानिक होता। बुद्धि होती तो कवि होता। बुद्धि होती तो संगीतज्ञ होता। बुद्धि होती तो आविष्कार करता कुछ। बुद्धि होती तो सृजन करता कुछ। बुद्धि होती तो संत होता, रहस्यवादी होता। राजनीतिज्ञ के लिए किसी भी तरह की योग्यता की कोई जरूरत नहीं है। राजनीति अयोग्यों का धंधा है। लेकिन एक बात में राजनेता कुशल होता है, वह है बेईमानी, वह है चार सौ बीसी। उतनी ही उसकी कला है।

एक राजनेता की पत्नी मर गयी थी। कफन का कपड़ा लेने के लिए राजनेता ने अपने एक चमचे को बाजार भेजा। कुछ समय पश्चात चमचा खाली हाथ लौट आया। चमचा और खाली हाथ लौट आये, ऐसा कभी हुआ न था। चमचा तो जहां भी डालो वहीं से भरकर लौटता है, चमचे का मतलब ही यही होता है। इसलिए राजनीतिज्ञों के पास चमचे इकट्ठे होते हैं क्योंकि राजनीतिज्ञों के पास शक्ति है, सत्ता है, धन है, पद है, प्रतिष्ठा है— चमचे भी थोड़ा-बहुत उसमें से खींचते रहते हैं।

चमचे को खाली हाथ लौटा देखकर राजनेता ने कहा : अरे, तू और खाली हाथ लौट आया! मामला क्या है?

चमचे ने कहा : मालिक, कफन का कपड़ा तो बड़ा महंगा है। दुकानदार एक कफन के कपड़े के पांच रुपये बता रहा है।

नेताजी ने कहा : क्या, पांच रुपये! क्या अंधेर मचा रखा है? एक कफन के पांच रुपये! तुम यहीं ठहरो, मैं जाता हूं कफन लेने के लिए। कुछ समय पश्चात नेताजी प्रसन्न मुद्रा में घर लौटे और उनके हाथ में एक के बजाय तीन कफन के कपड़े थे।

चमचा चौंका, नेता ने तो बाजी मार ली। चमचे ने पूछा: तीन-तीन कफन, क्या हुआ?

नेताजी ने कहा : देखते हो, तुम तो कहते थे पांच रुपये में एक कफन का कपड़ा मिल रहा है। ये देखो पांच रुपये में तीन कफन खरीद लाया। मैंने दुकान पर जाकर बड़ा तूफान मचा दिया। ऐसा हुल्लड़ किया, घिराव की अवस्था पैदा कर दी। रास्ते पर ट्रेफिक जाम हो गया। ऐसा धूम-धड़ाका मचा कि दुकानदार डरा कि लूट-पाट न हो जाए। बहुत भीड़ इकट्ठी हो गयी। फिर बदनामी के डर से बचने के लिए दुकानदार ने मुझसे कहा ऐसा करो अब आप मानते नहीं तो पांच रुपये में मैं दो कफन दे देता हूं।

दुकानदार ने सोचा था कि दो कफन कोई लेकर क्या करेगा, पत्नी तो एक मरी है। दुकानदार भी कांईयां, उसने कहा : चलो दो ले लो। उसने एक कफन के ढाई रुपये नहीं कहे, उसने कहा चलो दो कफन ले लो पांच रुपये में, झंझट खत्म

करो। सोचा कि दो कोई लेकर क्या करेगा, कफन दो, मरी पत्नी एक।

मगर राजनेता ने कहा : वह छटा कांईयां था लेकिन मैं भी कोई दुह-मुंहा बच्चा नहीं हूं। मैंने कहा ला दे दो। और जब मैंने दो ले लिए पांच रुपये में तो मैंने कहा कि यह तो नियम है बाजार का कि जो ज्यादा चीज खरीदे, एकाध चीज उसको मुफ्त भी देनी चाहिए। दो कफन कभी किसी ने लिए थे तुझसे ?

उसने कहा : आज तक तो नहीं लिए।

मैंने कहा कि यह पहली घटना है, तीसरा कफन मुफ्त दे। सो तीन कफन ले आया हूं।

चमचा बोला : लेकिन मालिक, तीन कफन का करोगे क्या ?

नेता ने कहा : घबड़ा मत, आखिर एक दिन हमें भी मरना ही तो है तब एक कफन काम आ जाएगा। और फिर छोटा बच्चा अपना, वह भी तो किसी दिन मरेगा, एक कफन उसके काम आ जाएगा।

राजनेता बड़ी दूर की सोचते हैं। अंधे को अंधेरे में दूर की सूझी ! बड़े दूर-दूर के हिसाब बैठाते रहते हैं। और उन्होंने पंडितों और पुरोहितों के साथ जो षड्यंत्र किया उसमें बड़े दूर की सोची है।

एक बात तय है कि मनुष्य के भीतर धर्म की कोई प्रगाढ़ आकांक्षा है। राजनेता उसकी तो तृप्ति नहीं कर सकता। और जो उसकी तृप्ति कर सकता है, वह मनुष्य का मालिक रहेगा। राजनेता बुद्धों के खिलाफ हैं, महावीर के खिलाफ हैं, जीसस के खिलाफ हैं, मुहम्मद के खिलाफ हैं, कबीर के, भीखा के, खिलाफ हैं। राजनेता उनके खिलाफ हैं जो सच में ही मनुष्य की आत्मा को स्वतंत्र करने का सूत्र देते हैं। जो उसे आकाश का निमंत्रण देते हैं उनके खिलाफ हैं। क्योंकि वे तो मनुष्य की आत्मा को इतनी स्वतंत्रता दे देते हैं कि वे राजनेता को दो कौड़ी का समझेंगे। राजनेता की वे सुनेंगे क्या खाक ! राजनेता उन्हें न लूट सकेगा।

राजनेता जीसस को तो सूली चढ़ा देते हैं, मंसूर को मार डालते हैं, सुकरात को जहर पिला देते हैं। और पंडित-पुरोहितों को, शंकराचार्यों को, पोपों को ? उनके जाकर चरण छूते हैं। उनके पैर धोते हैं। उनके पैर धोवन का जल पीते हैं। क्यों ? क्योंकि एक बात पक्की है कि इनका कमजोर आदमियों की आत्माओं पर बड़ा प्रभाव है।

अभी भी अगर हिन्दुओं के वोट चाहिए हों तो शंकराचार्य के चरण पहले छुओ। अगर मुसलमानों के वोट चाहिए हों तो जामा मस्जिद के शाही इमाम की खुशामद करो। अगर वोट चाहिए हों तो जहां इतना बड़ा यज्ञ हो रहा है वेदान्त, लाखों लोग इकट्ठे होंगे, इस मौके को राजनेता नहीं चूक सकता। इन लाखों लोगों के सामने तिलक इत्यादि लगाकर, यज्ञोपवीत इत्यादि पहनकर वह खड़ा हो जाएगा।

वह यह अवसर नहीं चूक सकता विज्ञापन का। वह दिखाएगा लोगों कि मैं बिलकुल धार्मिक। मैं हिन्दू। मेरी यज्ञ में आस्था। मेरी वेद में आस्था। सनातन धर्म की विजय होनी चाहिए। यह देखते हुए कि ये करोड़ रुपये पानी में खराब जा रहे हैं, ये करोड़ रुपये आग में जलाये जा रहे हैं। यह जानते हुए कि यह गरीब देश और गरीब होता जाता है धर्म के नाम पर।

लेकिन राजनेता को इससे चिंता नहीं है। वे जो लाखों लोग इकट्ठे होंगे गांव के भोले-भाले, और भोले-भाले ही लोग इकट्ठे होंगे। कोई यज्ञ देखने बुद्धिमान जाएगा ? भोले-भाले लोग इकट्ठे होंगे। उन भोले-भाले लोगों पर राजनेता को . . . यह अवसर नहीं चूक सकता वह। जहां भीड़ है वहां राजनेता हमेशा खड़ा हो जाएगा, भीड़ चाहे किसी भी लिए क्यों न हो। और राजनेता बिलकुल बर्दाश्त नहीं करता कि लोगों के मन में उनकी बंधी हुई धारणाओं पर कोई संदेह उठाये। राजनेता बर्दाश्त नहीं करता कि संदेह कोई जगाये क्योंकि अगर संदेह धर्म के प्रति जगेगा तो राजनीति ज्यादा देर बच नहीं सकती। जो संदेह धर्म पर उठेगा वह राजनीति पर भी छा जाएगा।

इसलिए राजनेता चाहता है लोग अफीम के नशे में पड़े रहें। पंडित-पुरोहित अफीम उनको खिलाते रहें—यज्ञ, हवन, सत्यनारायण की कथा, चलती रहे अफीम। लोग अफीम में पड़े रहें, राजनेता लूट करता रहे। उस आदमी को तो राजनेता बर्दाश्त ही नहीं करेगा जो कहेगा कि यह शोषण है।

एक नेताजी ने घोषणा की—कुछ जोश में आ गये बोलते हुए—कि देश की गरीबी मिटाने का एक उपाय है। हमारे देश में गधे बहुत हैं—आदमियों से तीन गुने ज्यादा। और अगर आदमियों की भी गिनती उनमें कर लो तो तो फिर गधे ही गधे हैं। हमारे देश में गधे बहुत हैं नेता ने कहा, अगर गधे के सींग को हम निर्यात कर सकें, बाहर के देशों को भेज सकें या गधे के सींग से कुछ सुंदर चीजें बनाकर बाहर भेज सकें, तो इतनी विदेशी मुद्रा मिलेगी कि धन ही धन हो जाएगा।

बात लोगों को जंच ही रही थी कि एक युवक खड़ा हो गया। उसने कहा कि महाराज, गधे के सींग होते ही नहीं।

युवक के विरोध को गंभीरता से लिया गया। और इस बात की जांच के लिए एक जांच आयोग नियुक्त किया गया कि गधे के सींग होते हैं या नहीं। ऐसी, राजनीति तो ऐसी ही चलती है, उसकी चाल तो बड़ी अद्भुत है। किसी भी गधे को पूछ लेते या सिर्फ देख लेते तो भी काम चल जाता लेकिन जांच आयोग बिठाया गया। कोई रिटायर्ड चीफ जस्टिस सुप्रीम कोर्ट के बनाये गये होंगे। शाह आयोग नहीं, बादशाह आयोग बिठाया गया होगा क्योंकि यह मामला बड़ा गम्भीर है।

जांच आयोग नियुक्त गया कि गधे के सींग होते हैं या नहीं। आयोग ने अपनी

रिपोर्ट तीन साल में प्रस्तुत की । आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा : प्रश्न यह नहीं है कि कि गधे के सींग होते हैं या नहीं, बल्कि प्रश्न यह है कि नेताजी को जनता ने चुना है और वे जो कहते हैं वह जनता की आवाज है, अतः उसका विरोध करने वाला असामाजिक तत्व है, और उसे सजा मिलनी ही चाहिए ।

तो कौन विरोध करे; नेता तो जनता की आवाज है ! और कभी-कभी तो नेता जब जोर से अपने अहंकार में आ जाते हैं, तो अपनी आवाज को आत्मा की आवाज और परमात्मा की आवाज तक कहने लगते हैं, जनता-वनता को तो पीछे छोड़ देते हैं । जैसे यह विनोबाजी को आत्मा की आवाज आ गयी कि गऊ को बचाओ । अद्भुत लोकतंत्र है यह । यहां एक आदमी अपनी इच्छा साठ करोड़ लोगों पर थोप सकता है--यह लोकतंत्र है ! कल कोई दूसरे बाबा अनशन कर दें कि मानना पड़ेगा कि गधे के सींग होते हैं । कांस्टीट्यूशन में लिखो कि गधे के सींग होते हैं, नहीं तो मैं अनशन करता हूं, मैं मर जाऊंगा । तो मानना पड़ेगा, क्योंकि बाबा कहीं मर न जाएं । ये हत्या की धमकियां हैं और इसको लोकतंत्र समझा जाता है ।

और विनोबा की तकलीफ क्या थी ? तकलीफ कुल एक थी—जसलोक अस्पताल! धीरे-धीरे लोकसभा तो मिटी जा रही, जसलोक सभा बनी जा रही है । सारी लोकसभा जसलोक सभा हो गयी है । वह विनोबा को कष्टपूर्ण हो गया । सारे नेता जसलोक में, परमधाम पवनार कोई भी नहीं आता । तो उन्होंने गऊ माता की पूंछ पकड़ी क्योंकि गऊ माता तो भवसागर पार करवा देती हैं । चले नेता, जसलोक से पवनार चले । गऊ माता ने बड़ी रक्षा की विनोबा की । विनोबा कर पाएंगे गऊ माता की रक्षा यह तो संदिग्ध है लेकिन गऊ माता ने विनोबा की रक्षा कर ली ।

इस देश में कुछ भी चलता है, और चलता रहेगा जब तक तुम चलने दोगे । राजनीति अपने थोथे हथकंडे चलाती रहेगी, पंडित-पुरोहित राजनेता के साथ सांठ-गांठ करते रहेंगे । दोनों का लाभ है । क्योंकि पंडित-पुरोहित चाहता है कि राजनेता आएं, प्रधानमंत्री आएं, मंत्री आएं, मुख्यमंत्री आएं, तो जनता बढ़ती है । यह बड़ी पारस्परिक लेन-देन की बात है । पंडित-पुरोहित चाहते हैं कि राजनेता आएं तो जनता आती है; राजनेता चाहते हैं कि जहां जनता आती है, वहां हम हों । ऐसा कोई स्थान नहीं होना चाहिए जहां भीड़-भाड़ हो और हम न हों । तुम्हारे देश के राजनेता करते ही क्या हैं ? कुल काम शिलान्यास करेंगे, कहीं उद्घाटन करेंगे । सारे देश के राजनेता इसी काम में लगे रहते हैं जैसे और कोई काम ही नहीं है । पुल का उद्घाटन, होटल का उद्घाटन, अस्पताल का उद्घाटन, कुछ भी, जहां चार आदमी हों वहां राजनेता को होना चाहिए । जहां फोटोग्राफर हों जहां अखबारनवीस हों, वहां राजनेता को होना चाहिए । फिर वहां कुछ भी हो रहा हो हर तमाशे में उसे होना चाहिए ।

दिल्ली जाओ तो राजनेता का पता ही नहीं चलता कि वह कहां है । वह भागा हुआ है सारे देश में । काम करने की तो किसी को फुरसत नहीं है, समय भी नहीं है । उद्घाटन से समय मिले तब । मैं तो चाहता हूं कि वे उद्घाटन-मंत्री एक तय ही कर दें । उसका काम ही उद्घाटन, बाकी सब को और कुछ करने दें । वह जहां जरूरत हो वहां उद्घाटन करता रहे । मगर यह वे नहीं कर सकते क्योंकि बिना उद्घाटन के अखबारों में तस्वीर नहीं होती । फिर उद्घाटन चाहे किसी सड़ी-गली होटल का ही क्यों न हो, इससे क्या फर्क पड़ता है ! जब बड़े नेता ने उद्घाटन किया तो अखबार में फोटो होती है ।

दुनिया में इस तरह की मूढ़ता कहीं भी नहीं है जैसी इस देश में है । दुनिया के अखबारों में इस तरह के राजनेता नहीं छाये हुए हैं जैसे इस देश में छाये हुए हैं और न पंडितों का ऐसा प्रभाव है दुनिया में जैसा इस देश में है । ये दोनों मिलकर हमारा दुर्भाग्य हैं । इन दोनों से छुटकारा चाहिए । धीरे-धीरे जागो और जगाओ लोगों को । पंडित से भी छूटना है, राजनेता से भी छूटना है ।

प्रत्येक व्यक्ति को आत्मवान होना चाहिए, अपनी सूझ-बूझ से जीना चाहिए... अप्प दीपो भव...अपने दीये स्वयं बनना चाहिए । मंदिर तुम्हारे भीतर है । यज्ञ अगर होना है तो तुम्हारे भीतर होना है, जीवन अग्नि जलानी है ।

उसी महत चेष्टा में मैं संलग्न हूं । निश्चित उस में हजार तरह की बाधाएं, जितनी बाधाएं वे खड़ी कर सकते हैं करते हैं । करेंगे ही क्योंकि यहां न तो कोई राजनेता कभी बुलाया जाएगा उद्घाटन के लिए, न शिलान्यास के लिए । वे खबरें भेजते हैं यहां, यहां उनके चमचे आते हैं, वे कहते हैं कि अगर उद्घाटन करवाएं तो फलां मंत्री आना चाहते हैं, मगर बिना उद्घाटन के नहीं आएंगे । कोई समारोह हो, उसकी अध्यक्षता करवाएं तो फलाने नेता आना चाहते हैं । खबरें लेकर आते हैं लोग उनके । मैं उनको कहता हूं : यहां न कोई उद्घाटन है, न कोई शिलान्यास है । और उद्घाटन और शिलान्यास करना होगा तो संन्यासी करेंगे । यह संन्यासियों का जगत है । यहां दो कौड़ी के राजनेताओं का क्या मूल्य, क्या कीमत ? यहां उनकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

इसलिए स्वभावतः वे बाधाएं डालें, यह भी समझ में आता है । मगर उनकी बाधाएं काम नहीं आएंगी; कभी काम नहीं आयी हैं । सत्यमेव जयते ! सत्य है तो उसकी विजय सुनिश्चित है । और सत्य नहीं है तो उसकी हार होनी ही चाहिए, फिर उसकी विजय होनी भी नहीं चाहिए । मैं जो कह रहा हूं अगर सत्य है तो जीतेगा; अगर सत्य नहीं है तो जीतना ही नहीं चाहिए, जीतने का कोई सवाल ही नहीं है; असत्य को तो हारना ही चाहिए ।

सुनो मेरी बात, गुनो मेरी बात, थोड़ा डूबो इस रंग में और तुम पहचान सकोगे कि जो मैं कह रहा हूं, वह वही है जो वेदों ने कहा, उपनिषदों ने कहा, कुरान ने कहा, बुद्धों ने कहा, महावीरों ने कहा। भाषा बदल गयी क्योंकि भाषा मैं बीसवीं सदी की बोलूंगा। मेरी अभिव्यक्ति और है--होनी ही चाहिए। सुनने वाले लोग और हैं। इस जगत की ढाई हजार सालों में बड़ी गति हुई है--बैलगाड़ी से हम चांद पर पहुंच गये हैं। ठीक वैसी ही धर्म की भाषा भी बैलगाड़ी से चांद तक पहुंचेगी। धर्म की अभिव्यक्ति और होगी, और धर्म को पहुंचने के नये द्वार खोलने होंगे।

उन नये द्वारों को खोलने का आयोजन चल रहा है। बाधाएं आएंगी जैसे सदा आयी हैं लेकिन बाधाएं कभी भी जीती नहीं। जीसस को मारने से जीसस मारे नहीं जा सके। उनके मारे जाने से ही वे अमर हो गये। बुद्ध को मारे गये पत्थर ही बुद्ध के मंदिरों की आधारशिलाएं बने। सुकरात को जहर दिया, वही अमृत सिद्ध हुआ। फिर वही होगा। आदमी सीखता ही नहीं, वह फिर वही भूलें करता है। वही भूल वह मेरे साथ भी कर रहा है। मगर उस भूल से कोई हानि होने वाली नहीं है, लाभ ही होने वाला है। सत्य को हानि होती ही नहीं।

तीसरा प्रश्न : भगवान ! मैं कवि हूं, क्या सत्य को पाने के लिए यह पर्याप्त नहीं है ?

★ दिनेश ! कवि होना सुंदर है, जरूरी भी, मगर पर्याप्त नहीं। ऋषि भी होना होगा। कवि के ऊपर की सीढ़ी ऋषि है। भाषा में तो कवि और ऋषि का एक ही अर्थ होता है। लेकिन अस्तित्वगत रूप से कवि और ऋषि में बड़ा भेद होता है। कवि ऐसे देखता है जैसे स्वप्न में देखा, ऋषि देखता है आंख खोले हुए, जागे हुए। ऋषि द्रष्टा है, कवि कल्पनाशील है।

कवि की कल्पना में कभी-कभी सत्य के प्रतिबिम्ब बनते हैं, जैसे आकाश में पूरा चांद हो और झील में प्रतिबिम्ब बने। कवि ऐसा है जैसे झील में बना चांद का प्रतिबिम्ब और ऋषि ऐसा है कि उसने आंख उठाकर आकाश में चांद को देखा। कवि प्रतिबिम्ब के ही गीत गाता रहता है, प्रतिबिम्ब में ही उलझ जाता है। प्रतिबिम्ब का भी अपना सौन्दर्य है लेकिन प्रतिबिम्ब फिर भी प्रतिबिम्ब है, मूल कहां ! ऋषि मूल की तरफ आंख उठाता है।

कवियों ने भी गीत गाये हैं लेकिन उनके गीत गाने में कल्पना आधार है; ऋषियों ने भी गीत गुनगुनाये हैं लेकिन उनके गीत गुनगुनाने में सत्य की उद्घोषणा है। उपनिषद् ऋषियों के गीत हैं, कवियों के नहीं। उपनिषद् जो कहते हैं वह देखकर कहा गया है, अनुभव करके कहा गया है। ये भीखा जिसका हम विचार

कर रहे हैं, यह ऋषि है। यह गीत गाने को नहीं गा रहा है। यह कोई तुकबंद नहीं है, यह कोई मात्रा और भाषा और भाषा का गणित नहीं बिठा रहा है। यह कोई तकनीशियन नहीं है, इसके भीतर एक अनुभूति जगी है, आत्मा उभरी है, यह उस आत्मा को उंडेल रहा है। इसका सत्य का साक्षात्कार ही इसका संगीत है, इसका गीत है। यह भी हो सकता है कि इसके गीत में तुम बहुत काव्य न पाओ क्योंकि काव्य इसकी दृष्टि नहीं है। अगर काव्य है तो अनायास है, उसका कोई आयास नहीं है, उसका कोई प्रयोजन नहीं है, उसको कोई लाने की चेष्टा नहीं है। भीखा की दृष्टि से और बहुत बड़े-बड़े ... कबीर, नानक, ये सब द्रष्टा हैं। इन सबकी वाणी अटपटी है।

अगर तुम कवियों से तौलो--कालिदास, शेक्सपियर, निराला, पंत, महादेवी, तो तुम पाओगे भेद। कवियों की वाणी--खूब सुसंयोजित, खूब निखरी हुई, खूब साफ-सुथरी, खूब चमकदार, परिमार्जित, सुसंस्कृत; और ऋषियों की वाणी--अटपटी, सधुक्कड़ी। अमृत तो ऋषियों की वाणी में है, मगर जिस पात्र में भरा है अमृत वह अनगढ़ है; कवियों की वाणी में अमृत तो नहीं है, मगर पात्र सोने का है; भीतर सब खाली है, मगर पात्र सोने का है। और लोग तो पात्र ही देखते हैं, भीतर देखने वाले तो बहुत कम हैं।

भीखा का पात्र तो मिट्टी का है, मगर अमृत भरा है। और जिसके पास अमृत है वह पात्र की फिक्र करता है ? जिसके पास अमृत नहीं है, वही पात्र को सजाता है, संवारता है क्योंकि वही पात्र में अपने को उलझाता है। वह पात्र को ही सब कुछ मान लेता है।

तुम कहते हो : मैं कवि हूं, क्या सत्य को पाने के लिए यह पर्याप्त नहीं ?

जरूरी है। सत्य को पाने के लिए प्रत्येक को कवि होना ही चाहिए। जब मैं कहता हूं प्रत्येक को कवि होना चाहिए तो मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम सब गीत रचो, कि तुम सब काव्य रचो, कि तुम मात्रा और छंद सीखो। नहीं-नहीं, जब मैं कहता हूं प्रत्येक को कवि होना चाहिए तो मेरा अर्थ है तुम सौंदर्य के प्रति संवेदनशील होओ, तुम सुबह उगते सूरज के आनंद को लो, तुम पक्षियों के गीत सुनो, तुम वृक्षों की हरियाली को पिओ, तुम फूलों के पास नाचो, मस्ती सीखो, मदमाते बनो, अलमस्त हो जाओ तो तुम कवि हो। फिर तुम गीत रचोगे कि नहीं यह सवाल नहीं है, तुम्हारा जीवन गीत होगा। तुम कविता बनाओगे या नहीं यह सवाल नहीं है, तुम्हारा जीवन काव्य होगा।

जब मैं कहता हूं कवि बनो, सत्य को पाने के लिए कवि होना जरूरी है, तो मैं कह रहा हूं हृदय बनो। खोपड़ी से उतरो, हृदय की तरफ चलो। विचार को हटाओ, भाव में जियो, भक्ति में डुबकी मारो। सत्य की तरफ जाने के लिए यह

बड़ा अनिवार्य चरण है, क्योंकि अति संवेदनशील हृदय ही सत्य तक पहुंच पाते हैं।

पहले विचार से उतरो. भाव में डूबो--तो तुम कवि हो जाओगे। और अगर भाव से भी गहरे उतर जाओ और आत्मा में डूब जाओ तो तुम ऋषि हो जाओगे।

विचार सबसे ज्यादा दूर है आत्मा से, भाव करीब है, मध्य में है विचार और आत्मा के। लेकिन भाव भी दूर है थोड़ा, भाव की तरंग भी जानी चाहिए, निस्तरंग होना है, निर्बीज होना है, निर्विकल्प होना है, तब आत्मा का अनुभव है।

कवि से भी ऊपर जाना है, ऋषि होना है।

कंठ से तुम गीत गाते,
प्राण से मैं गीत गाता।

दो किनारे हैं कला के, दो दिशाएं वेदना की,
मैं पथिक हूं एक पथ का, दूसरे के तुम पथिक हो;
भिन्न जग में भावधारा और रसधारा हमारी,
एक का मैं हूं उपासक, दूसरी के तुम रसिक हो;
भिन्नता यह स्वस्थ है, कुछ भी नहीं है द्वेष इसमें,
प्राकृतिक है यह कि तुमसे जुड़ सका मेरा न नाता।
कंठ से तुम गीत गाते,
प्राण से मैं गीत गाता।

कवि तो कंठ में रह जाता है, ऋषि प्राण में उतरता है।

तुम खिलो, फूलो कि तुमने कंठ का वरदान पाया,
रूप, आकर्षण, विभव में प्रेम का भगवान पाया;
मैं नहीं लज्जित कि मेरे हृदय ने निज प्रेमपथ में
मौन, संयम, साधना, चिर वेदना, बलिदान पाया।
कंठ के संगीत से कुछ प्राण की भाषा पृथक है,
तुम इसे भूलो भले ही, मैं न इसको भूल पाता।
कंठ से तुम गीत गाते,
प्राण से मैं गीत गाता।

कंठ पर ही मत रुक जाना; कंठ पड़ाव है, मंजिल तो प्राण है।

कंठ-स्वर पर रीझकर जो सिर हिलाते, धन लुटाते,
वे श्रवणवाले सुलभ हैं प्रतिचरण इस विश्वपथ पर,
इसलिए, निश्चिंतता है झूमती स्वर में तुम्हारे,
वेदना गंभीरता में मग्न मेरे प्राण का स्वर;

प्राण जिसके पास, जिसके प्राण में समवेदना है,
प्राण का संगीत सुनने को वही इस ओर आता।
कंठ से तुम गीत गाते,
प्राण से मैं गीत गाता।

मैं भी गा रहा हूं। मैं भी गुनगुना रहा हूं। यह जो मैं कह रहा हूं गद्य नहीं है, पद्य है। ये शब्द नहीं हैं, स्वर हैं। मेरे हाथ में तुम्हें वीणा चाहे दिखाई पड़े और चाहे न दिखाई पड़े, वीणा है। मेरे पैरों में तुम्हें चाहे घूंघर बंधे हुए दिखाई पड़ें या न दिखाई पड़ें, घूंघर हैं। छंद छिड़ा है। मगर छंद अदृश्य का है।

प्राण जिसके पास, जिसके प्राण में समवेदना है,
प्राण का संगीत सुनने को वही इस ओर आता।
कंठ से तुम गीत गाते,
प्राण से मैं गीत गाता।

दिनेश, कवि हो, सुंदर है। कंठ तक आ गये यह भी क्या कम; बहुत तो खोपड़ी में ही उलझे हैं। आधी यात्रा हो गयी, आधी और करो। थोड़े और नीचे, थोड़े और गहरे, थोड़ी और डुबकी मारो।

उनको उद्यान चाहिए वह,
जिसमें रंगीन सुमन अगणित;
दो मुझे जुही की लघु कलिका
तुम श्वेत एक निज स्नेहांकित;
उसमें पाऊं मैं नंदनवन।

उनको वे गंगा कालिंदी
चाहिए, करें जो जग निर्मल;
दो मुझे एक लघु निर्झर, जो
चिर-प्रवहमान हो विमल, सरल;
मैं उसमें पाऊं सिंधु गहन!

उनको वे कर्ण चाहिए, जो
सुनते हुंकार शिखर की हों;
दो मुझे कान वे, जो पुकार
सुनते तल के अंतर की हों;
उनसे कर पाऊं सत्य-श्रवण!

उनको वे नैन चाहिए जो
  देखें जग का मोहक वैभव;
वे लोचन दो मुझको जिनमें,
  अंतर का रूप बसे अभिनव;
    उनसे पाऊं मैं शिव-दर्शन !

मिथ्या को मधुर बनाने का
  चाहिए उन्हें रंजित कौशल;
दो मुझे सत्य-शिव-उन्मुखता,
  साधन बने जिसका संबल;
    उससे हो सुंदर-आवाहन !

कवि की मांग है सौंदर्य की। कवि की मांग है मोहक की, आकर्षक की। कवि अभी भी रूप पर उलझा है, अरूप ने अभी उसे नहीं पुकारा। कवि अभी भी गुण में उलझा है, निर्गुण ने उसके द्वार पर दस्तक नहीं दी। और परमात्मा निर्गुण है। और परमात्मा अरूप है, अव्याख्य है। कवि अभी भी भाषा में उलझा है, मौन अभी उसके भीतर सघन नहीं हुआ। और परमात्मा मौन की ही भाषा समझता है।

दिनेश, सुंदर है कि तुम कवि हो। अब एक कदम और। इतनी हिम्मत की, थोड़ी हिम्मत और, जरा साहस और। अब ऋषि बनो। अब डूबो संन्यास में। संन्यास द्वार है ऋषि होने का। संन्यास द्वार है आत्मा को जानने का। संन्यास द्वार है सत्य को जानने का। और धन्यभागी हैं वे जो सत्य को न केवल जानते हैं बल्कि औरों को भी जनाते हैं। तुम कवि हो, जिस दिन सत्य जान सकोगे, तुम्हारे गीतों में सत्य की धारा बहेगी। जिस दिन परमात्मा से तुम्हारा मिलन होगा, उसकी प्रीति तुम्हारे कंठ का उपयोग कर लेगी; उसकी प्रीति तुम्हारी बांसुरी में स्वर बन जाएगी।

कवि हो, सुंदर है, पर इतने पर ही रुक मत जाना। इतने पर ही तृप्त मत हो जाना। इतने जल्दी ठहर मत जाना। यहां और भी सम्पदाएं हैं। यहां बड़ी-से-बड़ी सम्पदा तो तुम्हारी आत्मा की है। और ये तीन तल हैं--विचार का तल सबसे ऊपर, सबसे सतही; भाव का तल मध्य में, विचार से गहरा, लेकिन आत्मा से उथला; और फिर आत्मा का तल, चैतन्य का तल, सबसे गहरा। उस गहराई में ही परमात्मा से सगाई है।

आज इतना ही।
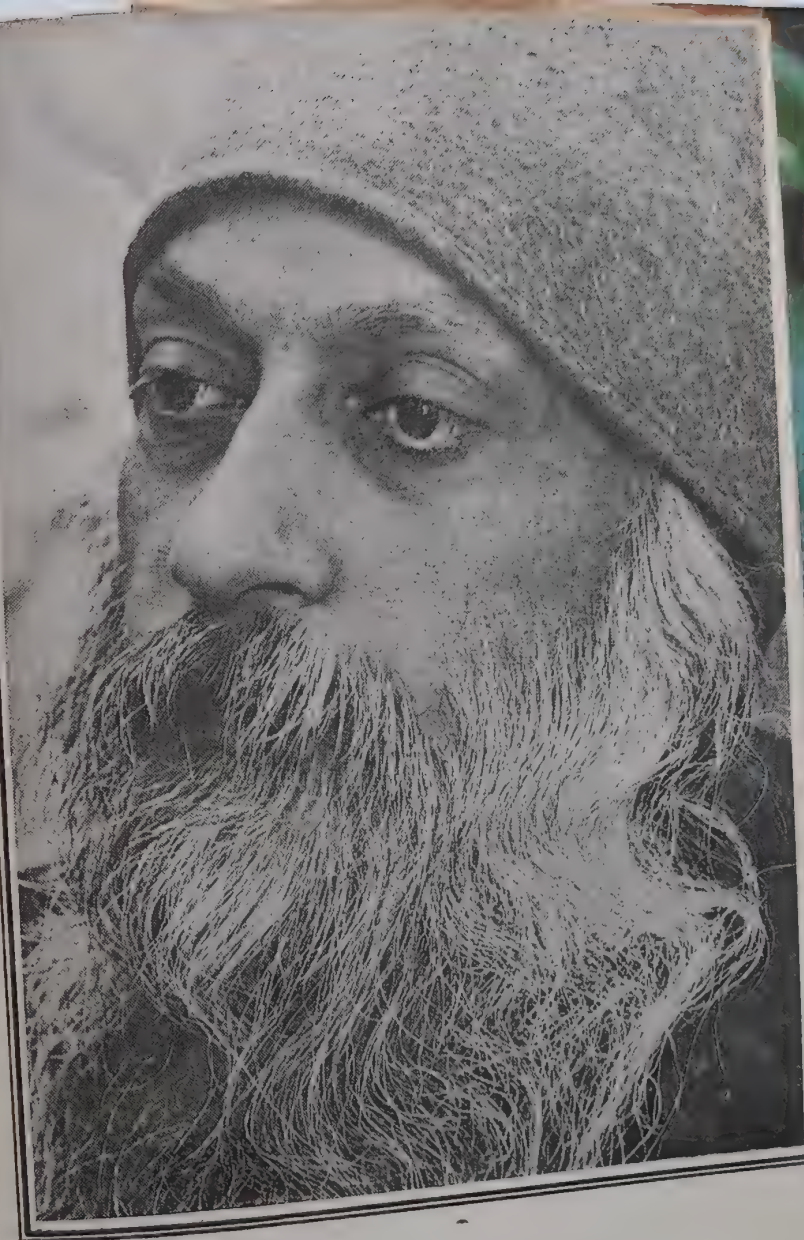
गगन बजायो बेनु

ग्यारहवां प्रवचन; दिनांक ३१ मई, १९७९; श्री रजनीश आश्रम, पूना

ब्राह्मन कहिये ब्रह्म-रत, है ताका बड़ भाग ।
नाहिंन पसु अज्ञानता, गर डारे तिन ताग ।।

संत-चरन में लगि रहै, सो जन पावै भेव ।
भीखा गुरु-परताप तें, काढेव कपट-जनेव ।।

संत चरन में जाइकै, सीस चढ़ायो रेनु ।
भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु ।।

बेनु बजायो मगन ह्वै, छुटी खलक की आस ।
भीखा गुरु-परताप तें, लियो चरन में बास ।।

भीखा केवल एक है, किरतिम भयो अनंत ।
एकै आतम सकलघट, यह गति जानहिं संत ।।

एकै धागा नाम का, सब घट मनिया माल ।
फेरत कोई संतजन, सतगुरु नाम गुलाल ।।

तिमिर से संघर्ष किरणें कर रही हैं,
उदयगिरि के द्वार खुलते जा रहे हैं !
है तमिस्रा के क्षणों का अंत संमुख,
ज्योति के अरुणाभ क्षण अब आ रहे हैं !
जो चरण रुकता मनुजता का, निशा है;
जो चरण बढ़ता, उषा है वह नवेली;
ज्योति में संपर्क पाती है मनुजता
और तम के आवरण में वह अकेली !

जो निराशा की निशा की मूकता को
प्रथम कलरव का नवल स्वर दान देती,
तिमिर में अनजान खोई मनुजता को
जो नए लोचन, नई पहचान देती;

ज्योति वह, जो मुक्त हो, बंटती, बिखरती,
साम्य का, औदार्य का वैभव लुटाती;
वह नहीं, जो सिमटती, संकीर्ण होती,
मनुजता, भू, प्रकृति का कल्मष बढ़ाती ।

ज्योति वह, जिसमें मनुज देता मनुज को
सरल करुणा, स्नेह, ममता का सहारा;
ज्योति वह, जिसमें मनुजता के शिखर से
द्रवित हो बहती; निखरती भावधारा !

तिमिर वह, जिसमें मनुजता बद्ध होती,
रुद्ध होती, खर्व होती, हीन होती,
घिर परिधि में स्वार्थ की वह कृपणता का
भार ढो-ढोकर निरंतर दीन होती।
अप्रभावित जो प्रतिक्षा की निशा से,
उस सुमन की सतत श्रद्धाभावना से
ज्योति के क्षण अवतरित होते जगत में,
चेतनापथ के पथिक की साधना से।
ज्योति-क्षण आए, न यों ही लौट जावें,
कर्म से इनको चलो सार्थक बनावें!
तृप्ति, सुख, उल्लास, हास, विकास बनकर
मनुजजीवन में अमर ये स्थान पावें!

अनंत-अनंत काल के बीत जाने पर कोई सद्गुरु होता है। सिद्ध तो बहुत होते हैं, सद्गुरु बहुत थोड़े। सिद्ध वह जिसने सत्य को जाना; सद्गुरु वह जिसने जाना ही नहीं, जनाया भी। सिद्ध वह जो स्वयं तो पा लिया लेकिन बांट न सका; सद्गुरु वह, पाया और बांटा। सिद्ध स्वयं तो लीन हो जाता परमात्मा के विराट सागर में मगर वह जो मनुष्यता की भटकती हुई भीड़ है--अज्ञान में, अंधकार में, अंधविश्वास में--उसे नहीं तार पाता। सिद्ध तो ऐसे है जैसे छोटी-सी डोंगी मछुए की, बस एक आदमी उसमें बैठ सकता है। सिद्ध का यान, हीनयान है; उसमें दो की सवारी नहीं हो सकती, वह अकेला ही जाता है। सद्गुरु का यान, महायान है; वह बड़ी नाव है; उसमें बहुत समा जाते हैं; जिनमें भी साहस है वे सब उसमें समा जाते है। एक सद्गुरु अनंतों के लिए द्वार बन जाता है।

सिद्ध तो बहुत होते हैं, सद्गुरु बहुत थोड़े होते हैं। और सद्गुरु जब हो तो अवसर चूकना मत।

ज्योति-क्षण आए, न यों ही लौट जावें,
कर्म से इनको चलो सार्थक बनावें!
तृप्ति, सुख, उल्लास, हास, विकास बनकर
मनुजजीवन में अमर ये स्थान पावें!

सद्गुरु का संदेश क्या है? फिर सद्गुरु कोई भी हो--गुलाल हो, कबीर हो कि नानक, मंसूर हो, राबिया कि जलालुद्दीन--कुछ भेद नहीं पड़ता। सद्गुरुओं के नाम ही अलग हैं, उनका स्वर एक, उनका संगीत एक; उनकी पुकार एक,

उनका आवाहन एक; उनकी भाषा अनेक होगी मगर उनका भाव अनेक नहीं। जिसने एक सद्गुरु को पहचाना उसने सारे सद्गुरुओं को पहचान लिया--अतीत के भी, वर्तमान के भी, भविष्य के भी। सद्गुरु में समय के भेद मिट जाते हैं--जो पहले हुए हैं, वे भी उसमें मौजूद; जो अभी हैं, वे भी उसमें मौजूद; जो कभी होंगे, वे भी उसमें मौजूद। सद्गुरु शुद्ध प्रकाश है जिस पर कोई भी अंधकार की सीमा नहीं।

तिमिर से संघर्ष किरणें कर रही हैं,
उदयगिरि के द्वार खुलते जा रहे हैं!
है तमिस्रा के क्षणों का अंत संमुख,
ज्योति के अरुणाभ क्षण अब आ रहे हैं!

जो झुकेगा सद्गुरु के चरणों में उसके लिए द्वार खुलने लगते हैं। झुके बिना ये द्वार नहीं खुलते। जो अकड़ा है उसके लिए तो द्वार बंद हैं। खुला द्वार भी उसके लिए बंद है क्योंकि अकड़ के कारण उसकी आंख बंद है। अहंकार आदमी को अंधा करता है; विनम्रता उसे आंख देती है। जो जितना सोचता है 'मैं हूं', उतना ही परमात्मा से दूर होता है। जो जितना जानता है 'मैं नहीं हूं', उतना परमात्मा के निकट सरकने लगा, उतनी उपासना होने लगी, उतना उपनिषद् जगने लगा, उतनी निकटता बढ़ने लगी, उतना सामीप्य। और जिसने जाना कि 'मैं हूं ही नहीं', वह परमात्मा हो जाता है। जिसने जाना कि 'मैं हूं ही नहीं', वह कह सकता है--अहं ब्रह्मास्मि--मैं ब्रह्म हूं।

जो चरण रुकता मनुजता का, निशा है;
जो चरण बढ़ता, उषा है वह नवेली;
ज्योति में संपर्क पाती है मनुजता
और तम के आवरण में वह अकेली!

जिस घड़ी तुम्हारा कदम सत्य की खोज में बढ़ता है, वह प्रकाश है, वह सुबह है। और जिस घड़ी तुम ठिठकते हो, झिझकते हो, अतीत को पकड़ते हो, धारणाओं को पकड़ते हो; शास्त्रों, सिद्धांतों को पकड़ते हो; सत्य की जिज्ञासा नहीं वरन् सिद्धांतों की सुरक्षा पकड़ते हो; सत्य का दूर से आता हुआ आवाहन नहीं, वरन् अतीत से जड़ हो गयी परंपराएं पकड़ते हो--जानना वही अंधकार है, जानना वही अंधापन है।

जो चरण रुकता मनुजता का, निशा है...! वही है रात अंधेरी, अमावस, जब तुम रुक जाते, डर जाते; जब तुम भयभीत हो जाते अज्ञात से, अज्ञेय से, और ज्ञात को पकड़ लेते कि कहीं ज्ञात हाथ से छूट न जाए...! ज्ञात क्या है? हिंदू

धर्म ज्ञात है, मुसलमान धर्म ज्ञात है, सिक्ख धर्म ज्ञात है, जैन धर्म ज्ञात है, ईसाई धर्म ज्ञात है. लेकिन परमात्म धर्म अज्ञात है, सदा अज्ञात है। मंदिर ज्ञात है, मस्जिद ज्ञात है, गिरजा, गुरुद्वारा ज्ञात है, लेकिन उस परमात्मा का निवास अज्ञात है, बिलकुल अज्ञात है। वह सदा ही अज्ञात है।

तो जो अज्ञात में अपनी नाव को उतारने को तैयार हो जाते हैं, उनका ही उससे संबंध होता है। जो बंधे रहते हैं––लीकों में, लकीरों में––वे अटके रह जाते हैं, उनकी जिंदगी अमावस है। और तुम्हारी जिंदगी अभी पूर्णिमा हो सकती है, इसी क्षण पूर्णिमा हो सकती है। अमावस और पूर्णिमा के बीच बस एक कदम का फासला है। अमावस है रुका हुआ कदम, पूर्णिमा है बढ़ा हुआ कदम।

जो चरण रुकता मनुजता का, निशा है;
जो चरण बढ़ता, उषा है वह नवेली;
ज्योति में संपर्क पाती है मनुजता
और तम के आवरण में वह अकेली!

और एक अद्भुत घटना है कि जब तक तुम अंधेरे में हो, अकेले हो; और जैसे ही प्रकाश हुआ, तुम अकेले नहीं, सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ है। पौधे, पशु-पक्षी, पहाड़, सरिताएं, सागर, चांद-तारे, प्रगट-अप्रगट––जो भी है, सब तुम्हारे साथ है। अंधेरे में तुम अकेले हो। अंधेरे में तुम इसीलिए भयभीत हो। प्रकाश में तुम अकेले नहीं हो, अस्तित्व तुम्हारा संगी-साथी है। इसलिए प्रकाश में भय नहीं है, प्रकाश में अभय है।

वह जो ऋषि गाते रहे––

तमसो मा ज्योतिर्गमय... हमें अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चल प्रभु!... असतो मा सद्गमय... हमें असत्य से सत्य की ओर ले चल प्रभु!... मृत्योर्मा अमृतं गमय... हमें मृत्यु से अमृत की ओर ले चल प्रभु!

क्या तुम सोचते हो उन ऋषियों को शास्त्रों का पता न था? अगर शास्त्रों में सत्य मिलता होता तो वे प्रार्थना करते आकाश से––असतो मा सद्गमय?

क्या उन्हें शब्दों की, सिद्धांतों की, संपदा का कुछ बोध न था? अगर शब्दों और सिद्धांतों से रोशनी मिलती होती, अगर दीया शब्द से ज्योति मिलती होती, अंधेरा कटता होता, तो वे प्रार्थना करते–– तमसो मा ज्योतिर्गमय?

और अगर पंडित-पुरोहितों से आश्वासन मिलता होता जीवन की शाश्वतता का, अमरता का, अगर परंपरा से, बंधी-बंधायी धारणाओं से आस्था जगती होती अमरत्व की, तो वे प्रार्थना करते–– मृत्योर्मा अमृतं गमय?

उनकी प्रार्थना क्या कह रही है? उनकी प्रार्थना कह रही है–– इस किनारे

पर जो भी उपलब्ध है, उससे उस किनारे का कुछ पता चलता नहीं। यहां शास्त्र बहुत हैं, सिद्धांत बहुत हैं; शास्त्रों को जानने वाले बहुत हैं, वेद हैं जिन्हें कंठस्थ, कुरान जिनकी जबान पर रखी है–– ऐसे तो बहुत हैं, मगर इस किनारे पर उस किनारे की खबर देने वाला कभी-कभार बड़ी मुश्किल से होता है।

इस किनारे पर उस किनारे की खबर तो वही दे सकता है जो उस किनारे पहुंच गया हो। सिद्ध भी उस किनारे पहुंचते हैं मगर वे लौटते नहीं, वे गये सो गये। जैन और बौद्ध शास्त्रों ने उन्हें अर्हत कहा है। गये सो गये। वे फिर लौटते नहीं, वे खबर देने भी नहीं लौटते। डूबे सो डूबे। वे इस किनारे फिर नहीं आते। और जो उस किनारे जाकर इस किनारे आ जाते हैं उन्हें बौद्धों ने बोधिसत्व कहा है, जैनों ने तीर्थंकर कहा है। उनकी करुणा अपार है। सत्य का अपूर्व आनंद छोड़कर, ब्रह्म का महासुख छोड़कर, जहां कमल ही कमल खिले हैं शाश्वतता के, उन्हें छोड़कर लौट आते हैं इस किनारे पर, कंटकाकीर्ण किनारे पर, पीछे जो भटकते आ रहे हैं उन्हें खबर देने–– वे सद्गुरु हैं।

ऐसे सद्गुरुओं के साथ तुम एक कदम भी उठा लो तो पूर्णिमा आ जाए जीवन में। ऐसे तो अमावस में और पूर्णिमा में पन्द्रह दिन का फर्क होता है लेकिन मैं जिस अमावस और जिस पूर्णिमा की बात कर रहा हूं, उसमें एक कदम का ही फासला है––समर्पण और पूर्णिमा; अहंकार और अमावस।

जो निराशा की निशा की मूकता को
प्रथम कलरव का नवल स्वर दान देती,
तिमिर में अनजान खोई मनुजता को
जो नए लोचन, नई पहचान देती...

वही वाणी उपनिषद् है, वेद है, कुरान है–– वही जीवन्त वाणी जो तुम्हें नयी आंख दे।

तिमिर में अनजान खोई मनुजता को
जो नए लोचन, नई पहचान देती...

परमात्मा को बार-बार आविष्कृत करना होता है क्योंकि बार-बार पंडितों और पुरोहितों के शब्दजाल में परमात्मा का सत्य खो जाता है। बुद्ध ने पाया उसे और बुद्ध के मरते ही पंडित-पुरोहितों की भीड़ में खो गया वह। महावीर ने पाया उसे, महावीर के जाते ही पंडित-पुरोहितों की भीड़ में खो गया वह। यह कुछ स्वाभाविक नियम है कि सत्य तभी तक जीता है, जब तक सत्यधर जीता है; सत्य तभी तक जीता है, जब तक मिट्टी का दीया उस ज्योति को सम्हाले रहता है। इधर मिट्टी का दीया टूटा, उधर ज्योति महाज्योति में लीन हो जाती है। फिर मिट्टी के

टूटे-फूटे दीये के पास, बिखर गये तेल के आसपास, पंडित-पुरोहितों का शोरगुल मचता रहता है। सदियां बीत जाती हैं, टूटे-फूटे दीयों की पूजा जारी रहती है—न उनसे नयी आंख मिलती, न नयी अनुभूति मिलती, न नयी पहचान मिलती।

और आश्चर्य तो यह है कि जब भी कोई तुम्हें नयी आंख देने आएगा, तुम उसकी आंखें फोड़ देने को आतुर हो जाते हो। जब तुम्हें कोई नयी पहचान देने आएगा, तुम उसकी गर्दन काट देने को तत्पर हो जाते हो। क्योंकि नयी पहचान के साथ जाना जोखम भरा है। नयी पहचान की साख क्या? क्योंकि नयी पहचान के पीछे अतीत का कोई बल नहीं होता।

अगर मैं तुम्हें नयी आंख दे रहा हूं तो मेरे अतिरिक्त मेरी आंख का और कौन गवाह है? मैं पंडित-पुरोहितों की कतार अपनी गवाही में खड़ी नहीं कर सकता। जो मैंने जाना है, मैंने जाना है, मैं ही उसका गवाह हूं। मैं एक दूसरा व्यक्ति भी गवाही के लिए खड़ा नहीं कर सकता।

जिसका कोई गवाह न हो, उसकी कौन माने? कौन जाने वह भ्रांत हो। कौन जाने उसने सपना देखा हो। कौन जाने किसी विभ्रम में पड़ा हो। कौन जाने धोखा देता हो, वंचना करता हो। हजार संदेह, शंकायें मन में उठती हैं। अतीत के साथ ज्यादा भरोसा मालूम होता है। हजारों-हजारों साल से लोग मानते आ रहे हैं, इतने लोग मानते आ रहे हैं, ठीक ही होगी बात, नहीं तो इतने लोग मानते हैं!

हम भीड़ का बड़ा भरोसा करते हैं, हम भेड़ें हैं, हम आदमी नहीं। हम भीड़ का भरोसा करते हैं, सत्य का नहीं। जैसे भीड़ से कुछ तय होता है! अक्सर, निरन्तर यह पाया गया है कि भीड़ गलत पायी गयी और व्यक्ति सही पाये गये। न केवल धर्म के उस अलौकिक जगत में बल्कि विज्ञान के लौकिक जगत में भी ऐसा ही होता रहा है।

जब गैलीलियो ने कहा कि 'सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता, पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है' तो वह अकेला आदमी था। सारी दुनिया मानती थी कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। अब भी अधिकत्तर लोग पढ़ तो लेते हैं मगर मानते यही हैं कि सूरज चक्कर लगाता है। अभी भी सारी दुनिया की भाषाओं में शब्द नहीं बदले। संध्या को हम कहते हैं: सूर्यास्त! सूर्य कभी अस्त होता ही नहीं। जब हमारी पीठ हो जाती है उसकी तरफ तो हमें दिखाई नहीं पड़ता; जब हमारा मुंह हो जाता उसकी तरफ, हमें दिखाई पड़ता है। सूर्य कभी अस्त होता ही नहीं। सूर्यास्त जैसा झूठा कोई शब्द नहीं हो सकता। और हम सुबह कहते हैं सूर्योदय!

यह तो ऐसे ही हुआ कि मैं तुम्हारी तरफ पीठ कर लूं और कहूं कि तुम्हारा अस्त हो गया। और फिर तुम्हारी तरफ मुंह कर लूं और कहूं कि तुम्हारा जन्म

हो गया। तुम जैसे थे वैसे के वैसे हो, सिर्फ मैं घूम रहा हूं।

पृथ्वी घूमती है, सूरज थिर है। लेकिन जब गैलीलियो ने यह कहा तो चर्च खिलाफ, धर्मगुरु खिलाफ, पंडित-पुरोहित खिलाफ। उनका डर क्या है? उनका डर यह है कि अगर गैलीलियो सही है तो फिर बाइबिल में जो उल्लेख है कि 'पृथ्वी सूरज का चक्कर नहीं लगाती, सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है' उसका क्या होगा? और अगर शास्त्र में एक भूल मिल जाए तो फिर लोगों को संदेह उठेंगे कि जब एक भूल हो सकती है तो और भूलें भी हो सकती हैं। और जब इस जगत के सूरज के संबंध में तक भूल हो रही है, तो परमात्मा के संबंध में क्या पता कि बाइबिल सच कहती हो, न कहती हो।

घबड़ाहट फैल गयी। गैलीलियो को अदालत में बुलाया गया। गैलीलियो बहुत समझदार आदमी रहा होगा। गैलीलियो से कहा गया, तुम क्षमा मांग लो। वह बूढ़ा हो गया था, सत्तर-पचहत्तर साल का था। तुम क्षमा मांग लो घुटने टेककर, तुमने जो कहा वह गलत है। तुम वक्तव्य दे दो कि सूरज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी का, पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती।

गैलीलियो हंसा। उसने कहा कि मैं घोषणा करता हूं, घुटने टेककर, हाथ जोड़कर मैं घोषणा करता हूं कि पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती सूरज का, सूरज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी का। लेकिन मेरी घोषणा से कुछ होगा नहीं—सूरज मेरी मानेगा नहीं, पृथ्वी मेरी सुनेगी नहीं, चक्कर तो पृथ्वी ही लगाएगी।

बड़ा समझदार आदमी रहा होगा। उसने कहा, तुम जिद्द करते हो तो कौन झंझट करे! ठीक है, चलो माफी मांगे लेते हैं। कोई जिद्दी आदमी नहीं था। मगर उसने कहा: मैं क्या करूंगा, मेरी माफी क्या करेगी? मेरे किये न किये कुछ नहीं होता, मेरी कौन सुनता है? तुम्हीं नहीं सुनते, सूरज क्या खाक सुनेगा! आदमी नहीं सुनते, पृथ्वी क्या मेरी मानेगी? जो हो रहा है वह वैसा ही होता रहेगा। गैलीलियो के कहने से फर्क नहीं पड़ता। गैलीलियो तो वही कह रहा है जो हो रहा है।

मगर सारी दुनिया खिलाफ थी। अब हम जानते हैं, गैलीलियो सही था सारी दुनिया गलत थी।

भीड़ हमेशा गलत पायी गयी है... लेकिन फिर भी हमारे मन में एक श्रद्धा है कि जिसे अधिक लोग मानते हैं...। जैसे सत्य भी कोई मत से तय होता है, कि वोट से तय होता है! कितने लोग मानते हैं? अगर सत्य ऐसे तय होता हो तो ईसाई धर्म सत्य है, हिन्दू धर्म सत्य नहीं है। अगर सत्य ऐसे तय होता हो तो हिन्दू धर्म सत्य है, जैन धर्म सत्य नहीं है। अगर सत्य ऐसे तय होता हो तो पंडित-पुरोहित सही हैं, मैं सही नहीं हूं।

लेकिन सत्य का यह तय होने का ढंग ही नहीं है। सत्य अनुभव से तय होता है। सत्य तो इकहरी गवाहियों से तय होता है। सत्य का साक्षात तो व्यक्ति करता है, भीड़ नहीं करती। आज तक दुनिया में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि हजार आदमियों की भीड़ ने और परमात्मा का साक्षात्कार किया हो, कि दस हजार आदमियों ने सत्य का साक्षात्कार किया हो। सत्य तो जब भी आता है, व्यक्ति के अंतस्तल में आता है, उसकी निजता में आता है, अत्यंत एकांत में। वहां कोई गवाह नहीं होता।

और ऐसे ही व्यक्ति नयी आंख दे सकते हैं, नयी पहचान दे सकते हैं। और ऐसे ही व्यक्तियों के साथ जो हो जाए वह धन्यभागी है।

ज्योति वह, जो मुक्त हो, बंटती, बिखरती,
साम्य का, औदार्य का वैभव लुटाती;
वह नहीं, जो सिमटती, संकीर्ण होती,
मनुजता, भू, प्रकृति का कल्मष बढ़ाती।

और ज्योति वही है जो मुक्त हो—और जो मुक्त करे। ज्योति वह नहीं है जो बंधी हो और बांधे। कोई हिन्दू होने में बंधा है, कोई मुसलमान होने में बंधा है। कोई मस्जिद को कारागृह बना लिया है, कोई मंदिर को। किसी का कारागृह काशी में है, किसी का कारागृह काबा में है।

ज्योति वह, जो मुक्त हो, बंटती बिखरती,
साम्य का, औदार्य का वैभव लुटाती।

ज्योति तो सारे विशेषण छीन लेती है। मनुष्य को समता देती है, साम्य देती है, मित्रता देती है, शत्रुता नहीं। औदार्य का वैभव लुटाती... ज्योति तो उदार है, अनुदार नहीं। और तुम्हारे ये सब तथाकथित धर्म बहुत अनुदार हैं, इनमें उदारता का नाम भी नहीं है। ये उदारता की बातें भी करें तो थोथी... मुख में राम बगल में छुरी।

वह नहीं, जो सिमटती, संकीर्ण होती,
मनुजता, भू, प्रकृति का कल्मष बढ़ाती।

इन सारे तथाकथित धर्मों ने मनुष्य के जीवन में अंधेरा बढ़ाया है, घटाया नहीं। धर्मों के नाम पर जितना खून गिरा है इस पृथ्वी पर और किसी नाम पर नहीं गिरा। धर्मों के नाम पर जितने बलात्कार हुए हैं, उतने किसी और नाम पर नहीं हुए। और धर्मों के नाम पर जितने मकान जलाये गये, लोग जलाये गये, जीवित लोग, उतने किसी और नाम पर नहीं!

और इस सबको तुम धर्म कहे चले जाते हो! कब तुम नयी आंख की भाषा सीखोगे? कब तुम पहचान करोगे परमात्मा से? परमात्मा प्रेम है और तुम्हारे ये तथाकथित धर्म तुम्हें घृणा सिखाते हैं, सिर्फ घृणा। ये तथाकथित धर्म मनुष्य को मनुष्य से बांटते हैं, जोड़ते नहीं। और जो तोड़ता है, वह धर्म नहीं; जो जोड़ता है, वही धर्म है।

ज्योति वह, जिसमें मनुज देता मनुज को
सरल करुणा, स्नेह, ममता का सहारा;
ज्योति वह, जिसमें मनुजता के शिखर से
द्रवित हो बहती, निखरती भावधारा!

तिमिर वह, जिसमें मनुजता बद्ध होती,
रुद्ध होती, खर्व होती, हीन होती,
घिर परिधि में स्वार्थ की वह कृपणताका
भार ढो-ढोकर निरंतर दीन होती।

चारों तरफ देखो, तुम्हें प्रमाण मिल जाएंगे आदमी कैसा दीन हो गया है। कौन है इसके लिए उत्तरदायी? किसने मनुष्य की यह दुर्गति की? किसने मनुष्य से उसकी आत्मा छीन ली? किसने मनुष्य से उसकी उदारता छीन ली? किसने मनुष्य की करुणा का घात किया? किसने मनुष्य के जीवन से प्रेम का दीया बुझाया? और तुम चकित हो जाओगे कि तुम्हारे मंदिर, मस्जिदों, गुरुद्वारों, शिवालयों, चैत्यालयों, का हाथ है इसमें। तुम्हारे मंदिर अब भगवान के मंदिर नहीं, शैतान के मंदिर हैं। मूर्ति भगवान की होगी, हाथ पीछे शैतान के हैं। और तुम जब तक जागोगे नहीं, जब तक तुम खुलकर आंख देखोगे नहीं, तब तक तुम इन्हीं जालों में पड़े रहोगे।

जागो! और जागने का एक ही उपाय है—गुरु-परताप साध की संगति। भीखा के ये वचन सीधे-सादे, सुगम, पर चिनगारियों की भांति हैं। और एक चिनगारी सारे जंगल में आग लगा दे—एक चिनगारी का इतना बल है। हृदय को खोलो, इस चिनगारी को अपने भीतर ले लो। शिष्य वही है जो चिनगारी को फूल की तरह अपने भीतर ले ले। चिनगारी जलाएगी वह सब जो गलत है, वह सब जो व्यर्थ है, वह सब जो कूड़ा-करकट है। चिनगारी जलाएगी, भभकाएगी, वह सब जो नहीं होना चाहिए और उस सबको निखारेगी जो होना चाहिए। चिनगारी असत्य को जलाती है, सत्य को निखारती है। और जो इस अग्नि से गुजरता है, एक दिन कुंदन होकर प्रगट होता है, शुद्ध स्वर्ण होकर प्रगट होता है।

ब्राह्मन कहिये ब्रह्म-रत, है ताका बड़ भाग।

नाहिन पसु अज्ञानता, गर डारे तिनताग ।।

छोटे-से सूत्र में परम व्याख्या भर दी; छोटे-से सूत्र में सारे वेदों का सार भर दिया— ब्राह्मन कहिये ब्रह्म-रत . . . जो ब्रह्म में डूब गया है, वह ब्राह्मण।

ब्राह्मण कोई जन्म से नहीं होता। और जिन्होंने समझ लिया है कि वे जन्म से ब्राह्मण हैं, उनसे ज्यादा भ्रांत और कोई भी नहीं । उनकी स्थिति तो शूद्रों से भी गयी-बीती है । शूद्र को कम-से-कम यह तो ख्याल है कि मैं शूद्र हूं । महात्मा गांधी जैसे लोगों ने उसका भी ख्याल मिटाने की कोशिश की है । उसको भी कहा कि हरिजन है तू, शूद्र नहीं । जैसे ब्राह्मण की भ्रांति है कि जन्म से ब्राह्मण, ऐसे अब शूद्र को भी भ्रांति पैदा करवा दी है— भले-भले लोगों ने, जिनको तुम महात्मा कहते हो— कि तू हरिजन है । हरिजन ब्राह्मण का ही दूसरा नाम हुआ। जिसने हरि को जाना वह हरिजन, जिसने ब्रह्म को जाना वह ब्रह्म, वह ब्राह्मण। हरिजन कह दिया, उसको एक भ्रांति चलती ही थी कि कुछ लोग जन्म से ब्राह्मण हैं, एक दूसरी भ्रांति पैदा करवा दी कि कुछ लोग जन्म से हरिजन हैं । अब हरिजन अकड़े हैं। क्योंकि उनको भी अहंकार जगा है ब्राह्मण होने का। ब्राह्मण भी ब्राह्मण नहीं है, हरिजन भी हरिजन नहीं हैं ।

मुझसे अगर तुम पूछो तो मैं कहूंगा हम सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं। जन्म से तो हम सब शूद्र होते हैं—न कोई ब्राह्मण होता न कोई वैश्य होता, न कोई क्षत्रिय होता, न कोई हरिजन होता । जन्म से तो हम सब शूद्र होते हैं क्योंकि जन्म से हम सब अज्ञानी होते हैं। फिर जन्म के बाद हम क्या यात्रा करेंगे इस पर निर्भर करेगा । सौ में निन्यानबे लोग तो शूद्र ही रह जाएंगे। सद्गुरु को न पकड़ेंगे तो शूद्र ही रह जाएंगे । सौ में से एकाध ब्राह्मण हो पाएगा । एकाध भी हो जाए तो बहुत। एकाध भी हो जाए तो काफी ।

और सबसे बड़ी जो बाधा है वह यह कि हम जन्म के साथ ही मान लेते हैं कि ब्राह्मण हैं। बस, वहीं चूक हो गयी । जैसे बीमार आदमी मान ले कि मैं स्वस्थ हूं, तो क्यों इलाज करवाये ? क्यों चिकित्सक के पास जाए ? क्यों निदान करवाये ? क्यों औषधि ले ? बीमार आदमी मान ले कि मैं स्वस्थ हूं, बात खत्म हो गयी ।

ब्राह्मण तो बीमार था सदियों से, इधर महात्मा गांधी की कृपा से शूद्र भी बीमार हो गया है । उसको भी हरिजन होने की अस्मिता छायी जा रही है । यह जो हिन्दुओं और हरिजनों के बीच जगह-जगह संघर्ष हो रहा है, इसमें सिर्फ ब्राह्मणों का हाथ नहीं है, ख्याल रखना, इसमें हरिजनों में पैदा हो गयी अकड़ का भी हाथ है । मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जो हो रहा है वह ठीक हो रहा है । ब्राह्मण जो कर रहे हैं वह तो बिलकुल गलत है, पाप है । मगर लोग अगर यह सोचते हों कि उसमें सिर्फ ब्राह्मणों का हाथ है, तो गलत बात है; उसमें हरिजन में जो अकड़

पैदा हो गयी है हरिजन होने की, उसका भी बड़ा हाथ है। और स्वभावतः ब्राह्मण तो गलत रहा है सदियों-सदियों से, इसलिए उसकी अकड़ तो बहुत पुरानी है, मगर ख्याल रखना, नया मुसलमान जोर से नमाज पढ़ता है । और नया मुसलमान रोज मस्जिद जाता है, पुराना मुसलमान कभी चूक-चाक भी जाए । नये मुसलमान की अकड़ बहुत होती है ।

तो जो पागलपन धीरे-धीरे ब्राह्मणों में तो खून में मिल गया था, जिसका उन्हें सीधा-साधा बोध भी नहीं रह गया था, वह नया पागलपन हरिजनों में भी छा गया है । और उनका नया-नया है। और नये रोग खतरनाक होते हैं; उनका आघात खतरनाक होता है। वे बड़ी अकड़ से चल रहे हैं। वे हर चीज में अकड़ खड़ी करते हैं । वह कहता है, हमें मंदिर में जाने दो ।

अब बड़े मजे की बात है, महात्मा गांधी जीवन-भर कोशिश किये कि हरिजनों को मंदिर में प्रवेश मिलना चाहिए। और महात्मा गांधी को इतनी भी समझ न आयी कि जो मंदिर में बैठे जन्मों-जन्मों से पूजा कर रहे हैं उनको क्या खाक कुछ मिला है ! जब ब्राह्मणों को ही पूजा करते-करते कुछ नहीं मिला तो ये गरीब हरिजनों को भी उन्हीं मंदिरों में प्रवेश करवाने से क्या मिल जाने वाला है ? अगर मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा हरिजनो, भूलकर भी मंदिरों में मत जाना । जो मंदिरों में हैं उनको ही कुछ नहीं मिला, तुम अब इस झंझट में कहां पड़ रहे हो ! तुम परमात्मा को विराट आकाश में खोजो, इन दीवालों में बंद परमात्मा नहीं है ।

लेकिन, नहीं महात्मा गांधी समझा रहे थे कि महाक्रांति है । हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश दिलवा देने से महाक्रांति हो जाएगी । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तो मंदिरों में बैठे ही हुए थे, इनकी जिंदगी में कौन-सी क्रांति हो गयी ? इनकी जिंदगी कूड़ा-करकट है, उसी में तुम हरिजनों को भी सम्मिलित कर दो। और उस कूड़ा-करकट होने के लिए वे दीवाने हो गये । दंगे-फसाद शुरू हो गये ।

इस दुनिया में रोग पैदा करवा देना बड़ा आसान है । महात्मा गांधी धार्मिक व्यक्ति नहीं हैं, राजनैतिक व्यक्ति हैं; उन्होंने हरिजनों का उपयोग राजनैतिक चालबाजी की तरह कर लिया। हरिजन शब्द पुराना है, कोई महात्मा गांधी की अपनी ईजाद नहीं । लेकिन हरिजन हम कहते थे उसको जो हरि का था । नानक, कबीर, दादू, भीखा, ये हरिजन थे । राबिया, मीरा, सहजो, ये हरिजन थे।

हरिजन बड़ी ऊंची बात है । उसका ठीक वही अर्थ है जो ब्राह्मण का । क्योंकि ब्राह्मण का अर्थ मर गया था धीरे-धीरे और शब्द थोथा हो गया था, जन्म के साथ जुड़ गया था, इसलिए संतों ने हरिजन खोजा । गांधी ने उस शब्द की भी हत्या कर दी, उसको भी मार डाला ।

ऐसे ही विनोबा ने सर्वोदय शब्द की हत्या कर दी। वह भी पुराना शब्द है,

कोई सोलह सौ साल पुराना शब्द है। सबसे पहले जैन शास्त्रों में उसका उल्लेख हुआ है। अमृतचन्द्राचार्य ने सबसे पहले उसका उल्लेख किया है सर्वोदय, और बड़ा प्यारा उल्लेख किया है। खराब कर दिया विनोबा ने।

राजनीतिज्ञों के हाथ में असली सिक्के भी चले जाएं तो खोटे हो जाते हैं। दुष्ट संगति का बुरा प्रभाव पड़ता है। अमृतचन्द्राचार्य ने सर्वोदय की व्याख्या की है—समाधि को उपलब्ध वे लोग, जिनके प्राणों में सबके उदय की आकांक्षा है। सबके—उसमें पत्थर, पौधे, पशु, पक्षी, मनुष्य, सब सम्मिलित हैं। जिनके भीतर समस्त अस्तित्व को समाधि की तरफ ले जाने की महत्वाकांक्षा जगी है, वे सर्वोदयी हैं।

और आजकल का सर्वोदयी? जिसको विनोबाजी सर्वोदयी कहते हैं, वह क्या है? वह केवल राजनीति के सोपान चढ़ रहा है। सर्वोदय से शुरू करता है क्योंकि सर्वोदय से ही शुरू करना आसान है। किसी की गर्दन दबानी हो तो पैर दबाने से शुरू करना, ख्याल रखना, गणित ऐसा है; एकदम गर्दन दबाओगे तो किसी की दबा न पाओगे। पहले पैर दबाना। पैर दबवाने को तो कोई भी राजी हो जाएगा। फिर धीरे-धीरे ऊपर बढ़ते जाना, फिर गर्दन दबा देना।

सर्वोदय एक राजनैतिक चालबाजी है। और इसलिए जयप्रकाश नारायण प्रगट होकर रहे। जीवन दान दिया था सर्वोदय के लिए, मगर जीवन का अंत हो रहा है इस देश के सबसे गर्हित राजनीतिज्ञों के बीच में।

सुंदर शब्द भी गलत लोगों के हाथ में पड़कर असुंदर हो जाते हैं। ब्राह्मण शब्द बड़ा—प्यारा है, अलौकिक है—ब्रह्म को जो जाने। बुद्ध ने भी यही परिभाषा की है—ब्रह्म को जो जाने, ब्रह्म में जो रत हो।

ठीक कहते हैं भीखा—

ब्राह्मन कहिये ब्रह्म रत, है ताका बड़ भाग।

लेकिन ब्रह्म में कौन रत हो सकता है? किसकी सामर्थ्य है ब्राह्मण में रत होने की? किसकी सामर्थ्य है ब्राह्मण होने की? उसकी ही सामर्थ्य है जो शून्य-समाधि को जन्मा ले क्योंकि पूर्ण केवल शून्य में उतरता है, और कोई न उपाय कभी था, न है, न होगा। मिटने को जो राजी हो, जीते-जी मर जाने को जो राजी हो, जीते-जी जो कफन ओढ़ ले। तुम देखते हो न इस देश में मुर्दे को कफन ओढ़ाते हैं तो लाल रंग का कफन ओढ़ाते हैं, इसलिए संन्यासी का वस्त्र लाल चुना है, वह कफन है। संन्यासी के लाल वस्त्रों के पीछे बहुत अर्थ हैं, उसमें एक अर्थ कफन का भी है। संन्यासी का अर्थ है जिसने कहा कि यह जिंदगी समाप्त, हो गया बहुत, देख लिया बहुत।

जब तक किसी की
मांग में सिंदूर
कर में चूड़ियां
झनझन सुनाती
राग जीवन का।
हमारे द्वार पर आकर
न करना
बात मरने की
न भूलें भी
कभी लेना खुदा का नाम
यदि हो गंध जलने की
चिता पर,
हो भले ही सत्य।

लोग तो ऐसे चलते हैं कि अभी बात ही मत करो मृत्यु की। होगा सत्य, चिता पर जब जलेंगे तब देख लेंगे, अभी तो जिंदगी में राग-रंग है, अभी तो चूड़ियां बजती हैं, अभी तो सिंदूर भरा है, अभी तो सगाई हुई, अभी तो ताजा-ताजा सब है।...

जब तक किसी की
मांग में सिंदूर
कर में चूड़ियां
झनझन सुनाती
राग जीवन का।
हमारे द्वार पर आकर
न करना
बात मरने की
न भूले भी
कभी खुदा का लेना नाम
यदि हो गंध जलने की
चिता पर,
हो भले ही सत्य।

इसीलिए तो इस देश में लोगों ने तरकीब खोज ली है। जब आदमी मर जाता है तो उसकी अर्थी के साथ वे कहते हैं: 'राम नाम सत्य है'। जिंदगी-भर राम नाम असत्य था, अब ये मुर्दे के आसपास कह रहे हैं राम नाम सत्य है। और

यह मुर्दे के लिए कह रहे हैं, अपने लिए नहीं, ख्याल रखना। अगर इनसे तुम पूछो किसके लिए? तो कहेंगे मुर्दे के लिए। अब जो मर ही गये, जो उठकर कह ही नहीं सकते कि भई ठहरो, अभी राम नाम न लो; अभी मुझे चूड़ियों की खनकार सुनाई पड़ती है, अभी रुको। तो 'राम नाम सत्य है' इसी क्षण रुक जाएगा। यह अपने लिए नहीं कह रहे हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा। स्वर्ग पहुंचा, द्वार पर दस्तक दी। पीछे से पूछा गया: 'कौन हो?' तो उसने कहा: 'मैं आया हूं पृथ्वी से।' फिर पूछा गया: 'विवाहित थे?' उसने कहा: 'हां।' तत्क्षण राजदूत ने द्वार खोल दिये और कहा: 'स्वागत है, आओ, अंदर आओ, क्योंकि विवाहित थे तो नर्क तो तुम देख ही चुके।'

द्वार बंद कर ही नहीं पाया था राजदूत कि फिर किसी ने दस्तक दी। पूछा 'कौन हो?' कहा: 'पृथ्वी से आता हूं।' 'विवाहित थे?' उसने कहा: 'एक बार नहीं, दो बार।' राजदूत ने कहा: 'तो फिर अब नरक जाओ; मूर्खों के लिए यहां कोई जगह नहीं।'

एक बार भूल करना समझ में आता है, क्षम्य है, मगर दो बार!...और तुमने कितनी बार की? हजारों बार, भूलों ही भूलों से भरी हुई जिंदगी है। और सबसे बड़ी भूल, सबसे बुनियादी भूल, जिसमें और सारी भूलों के पत्ते और शाखाएं लगती हैं, वह अहंकार है।

दो शब्द याद रखो, एक को मैं कहता हूं: 'अहंचर्य'—अहंकार की चर्या; और दूसरे को कहता हूं: 'ब्रह्मचर्य'—ब्रह्म की चर्या। बस दो ही तरह के लोग हैं दुनिया में। जो अहंचर्य से जी रहा है, वह शूद्र; जो ब्रह्मचर्या से जी रहा है, वह ब्राह्मण। जो ब्राह्मण की तरफ थोड़ा-थोड़ा झुका है वह क्षत्रिय; जो शूद्र की तरफ थोड़ा-थोड़ा झुका है, वह वैश्य। वे बीच की सीढ़ियां हैं। जिसमें साहस है ब्राह्मण होने का लेकिन अभी कदम उठाया नहीं—वह क्षत्रिय। जिसके भीतर शूद्र से ऊपर उठने की आकांक्षा है मगर अभी साहस नहीं किया—वह वैश्य।

लेकिन मौलिक रूप से दो ही जातियां हैं शूद्र की और ब्राह्मण की। अहंचर्य शूद्र का लक्षण है, ब्रह्मचर्य ब्राह्मण का। लेकिन ब्रह्मचर्य से मेरा वह छोटा-मोटा अर्थ नहीं जो तुम समझते हो कि किसी ने बच्चे पैदा न किये या किसी ने विवाह न किया तो ब्रह्मचर्य हो गया। यह तो ब्रह्मचर्य जैसे विराट शब्द को ऐसा क्षुद्र अर्थ दे देना है जिसकी कोई सीमा नहीं। ब्रह्मचर्य का अर्थ है: ब्रह्म जैसी चर्या। विवाहित व्यक्ति भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है, और अविवाहित भी हो सकता है न उपलब्ध हो। क्योंकि ब्रह्म जैसी चर्या का कोई लेना-देना विवाह या गैर-विवाह से नहीं है; वह तो अंतस-भाव है।

कृष्ण ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हैं वैसे ही जैसे बुद्ध, रंचमात्र भेद नहीं। कृष्ण संसार के बीच रहकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हैं. स्त्रियों के बीच रहकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हैं; बुद्ध छोड़कर उपलब्ध हैं। अगर दोनों में चुनना ही हो तो मैं कहूंगा कृष्ण को चुनना क्योंकि संसार को कितने लोग छोड़कर भाग सकते हैं। और अगर सारे लोग भाग जाएंगे तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। बुद्ध भी जी सके इसलिए कि बाकी लोग नहीं भाग गये थे, इसे भूल मत जाना। बाकी लोग घरों में थे, रोटी पका रहे थे, भोजन बना रहे थे, तो बुद्ध को भिक्षा भी मिल जाती थी। जरा सोचो कि बुद्ध की मानकर सभी लोगों ने कहा होता: अच्छा महाराज, अब हम भी भिक्षु हुए जाते हैं। तो भिक्षा कौन देता? तो शायद बुद्ध को फिर से दुकान खोलनी पड़ती। तो शायद महावीर को फिर सोचना पड़ता अब क्या करना? लौटना पड़ता घर। बुद्ध जी सकते हैं क्योंकि पूरा समाज संन्यासी नहीं है, घर छोड़कर नहीं भाग गया है।

तो बुद्ध का जीवन तो समाज-निर्भर है। एक पूरा समाज चाहिए बौद्ध भिक्षु को सम्हालने के लिए, जैन मुनि को सम्हालने के लिए। इसलिए स्वतंत्रता पूरी नहीं है, इसमें थोड़ी कमी है। इसलिए हम बुद्ध को पूर्ण अवतार नहीं कहते हैं, कृष्ण को पूर्ण अवतार कहते हैं। कारण? कारण साफ है। कृष्ण ठीक संसार के बीच रहकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होते हैं। यह ज्यादा गहराई, ज्यादा ऊंचाई, ज्यादा गहनता की खोज है। और जीवन के ज्यादा अनुकूल, और परमात्मा की व्यवस्था के ज्यादा करीब है। क्योंकि परमात्मा सर्जक है जीवन का। छोड़ने के लिए जीवन बनाया नहीं गया। जीवन जागने के लिए बनाया गया है, भागने के लिए नहीं।

ब्राह्मन कहिये ब्रह्म-रत, है ताका बड़ भाग।
नाहिन पसु अज्ञानता, गर डारे तिन ताग।।

उनको ब्राह्मण नहीं कहते भीखा—जो पशुवत हैं, जिनके जीवन में सारी पशुता भरी है, जिनके जीवन में दिव्यता की कोई किरण नहीं, दिव्यता तो दूर मनुष्यता की भी कोई आभा नहीं, सिर्फ गले में तीन धागे बांध लिए हैं—गर डारे तिन ताग!

जनेऊ पहन लिया ब्राह्मण हो गये! गले में तीन धागे डाल लिए और ब्राह्मण हो गये! इतना सस्ता ब्राह्मण होना! यद्यपि गले में जो तीन तागे डाले उनकी भी अपनी अर्थवत्ता है। जिन्होंने पहली दफा खोजे थे उन्होंने तो कुछ सोचकर खोजे थे। वे तीन गुणों के प्रतीक हैं—तामस, राजस, सत्व। और इन तीनों का ऐसा संतुलन होना चाहिए, ये तीनों मिलकर एक हो जाने चाहिए, तो चौथी अवस्था पैदा होती है—गुणातीत।

उस गुणातीत अवस्था का नाम ही ब्रह्मचर्य है। उस गुणातीत अवस्था को जान लेना ही ब्रह्म-भाव है।

जिसके जीवन में केवल तामस है, केवल अंधकार--वह शूद्र। जिसके जीवन में ऊर्जा है, कुछ कर गुजरने की उमंग है, संकल्प है, संघर्ष का बल है--वह क्षत्रिय। दोनों के बीच में वैश्य। जो कुछ कर गुजरने से ऊब गया, जो संकल्प से थक गया, जो संघर्ष की व्यर्थता को जान लिया है, जिसे लगता है कि मेरे किये कुछ भी न होगा, यहां तो जो होता है परमात्मा के किये होता है, उसके प्रसाद से होता है--उसके जीवन में सत्व, वह साधु है, वह संन्यासी है।

और जिन्होंने ये तीनों बातें एक समायोजन में बांध लीं, जिनके भीतर ये तीनों स्वर एक संगीत बन गये, जिनके भीतर इन तीनों में कोई विरोध नहीं रहा, क्योंकि तीनों की जरूरत है, जब क्रोध उठे तो आलस्य अच्छा, जब करुणा उठे तो राजस अच्छा। इनमें बुरा कुछ भी नहीं है; बुरा तो संदर्भ से होता है। अब क्रोधी आदमी अगर आलसी हो, तामसी हो, तो क्रोध नहीं करेगा; कौन झंझट में पड़े! तुम गाली भी दे दोगे तो वह कहेगा ठीक है, जाओ।

तुमने कहानी तो सुनी न दो तामसियों की, एक झाड़ के नीचे लेटे हैं। जामुन का झाड़ है, जामुन पक गये हैं और गिर रहे हैं। आखिर एक ने दूसरे से कहा: भई, यह कैसी दोस्ती! आधा घंटे से पड़ा राह देख रहा हूं, जामुन भी गिर रहे हैं, मैं भी हूं, तुम भी हो, तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि एक जामुन उठाकर मेरे मुंह में डाल दो!

उस आदमी ने कहा: जा रे जा, देख ली दोस्ती; अभी एक कुत्ता मेरे कान में मूत रहा था तो तूने भगाया भी नहीं!

एक तीसरा आदमी राह से गुजर रहा था, उसने यह बात सुनी, वह बड़ा चकित हुआ। उसने आलसी बहुत देखे थे, तामसी बहुत देखे थे, मगर ये तो महापुरुष, ये तो महात्मा समझो तमस के। दया आयी बड़ी, दोनों के मुंह में उठाकर एक-एक जामुन उसने डाल दिये। और जैसे ही चलने को हुआ दोनों ने कहा: अरे रुक भाई, जाता कहां है, गुठली कौन निकालेगा?

अब ऐसा आदमी क्रोध नहीं कर सकता, हिंसा नहीं कर सकता, पक्का समझो। ऐसा आदमी कोई उपद्रव नहीं कर सकता। उपद्रव के खिलाफ उसकी पूरी जीवनचर्या है। उससे अच्छा भी नहीं होगा, उससे बुरा भी नहीं होगा। परम जीवन में यही आलस्य की क्षमता दुर्गुणों के विपरीत बचाव बन जाती है।

फिर ऊर्जा से भरा हुआ व्यक्ति है, राजस से भरा हुआ व्यक्ति है, क्षत्रिय है, वह छोटी-मोटी बात में तलवार निकाल लेता है। जरा कुछ हो जाए कि मूंछ पर ताव मारने लगता है। वह उपद्रव करने में बड़ा कुशल है। सारा इतिहास

उसके उपद्रवों से भरा है। क्षत्रियों को हटा दो दुनिया से, इतिहास एकदम नब्बे प्रतिशत समाप्त हो जाए; बच्चों की झंझट मिट जाए, उनको पढ़ना न पढ़े इतना उपद्रव।

चीन का एक सम्राट एक झेन फकीर से मिलने गया था। सम्राट की अकड़, क्षत्रिय की अकड़! और जापान में भी क्षत्रिय की अकड़ वैसी ही है जैसी भारत में, भारत से भी ज्यादा। वहां क्षत्रिय का नाम है समुराई। जैसा निखार जापान में हुआ है समुराई का, वैसा भारत में भी नहीं हुआ। बड़े-बड़े राजपूत भी समुराई के सामने फीके पड़ जाएं। क्योंकि समुराई ने सदियों-सदियों में जैसी धार धरी है अपनी तलवार पर, वैसी किसी ने दुनिया में नहीं धरी।

वह सम्राट तो समुराई था, फकीर का दर्शन करने गया था। फकीर से कहा कि एक प्रश्न पूछना है जो मेरे मन में सदा उठता है; कोई और जवाब दे नहीं सका। लोग कहते हैं तुम दे सकते हो इसलिए आया हूं। सवाल है मेरा--स्वर्ग क्या, नर्क क्या?

फकीर खिलखिला कर हंसा और उसने कहा: जरा अपनी शक्ल भी आईने में देखी थी? शिष्य पास थे, उनसे कहा: देखो यह शक्ल इनकी--और प्रश्न! शक्ल तो ऐसी है कि मक्खियां भी भिनभिनाने में संकोच करें।

सम्राट तो एकदम आगबबूला हो गया, यह क्या बात हो रही है!

मुंह धोकर आ--उस फकीर ने कहा--चार-छः दिन पहले दाल-भात खाया होगा, वह भी लगा है।

इतना सुनना था कि उस सम्राट ने तो अपनी तलवार निकाल ली, उठाकर बस गर्दन काटने को था, तभी फकीर ने कहा: रुक, यह नर्क का द्वार खुल रहा है। एक झटके से बात समझ में आयी। तलवार वापिस म्यान में गयी। जैसे ही तलवार वापिस म्यान में गयी। और सम्राट के चेहरे पर करुणा का और समझ का भाव दिखाई पड़ा, फकीर ने कहा: यह स्वर्ग का द्वार है। यह तेरा उत्तर है।

जहां करुणा है, वहां स्वर्ग है; जहां क्रोध है, वहां नर्क है। जो क्रोध कर सकता है, वह करुणा भी कर सकता है। इसलिए परम समन्वय में शूद्र का तामस दुर्गुण से बचाव बन जाता है और क्षत्रिय का राजस सद्गुण का संकल्प बन जाता है।

और सत्व है साधुता, सरलता, निर्दोषता--जैसे छोटा बच्चा भोला-भाला, जिसके कागज पर कुछ लिखा नहीं गया। ध्यान से सत्व मिलता है। जब इन तीनों का जोड़ हो जाता है; जब ये तीनों समान अनुपात में होते हैं; जब इन तीनों का आर्केस्ट्रा पैदा होता है; जब बांसुरी भी बजती है, सितार भी बजता है, और तबले पर थाप भी पड़ती है, और तीनों में तालमेल होता है, और तीनों में एक ही स्वर

संयोजन होता है; जब तीनों की त्रिवेणी बन जाती है, तो तीर्थ निर्मित होता है, तो प्रयागराज निर्मित होता है। इसमें दो तो दिखाई पड़ते हैं, गंगा और यमुना, सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। इसलिए तामस और राजस तो दिखाई पड़ते हैं, सत्व दिखाई नहीं पड़ता; सत्व अदृश्य है, सरस्वती है।

इन तीनों का प्रतीक है जनेऊ, वह त्रिगुणों का प्रतीक है। मगर प्रतीकों का क्या करोगे? लोग तो तीन धागे लपेटकर अपने गले में बैठ गये और समझे कि ब्राह्मण हो गये। इतना सस्ता अगर ब्राह्मणत्व मिलता होता तो कठिनाई ही क्या थी, सभी को जनेऊ पहना देते, सभी ब्राह्मण हो जाते।

नाहिन पसु अज्ञानता... पशु जैसा अज्ञान है। यह जरा सोचने जैसी बात है। ब्राह्मणों को कहना पशु जैसा अज्ञानी, जरा सोचने जैसी बात है क्योंकि ब्राह्मण पंडित रहे हैं सदियों से, कहना चाहिए ज्ञानी रहे हैं। लेकिन उनका ज्ञान थोथा है, शब्दिक है, शास्त्रीय है, अनुभवगत नहीं, अस्तित्वगत नहीं, आत्मिक नहीं। उनका ध्यान तो जगा ही नहीं है तो ज्ञान झूठा होगा। ध्यान के जगने पर सच्चे ज्ञान की आभा आती है। ध्यान का दीया जले तो ज्ञान का प्रकाश फैलता है। तो जानकारी ही जानकारी है। जानकारी मात्र ज्ञान नहीं है; अज्ञान को छिपा ले भला, मगर ज्ञान इससे उपलब्ध नहीं होता।

इसलिए भीखा कहते हैं: नाहिन पसु अज्ञानता... पशुओं जैसा अज्ञान है और तीन धागे गले में लटका लिए और हो गये ब्राह्मण! नहीं, इतना आसान नहीं। ब्राह्मण होना इस जगत की सबसे बड़ी सम्पदा है। ब्राह्मण होना बुद्धों का लक्षण है। बुद्ध ब्राह्मण हैं, महावीर ब्राह्मण हैं, जीसस ब्राह्मण हैं, जरथुस्त्र ब्राह्मण हैं, हालांकि जरथुस्त्र ने ब्राह्मण शब्द शायद सुना ही न हो। शायद जीसस को ब्राह्मण शब्द का कुछ पता ही न हो। इससे क्या फर्क पड़ता है। मगर ब्राह्मण का जो गुण है--स्वानुभव, साक्षात्कार, साक्षीभाव, त्रिगुणातीत--वह उनमें है।

जहां कहीं कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए जो ब्राह्मण है--ब्राह्मण कहिये ब्रह्म-रत--फिर पकड़ लेना उसके चरण। मिल गया तीर्थ, अब डूबना उसमें, डुबकी लेना उसमें।

> संत-चरन में लगि रहै, सो जन पावै भेव।
> भीखा गुरु-परताप तें, काढेव कपट-जनेव।।

ऐसे चरण कहीं मिल जाएं तो छोड़ना मत। लाख मन समझाये छोड़ देने को, लाख मन तर्क दे... क्योंकि मन बड़ा कपटी है, बड़ा चालबाज है, और ऐसी जगह से हटाएगा जहां उसकी मौत होनी निश्चित है। मन सद्गुरुओं के खिलाफ बहुत तरह की बातें पैदा करेगा। कारण है--मन अपनी रक्षा करेगा। समझी

जा सकती है बात। क्योंकि सद्गुरु के चरण में या तो मन बचेगा या ब्रह्म, दोनों साथ नहीं हो सकते।

जब तुम अंधेरे कमरे में दीया जलाओगे, अगर अंधेरे के पास भी बोलने के लिए शब्द होते तो कहता कि रुको, दीया मत जलाओ, दीये के बड़े खतरे हैं। हजार दीये के खिलाफ दलीलें देता अंधेरा अगर बोल सकता। कहता कि देखो अंधेरे में कैसी शांति है, दीये में सब शांति चली जाएगी। और देखो अंधेरे में तुम्हें कोई देख नहीं सकता, तुम कितने सुरक्षित हो; दीया जल जाएगा, असुरक्षित हो जाओगे।

मैं एक घर में मेहमान था। पुराने ढब का घर था, तो घर के बाद बड़ा आंगन था, आंगन के बाद फिर स्नानगृह, संडास इत्यादि थे। घर का एक बेटा बड़ा डरपोक। उसको रात अगर पाखाना जाना हो तो मां को साथ जाना पड़े। तो उसकी मां ने मुझे कहा कि अब इसकी उम्र भी काफी हो गयी, यह बारह साल का हो गया, छोटा था तब ठीक था। अब भी मुझे दरवाजे पर खड़ा रहना पड़ता है जाकर संडास के, अगर रात को इसको जाना हो। यह भूत-प्रेत से बहुत डरता है। आप इसे समझाएं कि भूत-प्रेत हैं ही नहीं।

मैंने उस बच्चे को कहा कि तू एक काम कर, अगर तुझे भूत-प्रेत से डर लगता है तो लालटेन ले गये, यह मां को क्यों सताता है?

उसने कहा: रहने दीजिए। अंधेरे में तो किसी तरह मैं अपने को बचा भी लेता हूं, लालटेन में तो वे मुझे देख ही लेंगे।

मुझे उसकी बात भी जंची। बात तो उसने पते की कही कि अंधेरे में तो किसी तरह हम बचकर यहां-वहां से कि वह उधर खड़ा है, इधर से निकल गये। आप और एक उपद्रव दे रहे हैं--लालटेन! फिर तो वे घेर ही लेंगे, फिर तो बचकर निकलने की भी संभावना न रह जाएगी।

अगर अंधेरा बोल सकता और तुम दीया जलाते तो अंधेरा भी कहता कि अभी तो किसी तरह बचे हो, सुरक्षित हो, दीया जला लिया, हजार झंझटें आएंगी: झंझटें को दिखाई पड़ने लगोगे। चोर-बदमाश देख लेंगे कि अरे, घर में ही बैठे हो। हत्यारे चले आएंगे। अभी अंधेरे में सुरक्षित हो--न कोई देख सकता है...। दृश्य ही नहीं हो, अदृश्य हो। और फिर दीये का भरोसा क्या; तेल चुक जाएगा, बुझ जाएगा, फिर क्या करोगे? मैं सदा साथी हूं। दीये आते हैं, जाते हैं; अंधेरा सदा है। न मुझे जलाना पड़ता, न बुझाना पड़ता। और तुम देख ही रहे हो, घासलेट का तेल मिलना मुश्किल होता जाता है, दाम बढ़ते जाते। दीया मुफ्त है अंधेरे का, उजाले के दीये में तो पैसे लगते हैं।

अंधेरा भी समझाता, हजार दलीलें निकालता और शायद तुम राजी होते

अंधेरे से। अंधेरा कहता देखो मुझमें ही तुम्हें विश्राम मिलता है। रात कुछ रोशनी हो, सो नहीं सकते; रोशनी न हो, सो सकते हो। मैं विश्राम हूं। और विश्राम को ही तो शास्त्रों ने राम कहा है। परम विश्राम को ही समधि कहा है। तर्क खोजता, शास्त्र के उल्लेख भी करता। कहावत है कि शैतान भी शास्त्र के उल्लेख कर सकता है, तो अंधेरा भी करता।

मगर अंधेरा बोल नहीं सकता है। पर मन तो बोल सकता है, बक्काड़ है; बोल ही नहीं सकता बड़ा बकवासी है। चुप नहीं रहता, बोलता ही रहता है। तुम चाहे लाख कहो कि भई चुप रहो, थोड़ी देर तो मुझे शांति लेने दो। वह कहता है कि तुम शांति लो, मैं बोलता रहूंगा। मैं अपना अभ्यास जारी रखूंगा। मैं ऐसे चुप होने वाला नहीं हूं। क्यों चुप हो जाऊं? चुप्पी मैं सार क्या है? मन तो अपनी बकवास जारी रखेगा। जब तुम सद्गुरु के चरणों में पहुंचोगे तो सबसे बड़ी सावधान होने की बात है—अपने ही मन से सावधान रहना। चूंकि तुम उस मन से सावधान नहीं रह पाते, इसलिए पंडित-पुरोहित तुम्हें जकड़ लेते हैं, वे मन के प्रतीक हैं बाहर के जगत में। तुम्हारे मन को वे समझा लेते हैं, मन को पकड़ लेते हैं, तुम जकड़ जाते हो।

आधी रात ठगों का डेरा
सावधान रे सावधान!
चूके जरा ठगे जाओगे
फिर धुनकर सिर पछताओगे
काम न दे पायेगा ज्ञान।

बकुल पंख कुल ये मृदु भाषी
दर्शन में हैं परम उदासी
गांठ लगाकर बन जाते हैं
नाना जन्मों के विश्वासी
हर लेते अनजाने प्राण।

डसते हैं तो लहर न आती
युग मंगल के अधमविघाती
बिना जाति सूत्रबद्ध ये
सुबह बराती रात घराती
भक्षक दया धर्म ईमान

आओ इनसे लोहा ले लें
मिलकर इनको छलनी कर दें

बटमारों से राह साफ कर
ताप दुखी जीवन का हर लें
मिले धरा को जीवन त्राण।

सोचो मत, रुकना घातक है
मद पी कर अंधा पातक है
चलो करो तत्क्षण अभियान

आधी रात ठगों का डेरा
सावधान रे सावधान।

एक तो मन से सावधान होना, तो तुम पंडित से बच सकोगे। क्योंकि जो मन भीतर है, पंडित वही बाहर है। पंडित मन का ही प्रगट रूप है। और मन पंडित का अप्रगट रूप है; वे दोनों जुड़े हैं। इसलिए पंडित की मन पर बड़ी छाप पड़ती है, मन बड़ा प्रभावित होता है।

सद्गुरु मिले तो पंडित से भी छुड़ाए, मन से भी छुड़ाए। मगर तुम्हें तैयारी तो रखनी ही पड़े छोड़ने की; तुम्हारे सहयोग के बिना तो कुछ भी न होगा।

संत-चरन में लगि रहै... जब मिल जाए कोई चरण ऐसा तो लगी रहे, फिर तो पकड़ ही ले, फिर छोड़े ही न। फिर लाख मन चिल्लाये, लाख मन समझाये, छोड़े ही न।

सो जन पावै भेव... बस ऐसे ही व्यक्ति को जीवन का भेद और रहस्य पता चल पाता है।

न जी सकता न मर सकता
तड़फता ही रहूंगा क्या?

पपीहे की रटन भी तो
लहर कर बन्द हो जाती
बरस पड़ते दरक कर हैं
गगन से प्रेम के स्वाती।
निशा भर दीप जलने पर
किरण का फूल खिल जाता,
सुना जो साधना करते
उन्हें भगवान मिल जाता

मगर मैं तो तरसता ही
विकल बहता रहूंगा क्या?

न जी सकता न मर सकता
तड़फता ही रहूंगा क्या ?

सब तुम्हारे ऊपर निर्भर है। स्वयं को पकड़े बैठे रहे तो तड़फते ही रहोगे भटकते ही रहोगे। फिर रात का कोई अंत नहीं। फिर सुबह नहीं होगी। लेकिन अगर कहीं कोई चरण पा लो जहां प्रेम उमगे, जहां श्रद्धा जन्मे, तो साहस करना, दुस्साहस करना, जोखम उठा लेना। झुक जाना, क्योंकि उसी झुक जाने में जीत है। मिट जाना, क्योंकि उसी मिट जाने में होना छिपा है। गुरु-परताप साध की संगति !

भीखा गुरु-परताप तें काढेव कपट-जनेव ।।

अगर पकड़े रहे चरण तो गुरु धीरे-धीरे तुम्हारे कपटी मन को, तुम्हारे चालाक मन को काट देगा। आहिस्ता-आहिस्ता, पता भी नहीं चलेगा, धीरे-धीरे छेनी-हथौड़ी लेकर तुम्हारे मन को गढ़ देगा। तुम्हारे भीतर अनगढ़ पत्थर को मूर्ति बना देगा परमात्मा की।

संत-चरन में जाइकै, सीस चढ़ायो रेनु ।
भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु ।।

भीखा अपने अनुभव की कहते हैं कि जब मैं अपने गुरु के चरणों में गया—संत-चरन में जाइकै, सीस चढ़ायो रेनु—तो पैर छूने का तो मेरा अधिकार न था। सुनते हो ? भीखा कहता है, पैर छूने का तो मेरा अधिकार न था, मैंने तो पैरों के नीचे पड़ी हुई जो धूल थी उसे सिर पर चढ़ाया। उतना ही बहुत था लेकिन, उतना ही काफी था।

भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु... और जैसे ही मेरे सिर पर वह धूल लगी, आकाश में दुदुम्भी बजी, आकाश में संगीत छिड़ गया अनाहत का, ओंकार बज उठा, परमात्मा को पहली दफा सुना, उसका निनाद सुना।

भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु... उसकी वीणा बजी, उसकी बांसुरी बजी, अनाहत की, आकाश की, बरखा हो गयी संगीत की।

सावन के दिन फिर आये हैं झूला डालो रे।

धानी चुनरी पहने धरती
करती नव शृंगार
पगली बदली लुटा रही है
मोती धुआंधार
पायल बांध जोहते मोर उन्हें नचा लो रे।

संग की सखी सहेली पागल
गाने वाली हैं

और यहां राधा रस भींगी
मद मतवाली हैं
छिप छिप श्याम बजाते मुरली कजरी गा लो रे।
उठो दमक कर बिजली दमके
बिछुआ झन झन झन
मरने दो मरने वालों को
झरने दो रस कण
फिर न मिलेगा अबस अहेरी उठो छका लो रे।
सावन के दिन फिर आये हैं झूला डालो रे।

काश झुक सको तो सावन आ जाए, घिर आयें सावन की बदलियां, मोर नाच उठें, कोयल गाये, पपीहे पुकारें...! सावन के दिन फिर आये हैं, झूला डालो रे ! ...फिर जीवन एक उत्सव है, एक उत्साह है, एक उमंग है। फिर जीवन ऐसा नहीं है जैसा तुमने अब तक जाना—कुली की तरह बोझ ढो रहे हो, बोझ भी अपना नहीं दूसरों का।

धानी चुनरी पहने धरती
करती नव शृंगार
पगली बदली लुटा रही है
मोती धुआंधार
पायल बांध जोहते मोर उन्हें नचा लो रे।

एक बार तुम सुन लो वेणु आकाश की, एक बार तुम सुन लो अनाहत का नाद, एक बार बस, एक बार तुम्हारे कान में एक स्वर भी समाविष्ट हो जाए—फिर तुम वही न रह सकोगे, जो तुम थे। गया पुराना, आया नया। नयी खुली आंख, नये मिले प्राण, नया मिला जीवन, हुए तुम द्विज ! और द्विज जो हो जाए वही ब्राह्मण है।

संग की सखी सहेली पागल
गाने वाली हैं
और यहां राधा रस भींगी
मद मतवाली हैं
छिप छिप श्याम बजाते मुरली कजरी गा लो रे।

श्याम की बांसुरी तो बज ही रही है। कभी रुक सकती ही नहीं, अहर्निश बज रही है। आज भी बज रही है, उतनी ही जितनी पहले बजती थी, जरा भी भेद

नहीं है। वह शाश्वत नाद है, सिर्फ हम बहरे हैं। और हम बहरे हैं, अपने अहंकार से हमने कानों को बंद कर रखा है। हम अंधे हैं, हमने अहंकार की पट्टियां अपनी आंखों पर बांध रखी हैं। हमारा हृदय अनुभव नहीं करता, भाव-रस नहीं उठता। छाती पर पत्थर बांध लिए हैं अहंकार के। बनो राधा, नाचो, गाओ, गुनगुनाओ!

छिप छिप श्याम बजाते मुरली कजरी गा लो रे।
उठो दमक कर बिजली दमके
बिछुआ झन झन झन
मरने दो मरने वालों को
झरने दो रसकण
फिर न मिलेगा अबस अहेरी उठो छका लो रे।

और जब कोई सद्गुरु मिल जाए तो चूकना मत, क्योंकि पता नहीं फिर कब, किन जन्मों में, कितने जन्मों में, मिले न मिले... फिर न मिलेगा अबस अहेरी उठो छका लो रे!

और जब सद्गुरु तीर साधे तुम्हारे हृदय पर, खोल देना अपनी छाती। मरने की तैयारी दिखाना। मरने की तैयारी जो दिखाये वही शिष्य है। मरने की तैयारी जो दिखाये उसी का नव जन्म होता है।

बेनु बजायो मगन ह्वै, छुटी खलक की आस।

और जब से यह बीन सुनी है, जब से यह अनाहत का नाद सुना--छुटी खलक की आस--तब से दुनिया में अब कोई आकांक्षा नहीं, कोई वासना नहीं। सुनो, समझो, तुम्हें अब तक यही समझाया गया है--पहले संसार छोड़ो, फिर अनाहत का नाद सुनाई पड़ेगा। लेकिन भीखा कुछ और कह रहे हैं, वही कह रहे जो मैं तुमसे रोज कहता हूं--बेनु बजायो मगन ह्वै, छुटी खलक की आस। जब बांसुरी बजने लगी तब संसार की आशा छूटी, तब संसार से वासना छूटी।

अंधेरा पहले नहीं हटता। कोई कहे कि अंधेरा हट जाए फिर दीया जलाएंगे, दीया कभी नहीं जलेगा। दीया जलता है तो अंधेरा हटता है। त्याग से ध्यान नहीं मिलता, ध्यान से त्याग फलता है।

इसलिए मैं अपने संन्यासियों को नहीं कहता कुछ छोड़ो। मैं तो कहता हूं पाओ। छोड़ना क्या? छोड़ने की भाषा क्या? छोड़ने की भाषा भिखमंगे की भाषा है। सम्राटों की भाषा सीखो। पाओ! संसार छोड़ना नहीं, परमात्मा को पाना है। एक विधायक अभियान, नकारात्मक नहीं। यह छोड़ो, वह छोड़ो। कैसे छोटे-छोटे छोड़ने में लोग लगे हैं और सोचते हैं इस छोड़ने से परमात्मा मिलेगा। एक सज्जन ने नमक छोड़ दिया खाना, वे सोचते हैं परमात्मा मिलेगा। छोड़ा क्या तुमने

नमक खाना छोड़ा, मिलेगा परमात्मा, ब्रह्मज्ञान हो जाएगा नमक खाना छोड़ने से! थोड़ी देह को तकलीफ होगी जरूर क्योंकि देह को नमक की जरूरत है। नमक के बिना तुम थोड़े सुस्त हो जाओगे, थोड़े निढाल हो जाओगे, ऊर्जा क्षीण हो जाएगी, मगर परमात्मा कैसे मिल जाएगा?

किसी ने नमक छोड़ दिया है, किसी ने घी छोड़ दिया है। कोई एक दिन उपवास करता है, एक दिन भोजन लेता है। ये देह के जो तुम आयोजन कर रहे हो इनसे परमात्मा के मिलने का क्या संबंध? जैन मुनि एक ही बार भोजन लेते हैं। उन्हें पता होना चाहिए अफ्रीका में एक जाति है, पूरा का पूरा कबीला एक ही बार भोजन लेता है, सदियों से। तुम चौंकोगे कि क्यों एक ही बार भोजन लेता है क्योंकि तुम्हें दो बार भोजन लेने की आदत पड़ी है। सिर्फ आदत की बात है। अमरीका में लोग पांच बार भोजन लेते हैं दिन में, वे हैरान होते हैं कि तुम दो ही बार में कैसे निपटा लेते हो!

जो पांच बार लेता होगा उसको हैरानी होगी ही कि दो बार लेने वाले लोग महात्यागी। और जो एक ही बार में निपटा लेता है और भी हैरानी होगी कि वह तो महात्यागी। अभ्यास की बात है। शरीर इतना ले लेता है एक ही बार में कि चौबीस घंटे काम चल जाए।

इससे कुछ परमात्मा के मिलने का संबंध नहीं, नहीं तो उस कबीले के सारे लोग परमात्मा को उपलब्ध हो जाएं, सब ब्रह्मज्ञानी हो जाएं। कोई रात पानी नहीं पीता इससे थोड़ी तकलीफ तुम्हें होगी ठीक, लेकिन इससे परमात्मा के मिलने का क्या संबंध है। परमात्मा को तुमने कोई दुष्ट समझा है कि तुम अपने को सताओ तो वह प्रसन्न हो? यह तो बड़ी उलटी-सी बात है कि एक बच्चा अपने को सताये तो मां का प्रेम उस पर बढ़े! मां तो उलटी पिटाई कर देगी उसको कि यह क्या नासमझी है, कि नमक छोड़ दिया, इससे मेरा प्रेम कैसे मिलेगा? कि एक दफे खाना नहीं खाऊंगा।

अगर परमात्मा है तो तुम्हारे तथाकथित मुनि इत्यादिओं से दूर ही दूर रहेगा, इनसे बचेगा। ये रास्ते पर कहीं भूल-चूक से मिल जाएंगे तो गली में से निकल भागेगा। ये रुग्णचित्त लोग हैं। नकार हमेशा रोग लाता है। नकारात्मकता जीवन का धर्म नहीं है--विधायकता। नहीं, नहीं--हां। हां को हां कहो।

भीखा कहते हैं: बेनु बजायो मगन ह्वै... और जब आकाश की वीणा सुन ली तो भीतर की वीणा भी बज उठी। उसके संघात में बज उठती है। जब आकाश का प्रकाश तुम पर पड़ता है, तुम्हारे भीतर की ज्योति जग उठती है। सोयी थी, आंख खोल देती है।

बेनु बजायो मगन ह्वै, छुटी खलक की आस।

और तब से एक चमत्कार हुआ कि जो वासना छोड़े-छोड़े नहीं छूटती थी--धन की, पद की, प्रतिष्ठा की--वह अचानक कहां तिरोहित हो गयी पता नहीं चलता। जैसे दीया जला और अंधेरा तिरोहित हो गया।

भीखा गुरु-परताप तें, लियो चरन में बास ॥

फिर तो बस चरण नहीं छोड़े। फिर भीखा गुलाल को छोड़कर नहीं गये। फिर तो उन चरणों में ही रेणु होकर रह गये, वहीं धूल हो गये। अब कहां जाना? अब जाने को जगह कहां बची?

भीखा केवल एक है, किरतिम भयो अनंत।

और जब अनाहत जाना तो पता चला कि है तो एक, हमें अनेक दिखाई पड़ता है क्योंकि हमारे पास सत्य को देखने वाली आंख नहीं; हमारी आंख कृत्रिम है।

एक राजमहल में कांचों ही कांचों से दीवाल बनी थी। दर्पण ही दर्पण के टुकड़ों से दीवाल बनी थी। राजा का कुत्ता एक रात भूल से भवन में बंद रह गया। तुम उसकी अड़चन समझो, वही आदमी की अड़चन है। उसने आंख खोलकर चारों तरफ देखा। रात हुई, बिजली जली, जब तक बिजली न जली थी तब तक तो वह निश्चित बैठा रहा, जब बिजली जली तो उसने देखा एक कुत्ता नहीं, लाखों कुत्ते हैं चारों तरफ। छोटे-छोटे कांच, दर्पण के टुकड़े दीवालों पर लगे हैं। हर दर्पण के टुकड़े में एक कुत्ता है। कुत्ते ही कुत्ते हैं। इतने कुत्ते उस कुत्ते ने नहीं देखे थे। उसकी तो सांस बंद होने लगी। उसने कहा मारे गये। भागने की भी जगह नहीं दिखाई पड़ती। भागोगे भी कहां? चारों तरफ लाखों कुत्तों ने घेर रखा है। वही कर सकता था जो करना जानता था--भौंका, भौंका तो लाखों कुत्ते भौंके। झपटा तो लाखों कुत्ते झपटे। टूट पड़ा कुत्तों पर तो कुत्ते उस पर टूट पड़े, ऐसा उसे मालूम पड़ा। टकरा गया दीवालों से। सिर फूट गया, लहूलुहान हो गया। रात-भर भौंकता रहा, टकराता रहा; भौंकता रहा, टकराता रहा। ... सुबह उसकी लाश मिली और सारी दीवालों पर उसके खून के दाग मिले।

ऐसी आदमी की हालत है। हमारे पास सत्य को देखने वाली आंख नहीं। हमने अभी अपने को ही नहीं देखा, हम और क्या देखेंगे! आत्म-दर्शन भी नहीं हुआ, हम दूसरों को देख रहे हैं! और दूसरों की आंखों में अपनी छवि देख रहे हैं। ये दूसरों की आंखें बस दर्पण हैं। चारों तरफ हजारों लोग हैं, हजारों चलते-फिरते दर्पण हैं, घूमते हुए आईने हैं। और उन सब आईनों में तुम अपने को देख रहे हो। वे तुम्हारी आंखों में देखते हैं, तुम उनकी आंखों में देखते हो! कोई कह देता है बड़े प्यारे, तो चित्त खिल जाता है; और कोई कह देता है चलो हटो-हटो, आगे बढ़ो, सिर न खाओ, तो चित्त बड़ा दुखी हो जाता है। किसी दर्पण में सुंदर

दिखाई पड़ जाते हो तो मगन हो जाते हो, किसी दर्पण में कुरूप दिखाई पड़ जाते हो तो चित्त ग्लानि से भर जाता है। और इतने दर्पण हैं, और इन सब दर्पणों की अलग-अलग भाषा है--कोई कुछ, कोई कुछ, कोई कुछ--ये सब दर्पण अलग-अलग ढंग के हैं।

और इन सब दर्पणों से तुम अपना मन्तव्य इकट्ठा करते हो कि मैं कौन हूं! ये चिन्दियां इकट्ठी कर लेते हो अलग-अलग लोगों से। इन सब चिन्दियों को इकट्ठा बनाकर तुमने अपनी आत्मा समझ ली है।

यह आत्मा नहीं है। ऐसे आत्मा नहीं जानी जाती। आत्मा जानने के लिए किसी दर्पण की जरूरत नहीं है। फिर दर्पण में तुम देखोगे क्या? अपने को ही देखोगे। आखिर कुत्ते को दर्पण में कुत्ता ही दिखाई पड़ा था न?

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन को राह से चलते वक्त एक दिन एक दर्पण पड़ा मिल गया, राह के किनारे। दर्पण उसने कभी देखा नहीं था। उठाकर देखा, बहुत चौंका; सोचा कि बिलकुल पिताजी जैसी तस्वीर मालूम होती है। पिताजी तो मर भी चुके, मगर आज पता चला कि बड़ी रंगीन तबियत के आदमी थे; फोटो उतरवायी! सोचा भी नहीं था कभी कि पिता और ऐसी रंगीन तबियत के आदमी थे; पांच दफा नमाज पड़ते थे। हद हो गयी। जल्दी से खीसे में छिपा ली कि अब किसी को पता चलना ठीक नहीं। बड़ा नाम था उनका, बड़े महात्मा थे, कोई को पता चल जाए कि तस्वीर उतरवायी थी तो और बदनामी होगी। अब मरे पर क्या बदनामी, अब तो स्वर्गीय हो चुके, जो हो गया सो हो गया। घर में चलकर छिपा दूंगा।

गया ऊपर, मचान पर चढ़ गया घर में और छिपा रहा था दर्पण।... अब पत्नियों से तुम कुछ छिपा तो सकते नहीं कि छिपा सकते हो? आज तक कोई पति नहीं छिपा पाया, कुछ भी नहीं छिपा पाया। छिपाओ कि पकड़े गये। सब पति जानते हैं कि छिपाने में कोई सार ही नहीं है; पत्नी खोज ही लेगी। देख लिया पत्नी ने कि ऊपर मचान पर चढ़ा कुछ कर रहा है। उसने कहा ठीक कर लेने दो पहले। कुछ छिपाता होगा।

जब मुल्ला उतर कर नीचे आ गया और दोपहर को भोजन इत्यादि कर के सो गया तो पत्नी ऊपर चढ़ी। खोज-खाज कर दर्पण देखा, तो देखा--अरे, इस रांड के चक्कर में पड़ा है! बुढ़ापे में इधर फोटो छिपा कर रख रहा है! उठ आये तो इसे छटी का दूध याद दिला दूंगी।

आखिर दर्पण में तुम देखोगे क्या? दर्पण में तुम्हारी ही तस्वीर दिखाई पड़ेगी और तुम्हारी तस्वीर भी सिर्फ तुम्हारे बहिरंग की तस्वीर होगी, तुम्हारे अंतरंग की तो कोई तस्वीर नहीं बनती। कोई दर्पण नहीं है, और कोई कैमरा नहीं

है जो तुम्हारी आत्मा की तस्वीर ले। एक्स-रे भी वहां तक नहीं जाती। हड्डियों तक पहुंच जाती है, मगर आत्मा तक तो कोई तस्वीर लेने का उपाय नहीं है। उसे जानना है।

भीखा केवल एक है...

जिसने उसे जाना, उसने फिर एक को जान लिया। अपने भीतर जाना, सबके भीतर जान लिया।

...किरतिम भयो अनंत।

एकै आतम सकल घट, यह गति जानहिं संत।।

एक ही समाया है। जो मुझमें, वही तुम में। एक ही समाया है। वही परमात्मा में, वही पत्थर में। इसी सत्य को प्रगट करने के लिए सबसे पहले हमने पत्थर की मूर्तियां बनायी थीं। मगर सत्य तो खो जाते हैं, प्रतीक खो जाते हैं, गलत लोगों के हाथ में पड़कर अच्छी से अच्छी चीजें व्यर्थ हो जाती हैं। इस महा सत्य को प्रगट करने के लिए कि वही परमात्मा है, वही पत्थर भी, हमने पत्थर की प्रतिमाएं बनायी थीं। ताकि तुम्हें याद रहे, ताकि तुम्हें याद दिलायी जाती रहे कि निकृष्ट में भी श्रेष्ठ छिपा है, क्षुद्र में भी विराट छिपा है, कण-कण में भी अनंत का आवास है।

एकै आतम सकल घट, यह गति जानहिं संत।।

और जो ऐसा जान ले वह संत। संत की प्यारी परिभाषा हो गयी। जो एक को जान ले वह संत; जो अनेक में भटका रहे, भरमाता रहे, भटकाता रहे—असंत। संत जैन नहीं हो सकता। संत हिन्दू नहीं हो सकता। संत मुसलमान नहीं हो सकता। अगर हो तो समझना कि संत नहीं। संत को कैसे विशेषण बचेंगे? एक को ही देखेगा तो कैसे विशेषण बचेंगे? मंदिर भी उसका, मस्जिद भी उसकी, गुरुद्वारा भी उसका।

मैं अमृतसर में था तो अमृतसर के गुरुद्वारा के प्रधानों ने मुझे निमंत्रित किया। निमंत्रित किया तो मैं गया। जो प्रधान मुझे दिखाने ले गये अंदर अमृतसर के स्वर्ण-मंदिर को, उन्होंने पहली ही बात दरवाजे पर कही कि एक बात आपको पहले ही बता दूं कि सिक्ख धर्म ही एक ऐसा धर्म है जहां हिंदू-मुसलमान का भेद नहीं।

मैंने कहा: अगर भेद नहीं है तो बात ही क्यों उठाते हो? अगर भेद नहीं है तो यह बात ही क्यों उठाते हो? जरूर कुछ भेद होगा। इस अभेद की चर्चा में भी भेद है। हिंदू-मुसलमान में कोई भेद नहीं तो तुमको पहचान पता चल जाती है कौन हिंदू, कौन मुसलमान?

कहने लगे यहां सबको आने देते हैं—हिंदू को भी, मुसलमान को भी।

मैंने कहा: जब तुम यह कहते हो कि सबको आने देते हैं, हिंदू को भी, मुसलमान को भी, तो तुम भेद रखते हो। तुम नानक को पहचाने नहीं, चूक गये। कहीं रुकावट है, कहीं रुकावट नहीं, मगर भेद तो जारी है।

वे बड़े परेशान थे मुझे भीतर ले जाकर। मैंने उनसे पूछा कि आप बहुत परेशान मालूम होते हैं। सुबह-सुबह का वक्त और सर्दी के दिन थे और उनके माथे पर पसीना, तो मैंने पूछा कि मामला क्या है?

उन्होंने कहा: अब आपसे छिपाना क्या, और बिना कहे रहा भी नहीं जाता क्योंकि फिर पीछे बहुत झंझट होगी। आप टोपी नहीं लगाये हुए हैं और बिना टोपी गुरुद्वारे में जाना अपमान हो जाएगा। जल्दी से उन्होंने अपना रूमाल निकाला और कहा कि यह मैं आपके सिर पर बांध देता हूं।

मैंने उनसे कहा: अब तुम्हारा निमंत्रण मान लिया है तो चलो यह बेहूदगी भी सहूंगा। और जब आ ही गया हूं तब इतनी छोटी सी बात के लिए लौटना, तुम्हें दुखी भी नहीं करूंगा। और भी बहुत लोग इकट्ठे हो गये हैं, वे भी दुखी होंगे। चलो बांध दो। मगर मैंने उनसे कहा कि तुम सोचते हो सिर पर कपड़े के बांध देने से सम्मान हो जाएगा? मैंने उनसे कहा कि मैं नंगे सिर भी जाऊं तो भी सम्मान है और तुम कितनी भी पगड़ियां बांधकर जाओ तो भी सम्मान नहीं।

सम्मान हार्दिक बात है, टोपी न टोपी का क्या सवाल है! और परमात्मा किसी को टोपी लगाकर भेजता भी नहीं इस दुनिया में। कम-से-कम टोपी तो लगाता ही अगर थोड़ा भी शिष्टाचार होता। न सही लंगोट, न सही चूड़ीदार पाजामा, न सही अचकन मगर कम-से-कम टोपी...!

मुल्ला नसरुद्दीन के द्वार पर एक दिन एक आदमी ने दस्तक दी; पत्नी सहित मिलने आया था। मुल्ला ने डरते-डरते जरा-सा दरवाजा खोला, पति-पत्नी दोनों चौंक गये—टोपी लगाये बिलकुल नंगा...। अब दोहरी जिज्ञासा उठी एक तो नंगा क्यों? और नंगा ही होना है तो टोपी क्यों? अब आ गये तो एकदम लौट भी न सके और मुल्ला भी कुछ कह नहीं सका, कहना ही पड़ा कि आइए बिराजिए।

बिराज तो गये, पत्नी तो बड़ी इधर-उधर देखे, पति ने पूछा कि एक सवाल उठता है कि आप नंगे क्यों हैं?

तो मुल्ला ने कहा कि नंगा इसलिए हूं कि इस समय कोई आता ही नहीं मिलने, तो गर्मी के दिन काहे के लिए कष्ट भोगना? अपनी मस्ती से नंगे बैठे हैं।

अब तो पत्नी से न रहा गया। पत्नी ने कहा कि ठीक है यह जिज्ञासा का तो हल हो गया, फिर टोपी क्यों लगायी है?

तो मुल्ला ने कहा: अरे, कभी कोई भूल-चूक से आ ही जाए तो कम-से-कम टोपी तो सिर पर रहे, इज्जत हो जाएगी।

यही कहानी मैंने उनसे कही। मैंने कहा : तुम कहते हो तो ठीक है बांध दो रूमाल इज्जत हो जाएगी, मगर यह इज्जत बस दिखावा है। अगर मेरे हृदय में इज्जत है तो टोपी से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा और अगर हृदय में इज्जत नहीं है तो भी टोपी से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। मगर चलो तुम्हें कम-से-कम तुम्हें पसीना न आये तुम्हें परेशानी न हो, तुम्हें लोग पीछे हैरान न करें इसलिए बंधवाए लेता हूं। नानक के लिए नहीं बंधवा रहा हूं यह रूमाल, यह तुम्हारे लिए बंधवा ले रहा हूं यह सिर्फ तुम्हारा ध्यान रखकर। और मैंने उनसे कहा : अभी तो तुम बताते थे हिन्दू-मुसलमान में कोई फ़र्क नहीं है, अब टोपी और न टोपी में भी फर्क है!

संत कौन है?

एकै आतम सकल घट, यह गति जानहिं संत ।।

परिचय अगर न होता तुमसे तो गीत कहां लिख पाता मैं?
पूनम का चांद बहुत सुन्दर
जग पर अमृत बरसाता है
पर ज्वार नहीं जब तक उठता
जाना किसने क्या नाता है?
आंखें यदि परछ नहीं पातीं कैसे मुक्ता चुंग पाता मैं?

परिचय का प्यार न अब पाहुन
घर में रस का नित नूतन स्वर
जिसकी पुलकन म मैं पाता
हंस हंस कर नित जीने का वर
वरदान बहुत मिल जाते पर दानी कहां कहा जाता मैं?
ये गीत मुझे उतने ही प्रिय
किरणें जितनी प्रिय शशि-रवि को
नीरव वंशी की स्वर लहरी
सुधि-बुधि दे जाती है कवि को।
पा जाता गूंगे सा मैं गुड़ सुंदर किसको कह पाता मैं।

संत को जो मिलता है वह गूंगे का गुड़ है।

आंखें यदि परछ नहीं पातीं कैसे मुक्ता चुग पाता मैं? . . . उसको आंख मिलती है नवीन, नये लोचन, देख पाता है—क्या मुक्ता है, क्या कंकड़-पत्थर। हंसा तो मोती चुगै! उसे दिखाई पड़ने लगते हैं कि क्या मोती हैं! वह मोती सब जगह चुन लेता है। उसे कुरान में भी मोती मिल जाएंगे और वेद में भी, उपनिषद

में भी, धम्मपद में भी। इन्हीं मोतियों की तो तुमसे चर्चा कर रहा हूं रोज-रोज।

मुझसे लोग पूछते हैं कि आप कितने संतों पर बोल चुके हैं, कितनों पर बोलेंगे?

मैं तो मोतियों पर बोल रहा हूं, संतों से क्या लेना-देना है! जहां-जहां मोती हैं, जहां-जहां मोती दिखाई पड़ते हैं, बोले बिना नहीं रहा जाता। मोतियों की तुम्हें खबर दे रहा हूं। कौन जाने किस घड़ी, किस शुभमुहूर्त में तुम्हारी भी आंख खुल जाए और मोती पहचान में आ जाएं। भीखा का गीत चलता हो तब पहचान में आ जाएं, कबीर का गीत चलता हो तब पहचान में आ जाएं, कि मंसूर की वार्ता होती हो तब पहचान में आ जाएं—कौन जाने किस महूर्त, किस घड़ी, किस शुभ क्षण में तुम्हारी आंख खुल जाए और मोती तुम पहचान लो। मगर एक दफा पहचान लो तो बस फिर चूकोगे नहीं, फिर भटकोगे नहीं।

एकै धागा नाम का, सब घट मनिया माल।
फेरत कोई संतजन, सतगुरु नाम गुलाल ।।

एकै धागा नाम का . . . यह सारा अस्तित्व ऐसे है जैसे माला। माला में गुरिये तो दिखाई पड़ते हैं, धागा दिखाई नहीं पड़ता। तो गुरिये हैं हम सब, सारा अस्तित्व गुरिये जैसा है और इसके भीतर बंधा हुआ धागा है जो इस सारे अस्तित्व को एक समायोजन में लिए है, आबद्ध किये है। गुरिये बिखर नहीं जाते, माला टूट नहीं जाती। वह अदृश्य धागा ही परमात्मा है, उसे राम कहो, अल्लाह कहो—जो भी नाम देना हो दो।

एकै धागा नाम का, सब घट मनिया माल।

बाकी तो सब माणिक हैं, मनिये हैं, मोती हैं, मोतियों में ही मत उलझे रहना। मोतियों को परखो, मोतियों में गहरे उतरो और तुम एक ही धागे को पाओगे। भीखा में डुबकी मारो वही धागा। कबीर में डुबकी मारो वही धागा। नानक में डुबकी मारो वही धागा। ऐसे रोज-रोज डुबकी लगाकर तुम्हें उसी धागे को पकड़ाने की कोशिश कर रहा हूं।

फेरत कोई संतजन . . . तुम जो मालाएं फेरते हो उनका कोई मूल्य नहीं है। तुम तो गुरियों में ही अटक जाते हो, जो धागे को पकड़ लेता है वह कोई संतजन...।

फेरत कोई संतजन, सतगुरु नाम गुलाल ।।

भीखा कहते हैं, मैं तो गुलाल को पहचानता हूं, वह उनके गुरु का नाम है। मैंने गुलाल में ही बुद्ध देख लिए, मैंने गुलाल में ही महावीर देख लिए, मैंने गुलाल में ही मुहम्मद देख लिए। मैं तो गुलाल से पहचाना, इसलिए गुलाल मेरे हृदय में बसे हैं। गुलाल के बहाने सब सदगुरु मेरे हृदय में बसे हैं। मगर मेरी श्रद्धा और मेरे प्राण तो गुलाल के चरणों में अर्पित हैं क्योंकि उनके ही पद रेणु को माथे पर रखकर

...भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु...क्योंकि ईश्वर ने उनके ही चरणों में झुकने पर मुझ पर वर्षा की थी अमृत की। मेरे लिए तो गुलाल सब कुछ हैं।

शिष्य के लिए तो उसका अपना गुरु सब कुछ है; सारे गुरु उसमें समाहित हैं। उसे अपना अपने गुरु की बूंद में सारे सागर समाहित मालूम होते हैं। इसलिए उसे कहीं जाने की कोई जरूरत भी नहीं रह जाती, कोई प्रयोजन भी नहीं रह जाता। वह तो टिक जाता है वह तो एक जगह ठहर जाता है। मगर ये घड़ियां रोज-रोज इस जमीन पर कम होती गयी हैं; ऐसा सौभाग्य-क्षण रोज-रोज कम होता चला गया है। सतगुरु मुश्किल, अब तो शिष्य भी मुश्किल हो गये हैं! सतगुरु तो सदा मुश्किल थे लेकिन शिष्य इतने मुश्किल नहीं थे—खोजी थे, तलाशी थे, जीवन को दांव पर लगाने वाले लोग थे।

आज अपनी ही धरा पर सिर उठाना भी मना है।

क्या नहीं अब तक सुनी है
एक बौने की कहानी?
क्या नहीं तुम जानते हो
बलि चढ़ा था एक दानी?
आज बौनों की धरा पर गुनगुनाना भी मना है।

जो न सहना चाहिए वह
घात हंस हंस सह रहा हूं,
मानना मत, इसलिए मैं
बात ऐसी कह रहा हूं;
रक्त से भींगी धरा पर डग बढ़ाना भी मना है।

अब नहीं है गीत गाने का जमाना,
अब नहीं है मीत पाने का जमाना,
साधना और सिद्धि का दानी न कोई,
ढूंढ़ते सब घात करने का बहाना;
मुस्कराओ मत यहां पर, गीत गाना भी मना है।

अब तो हालत बड़ी बुरी हुई, आकाश का गीत तो क्या सुनोगे, अपना गीत भी गाने की सामर्थ्य नहीं है। और अगर गाओ तो गुनगुनाना मना है, हजार पाबंदियां हैं, हजार संगीनों के पहरे हैं। आदमी की गर्दन को रोज-रोज राज्य, चर्च, पंडित, पुरोहित, कसते चले गये हैं, इस कसी हुई गर्दन में से गीत उठे तो उठे कैसे?

आज बौनों की धरा पर गुनगुनाना भी मना है।

और बहुत छोटे-छोटे बौने लोग बड़े शक्ति में बैठ गये हैं, इसलिए कहीं कोई गीत गाये, कहीं कोई प्रतिभा का जन्म हो, कहीं ईश्वर का पदार्पण हो, तो उन सब को अड़चन हो जाती है, बौने बहुत नाराज हो जाते हैं।

अब तो सिर्फ वे थोड़े से लोग ही सत्य की तलाश में निकल सकते हैं जिन्हें जीवन को भी चुका देने की तैयारी है; जो जीवन को भी अर्पित कर सकते हैं, जो हजार कठिनाइयां, हजार मुसीबतें, झेलने को राजी हैं। मगर ये सब मुसीबतें झेलने जैसी हैं। जिस दिन सत्य का गीत जनमेगा, जिस दिन वह वीणा बजेगी उस दिन तुम पाओगे जो हमने किया था, वह तो कुछ भी नहीं है; जो मिला है, वह अपार है। हमारा प्रयास तो बूंद जैसा था; जो पाया है, वह सागर है।

गुरु-परताप साध की संगति!

आज इतना ही।

नव-प्रकाशित साहित्य

१. मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास-वाणी)
२. प्रेम-पंथ ऐसो कठिन (प्रश्नोत्तर)
३. उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र (प्रश्नोत्तर)
४. अमी झरत, बिगसत कंवल (दरिया-वाणी)
५. हंसा तो मोती चुगैं (लाल-वाणी)
६. गीता-दर्शन अध्याय ७-८
७. महावीर-वाणी भाग १
८. महावीर-वाणी भाग २
९. मृत्योर्मा अमृतं गमय (प्रश्नोत्तर)
१०. देख कबीरा रोया
११. हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं
१२. सपना यह संसार (पलटू-वाणी)
१३. शिक्षा में क्रांति
१४. दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास-वाणी)

जागो
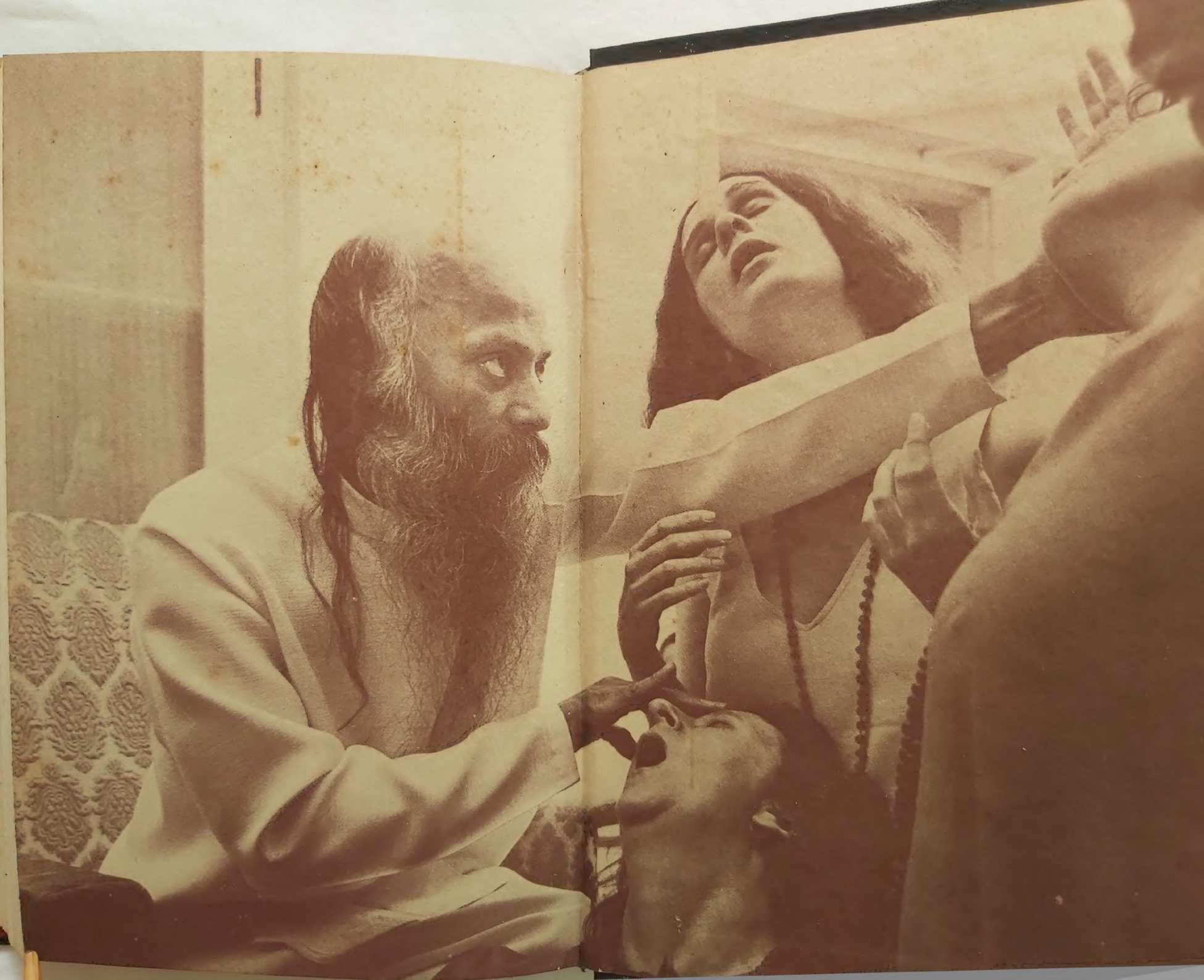
जागो! और जागने का एक ही उपाय है—गुरु-परताप साध की संगति! भीखा के ये वचन सीधे-सादे, सुगम, पर चिनगारी की भांति हैं। और एक चिनगारी सारे जंगल में आग लगा दे—एक चिनगारी का इतना बल है।

हृदय को खोलो, इस चिनगारी को अपने भीतर ले लो। शिष्य वही है जो चिनगारी को फूल की तरह अपने भीतर ले ले। चिनगारी जलाएगी वह सब जो गलत है, वह सब जो व्यर्थ है, वह सब जो कूड़ा-करकट है। चिनगारी जलाएगी, भभकाएगी वह सब जो नहीं होना चाहिए और उस सबको निखारेगी जो होना चाहिए। चिनगारी असत्य को जलाती है, सत्य को निखारती है। और जो इस अग्नि से गुजरता है, एक दिन कुंदन होकर प्रगट होता है, शुद्ध स्वर्ण होकर प्रगट होता है।

भगवान श्री रजनीश

यह कोई साधारण तीर्थस्थान नहीं है जहां मुर्दे सदियों-सदियों से इकट्ठे होते रहे हैं इसलिए और मुर्दे भी आते-जाते हैं। यह कोई काशी नहीं है जहां करवट लेने आखिरी वक्त लोग पहुंच जाते हैं। यह कोई मक्का-मदीना नहीं है जहां की यात्रा कर आये, बस यात्रा कर आये और सब हो गया। यहां तो केवल उनके लिए ही जगह है जो मिटने को राजी हैं, जो टूटने को राजी हैं, जो खोने को राजी हैं, शून्य होने को राजी हैं।

तुम शून्य हो जाओ तो परमात्मा दौड़ पड़े। तुम शून्य हो जाओ तो तुम्हारा द्रष्टा जग जाए। और तुम अपने द्रष्टा को देख लो तो तुम मुझे देख लो। जब तक तुम अपने को न देख पाओगे, तुम मुझे भी न देख पाओगे।

भगवान श्री रजनीश